स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी महाकाव्य

[प्रथमार्द्ध]

लेखक
डॉ० देवीप्रसाद गुप्त
एम० ए०, एल एल० बी०, पी एच० डी०
प्राध्यापक स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग
गवर्नमेन्ट पोस्टग्रेजुएट डूंगर कॉलेज
बीकानेर (राजस्थान)



प्रकाशक
गाडोदिया पुस्तक भण्डार, बीकानेर

प्रकाशक
किशनलाल गाडोदिया
गाडोदिया पुस्तक भण्डार
फड बाजार
बीकानेर (राजस्थान)
फोन नं० १०८०
ब्राच
स्टेशन रोड चूरू (राजस्थान)

मुद्रक
राष्ट्रभाषा प्रेस
राजामण्डी
आगरा २

मूल्य पैंतीस रुपये

प्रथम संस्करण १९७३

SWĀTANTRYOTTRA HINDĪ MAHĀKĀVYA

(Part I)

[A Critical Study of Hindi Epics of Post Independence Era]

By
Dr Devi Prashad Gupta
M A LL B Ph D
GOVT POSTGRADUATE DUNGAR COLLEGE
BIKANER (RAJASTHAN)

Price Rs Thirty Five Only

'सारथी' महाकाव्य

के

प्रणेता

डॉ० रामगोपाल शर्मा 'दिनेश'

को

सादर समर्पित

भूमिका

स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी महाकाव्य
विकासात्मक एव प्रवृत्तिमूलक सचेतना

स्वातन्त्र्योत्तरकालीन हिन्दी साहित्यिक सरचना मे काव्य और कथा साहित्य के क्षेत्र मे गौरवान्वित कृतियों का प्रणयन हुआ है। काव्य प्रभेदों मे महाकाव्यो की सृजन परम्परा उल्लेखनीय है। आधुनिक हिन्दी महाकाव्य परम्परा का समारम्भ सन् १९१४ मे कवि सम्राट हरिऔध कृत प्रियप्रवास' महाकाव्य के प्रकाशन से होता है। प्रियप्रवास' से स्वतन्त्रता प्राप्ति तक जिन महाकाव्य कृतिया की रचना हुई, वे हैं—साकेत, रामचरित चिंतामणि, तक्षशिला, नल नरेश, कौशल किशोर, कामायनी, नूरजहा, सिद्धार्थ, श्री राम चन्द्रोदय, वदेही वनवास, हल्दी घाटी, पुरुषोत्तम, श्रीकृष्ण चरितमानस कुरुक्षेत्र, आर्यावर्त्त, कृष्णायन जौहर, साकेत सन्त, महामानव आदि। इनम शिल्पगत वैशिष्ट्य एव जीवन दर्शन सम्बन्धी उपलब्धियों की दृष्टि से प्रसादकृत कामायनी को महाकाव्यालोचकों ने एकमत से आधुनिक युग का सर्वोत्कृष्ट हिन्दी महाकाव्य स्वीकार किया है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भी हिन्दी म महत्वपूर्ण महाकाव्य-कृतियो की रचना हुई है जिनकी विकासक्रम (कालक्रमानुसार) की दृष्टि से सूची निम्नाकित प्रकार है—

	महाकाव्य	महाकाव्यकार	प्रकाशन तिथि
१	मेधावी	रागेय राघव	१९४७
२	विक्रमादित्य	गुरुभक्तसिंह	१९४७
३	दैत्यवंश	हरदयालुसिंह	१९४७
४	रामकथा कल्पलता	नित्यानन्द शास्त्री	१९४९
५	अगराज	आनन्दकुमार	१९५०

६	वद्धमान	अनूपशर्मा	१६५१
७	कैकेयी	केदारनाथ मिश्र प्रभात	१६५१
८	रावण	हरदयालुसिंह	१६५२
६	जय भारत	मथिलीशरण गुप्त	१६५२
१०	जगदालोक	गोपालशरणसिंह	१६५२
११	देवार्चन	श्री करील	१६५२
१२	पार्वती	रामानन्द तिवारी	१६५५
१३	झांसी की रानी	श्याम नारायण प्रसाद	१६५५
१४	हनुमच्चरित	रणवीरसिंह	१६५५
१५	वनस्थली	नाथूलाल अग्निहोत्री	१६५५
१६	ऋतम्बरा	केदारनाथ मिश्र प्रभात	१६५७
१७	दमयन्ती	ताराचन्द्र हारीत	१६५७
१८	रश्मिरथी	रामधारीसिंह दिनकर	१६५७
१६	मीरां	परमेश्वर द्विरेफ	१६५७
२०	नारी	अतुलकृष्ण गोस्वामी	१६५७
२१	प्रताप	रणवीरसिंह	१६५७
२२	तारकवध	गिरिजादत्त शुक्ल	१६५८
२३	एकलव्य	रामकुमार वर्मा	१६५८
२४	ऊर्म्मिला	बालकृष्ण नवीन	१६५८
२५	सेनापति कर्ण	लक्ष्मीनारायण मिश्र	१६५८
२६	युगद्रष्टा प्रेमचन्द	परमेश्वर द्विरेफ	१६५६
२७	बाणाम्बरी	रामावतार पोद्दार अरुण	१६६०
२८	लोकायतन	सुमित्रानन्दन पन्त	१६६०
२६	रामराज्य	बल्देव प्रसाद मिश्र	१६६०
३०	शिवचरितामृत	विष्णुदत्त शास्त्री	१६६१
३१	सारथी	रामगोपाल शर्मा दिनेश	१६६१
३२	उर्वशी	रामधारीसिंह दिनकर	१६६१
३३	शक्तिशङ्खनाद	लक्ष्मीचन्द्र मिश्र	१६६२
३४	नन्दिग्राम	गयाप्रसाद द्विवेदी	१६६३
३५	सरदार भगतसिंह	श्रीकृष्ण सरल	१६६४
३६	प्रियमिलन	नन्द किशोर झा	१६६४
३७	चन्द्रगुप्त मौर्य	राम खेलावन वर्मा	१६६४

३८ कालिदास	श्री तिलक		१९६५
३९ मानवेन्द्र	रघुवीर शरणमित्र		१९६५
४० निराला	श्री तिलक		१९६६
४१ श्री गुरु गोविन्दसिंह	श्याम नारायण प्रसाद		१९६७
४२ गाधी पारायण	अंबिका प्रसाद दिव्य		१९६९
४३ कैकेयी	चादमल चन्द्र		१९६९
४४ देव पुरुष गाधी	रमशचन्द्र शास्त्री		१९६९
४५ कमला	परमेश्वर द्विरेफ		
४६ काव्य पुरुष	रमाशकर शुक्ल रसाल		
४७ छत्रसाल	लालधर त्रिपाठी		
४८ जयमानव	ब्रह्मदत्त दीक्षित		
४९ परम ज्योति महावीर	धन्य कुमार जैन		
५० गाधी चरित मानस	विद्याधर महाजन		

स्वातन्त्र्योत्तर-काल म प्रकाशित हिन्दी के उपर्युक्त महाकाव्यो की विस्तृत सूची देखकर यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि हिन्दी मे महाकाव्यो की रचना विपुल परिमाण म हुई है। यही स्वभावत यह प्रश्न भी हो सकता है कि क्या ये सभी काव्यग्रन्थ सचमुच 'महाकाव्य' की सज्ञा से सम्बोधित किय जा सकते हैं ? इनम से कौन से ग्रन्थ मात्र प्रबन्ध काव्य एकार्थ काव्य तथाकथित महाकाव्य या वृहत खण्ड काव्य अभिधान के अधिकारी हैं ? वस्तुत ये प्रश्न अलग से विचारणीय हैं क्योकि इनका सम्बन्ध महाकाव्य के रूपविधायक तत्त्वो, लक्षणो परिभाषा एव रूप-सरचना से है। इस विषय पर मैंने अपनी पूर्व प्रकाशित तीन पुस्तको म विस्तारपूर्वक विवेचन भी किया है।* यहा यही निवेदन करूँगा कि महाकाव्य रचना के परम्परागत मान्य प्रतिमानो तथा महाकाव्यालोचन के नवीन निकषो के समन्वित सैद्धान्तिक आधार पर उल्लिखित काव्य ग्रथो को सामान्यत महाकाव्य के रूप म स्वीकार किया गया है। समकालीन साहित्य की अन्य विधाओ की भाँति महाकाव्य की रूप रचना में भी आपातिक परिवतन हुआ है। इस परिवतन क्रम का महाकाव्यो की कथा सयोजन विधि, नायक की परिकल्पना चारित्रिक विनियोजन, शल्पिक

* १ हिन्दी महाकाव्य सिद्धान्त और मूल्याकन
२ आधुनिक प्रतिनिधि हिन्दी महाकाव्य
३ हिन्दी के आधुनिक पौराणिक महाकाव्य (शोध प्रबन्ध)

प्रतिमानों की नवीनता, प्रतिपाद्य के वशिष्ट्य और जीवन-दशन सम्बन्धी अवधारणाओं मे स्पष्टत देखा जा सकता है। वस्तुत 'नवलेखन-युग में रचे महाकाव्यों मे शिल्प सगठना से अधिक महत्वपूर्ण उनका प्रतिपाद्य ही है। स्वातन्त्र्योत्तर कालीन महाकाव्यो की रचना विधि के परिवर्तित स्वरूप को देखते हुए महाकाव्यालोचन के मानदण्डो मे भी सशोधन परिवतन अपेक्षित है। नए महाकाव्यों के समीक्षण मे कथात्मक लोक विश्रुति उदात्त चरित्र सृष्टि, छन्द वैविध्य, वणन-वचित्र्य, भाषा-सौष्ठव, शलीगत गरिमा आदि से अधिक महत्व पूर्ण महाकाव्यो की सजन प्रेरणा के स्रोत, युग प्रेरक प्रवत्तियो की समाहृति, युग जीवन के समुन्नत बोध का प्रतिफलन, मानवीय जीवन मूल्यो की प्रतिष्ठा का काव्य सकल्प सामाजिक चेतना के गतिशील स्तरो के रूपाकन की अदम्य आकांक्षा, सास्कृतिक निष्ठाएँ तथा समकालीन जीवनादर्शों के अनुरूप युगीन प्रश्नों के समाधान की विराट चेष्टा का निदशन विवेचनीय और अनुसधेय होना चाहिए। वस्तुत महाकाव्यालोचन के नवीन निकष यही 'मानक विचार बिन्दु' बन सकते हैं। इन पक्तियो के लेखक ने स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी महाकाव्यो के मूल्यांकन मे इसी प्रकार का विनम्र प्रयास किया है। इस प्रयास की सफलता विफलता तथा उपलब्धियों अभावो का निणय तो विज्ञ पाठक करेंगे, किन्तु मुझे इतना सतोष अवश्य है कि महाकाव्यालोचन के क्षेत्र मे यह प्रयास अपने ढग का है और समीक्षण प्रविधि के नए आयाम उद्घाटित करता है। इस अध्ययन क्रम मे आलोच्य महाकाव्यों की जो सामान्य प्रवृत्तियाँ परिलक्षित हुई, वे इस प्रकार हैं—

१ स्वातन्त्र्योत्तर कालीन महाकाव्यो के इतिवत्त विधान के स्रोत इतिहास पुराण और समकालीन जीवन रहे हैं। सरचना म कथा-तत्त्व का अधिग्रहण आधार भूमि की निर्मिति हेतु ही किया गया है, कथा-कथन या आख्यान निरूपण के लिए नहीं। काव्यों का कलेवर विस्तार युग जीवन की आवश्यकतानुसार प्रेरक प्रसगों की परिकल्पना द्वारा किया गया है। महाकाव्यकारों की एतद्विषयक सूझ-बूझ का परिचय मौलिक घटनात्मक प्रसगों की सष्टि म सवत्र दृष्टिगत होता है। परम्परागत इतिवत्त विधान स सवथा मुक्त काव्य का उदाहरण डॉ० रांगेय राघव कृत मधावी महाकाव्य है। काल्पनिक कथा विस्तार की दृष्टि स एकपद्य कालिदास 'सारथी 'लोकायतन आदि महाकाव्य उद्धरणीय हैं।

२ आलोच्य महाकाव्यों में अधिकांश चरित्रमूलक हैं। नायक की परिकल्पना म महाकाव्यकारों ने नितांत प्रगतिशील किवा क्रान्तिकारी रचना

दृष्टि का परिचय दिया है। दैवी पात्रों के देवत्व का प्रक्षालन कर तथा दानवीय पात्रों के दानवत्व का परिष्कार कर उन्हें मानवीय धरातल पर अधिष्ठित किया गया है। धीरोदात्तता से च्युत, उपेक्षित एवं तिरस्कृत पात्रों पर महाकाव्य रचना कर महाकाव्यकारों ने मानवतावादी दृष्टिकोण का प्रभूत परिचय दिया है। अधिकांश महाकाव्य नायिका प्रधान होने के कारण नारी जागरण की जीवन्त चेतना को मुखरित करने में सक्षम सिद्ध हुए हैं। चरित्र-निरूपण में मनोवैज्ञानिक संस्पर्श और पूर्वाग्रह मुक्त तटस्थ मूल्यांकन-वृत्ति सामान्यतः सर्वत्र परिलक्षित होती है।

३ स्वातन्त्र्योत्तर कालीन महाकाव्यकारों ने परम्परित रचनादर्शों (यथा—सर्ग-संख्या, सर्गान्त छन्द परिवर्तन, छन्द वैविध्य, मंगलाचरण, वर्णन-वैशिष्ट्य, भावात्मक-अलंकृति आदि) का बहिष्कार कर नवीन शिल्पिक प्रतिमानों का अधिग्रहण किया है जिसे मुक्त-छन्द—प्रयोग, अलंकरण व्यामोह से मुक्त सम्प्रेषणीय भावात्मक संयोजना, शैलीगत ऋजुता नाटकीय तत्त्वों की समाहृति, आवर्तित कथा प्रस्तुति, मनोवैज्ञानिक चरित्र विश्लेषण आदि में देखा जा सकता है।

४ आलोच्य महाकाव्यों में आधुनिक युग की प्रमुख विचारधाराओं (यथा समाजवाद, साम्यवाद, गांधीवाद, सर्वोदय, लोकतन्त्र, मानवतावाद आदि) तथा समुन्नत युग बोध के नाना रूपों का (यथा—आधुनिकता बोध, अस्तित्वबोध, मृत्यु बोध, कालबोध, क्षणबोध यौनबोध, अहबोध, नवीन भावबोध एवं सौन्दर्य बोध आदि) समकालीन जीवन की ज्वलन्त समस्याओं के निरूपण और निदान के परिप्रेक्ष्य में सशक्त प्रतिफलन हुआ है।

५ स्वातन्त्र्योत्तर कालीन महाकाव्यों की संरचना के मूल में बलवती सृजन प्रेरणा और महती रचनात्मक सोद्देश्यता क्रियमाण रही है। उदाहरणार्थ—स्वदेश प्रेम और राष्ट्रीय गौरव की व्यंजना युगपुरुषों और लोकनायकों की चारित्रिक गरिमा का निरूपण, मानवीय चेतना और संवेदना के गतिशील स्तरों का रूपायन चिरन्तन मानवीय जीवन मूल्यों की प्रस्थापना का आग्रह, नारी जागरण का उद्घोष तथा मानवता के परम मांगलिक एवं सुखद भविष्य की अदम्य आकांक्षा आलोच्य महाकाव्यों की संरचना के संप्रेरक तथा सर्जक तत्त्व रहे हैं।

६ आलोच्य महाकाव्यों की दार्शनिक पीठिका के परिनिर्माण में परम्परित दार्शनिक मतवादों के स्थान पर युग जीवन के चिन्तन से प्रतिफलित

विचारधाराओं का विशेष अनुदान रहा है। इसीलिए इन महाकाव्यों की विचारणा को 'दर्शन' के स्थान पर 'जीवन दर्शन' अभिधान से अभिहित किया गया है। 'जीवन दर्शन' की निर्मिति में दर्शन के अतिरिक्त धर्म, संस्कृति, इतिहास, कला, मनोविज्ञान तथा शास्त्र (यथा—समाजशास्त्र, नीतिशास्त्र, तर्कशास्त्र, नृतत्त्वशास्त्र, अर्थशास्त्र, राजनीति शास्त्र, संगीतशास्त्र, धनुर्वेदशास्त्र आदि) की समन्वित भूमिका रही है। आलोच्य महाकाव्यों के समन्वित दार्शनिक अनुचिन्तन को सहज में ही 'मानवतावादी जीवन दर्शन' की संज्ञा प्रदान की जा सकती है।

७ स्वातन्त्र्योत्तर कालीन हिन्दी महाकाव्यों के रचयिता चाहे भारतीय परम्परा के वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, माघ, भारवि, श्रीहर्ष, अश्वघोष, स्वयंभू, पुष्पदन्त, चन्द बरदाई, तुलसी, प्रसाद अथवा पाश्चात्य-परम्परा के वर्जिल, दान्ते, होमर, गेटे, मिल्टन, स्पेंसर, एरिओस्टो, टसो आदि महाकाव्यकारों के समान मनीषी महाकवि न हों किन्तु वे सर्जनात्मक प्रतिभा एवं प्रखर काव्य मेधा से सम्पन्न सचेतन रचनाकार अवश्य हैं। इन महाकाव्यकारों की जीवन्त कला चेतना और जागरूक काव्य मेधा का प्रमाण ऐतिहासिक-पौराणिक कथानकों के जर्जरित कलेवर में युग जीवन के प्रखर चेतनालोक, समकालीन भावबोध की संदीप्ति, मूल्यगत संक्रमणशीलता के विघटनकारी तत्त्वों में सर्जनात्मक सन्दर्भों की आयोजना तथा आणविक युग की विनाशकारी वैज्ञानिक उपलब्धियों में मानवता के मांगलिक भविष्य की रचनात्मक सम्भावनाओं को साकार करने में द्रष्टव्य है।

८ प्रतिभामूलक वैशिष्ट्य एवं रचनात्मक गौरव के कारण स्वातन्त्र्योत्तर कालीन महाकाव्य कृतियाँ हिन्दी महाकाव्य की सुदीर्घ गौरवान्वित परम्परा का अविच्छिन्न अंग बन गई हैं। भारतीय जन जीवन के चेतना विकास का व्यापक युगीन सन्दर्भों में अवतरित करने के कारण इन कृतियों का महत्व साहित्यिक भी है और सांस्कृतिक भी।

इस पुस्तक के प्रथमार्द्ध में स्वातन्त्र्योत्तर काल की जिन २० महाकाव्य कृतियों का समीक्षात्मक मूल्यांकन प्रस्तुत किया गया है उनमें उल्लिखित प्रवृत्तियाँ उजागर हुई हैं। द्वितीयार्द्ध में शेष ३० महाकाव्य कृतियों का मूल्यांकन प्रस्तुत किये जाने की योजना है। स्वातन्त्र्योत्तर कालीन हिन्दी महाकाव्य के समष्टिपरक स्वतन्त्र मूल्यांकन के इस विनम्र प्रयास से यदि हिन्दी महाकाव्यालोचन एवं महाकाव्यानुसंधान का पथ प्रशस्त हुआ तो मैं अपना श्रम सार्थक मानूँगा।

इस अवसर पर मैं अपने मित्र डॉ० पुष्कर दत्त शर्मा के प्रति उनके रचनात्मक सुझावो के लिए कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। मेरी सहधर्मिणी श्रीमती सरला गुप्ता ने 'घर गृहस्थ' के सम्पूर्ण दायित्वो का स्वत संवहन कर मुझे न केवल एकनिष्ठ लेखन का अवसर प्रदान किया अपितु वे निरन्तर सप्रेरिका भी बनी रही। उनकी सप्रेरक निष्ठाए मेरे रचनाधर्मी प्रयासों का अभिन्न अग बन गई हैं, अत आभार प्रदर्शन व्यय की औपचारिकता ही होगी। इस पुस्तक की सुरुचिपूर्ण प्रकाशन व्यवस्था के लिए मैं श्री किशनलाल गाडोदिया एव आकर्षक मुद्रण के लिए श्री रघुनन्दनसिंह चौहान के प्रति आभार प्रकट करता हूँ।

अन्त म अपनी त्रुटियों के प्रति विज्ञ पाठको से क्षमा याचना करते हुए अपनी श्रम-साधना का सुमन मा भारती के महालय म अर्पित करता हूँ।

बीकानेर (राजस्थान)
२५वाँ स्वाधीनता रजत जयती पव
१५ अगस्त १९७२

देवीप्रसाद गुप्त

अनुक्रम

'मेधावी महाकाव्य'

मानवीय-चेतना के गतिशील स्तरो का रूपाकन

१

'मेधावी' महाकाव्य

मानवीय-चेतना के गतिशील स्तरो का रूपाकन

आधुनिक हिन्दी महाकाव्य की परम्परा म डा० रागय राघव कृत 'मेधावी' प्रब ध काव्य का प्रणयन अनेक दृष्टियो से महत्वपूण है। 'मेधावी' का प्रकाशन हिन्दुस्तानी एकेडेमी इलाहाबाद, द्वारा भारत की स्वाधीनता प्राप्ति के वष मे हुआ। यह विलक्षण सयोग है कि परोक्षत 'मेधावी' के कथ्य का सम्बन्ध मानवता के स्वातन्त्र्य सूय के चिरन्तन आलोक से विकीण होने वाली चेतना रश्मियो की विकास गाथा से है। 'मेधावी' काव्य की सृजन प्रेरणा के मूल म कवि की वह अदम्य आकाक्षा क्रियमाण रही है जिसके द्वारा वह मानवीय चेतना के गतिशील स्तरो का रूपाकन इतिहास की महागति के परिसन्दभ म करना चाहता है। इतिहास के सत्य को कवि ने घटनात्मक तिथिक्रम की शृखलाओ म ही निबद्ध नही माना वरन अनुभूति और चिन्तन के धरातल पर अधिष्ठित कर सम्पूण मानवीय ज्ञान विज्ञान की अभ्युत्थानमूलक गति से सम्बन्धित माना है। इसी लिए उसने मानवता विकास की ऐतिहासिक गति के अ तगत ही काव्य कला, सगीत, भूगाल, समाजशास्त्र राजनीति, दशन तथा विज्ञान के क्षेत्र म हुई प्रगति के अवश्यम्भावी परिणामो का भी मूल्याकन किया है। मानवता के आविर्भाव काल से लेकर विभिन्न युगो म उसके सचेतन विकास तथा सभ्यता और सस्कृति के विभिन्न सोपानो पर सचरण करते हुए वज्ञानिक उपलब्धियो के परिप्रेक्ष्य म उसके मागलिक भविष्य की कल्पनाओ को आलोच्य काव्य के विराट रचना फलक पर अकित किया गया है। 'मेधावी' की पात्र सृष्टि भी अमूत्त है। 'इतिहास और गति' को कवि ने नायक और नायिका के रूप मे प्रतिष्ठित किया है। मानवीय चेतना के जिस उदात्त और विराट स्वरूप का महत्वाकन कवि को अभिप्रेत है, उसकी सिद्धि म सामान्य भौतिक व्यक्तित्व वाले नायक

नायिका सहायक हो भी नहीं सकते थे। इस सम्बन्ध में 'मेधावी' के रचनाकार का यह कथन उल्लेखनीय है कि—"प्रस्तुत काव्य इतिहास की तरह बद्ध नहीं है। अनुभूति और विचार के कारण कहीं कहीं इतिहास की तिथियों का ध्यान नहीं रखा गया क्योंकि तिथियों का महत्व भी स्वयं अनुभूति में है इस प्रकार का काव्य लिखते समय मात्र। इतिहास, दर्शन, भूगोल, काव्य समाजशास्त्र आदि सबका इसमें सम्मिश्रण है अतः इसकी भूमि बहुत विस्तीर्ण है। एक नायिका एक नायक के चरित्र में इतना रूप समाना असम्भव है। इस काव्य के नायक-नायिका इतिहास और गति हैं, और मेधावी के द्वारा वे प्रकट हुए हैं।[1] नायक-नायिका के अतिरिक्त 'मेधावी' की चरित्र-सृष्टि में अन्य पात्र हैं—तारे, सूर्य पृथ्वी छायापथ, शून्य, अग्नि, वायु, जल, उषा, समय, षटऋतुएं कवि दार्शनिक वैज्ञानिक और मानव। पात्रों और प्रतिपाद्य की भांति ही मेधावी की शिल्प संरचना में भी वैशिष्ट्य है। मेधावी के रचयिता ने महाकाव्य के रूप विधायक तत्त्वों का भी परम्परित ढंग से समायोजित नहीं किया है। उदाहरणार्थ— मेधावी सर्गबद्ध होते हुए भी आख्यान-तत्त्व की पूर्वापर अन्विति की दृष्टि से विशृंखलित है तथा सुगठित छन्द-योजना के साथ-साथ आत्मीय गद्यात्मकता से विन्यस्त है। कथ्यमूलक वैविध्य के कारण भाषात्मक संरचना शब्द विन्यास और शब्दीगत समायोजन में भी पर्याप्त वैषम्य है। किन्तु इस सबके बावजूद भी मेधावी के कलेवर में आद्यांत अनुभूति और चिन्तन की गरिमा का ऐसा ऐक्य विद्यमान है जो न केवल पाठक को अभिभूत किए रहता है वरन इस काव्य की महार्घता का भी प्रतिपादक है। इस असाधारण वैशिष्ट्य के कारण मेधावी' को आधुनिक हिन्दी महाकाव्य परम्परा की 'कामायनी' 'कुरुक्षेत्र' उर्वशी' साकायनन सदृश श्रेष्ठ प्रबन्धकाव्य इतिया में साथ श्रेणीबद्ध किया जा सकता है।

मेधावी महाकाव्य का समारम्भ 'महागनि' के स्वरूप विवेचन एनिग्मस की व्याख्या और सृष्टि-संरचना की मोद्देश्यता के बयान से होता है। काव्यारम्भ में पूर्व प्रथम सर्ग का आख्यान-संकेत है— एक दिन व्याकुल मेधावी बठकर विचार करने लगा। अपनी पृथ्वी की लघुता से ऊब कर उसने देखा अनन्त आकाश में अनेक तारा नृत्य कर रहे थे। मेधावी स्तब्ध मौन गहन सुनसान गगन के शून्य को देखकर महागनि के सम्बन्ध में चिन्तन करता हुआ कहता है कि—

[1] मेधावी—प्राक्कथन से उद्धृत

"महागति जिसका ओर न छोर
सृष्टि में जीवन का उल्लास
नाच री नाच सृजन की कोर
नाच रे नाच ध्वस के छोर
आत्मलय जग का बने विलास
मरण म जन्म, जन्म म मृत्यु
तिमिर का घन निस्तब्धता तोड
चमक उठ ओ चेतन बन जाग' (सग १, पृ० २)

मानव की अपराजेय जीवन शक्ति पर विचार करते हुए मेधावी ने कहा कि युगा से मानव एक ही खोज म निरत है, वह है—मनुज का ध्येय और सृष्टि का उद्देश्य। किन्तु मैं' (अहकार) की मेधा से उद्दीप्त मानव आज तक यह नही जान पाया कि जीवन का सत्य और झूठ क्या है ? वास्तव म विकल मैं' का उन्माद हो विश्व का केन्द्र और स्फूर्ति है। पिण्ड और ब्रह्माण्ड की भी सापेक्ष स्थिति है। प्राण का छोटा सा दीप ही ब्रह्माण्ड के विराट रूप म प्रकाशित है। 'महागति का परिवतन ही अणु' को नाना रूपो मे अभिव्यक्त करना है। वही अणु जो अतीत म सम्राट था, आज भिखारी के तन म आबद्ध है। रागिणी जो कल गीत थी आज अनुगूज है। कल जो मतवाली चितवन थी, आज झुकी पलको का अभिशाप है। मुक्ति-बधन तथा पाप पुण्य का भेद भी महागति का ही उच्छृखल श्वास है। मानव, जिसका निरवधि विस्तार है और जिसने सिद्धाथ और चगेज के रूप धरे हैं वह भी महागति' के अनन्त सत्य और रहस्य को नही समझ पाया है। कवि की धारणा है कि मनुष्य का यह दम्भ अकारथ है कि वही सवशक्ति सम्पन्न है—

'अरे मानव क्या इतना गव
कि तू ही है सबका चिर केन्द्र ?
बना कर परमेश्वर का दम्भ
कर रहा अपना तू अपमान ?
गए वह दिन जब ताराधूलि
देवताओ की छाया म्लान,
आज तो वह भी चलते भूल
कि जस पृथ्वी का अभिमान। (सग १, पृ० ६)

मेधावी के अनुसार निस्सीम नभ का कल्पना के पर्खो से मानव का ज्ञान-विहग नही तिर सकता है। शून्य ही शून्य का अपरिमित विस्तार है। इसम

विराट भी अल्प प्रतीत होता है। भूमि तो अशुमालि की छाया मात्र है, स्वय मातण्ड भी एक बिन्दु के समान याकुल कलात भ्रमण करता है। वस्तुत यह सब कुछ 'महागति का ही अतिमुक्त प्रवाह है—

'और यह सृजन और सहार
चल रहा है कितना निर्व्याज !
एक गति का अतिमुक्त प्रवाह
उसी म से निकला यह सूय्य
और फिर ग्रह उपग्रह का तास
बचाने अपना सत्ता आज
सभी गतिमय चलते अज्ञात
आदि अनात, अत अनात
एक यह गति का माध्यम नेप (सग १ पृ० ८)

द्वितीय सग का आख्यान है—'नक्षत्रा का नृत्य स्फुलिंगा के खेल की भाँति उसक नयना के आग पुलकता रहा। नक्षत्रा के गीत नृत्य से ध्वनित होता है कि सौर चक्र म अविरत नत्तन हो रहा है। एक पिंड या अणु प्रकाश स ही अगणित जगा का आविर्भाव हुआ है। मधावी नक्षत्र मडल की स्वी कारोक्तियाँ सुनता है। सूय स्वय को जीवन का पोषक कहता है। छायापथ सूय की दर्पोक्ति पर व्यग्य करता हुआ कहता है कि मुझ म अगणित नक्षत्र समाविष्ट हैं सूय ता बहुत छोटा है वह धरणी का वभव दिखला कर अपनी लघुता से उसे छलना चाहता है। तारागण स्वय को सृष्टि सुदरी की मेखला के रजत-कण मानते हैं। किन्तु मधावी ने तारो सहित सभा नक्षत्रो की गतिशीलता पर महागति के ही प्रभाव को स्वीकार किया है—

तारो का प्रिय सुदर नत्तन
गति का नत्तन
नूपुर छन छन
× × ×
सब का नत्तन पग परिवत्तन
गति का नत्तन पग छूम छनन
आन द अमर प्रत्यावत्तन। (सग २ पृ० २०)

तृताय सग म मधावा न देखा कि सृष्टि—सम्पूण सत्ता अपना महानत्य कर रही थी।' इस सत्ता नत्तन म सृष्टि का अणु अणु मग्न था। सभी की

परिधि थी—टूटना, जुडना और अपार भ्रमण करना। अचानक मेधावी को द्युति लोक से टूटता हुआ तारा दिखाई दिया जो ग्रहों की भ्रमण शक्ति में घूमकर अतराल में चूर हो गया। यह दृश्य देखकर उसे प्रलय की कथा याद आ गई, एक भगावह परिकल्पना से वह काँप उठा—

"एक दिन क्या यह धरणि अमोल
सूय की गति म मोकर लाज
चूर हो जायगी कर रोल !
एक दिन रवि हो शीत प्राय
ऊष्ण आलिगन देगा छोड
और फिर अधशूय मे सुप्त
भूमि खोयगी कपित घोर !" (सग ३, पृ० २३)

इसी चिन्तन क्रम मे मेधावी की दृष्टि प्रकृति पर गयी। उसे पल्लवित पुष्पित द्रुमो के सुरभि मधु के प्रसार म छवि का सागर आदोलित होता हुआ दिखाई दिया। उसे आभास हुआ कि प्रकृति की सत्ता अनन्त है। प्रकृति की प्रश्वास म आँधी और जलप्लावन है तो मधु स्नेह का वपण भी है। मानव गर्वोन्नत शीश उठाकर गजन करता हुआ प्रकृति विजय का अभियान करता है किन्तु वह भूल जाता है कि प्रकृति म व्याप्त परिवतन का क्रम अनन्त है। जीवन और मृत्यु का नरन्तय भी महागति के ही परिवतन का परिणाम है। क्योकि—

"गति म उछाल रे परिवतन
जीवन मारण की चक्रिन विधि
मे बदल उमड प्रत्यावत्तन
× × ×
मिलत अणु चेतन जीवन बन
बिखराती मृत्यु सुनिर्विकार
अणु फिर मिलत चल परम्परा
ज्यो अक्षय विलमित यह खुमार।' (सग ३, पृ० २६)

महागति रूपी विराट सत्ता एक नारी है—जिसके दो उरोज, परिवतन और मृत्यु हैं। इसके नख तारागण और स्वयमा कशा का सुहाग है। इसकी मेखला म महाशून्य रूपी रत्न जटे हुए हैं। महाशून्य इसका आचल है। महागति की थिरकन, परिवतन, यौवन, चिर रहस्य, स्मिति निमय विकास और रूप अखिल महासत्य है। पृथ्वी तो विराट सत्ता के आदोलन की झलक मात्र है।

विनाश एक अबाध शिशु की भांति इसके अगणित रूपों के संधान में प्रवृत्त है। अरबों वर्षों से सृष्टि का क्रम अविराम गति से चल रहा है और मनुष्य का दम्भ अनेक बार चूर्ण हुआ है। 'मैं हूँ' के दम्भ भाव ने उसे सन्ताप ही दिया है। परिवर्तन के सत्य से अनभिज्ञ मानव ने उससे संघर्ष भी किया, किन्तु उसे निराशा ही हाथ लगी। महासत्ता के डर से मनुष्य ने ईश्वर की सृष्टि की। वस्तुतः चिरंतन सत्य दो ही हैं—

'और दो ही हैं शाश्वत सत्य
एक सत्ता का अविरत खेल
दूसरा परिवर्तन का नृत्य
उसी की महारौर में मग्न
बही जाती है सृष्टि अबाध
× × ×
सभी तो गति का चिर स्वच्छंद
प्रबल धारा का सुंदर रूप
अस्ति है स्वयं अस्ति का केन्द्र
नास्ति है केवल दृढ़ता शक्ति
ज्योति-तम का यह अविरत खेल
आत्मलय औ विकास का मेल।' (सर्ग ४ पृ० ३६-३७)

चूँकि परिवर्तन की गति में ही सृष्टि का अपार विकास निहित है अतः परिवर्तन ही सर्वात्मरूप है। उसका नर्तन जग का विकास है तो उसी विराट का रुद्ररोष ही ज्वालामुखी के विस्फोट की भांति क्रांति को उमड़ाता है जिससे मरमीभूत करने वाला विध्वंस होता है और यह सृष्टि लय हो जाती है। 'परिवर्तन' के महाप्रसार का वर्णन करता हुआ कवि कहता है—

तू अन्तराल का अट्टहास, तू वर्णहीन तू वर्णलास
तू पल पल के पुल पर चलता, है समय सिन्धु कर रहा पार
अगनित स्वर्गंगा भानु अगम, तुझ में ॥ फूटे स्फुलिंग
तुझ में अगनित नाटक हो तू महाशून्य का रंगमंच।
(सर्ग ४, पृ० ३६)

मधावी के अनुसार अब (वर्तमान) कल (भविष्य) ऋतुएं, अब्द, कल्प स्थिति गति आदि सब परिवर्तन के नूपुर की ही मणियाँ हैं। पक्ष मास ऋतु आदि उसके अविरत नर्तन के सतत स्फुरण हैं। वन प्रांतर शैल गुहा नदियाँ दावा मारुत पंजन्य कुसुम लहरें, कोमल मृदु तंतु आदि परिवर्तन की

गरिमा की ही धूप छाँह है। जन्म और मृत्यु चिर परिवर्तन के ही दो चरण हैं। सृष्टि के सचेतन विकास और विनाश का कारण भी परिवर्तन ही है—

"तेरे नर्तन में सृष्टि जरा, नव-नव प्रकाश में चिर नवीन
तेरे चुम्बन से जाग्रति में, है चिर सुषुप्ति का आदि लीन
तू अणु से फूट हुआ विराट, फिर भी विराट तू है अणु ही
तू चिर चेतन पदार्थ में है, व्यस्तता क्षाम मिश्रण, विनाश
जो आदि शून्य, वह अन्तशून्य, तू ही दोनों का एक सत्य
तू आत्म विकास अमर पुलकित, अन्तर्बाहर का एक सत्य।'
(सर्ग ४, पृ० ४४)

सृष्टि रचना के क्रम में सर्वप्रथम प्रकृति ने पुलक कर निर्माण किया। प्रकृति के कण मानव ने भी निर्माण प्रारम्भ किया और दोनों में द्वन्द्व बढ़ा। सूर्य और नक्षत्र नभ में दौड़े, नदियाँ सागर की ओर चलीं। सागर बादल में युद्ध हुए और बादल शैलों से टकराकर भू पर बरसे। मनुष्य ने पृथ्वी का लोहा पृथ्वी में मार कर सोना और अन्न उत्पन्न किया और फिर निर्माण का जय गीत गूँजने लगा। गति रूपी महाशक्ति भी आगे बढ़ी। इसी गति शक्ति ने निर्माण के साथ नाश का बल सञ्चित कर सृष्टि में सन्तुलन स्थापित किया। गति को व्याख्यायित करते हुए कवि कहता है—

'गति महानाद, गति ईमन ध्वनि
गति कालमयद, गति है जीवन
है कभी फूटकर सृष्टि बनी
इतनी गम्भीर इतनी विराट
× × ×
गति माया है गति उलझन है
गति भीरु हृदय की ज्वाला है
गति के अणु की लय के स्वर की
गति जीवन है, उजियाला है।' (सर्ग ४, पृ० ४९ ५०)

पंचम सर्ग का आख्यान-संकेत है—'मेधावी ने देखा—आकाश के बीच महाशून्य में धारे धीरे सौरचक्र बनने लगा और पृथ्वी सूर्य को देखकर मुस्कराने लगी।" महाशून्य में विलोडन करता एक महाचक्र घूम रहा था जिससे अणु अणु में ज्योति जीवित थी। अग्नि रूप सा सूर्य धधकता हुआ अन्तराल में घूम रहा था कि आकर्षण के कारण एक नक्षत्र टूटा और भिन्न गति से घूमने लगा। इस नक्षत्र की ऊष्मा भाप बनकर पिघली और जलरूप हो गयी।

कालांतर में जल की जड़ता ने धरती का रूप धारण किया। (सर्ग ५, पृ० ५७) षष्ठ सर्ग के आख्यान संकेत में कहा गया है कि—'धीरे धीरे पृथ्वी पर भूत का स्पन्दन हो उठा और जीव चलने लगा। भूत के स्पन्दन से सृष्टि में प्राणि विकास का समारम्भ हुआ। सर्वप्रथम जल में मृदु-कम्पन हुआ जिसके कारण युग युगान्त से निष्प्राण जीवन जागा और फिर जलचर, थलचर, नभचर का क्रमिक विकास हुआ—

जल में आया मृदु मृदु कम्पन, रे जीवन का हो उठा घोष
स्वप्नों से पाषाणी जागी, जीवन-जीवन का हुआ तोष
× × × × ×
जलचर, नभचर थलचर आये क्रम क्रम विकास रे हुआ सुमन
× × × × ×
वह स्थूल उठा छविमय रूप चेतन की दृष्टि जगी दृग में
चेतन का जीवन खेल उठा, हर तन्तु-तन्तु के अंग जग में।"

(सर्ग ६, पृ० ६१ ६२)

इस प्रकार परिवर्तन ने अरूप प्राण का रूप धरा। फिर सुख-दुख और राग विराग की भावना जगी। प्रकाश की स्वर्णकिरण जागी जिससे मेघों ने झर कर सर्वत्र रस व्याप्त कर दिया। अंधकार और प्रकाश ने दिन रात के पट बुने। इसी से आगे चलकर मास, वर्ष, और युग बने। वस्तुतः गति और परिवर्तन ही ऐसे दो सत्य हैं जो अनेक रूपों में आविर्भूत होते हैं। कवि के अनुसार—

रे जन्म मरण दो रहे सत्य
अन्तर्विकास औ अन्तर्लय
रे बद्ध परस्पर खिन्न रहे
वह अन्धतमस औ ज्योतिर्मय।' (सर्ग ६, पृ० ६२)

षष्ठ सर्ग में ही सृष्टि-तत्त्वों की व्याख्या की गई है। ये तत्त्व हैं—अग्नि वायु जल, समय आदि। कवि के अनुसार समय के कारण ही शैल मैदान और मैदान उपत्यकाओं तथा मरुभूमि में परिवर्तित होते हैं। पता नहीं कब तक प्राण-तत्त्व सिन्धु-तल के गहन तिमिर में विकल ऊर्मियों के घर्षण से पोषित होता रहा। वही प्राणभूत तत्त्व विभाजित होकर बढ़ता हुआ मत्स्य बना। जीव विकास की प्रक्रिया में जलचरों के पश्चात सरीसृप और नभचर हुए। इसके पश्चात कशेरुकम और रोमराजि से आवृत प्राणी हुए। जविक विकास की यह अपराजित परम्परा जीवन की धारा के रूप में निरन्तर

प्रवाहित होती रही है और प्राण-तत्त्व चिरन्तन होने के कारण सदैव अवस्थित रहता है—

'नहीं था मानव का जब स्वप्न
भूमि पर थे तब भी तो प्राण
अरे ! यह प्रबल विकास
शक्ति का अनुवर्त्तन कर नित्य
बदलता रूप और आकार।' (सर्ग ६ पृ० ७५)

सप्तम सर्ग के आख्यान-संकेत के अनुसार—'मेधावी ने चकित होकर देखा मनुष्य का इतिहास कितना अल्प था किन्तु अपने प्रति प्यार आन्दोलित हो उठा।' सृष्टि-संरचना के विकास के पश्चात मेधावी की दृष्टि मानवता के इतिहास पर गई। एक दिन था, जब आर्य विजय का घोष पहाड़ों में गूंजता था और वृषभ घण्टघ्वनि पर ऋचाओं का स्वर झूमता था। आर्य आनन्द विभोर होकर गाते थे—सत्य की ओर ! ज्योति की ओर। फिर देवताओं की खोज और कर्मकाण्ड विकसित हुआ और तत्पश्चात् चार्वाक कपिल, जाबालि, यास्क, मनु गौतम आदि ने अपनी बात संसार के समक्ष रखी। किन्तु सुख की आशा में विकल मानव ने सभी को अनसुना करके विजयोत्कण्ठा में जीवन-संघर्ष किया। मानव में 'अहंवाद' इतना प्रबल रहा कि वह स्वयं को ही नहीं जान पाया—

'अरे मैं हूँ चंगेज कठोर अरे मैं हूँ तमूर' प्रवीर
सिकन्दर 'नीरो' 'बाबर' आदि आज मुझ में हैं उन्मुक्त
अलहजर या 'नालन्दा' भव्य वि विक्रम 'तक्षशिला' का नाम
लिखता है लहरों सा स्फीत महामेधा चरणों पर गूंज
आज मैं 'बाल्मीकि' का गीत, आज मैं 'ॐ' नाद का प्राण
× × × ×
आज मैं ! मैं यह मेरा सत्य आज तू वह सापेक्ष पुकार
विश्व सत्ता में मेरी लीन किन्तु मैं क्या हूँ।'
(सर्ग ७ पृ० ८६)

कवि के अनुसार मैं क्या हूं का उत्तर यह है कि मनुष्य को जीवन' की महान प्रगति को क्लीव बनकर भुठलाना नहीं चाहिए। अज्ञानवश ही मनुष्य प्रकृति से संघर्ष करता रहा है। अविश्वासों का पाथेय लेने के कारण ही उसे दिग्भ्रम हुआ। मृगतृष्णा में हारकर वह अपना कुटिल कपाल ठोकता है। गति की सत्ता का सत्य ही शाश्वत सत्य है, और रहेगा। क्योंकि—

न कोई ईश्वर या छल छंद
न कोई आत्मा या अमरत्व
चल रहा सत्य
आज भी सत्य
और यह गति का पल पल सत्य
राह में पथी पग पग सत्य
राह है नृत्य नृत्य है सत्य । (सर्ग ७ पृ० ८८)

अस्तु मनुष्य को उपनिषदों का परित्याग कर वर्तमान के प्रति आस्था रखनी होगी। स्तूप की नींव को मिटाने पर ही मानव का ज्ञान प्यार की मृदु छाया में स्नात होकर ज्योतित स्पर्शित हो सकेगा। अष्टम सर्ग में बताया गया है कि आदिम मानव से धीरे धीरे मनुष्य उन्नति की ओर बढ़ा और उसके ज्ञान का परिधि विस्तार हुआ। आदिम मानव की आचरण-पद्धति का बखान करते हुए कवि कहता है कि वह तपे हुए ताव से तन वाला, रोम राजि से आवृत्त और चिबुक भाल से हीन वपुष धारण किए था। वह छोटे किन्तु सुदृढ़ हाथों से कच्चे पल्लव तोड़कर चरर चरर की ध्वनि करता सा पानी पीता था। पलभर में वह लघु पशु के पीछे टीले खड्ड और समतल पर पीछा करता हुआ भागता और कच्चा मांस चवण करने लगता। उसके नग्न वपुष पर रुधिर टपकता था। आखेट युग के मानव की जीवन चर्या का सविस्तार वर्णन करने के पश्चात कवि ने स्त्री पुरुष के उस उन्मुक्त यौन संसर्ग का निरूपण किया है जिससे सामाजिक भावना का उद्भाव हुआ—

'अरे नर नारी का संयोग
बन गया सुख का पहला केन्द्र
× × ×
और जब मन में उठती चाह
भुजाओं के बंधन में भूल
घूमते थे वे नग्न गात
नग्न थे दोनों लज्जाहीन
परस्पर थे कितने अनिवार्य
सृष्टि का वह पहला भाव
जहाँ से सामाजिक उद्भाव
परस्पर द्वेष क्रोध से दूर
मानवों का आपस का प्यार। (सर्ग ८, पृ० ९६)

आदि मानव अधिकांशत प्रकृति का दास बना हुआ रहता था। सहस्रो मनुष्य प्रकृति की बलिवेदी पर चढ जाते थे। प्राकृतिक आपदाओ से जूझता मानव फिर भी जीवित रहा। गुफाओ म छिपकर, पल्लवो को ओढकर, शीत म अग्नि से मैत्री कर उसने जीवन रक्षा की। अग्नि के महत्व को जानते ही आदि मानव की जीवन चर्या बदलने लगी। पाषाण युग के मनुष्य ने अस्थियो और पत्थरो से नुकीले औजार बनाकर हिंस्र वन्य जीवो से अपनी रक्षा की। युगो के अन्वेषक प्रयत्नो और अनुभव के पश्चात मानव बबर से सभ्य बना है। कवि के शब्दो म—

"कितने युग युग का अन्वेषण
कितने वर्षों का अनुभव कर
पाषाण धातु का कर प्रयोग
होगया सभ्य सा वह बबर।" (सर्ग ८, पृ० ११४)

जीवन के प्रति मानव की अडिग आस्था और विश्वास ने ही उसे महागति प्रवाह मे सतरण की शक्ति दी और ज्ञान कोष का अभिभावक बनाया—

'मैं देखूगा वह गति प्रवाह मैं कालसिन्धु का नाविक हूँ
मैं हूँ मानव की परम्परा, मैं ज्ञान कोष अभिभावक हूँ
× × × ×
पर हार नही पाया हूँ मैं रोकर भी कब होना निराश
मैं खोल रहा धीरे धीरे युग युग के वह अनिरुद्ध पाश।'
(सर्ग ८, पृ० ११६ ११७)

नवम सर्ग का आख्यान-सकेत है कि— मेधावी ने देखा आकाश में ऊषा फूट रही थी। पृथ्वी पर अपार सौन्दर्य फल रहा था, वह उसम लय हो गया किन्तु अचानक हो वह स्वप्न भग्न हो गया। (पृ० ११८) इस सर्ग में प्रकृति के अनन्त विकास क्रम और सौम्यमयी छवियो का हेमन्त, शिशिर वसन्त ग्रीष्म, वर्षा शीत नामक षड्ऋतुओ के माध्यम स स्पादन किया गया है। उदाहरणार्थ शीत ऋतु का कथन द्रष्टव्य है—

'मैं ज्योत्स्ना हासिनी अमल नमन
मैं महापूर्णिमा का हुलास र शुभ्र गगा मे दुग्ध श्वास
मधु श्वेत हम शतदल सज्जित, हूँ स्वच्छ अक म शांति लास
मैं वीणावादिनी इन्दु वदन
मैं स्वर्णाचल से सिहर सिहर, मोठी शीतलता से मृदुतर
वन महा स्वप्न का दीप्त प्रभा मकरन्दो म लुकती आतुर
मैं निमल यामिनी गन्ध सुमन।" (सर्ग ९, पृ० १२६)

मानव सभी ऋतुओं का अभिनन्दन करता है क्योंकि ये उसके जीवन में नवल उत्साह का संचार करती हैं। ऋतुएं, वनस्पति और अन्न उत्पादन में सहायक बनने के अतिरिक्त जीवन घटकों को अमृत से भी भरती हैं। ऋतुओं ने आदि मानव को अनुपम वरदान दिए। हेमन्त ने मानव के जीवन में नव गाम्भीर्य जगाने, ग्रीष्म ने पीड़ा का शोषण करने, वर्षा ने जीवन घट को रस से भरने तथा शरद ने तृष्णा कलुष को बुझाकर मानस शतदल को मृदुमलयानिल से पुलकित करने का वरदान दिया। प्रकृति के वरदानों से मानव धन्य हो गया।

दशम सर्ग में आर्यों के सिन्धु-अवतरण तथा द्रविड़ों से उनके संघर्ष का चित्रण है। विभिन्न भूभागों में जन्म लेने के कारण मनुज में आकृति भेद था, भाषा और संस्कृति की भी भिन्नता थी। इन्हीं भिन्नताओं ने वर्गों और जातियों को जन्म देकर सामंजस्य और संघर्ष दोनों ही प्रकार की स्थितियों को उत्पन्न किया—

"वर्ग में मानव का विच्छेद, सर्पिणी सी करती निर्द्वन्द्व
अपरिचय का वह गहरा खड्ड, स्वार्थ शृंखल पर भरता रंग
और अब काल शून्य के बीच जातियों की कड़ियाँ निर्व्याज
बनाती हैं नव सामंजस्य अरे यह परम्परा का साज।"

(सर्ग १०, पृ० १४०)

आर्य, मंगोल सिमेटिक, हेमेटिक, ईरानी, यूनानी, कल्ट, टयूटन स्लाव तुखार आदि का भेद भौगोलिक भिन्नताओं का ही परिणाम है। आर्यों ने सप्त सिन्धु प्रदेश में पहुँचकर देव वन्दना के अमर गीत गाए। आर्यों के देव थे—इन्द्र उषा, सूर्य आदि। आर्यों ने देव वन्दना द्वारा इस प्रकार वर याचना की—

इन्द्र के प्रति— ॐ इन्द्र उल्लास पुरुष जय
ॐ मानव के अभिमान विकट जय
ॐ दिवस पितर योद्धा पुरीष जय
शत्रु नष्ट कर, सुख दे जय दे।'

(सर्ग १०, पृ० १४६)

उषा के प्रति— आलोकिनि जय सुन्दरि जय जय
तू अनुजा है सूर्य पुरुष की
वह जीवन दे तू प्रकाशिनी।

(सर्ग १०, पृ० १४८)

सूर्य के प्रति— "आलोक पुरुष, हे स्निग्ध वपुष
चेतना फैला दो, जीवन में ।"

(सर्ग १०, पृ० १४६)

इसके पश्चात् द्रविड़ों और आर्यों के संघर्ष का वर्णन है। इस संघर्ष में आर्य ही विजयी हुए। सिन्धु से गंगा तक आर्यों का निर्बाध आधिपत्य स्थापित हो गया—

और बलकर जीवन की शक्ति, छीनकर उन द्रविड़ों की मुक्ति
छा गया आर्यों का वह त्रास, आर्य केवल आर्यों का पाश
बनें प्रसरता था यह भूभाग, सिन्धु से गंगा तक निर्बाध
गूंजती ऋचा प्रतिध्वनि डोल, बन गई जाति, बन गए वर्ण।"

(सर्ग १०, पृ० १५४)

आर्यों का आधिपत्य स्थापित हुआ किन्तु वर्ण भेद के पाश ने नवीन विडम्बनाओं को भी जन्म दिया। समय समय पर अनेक महापुरुष और दार्शनिक अवतरित हुए जिन्होंने कर्म, तप, दान दया ज्ञान और योग का उपदेश दिया। किन्तु मेधावी ने देखा कि मानवता आज भी संत्रस्त है—

आज मैं देख रहा हूँ मौन युगान्तर से मानवता त्रस्त
'द्रौपदी सी लुटती असहाय, शक्तिशाली 'पाण्डव' हो मूक
मूक है महापाश में बद्ध अंध है स्वार्थ भरा वह न्याय
और दुःशासन करते गरज, चीर हरने का निष्ठुर काम
धर्म की चाह रहा जो जीत, कृष्ण भी आदर्शों में लीन
साम्य का देकर भी संदेश, न दे पाया मानव को मुक्ति
मुक्ति तो थी ईश्वर सान्निध्य हत ! यह क्या केवल उन्माद।"

(सर्ग १०, पृ० १६२)

एकादश सर्ग के आख्यान से ज्ञात होता है कि मानवता की दयनीय दशा देखकर मेधावी व्याकुल हो उठा। तब 'समय' में से प्रतिध्वनि आने लगी और उसने देखा कि कालगति उसे मानवता विकास का बोध करा रही है। सम्पूर्ण एकादश सर्ग में मेधावी और समय (कालगति) का गम्भीर संवाद प्रस्तुत किया गया है। समय ने प्रश्न किया—

कौन हो तुम उन्मत्त विभोर
दुखी होकर करते संघर्ष
युगान्तर से पथ पर चल किन्तु
रुद्ध हो जाता विकल अमर्ष।' (सर्ग ११, पृ० १६५)

समय की प्रतिध्वनि का उत्तर देते हुए मेधावी ने कहा कि "मैं मानव हूँ, मैं अभिराम स्वप्नो का भार लेकर चला था, मैं पहाडो, मदानो, नभ, सिन्धु सभी को छान आया हूँ किन्तु मुझे कही भी सुखसार नही मिला। मैं उस साधन का सधान नही कर पाया जिससे मानवता का कल्याण पथ प्रशस्त हो। मेधावी ने निराशा भरे स्वर म कहा—

'आह मैं मानव हूँ अभिभूत, विजय का करता हूँ अभिमान
रात का तम जाता क्यो भूल, जभी आता है दीप्त विहान
× × × ×
दूर तक भू के उर पर देख, छोड आया हू मैं पगचिह्न
सतत चलता हूँ मैं निर्बोध ध्वस, निर्माण आह कर खिन्न।'
(सग ११ पृ० १६७)

'समय ने कहा कि यह मानव अपनी गति के त्रास स ही त्रस्त करता है और फिर क्रोधित होता है। यह स्वाथ की कारा मे अभिशप्त होने के कारण घृणा से विद्ध रहता है। 'समय ने बताया कि मानवता का मगल विधान साम्य की भावना मे निहित है—

"साम्य मानव की तृष्णा घोर एक ही बिन्दु मिटाये आज
बिन्दु हर उर का सिन्धु समूह किन्तु क्या मेधा का उपहार ?
समय श्रम का—जीवन का सत्य, यही से मानव का कल्याण
एक जग जिसम दु ख हो स्वप्न चूर हो वर्गों का अभिमान।
(सग ११, पृ० १६८)

इसके पश्चात समय ने विश्व इतिहास की कुछ प्रमुख घटनाओ का उल्लेख किया जो मानव की तृष्णा घृणा दम्भ उन्माद क्रूरता और शोषण की परिचायिका हैं। मिश्र की ममी सिंदवाद की यात्रा अकेडियन सेमेटिक और अमोराइटस का गव हिटटाइटस का बबरध्वस हिब्रूओ की शोषण कथा जेरुसलम, ईरान यूनान फोनेशिया की कथाएँ और दास प्रथा की बुराइयाँ बतायी तथा मनुष्य की उपलब्धियो का उपहास करते हुए कहा कि—

'अभी किया ही क्या मानव ने अब तक लिपि निर्माण किया है
घर प्रासाद बनाये उसने शस्य उगाये पान किया है
धातु बनाइ वस्तु बनाइ, पोत बनाय शस्य उगाये
अधिकारो के असतोष म अपने सचित कोष लुटाये
तारो की गति को आका है, नारी को दासी ठहराया
और गुलामी म लाखो को वर्गों के हित मरमाया।'
(सग ११, पृ० १८०)

'समय' ने बताया कि मानव समाज में वर्ग-संघर्ष, दास प्रथा, शोषण, अनाचार और प्रभुत्व-कामना सभ्यता विकास की प्रतिक्रियाएँ हैं, अन्यथा आदि मानव का जीवन तो स्नेह सद्भाव और सौमनस्य से परिपूर्ण था—

"आदि पुरुष जो सरल चित्त था, द्वेष क्रोध से कहीं दूर था
उसका सामूहिक स्वरूप भी साम्य शक्ति का प्रथम रूप था
सब उपजाते, सब ही खाते गीत गुंजाते, नर्तन करते
नर नारी के संग प्रेम की, मुक्त धार में हँस हँस बहते।"

(सर्ग ११ पृ० १८५)

आरम्भिक समाज मातृ-सत्तात्मक था। नारी को धरती मां की छाया माना जाता था। वह जननी और आदि चेतना के रूप में स्वीकृत थी। किन्तु जैसे ही पुरुष को यह बोध हुआ कि नारी तो भूमि है और बीज वीर्य है जिसके अभाव में उत्पादन (प्रजनन) असंभव है तो उसने नारी पर अपना प्रभुत्व स्थापित करना प्रारम्भ किया और अन्ततः नारी की दशा यह हुई कि—

"नारी नर की भोग्या बन गई, यौन योग की अमल मुक्ति भी
कलुषित बंधों में मढ सड़कर, उठा चली दुर्गंध क्रुद्ध सी
एक ओर जननी वह छलती उधर बना देता वेश्या
बंदिनी के आंसू ने बहकर, खींचा था सतीत्व का घेरा।"

(सर्ग ११, पृ० १८६)

मानवता विकास के इतिहास की नृशंसतापूर्ण गाथाओं को सुनते-सुनते मेधावी आकुल होकर चिल्ला उठा कि चुप हो जाओ। 'समय' ने कहा कि कवि व्यथित क्या हो ? मैं कभी चुप नहीं होता मेरा गीत अमर रागिणी है। तुमने कहा तो मैं ने बताया, अन्यथा मुझे क्या पड़ी थी कि मैं अतीत का पुनराख्यान करता। मेधावी तुम प्रयत्न करो कि मानव अपना रूप और हृदय सुधारे।

द्वादश सर्ग का आख्यान संकेत है—'मानव का इतिहास करवटें ले रहा था।' मेधावी ने देखा कि व्योम का गहन चक्र कांप उठा, विकल विश्व डूब गया और मन अन्धकार में उसे अगणित चित्र दिखाई दिए। मानवता का इतिहास एक महानृत्य की भांति जीवंत रूप में नेत्रों में खेल उठा। उसने अनुभव किया कि जाति राष्ट्र और विशद देश की रेखाएँ दूर हट गयी हैं और उसने विस्मित भाव से देखा—

'तम गहन पसार था अचल, निर्बंध अपरिमित विगत सार
जो अन्तराल में कांप उठा, वह कभी करुणामय पुकार

अतस को छूती आग बनी, धुएँ सी उठती घुमड़ लीक
वह व्यथित रूप की चेतनता, भरती युग-युग की एक टीस।'
(सर्ग १२, पृ० १६४)

सर्व प्रथम मेधावी ने देखा कि मन्तरतम में विजय पिपासु वीर सिकन्दर की वाहिनी दुर्दान्त घोष करती जा रही थी। सैनिकों के ज्वाज्वल्यमान रक्तिम खण्डों से पृथ्वी काँप रही थी। अपने दुरभिमान में उन्होंने असंख्य ललनाओं के आँसू बहाए। किन्तु पुरु प्रवीर से हुए संवाद से सिल्यूकस का मोह भंग हुआ। इसके पश्चात पियागोर नचिकेता चार्वाक गौतम के सदेशों की अनुगूंज भी मेधावी ने सुनी। फिर मौर्य्य, कुशान पल्लव शक और गुप्त साम्राज्यों के उत्थान पतन का क्रम उसे दृष्टिगत हुआ। मेधावी ने स्मृति में कलिंग विजय अशोक विराग, संघमित्रा की यात्रा स्कन्दगुप्त का बलिदान, अदूरदर्शी बौद्धों के मधारामों के कुचक्र, फानाशियन पोत पर पारसीक सैनिक स्पार्टा के विद्रोही कम्बसीज की विजय वाहिनी ओलम्पिक का वैभव रोम के विध्वंस के समय किंडिल बजाते नीरो सीजर और पोम्पिआई की रक्तिम गाथा क्लियोपेट्रा की रूपशिखा, चीनी दार्शनिक कन्फ्यूशियस की वाणी, स्पार्टाक्स के ज्वलित नयन और यूरीपिडीज तथा वर्जिल की वाणी के दृश्यों को उभरते हुए देखा। इन दृश्यों को मेधावी के मनस जगत में यह प्रतिक्रिया हुई कि—

यह चलचित्र दृश्य लगता है, मानव है अभ्यास कर रहा
× × ×
क्यों है यह मानव गुलाम सा पशु सा दरिद्रता से शोषित
क्या वैभव ही इनके श्रम औ' रुधिर नींव पर होता पोषित
मैं सभ्यता कहूँ फिर किसको, जब मार्ग का मार्ग अवंचिकर
स्वयं बनाए दुःख ग्रसते हैं, स्वार्थों में जीवन बन्दी कर
× × ×
क्या विचार भौतिक पथ तजकर, व्यक्ति रूप में मुक्त पायगा ?
भूत भूत की धूमिल छाया में प्रकाश अब क्या पायगा ?
(सर्ग १२ पृ० २११-२१२)

मेधावी ने कहा कि वज्रयान की स्थविर कल्पना और शून्यवाद की खोखल माया मरघट को ही परम लक्ष्य मानकर जीवन को सुखी मानती है। सिद्धों की अटपटी वाणी ने भी आत्मा और भौतिकता के संघर्ष चित्रों को अंकित किया है। इस प्रकार मानव का अन्धतिमिर में भटकते हुए कितना समय बीत

गया किन्तु मानव की सत्य ज्ञान की पिपासा अभी भी अशान्त है। और अन्तत असख्य प्रश्न मेधावी के मनस जगत मे उभरते हैं—

'मैं मानव हूँ, मैं ईश्वर हूँ?
निर्मित हूँ या निर्माता हूँ?
पर मानव क्या? वह तो निर्बल
ईश्वर क्या? मेरा ही चिन्तन
क्या हूँ? क्यो हूँ?

मैं सागर हूँ, मैं जलधर हूँ
गलो सा दृढ ज्वालामुखी हूँ
सतरण किये, नभ पार किए
सब की जय मे सन्तोष नही
क्या हूँ? क्या हूँ?

ऋषियो की वह गम्भीर गिरा
मिट्टी हूँ मैं अविनश्वर हूँ
मैं तो अगाध का क्षणभर हूँ
पर यह अगाध मेरा अणु है
मैं हूँ, यह मेरा सत्य अटल
सापेक्ष रूप का सत्य अमल
मैं अन्धकार, मैं महा ज्योति
छाया मा दोना का विकास
मैं गति का अधिनायक मानव
क्या हूँ? क्या हूँ।" (सर्ग १२ पृ० २१४ २१५)

त्रयोदश सर्ग में "अतृप्त मेधावी असन्तोष से भर कर देखने लगता है ।" मेधावी के चेतना पटल पर अतीत के दृश्य पुन उभरने लगने हैं। उसने देखा 'मक्का' पुण्य वीथि मे अगनित व्यापारी नारी को नगो करके पशुओ की भाँति मोल भाव कर रहे थे। यह मानवता का मर्यद शोषण अपमान था। एक अन्य स्थल पर गुलामो का भाव तोल हो रहा था। उसने दूसरी ओर अबू बक्र के मक्का त्याग, मुहम्मद के शब्द और 'अल्ला हो अकबर' का गर्जन सुना। गौरी खिलजी, सयद, लोदी और मुगलो ने इस्लाम के परचम को भारत पर फहराया। विश्व के इतिहास म सामन्तवाद और उसके शोषण की सुदीर्घ परम्परा मिलती है। किन्तु समय-समय पर वीर, मनस्वी, योद्धा, कवि और गायको ने अन्याय

का प्रतिकार भी अपनी शक्ति भर किया है। अस्तु मानव इतिहास म क्रान्तिकारी परिवर्तन भी होते रहे। किन्तु जब तक शोषण जर्जरित एक संस्था ढहती नहीं तब तक दूसरी का उदय हो जाता है। इसी कारण मानवता के प्रारम्भ से लेकर आज तक ऊँच नीच और वर्ग भेद के आधार पर किसी न किसी प्रकार की व्यवस्था द्वारा शोषण होता रहा है। किन्तु वर्तमान युग म साम्य भावना के प्रसार द्वारा विद्रोह की जो आग भड़की है उसके कारण नव मानव को भुलावे म नहीं रखा जा सकता—

> आज दुन्दुभि बज गई है मनुज म विद्रोह जागा
> वास्तविक युग शान्ति का सुपना नयन म आज जागा
> आज कोई भी भुलावा भ्रष्ट पथ से कर न सकता
> सृष्टि म सब एक से हैं बस यही कल्याण जगता।'
>
> (सग १३ पृ० २२८ २२९)

वर्तमान युग की जन जागृति म गलीलियो न्यूटन कोलम्बस निवन हुगेल मायरयात्र माक्स प्रभृति पाश्चात्य वैज्ञानिको दार्शनिको और विचारको के आदान का कवि ने कृतज्ञतापूर्वक स्मरण किया है।

काव्य के अन्तिम अर्थात चतुर्दश सर्ग का आख्यान संकेत है— अनन्त जीवन म आज न्याय और अन्याय का घोर संघर्ष हो रहा था— और मेधावी मन देखकर मुस्करा उठा कि मेधावी ने देखा कि वर्तमान युग के मानव की सत्ता के भिन्न भिन्न स्तर हैं इन स्तरों से गुजरते सभी हैं किन्तु अपना अपना दृष्टिकोण लेकर। एक होटल म बान डा स और चुम्बन आलिंगन हैं तो दूसरी ओर सती होती हुई नारियाँ हैं। एक ओर मांसल सौन्दर्य का प्रदर्शन और कटाक्ष करती सुन्दरियाँ हैं तो दूसरी ओर विधवाओं का तम रेखाओं से पूर्ण विवश जीवन यापन है। भोर से संध्या तक मशीनों चक्कियों म पिसता मजदूर और कड़कड़ाती सर्दी तथा लू से संतप्त किसान है तो मिल मालिकों और भूमिपतियों की विलासितापूर्ण दैनिक चर्या भी है। सामाजिक जीवन की विसंगतियों का मूल कारण साम्राज्यवादी तथा पूँजीवादी व्यवस्था का विडम्बनापूर्ण ढाँचा है। धर्म और भाग्य की दुहाई देकर पूँजीपति समाज के निम्न मध्यमवर्ग पर अत्याचार करता है। इस वर्ग की चिन्तनीय दशा और पूँजीपतियों की नृशंसताओं का निरूपण कवि ने इन शब्दों म किया है—

> अरे दासता से शृंखलाबद्ध, चले जाते पिसते मजदूर
> पसलियों पर खाकर भी चोट हाँफते श्रम म निरत किसान

× × × ×

भूख से शैशव जाता बीत भूख में यौवन होता क्षीण
जरा का ही छाता अवसाद, जन्म से मृत्यु एक ही गीत
निरन्तर श्रम उत्पादन घोर सब रे सर्वनाश का घोर

× × × ×

इधर मरते हैं भूखे किन्तु, उधर सागर में फसलें डाल
नफा का करते हैं उद्धार अरे ओ महापिशाच।

(सर्ग १४, पृ० २५० २५१)

कवि की धारणा है कि नये युग के आलोक से उद्दीप्त मानव-समाज अब इन अत्याचारों को नहीं सहेगा। विगत शताब्दियों में हुई राज्य क्रान्तियाँ इसका प्रमाण हैं। संसार भर में पूँजीवाद और साम्राज्यवाद की अति का भी वर्जन स्वतः हो जायगा, क्योंकि—

'प्रकृति का नियम यही है एक
कि अति का होगा ही विध्वंस
युगों के शोषण का यह क्रोध
अरे! मानवता का विक्षोभ
सत्य के पथ का नव निर्माण
नहीं रुक सकता कभी अबाध
नहीं झुक सकता वह निर्बाध।" (सर्ग १४, पृ० २५१)

कवि ने फ्रांस की राज्यक्रान्ति और लेनिन तथा गांधीजी के साम्राज्य विरोधी महाप्रयत्नों का स्मरण दिलाते हुए कहा कि पूंजीवाद की मीनार को श्रमिक आन्दोलन ही ध्वस्त कर देंगे। फासिस्टवादी सैन्य शक्तियों से लोहा लेने के लिए कवि ने जनशक्ति का आह्वान किया है—

'हे जनशक्ति महान जागो और जगाओ!
हम पृथ्वी स्वर्ग बनायेंगे, हम दुनिया नई बसायेंगे
हम महाजागरण यजन कर अविराम चेतना लायेंगे
हे मजदूर किसान जागो और जगाओ!

× × × ×

हम श्रम का वन्दन करते हैं, मेधा का गायन करते हैं
हम मानव का निर्माण अमर, लक्ष्य करगुरु मनन करते हैं
हे जीवन अभिमान, जागो और जगाओ!

× × × ×

हम हैं नवयुग के अग्रदूत हम काल-जलधि-नाविक अभूत
हम साम्य-दीप के नवप्रकाश हम विजयोन्मादी क्रान्तिपूत
हे प्रदीप्त गतिमान, जागो और जगाओ !

(सर्ग १४ पृ० २६०)

इसके पश्चात कवि ने ओजस्वी वाणी में हिन्द की हुँकार को शब्दबद्ध किया है। इस हुँकार में उद्घोष है कि हमारा राष्ट्र अपराजित है। जिस समय विश्व भर में अंधकार था तब भी ज्ञान की ज्योति हिन्द चीन ने जगाई थी। हमारे ही गीत की प्रतिध्वनि औरों के जीवन की रागिणी बनी थी। हमारा शक्तिचिह्न अंकित ध्वज सत्य शान्ति और सौन्दर्य की विभा से जग को आलोकित करता रहा है। हमारे राष्ट्रोदधि में अनेक सांस्कृतिक धाराएँ प्रवाहित हुई, किन्तु हमारा ध्येय विश्व शान्ति ही रहा। संसार में जब जब असत पाशविक शक्तियाँ उन्नत होंगी तब-तब हम अपनी सारी शक्ति से उन्हें पराजित कर मानवता के मंगल विधान का मार्ग प्रशस्त करेंगे। हिन्द की हुँकार काव्यांश का अंतिम चरण है—

जब जग भर होगा कुटुम्ब सा जब समानता फल सुन्दर
जब तारों में कीर्ति मनुज की गूँज उठेगी गगन भेद कर
तब भी हमीं विश्व पथ दर्शक तोड़ेंगे कलुषा की कारा !
हमने मूल्य धर्म अब तक भी जग भर को आलोक दिया है
और हमारे ज्ञान अन्न से मानव अब तक पला जिया है
हम लाखों वर्षों से पथ क्या न जाने सारा अंधियारा !
अपराजित है राष्ट्र हमारा !!

(सर्ग १६, पृ० २६४)

इस प्रकार प्रथोवा महाकाव्य की सर्ग क्रमानुसार अनुशीलन करने के पश्चात् यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि डा० राघव राघव ने आलोच्य काव्य के माध्यम से मानवता के विकास का एक विराट रूप प्रस्तुत किया है। पृथ्वी के प्रादुर्भाव और सृष्टि-अवतरण के पूर्व वृत्त को विकासवाद का महत सैद्धान्तिक भूमिका और विज्ञान कल्पना के सर्जक आधार पर प्रतिष्ठित करते हुए मानवता विश्व में के विभिन्न युगों सभ्यताओं का गम्भीर चित्रण किया है। विश्व भर की सभ्यता और संस्कृतियों का मानव के चेतना के विकास में क्या अनुदान रहा ? इस स्वरूप दर्शन में कवि ने अपनी मौलिक सूझ-बूझ का परिचय

दिया है। ससार के महान् दार्शनिको, राजनीतिज्ञो, कलाकारो वैज्ञानिको और विचारको के व्यक्तित्व कृतित्व और जीवन दर्शन ने मानवीय चेतना की विकास गति को जिन रूपो म प्रेरित, प्रभावित और आन्दोलित किया है, उसके निरूपण मे भी 'मेधावी' के रचयिता का काव्य-कौशल अभिनन्दनीय है।' 'मनुज का ध्येय, सृष्टि-सरचना का उद्देश्य', 'इतिहास का सत्य', 'प्रकृति रहस्य', 'जीवन की महागति', 'काल चेतना', 'परिवर्तनशीलता', और 'दैवी सत्ता की सापेक्ष स्थिति' सदृश्य प्रश्नो के परिसन्दर्भ मे कवि ने "मानवीय चिन्तन" के अनुदघाटित आयामो का सधान किया है। उल्लिखित प्रश्नो के परम्परा सवलित समाधान से पराङमुख होकर कवि ने जो नवीन विकल्प प्रस्तुत किये हैं, (आवश्यक नही कि उनसे सहमत हुआ जाय) वे 'मेधावी के रचनाकार की गूढ तर्क पद्धति, जागरूक चिंतन शक्ति और प्रबुद्ध मेधा की सराहना करने के लिए पाठक को बाध्य करते हैं। नव युग चेतना के आविर्भूत होने म विश्व की राज्य क्रान्तियो, विप्लवी श्रमिक आन्दोलनो और वैज्ञानिक उपलब्धियो के पुष्कल प्रभाव का मूल्याकन कवि ने तटस्थ होकर किया है। मानवता के मगल विधान हेतु उसने वर्तमान राजनीतिक व्यवस्था मे जिन मूलभूत परिवर्तनो का प्रस्ताव किया है वह भी कम महत्वपूर्ण नही है। सबसे बडी बात यह है कि सार्वभौमिक चेतना और विश्वमानवतावादी दृष्टिकोण का समीकरण कवि ने राष्ट्रीय (भारतीय) जीवन मूल्यो से स्थापित किया है। ज्ञानालोक के प्रदाता के रूप मे भारत की गुरुता और सर्वोपरिता को सस्थापित कर कवि ने अपने राष्ट्रप्रेम का भी प्रभूत परिचय दिया है।

कथाकार के रूप म डा० रागेय राघव की श्रमिक, पददलित और शोषित वर्ग के प्रति जो सहानुभूति और पूजीवादी व्यवस्था के प्रति जो आक्रोश बद्ध मूल अवधारणाओ के रूप मे उनकी कथाकृतियो म यथाप्रसग उभरा है, उसका वचारिक परिप्रेक्ष्य मेधावी' म द्रष्टव्य है। साम्य भाव' के प्रति अगाध विश्वास का जो प्रत्यय का य म स्थान-स्थान पर व्यजित हुआ है वह आत्मक प्रभाव की अपेक्षा कवि की व्यापक प्रनात्मक निष्ठाओ का ही द्योतक है। नारी मनोविज्ञान का सूक्ष्म अन्वीक्षण और सामाजिक सन्दर्भों म उसकी परिणतियो के विश्लेषण मे कवि सफल रहा है। समष्टि रूप म मानवीय चेतना के चिरन्तन विकास क्रम और उसकी ऐतिहासिक, सामाजिक सास्कृतिक तथा वैज्ञानिक परिणतियो का विराट आख्यान होने के कारण 'मेधावी वास्तविक अर्थों म एक महाकाव्य है और काव्य की परिसमाप्ति पर मानवता के सुखद भविष्य

'अगराज' महाकाव्य

प्रशस्त कर्मवीर का जीवन-काव्य

२

'अंगराज' महाकाव्य

प्रशस्त कर्मवीर का जीवन-काव्य

महाभारत की पात्र सृष्टि में कर्मवीर कर्ण का चरित्र विलक्षण और गौरवान्वित है। महारथी कर्ण का चरित्र अद्भुत दैवीय विभूति तथा अनुपम मानवीय गुणों का संधान है। कर्ण चरित्र की प्रशस्ति से सम्बन्धित प्रकीर्ण उल्लेख यद्यपि संस्कृत और हिन्दी प्रबन्ध काव्य परम्परा के अनेक काव्य ग्रन्थों में यथा प्रसंग समुपलब्ध हैं किन्तु कर्ण को काव्य नायक के रूप में अधिष्ठित करके किसी स्वतन्त्र काव्य का प्रणयन आधुनिक काल से पूर्व नहीं हुआ था। इसका एक कारण तो यह भी रहा कि काव्यशास्त्र की परम्परा के अनुसार केवल सुर, सद्वंशीय अथवा ब्राह्मण क्षत्रिय को ही महाकाव्य के नायकत्व पद का अधिकारी माना जाता रहा। किन्तु आधुनिक काल में नवयुग चेतना के प्रसार और मानवतावादी चिन्तनधारा के द्रुतगामी प्रचार के कारण परम्परा ने जिन्हें नायक के योग्य कभी नहीं समझा, उन्हीं अनादृत और उपेक्षित पात्रों को बीसवीं सदी के कवियों ने महाकाव्य के सफल नायक पद पर सादर प्रतिष्ठित किया। ये व्यक्ति जाति-वंश से हीन होकर भी चारित्रिक उत्कर्ष के कारण नायक माने गये।"[1] इस दृष्टि से 'एकलव्य', 'दैत्यवंश' 'रावण', 'रश्मिरथी' 'सेनापति कर्ण', 'आर्यावर्त्त', 'युगद्रष्टा प्रेमचन्द' शीर्षक प्रबन्ध काव्यों के नाम उल्लेखनीय हैं जिनमें चारित्रिक गरिमा के कारण ही नायकत्व प्रदान किया गया है। इसी परम्परा की काव्यकृति श्री आनन्द कुमार विरचित 'अङ्गराज' महाकाव्य है।

अङ्गराज के अतिरिक्त कर्मवीर कर्ण के यशस्वी चरित्र का आधार बनाकर दो और प्रबन्ध काव्यों का भी प्रणयन आधुनिक काल में हुआ है। ये

---

[1] डा० श्यामनन्दन किशोर : आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों का शिल्प विधान, पृ० २१०

का न्य हैं—श्री रामधारीसिंह न्निकरकृत 'रश्मिरथी' और श्री लक्ष्मी नारायण मिश्र कृत सेनापति कण । वस्तुत पौरुष पराक्रम कर्त्तव्यपरायणता मत्री, विश्वास औन्दाय स्वाभिमान गुरुभक्ति और धर्मनिष्ठा आन्दि इतने उदात्त गुण कण के चरित्र म पजीभूत हैं कि उनको महाका य क विराट कलेवर म ही विधिवत वि यस्त किया जा सकता था और यह हर्ष का विषय है कि हिन्दी के समथ कविपुगवो की लेखनी कण के प्रशस्य चरित्र का समाख्यान कर धन्य हुई है । कण चरित्र पर काव्य प्रणयन का औचित्य बताते हुए श्री रामधारी सिंह दिनकर ने कहा है कि— कणचरित का उद्धार एक तरह से नई मानवता की स्थापना का ही प्रयास है । क्योंकि— 'यह युग दलितो और उपेक्षितो के उद्धार का युग है । अतएव, यह बहुत स्वाभाविक है कि राष्ट्र भारती के जाग रूक कवियो का ध्यान उस चरित्र की ओर जाय जो हजारो वर्षों से हमारे सामन उपेक्षित एव कलकित मानवता का मूक प्रतिनिधि बनकर खडा रहा है।

कण चरित्र के उद्धार की चिन्ता इस बात का प्रमाण है कि हमारे समाज मे मानवीय गुणो की पहचान बढने लगी है । कुल और जाति का अहकार विदा हो रहा है । आग मनुष्य केवल उसी पद का अधिकारी होगा जो उसके सामर्थ्य से सूचित होता है, उस पद का नही जो उसके माता पिता या वश की दन है ।'[२] इसके अतिरिक्त आधुनिक युग के— महाकाव्यो के रचयि ताओ को कण म आज के वग मद और वणमद स प्रपीडित समाज के प्रतिनिधि का रूप न्दिखाई दिया और उन्होने उसके जीवन चरित्र को रश्मिरथी अग राज सनापति कण जस काव्यो म ला उतारा ।[३] कण को आधुनिक काव्यकर्त्ताओ द्वारा काव्यनायक क रूप म स्वीकृति प्रदान करने का सबस बडा कारण यही है कि— महाभारत के पात्रो म कण अकला पात्र है जो अपन पुरुषाथ और पराक्रम क बल पर यशस्वी बनता है । कण की महानता सस्कारजन्य सद वशीय अथवा राजपुत्र होन क कारण नही वरन त्याग पुरुषाथ एव दानशीलता आन्दि मानवीय गुणो क कारण है ।[४] वस्तु श्री आनन्दकुमार ने कण के प्रशस्य और महिमान्वित चरित्र पर का य-सरचना करके न केवल स्वकीय काव्य मधा और रचनाधर्मी आयाम विस्तृती का परिचय न्दिया है अपितु हिन्दी

---

२ रश्मिरथी भूमिका पृ० ग—घ।

३ आधुनिक हिन्दी महाकाव्य सस्कृत साहित्य क परिपाश्व म पृ० ११६

४ डा० देवीप्रसाद गुप्त हिन्दी क आधुनिक पौराणिक महाकाव्य पृ० १७६

महाकाव्य परम्परा की अपरिमित सृजन सम्भावनाओं को भी उजागर किया है और इस दृष्टि से 'अङ्गराज' निश्चयत अभिनन्दनीय प्रयास है।

जहा तक 'अङ्गराज' महाकाव्य की सृजन प्रेरणा और महत प्रयोजनीयता का प्रश्न है, महाकाव्यकार ने 'भूमिका' में 'काव्य प्रयोजन', 'वीरकाव्य की समयिकता' और 'अङ्गराज का जीवन' शीर्षकों के अन्तर्गत इस पर विस्तार से विचार किया है। अङ्गराज की रचनात्मक सोद्देश्यता के मूल में सामाजिक जीवन की अखण्डता, जातीय स्वाभिमान, संस्कृति संरक्षण, अतीत का गौरव गान और जीवन्त लावादर्शों की प्रतिष्ठा कवि का अभिप्रेत रहा है। अङ्गराज वीरकाव्य है और वीरकाव्य की महत्ता का बखान करते हुए कवि ने कहा है कि—'वीर साहित्य से ही वाणी प्रयोजन पूर्णत सार्थक होता है। उससे राष्ट्र के सामाजिक जीवन की अखण्डता बनी रहती है जाति वश अपने मूल से संयुक्त होकर बढता है संस्कृति और सभ्यता का संरक्षण होता है। वीरकाव्य से हमारा सोया हुआ जातीय स्वाभिमान जाग्रत होता है हम अपने लोरादर्श का भान होता है, भविष्य का कर्तव्य मार्ग दिखलाई पड़ता है वीर वृत्तान्तों से लोक में वीरधर्म की प्रतिष्ठा होती है। वीर धर्म का पालन रण सैनिकों के लिए ही नहीं 'वीर भोग्या वसुन्धरा' के प्रत्येक महत्वाकाक्षी प्राणी के लिए आवश्यक है। इसी क्रम में वीरकाव्य सृजन की समसामयिक उपादेयता पर मत प्रकट करते हुए 'अङ्गराज' के रचयिता ने लिखा है—' सभी दृष्टियों से प्राचीन वीरकाव्यों का अध्ययन और नवीन वीरकाव्यों का निर्माण आजकल के लिए समयानुकूल एव लोकोपयोगी सिद्ध होगा। शताब्दियों की पद पद दलित जनता में जो आत्मतुच्छता, चारित्रिक दुर्बलता और भीरुता तथा अकर्मण्यता आ गई है उसका निराकरण ऐसे ही साहित्य से हो सकता है। आजकल अपनी हीन दशा पर उठकर रोने की प्रेरणा देने वाला साहित्य सामयिक नहीं कहा जायगा। सामयिक वह होगा जो जीवन की अपूर्णता को पूर्ण करे असयत को सयत कर भूले भटके को रास्ते पर लाय। कायर को साहस युक्त निरीक्षण को कर्मोत्साह और हताश को धैर्य विश्वास देने वाला साहित्य सामयिक होगा।[४] उदधृत मन्तव्य के परिप्रेक्ष्य में 'अङ्गराज' की रचनात्मक सोद्देश्यता स्वत व्यजित है।

अङ्गराज का कथात्मक आधार महाभारत है। किन्तु काव्य के घटनात्मक विनियोजन में महाकाव्यकार ने मौलिकता का प्रभूत परिचय दिया है।

---

४ अङ्गराज—भूमिका, पृ० १३ १४

प्रस्तुत सन्दर्भ में कवि का कथन है कि—'अङ्गराज स्वतन्त्र रचना है। इसकी कथा सम्पदा महाभारत की है काव्य सम्पदा मेरी है। वृद्ध व्यास जी के हैं ऋतुएँ मेरी हैं मूल उनका है फल फूल मेरे हैं, शाखाएँ प्राचीन हैं लेकिन पल्लव दल नवीन हैं। महाभारत से बीज रूप में मुझे जो मिला उसको मैं ने स्वाभाविक रीति से अंकुरित एवं पुष्पित पल्लवित किया है। 'अङ्गराज' में मैं ने भारती कथा के प्रचलित रूप का अन्धानुकरण नहीं किया है। इसमें महाभारत के पात्रों का स्वतन्त्र स्वाभाविक और यथोचित व्यक्तित्व निरूपण किया गया है। घटनाओं के क्रम वस्तु चित्रण और संवादों में भी मौलिकता मिलेगी।"[६] यह सत्य है कि कवि ने कथाविचार में मौलिकता दर्शायी है और युवराज तथा कर्ण के चरित्र निरूपण में भी वह सफल रहा है किन्तु पाण्डवों द्रौपदी कुन्ती आदि के चरित्र चित्रण में कतिपय बद्धमूल धारणाओं एवं पूर्वाग्रह के कारण तटस्थ नहीं रहा है। पाण्डवों को कापुरुष अतीव धूर्त, क्रूर अवसरवादी और दुर्व्यसनी तथा द्रौपदी को कामासक्त, संयमहीन दम्भी, असभ्य रणचण्डीला के रूप में अंकित करना कवि की पाण्डवों के प्रति अनुदारता एवं कौरवों के प्रति अतिरिक्त व्यामोह को प्रदर्शित करता है। एक महाकाव्यालोचक ने इस बिन्दु पर आपत्ति करते हुए लिखा है कि—'युधिष्ठिर अर्जुन भीम और द्रौपदी के चरित्र को कवि ने गिरा दिया है। वस्तुतः पाण्डवों के लोक प्रसिद्ध पावन चरित्र को गिरा कर दुर्योधन और उसके मित्र कर्ण को ऊपर उठाने में कवि का दुस्साहस लक्षित होता है। कर्ण का चरित्र स्वयमेव इतना उदात्त और शक्ति शाली है कि धर्मराज युधिष्ठिर और सती साध्वी द्रौपदी के चरित्र को गिराए बिना भी उसे महत्ता मिल सकती थी। युधिष्ठिर का चरित्रहीन और द्रौपदी को पंचायती पत्नी बताकर कवि ने चिर प्रतिष्ठित लोक धारणा का विरोध किया है।[७] कथा विन्यास की मौलिकता का प्रमाण काव्यारम्भ में ही मिल जाता है। कथानक का समारम्भ सूर्य लोक में होना है—

एक दिवस मंगल प्रभात में इसी देश में।
कर्ण मग्न रवि भ्रमण शील थे नित्य वेष में॥
× × ×
आत्मरूप में व जग का आभास लिये थे।
निज आकृति में युग युग का इतिहास लिये थे॥ (सर्ग १, पृ० ६)

---

६ अङ्गराज भूमिका पृ० १५

७ डा० गोविन्दराम शर्मा हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य पृ० ४०३

कर्ण के साथ भ्रमण करते हुए भगवान भास्कर उसे दिव्य दृष्टि प्रदान कर उसके पूर्व जन्म का सम्पूर्ण वृत्त दृश्य रूप में दर्शाते हैं—

'देते हैं वरदान तुम्हें हम दिव्य दृष्टि का ।
देखो उसमें गुप्त रहस्य अनन्त सृष्टि का ॥
देखो सम्मुख खुला हुआ सारा अतीत है ।
भूतकाल भी वर्तमान होता प्रतीत है ॥
× × ×
यदि अभीष्ट हो तुम देखो सारा का सारा ।
व्यक्त मिलेगा यहां लोक वृत्तांत तुम्हारा ॥" (सर्ग १, पृ० ६)

इस प्रकार कवि ने इतिवृत्तात्मक किंवा वर्णनप्रधान शैली का आश्रय न लेकर प्रत्यावर्त्तन शैली (फ्लैश बैक स्टाइल) को अधिगृहीत करते हुए नाटकीय ढंग से घटना क्रम को प्रस्तुत किया है। सर्वप्रथम सूर्यदेव कर्ण को कीर्तिवती भारत अवनी की रचना से अवगत कराते हैं। नगराज हिमालय, नदराज रत्नाकर सुरसरिता, नवीन काश्मीर मद्रदेश, कैकेय, सौराष्ट्र, द्वारिकापुरी, केरल, मलयाचल रामेश्वर सिंहल, विदर्भ कामरूप वंगप्रांत मगध अयोध्या, प्रयाग, नैमिष्यारण्य कर्णपूर, व्रजप्रदेश मध्यदेश, मत्स्य आदि की शोभा का बखान करते हुए त्रिभुवन भास्कर पांचाल नगर कुरुराज्य इन्द्रप्रस्थ आदि के वैभव का सविस्तार वर्णन करते हैं। प्रथम सर्ग में नगर, प्रदेश पर्वत, नदियों आदि के वर्णन द्वारा कवि ने न केवल वृहत्तर भारत की भौगोलिक संरचना को व्याख्यायित किया है अपितु स्वराष्ट्र वंदना द्वारा महाकाव्य की मंगलाचरण विषयक काव्यशास्त्रीय रूढ़ि का भी सफल निर्वाह किया है। इसके पश्चात कर्ण के जन्म से लेकर युद्ध क्षेत्र में उसके वीरगति प्राप्त करने तक के घटनाक्रम को अपेक्षित परिवर्तनों सहित प्रस्तुत किया है। उदाहरणार्थ कवि ने कौरवों को कलंकित करने वाले द्यूत क्रीड़ा, लाक्षागृह-दाह द्रौपदी चीरहरण, पाण्डव दूत कृष्ण के कुरुराज द्वारा बांधने के विफल प्रयास और विराट रूप दर्शन जैसे महाभारत के अनेक कथा प्रसंगों को कल्पना शक्ति का प्रयोग करके नवीन रूप में प्रस्तुत किया है। काव्यनायक कर्ण के चरित्रोत्कर्ष के लिए भी कवि ने कतिपय घटनाओं को अपेक्षित परिवर्तनों के साथ अंकित किया है। कथानक में कल्पना के प्रयोग के सम्बन्ध में कवि का यह मन्तव्य उद्धरणीय है कि—'अङ्गराज का जीवन काव्य कल्पना प्रसूत नहीं, प्रमाण सिद्ध है। कल्पना का उपयोग केवल विषय को सरस और आकर्षक बनाने के लिये ही किया गया

धन्य हुए हम प्राप्त ऐसे दिव्य कुमार को।
देता है सुतरत्न प्रभु, खोल भाग्य के द्वार को॥
(सर्ग २, पृ० २२)

अधिरथ गृहिणी देव प्रसाद मानकर उस बालक को ले गयी। स्नेह राशि से सींच कर माता पिता ने उसका पालन पोषण किया तथा वसुषेण नामकरण किया। वसुषेण ने मनोयोगपूर्वक वेद वेदांग, धर्म, लोकनीति की शिक्षा तथा शस्त्रास्त्र का ज्ञान प्राप्त किया। विवाह कर्म के पश्चात वसुषेण धनुर्वेद की साधना के लिए पिता के साथ हस्तिनापुर गया। अधिरथ की विनयपर राजकृपा से वसुषेण को राजपुत्रों के साथ गुरुकुल में प्रवेश मिल गया। राजपुत्रों के साथ साथ कर्ण ने भी मन्त्र यन्त्र संग्राम शास्त्र गुप्तास्त्र तथा व्यूहरचना का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर विनयपूर्वक ब्रह्मशर प्राप्ति की प्रार्थना की, किन्तु द्रोणाचार्य ने अनधिकारी कहकर उसे ब्रह्मास्त्र ज्ञान से वंचित ही रक्खा। कर्ण के शस्त्रास्त्र ज्ञान-कौशल का परिचय कुरुराज भवन के रंगस्थल पर समायोजित राजवंश समारोह पर मिलता है। इस आयोजन में पार्थ ने अनुपम अस्त्र कौशल का प्रदर्शन कर सभी को मंत्रमुग्ध कर दिया। तभी माहेन्द्रराय वसुषेण ने वारुणास्त्र, आग्नेयास्त्र, पर्वतास्त्र, वायव्य अस्त्र भौमास्त्र, पर्जन्यास्त्र अन्तर्धानास्त्र आदि के अद्‌भुत प्रदर्शन द्वारा पार्थ को हतप्रभ कर दिया। अर्जुन ने अनामन्त्रित हस्तक्षेप के लिए सूतपुत्र को अशिष्ट कहकर उसे दुस्साहस के लिए दण्डित करने के लिए कहा। प्रत्युत्तर में कर्ण ने पार्थ को द्वन्द्व के लिए ललकारते हुए कहा—

"यदि तुझको अभिमान है निज पुरुषार्थ महत्त्व का।
सम्मुख आकर द्वन्द्व कर, दे प्रमाण निज स्वत्व का॥"
(सर्ग २ पृ० २८)

अर्जुन ने अपमानित अनुभव करते हुए रणभूमि में रणोन्मुख होने का निश्चय किया। तभी कृपाचार्य ने मध्यस्थ बनकर कर्ण से कहा कि तू अनाधिकार चेष्टा कर रहा है क्योंकि राज्यशास्त्रवत राजपुत्र का प्रतिद्वन्द्वी केवल समकक्ष ही हो सकता है। सुयोधन को वीरपुत्र का अनादर असह्य था उसने कृपाचार्य के व्यवहार को अनुचित बताते हुए कहा—

'आर्य वीर प्रति आप का यह अनुचित व्यवहार है।
कभी न आर्य समाज में होना जाति विचार है॥
परिचायक है आत्मिक तेज स्वनाम धन्य का।
स्वयमुज्ज्वल को नहीं चाहिए तेज अन्य का॥

जाति वश धन्य नही, पुरुष पौरुष विधाय हैं।
पच गुणी में जो गुणाग्र है वही आय है॥
महापुरुष ही मानिये गुण गरिमामय सून को।
हीन न मानो भूलकर विकसित पक प्रसून को॥'

(सग २, पृ० २६)

जब भीम आदि ने दुर्योधन के मन का विरोध किया तो उसने पाडवीय दप का दमन करने के लिए सूनपुत्र को अग राज्य अपण कर कण का मानवद्धन ही नही किया अपितु अपनी दूरदर्शिता और गुण ग्रहण क्षमता का भी परिचय दिया। कण ने कृतज्ञतापूवक सुयोधन की मित्रता को स्वीकार किया तथा हप शोक में सच्चे मित्र के समान सुहृद् भाव के निवाह का सकल्प लिया—

'सूय रहे साक्षी सदव हम हप शोक म।
सुहृद रूप म तब रहेंगे एक लोक म॥
तुमने हम ऋणी किया अगराज्य देकर अभी।
हम होगे ऋण मुक्त, निज अग तुम्हे देकर कभी॥'

(सग २, पृ० ३१)

अगराज बनने के पश्चात कण जब अगनगरी पहुँचा तो जनता द्वारा उसका भव्य स्वागत किया गया। राज्याभिषेक के पश्चात अगराज सून सदन पहुँचा जहा प्रतीक्षातुर राधा ने नरनाथ और प्रजा प्रभाकर कहकर अभिनदन किया, किन्तु कण ने स्यन्दन त्यागकर किरीट को मातृ पद मे रखकर श्रद्धा प्रनत होकर कहा—

और कहा जननी हम तो वसुषेण वही है।
तव समीप हम अग प्रधान कदापि नही हैं॥
× × ×
हम अन्य जन अगराज ही भले कहेगे।
किन्तु स्वय हम बने सदा राधेय रहेगे॥

(सग ३ पृष्ठ ३५)

उपयुक्त कथन कण की मातृ पितृ भक्ति विनयशीलता और उदात्त भावना का ही परिचायक है। राधा ने राधेय को हृदय के गहनतल से शुभाशीष दिए, उसके यशस्वी और सौभाग्यशील होने की मगलकामना की। इसी सग मे कवि ने कण की राज्य व्यवस्था और प्रशासनिक दक्षता का भी वणन किया है। नव जनपति कण ने अगराज्य म स्वराज्य की घोषणा कर जन जीवन म नवजागृति का सचार किया। दासता की मनोवृत्ति का विनष्ट कर प्रजापति ने प्रजातन्त्रीय

शासनपद्धति को सस्थापित किया। अबलाओ की दशासुधार, न्याय धर्म के सस्थापन, विद्या कौशल के देशव्यापी प्रचार जनोत्थान के लिए राजकोष के व्यय म पशक्ति के पुनर्गठन, गढो देवालयो, उद्यान सरोवर आदि का पुन निर्माण कर्ण की प्रशासनिक व्यवस्था की उल्लेखनीय विशेषताएँ कही जा सकती हैं। कवि के शब्दो म—

"नष्ट दासना-मनोवृत्ति करके जनता की।
एक एक मे भरी भावना स्वतन्त्रता की॥
नव विधान से न्यायबद्ध करके शासन को।
दिए तुल्य अधिकार प्रजापति ने जन-जन को॥
मिटी अचल अबलाओ की निर्बलता सारी।
समाधिकारी बने दरिद्र धनी नर-नारी॥'

(सर्ग ३ पृ० ३६)

इस प्रकार अंगराष्ट्र के शासन को सुव्यवस्थित करके कर्ण ब्रह्मसायक अर्जन एव उच्चकोटि के शस्त्रास्त्र ज्ञानार्जन हेतु महेन्द्रगिरि पर परशुरामजी के आश्रम पर गया। कर्ण ने विप्र भेष धारण कर विशेष क्रियायोग द्वारा मुनीन्द्र को प्रसन्न कर मुख्य शिष्यता प्राप्त कर सभी अनाज्ञात शस्त्रास्त्रो का ज्ञानार्जन कर लिया—

'किया क्रियायोग विशेष कर्ण ने, अनन्य विद्या ऋण राम से लिया।
हुए प्रभावस्त्र मुनीन्द्र देख के, महागुणोत्कर्ष नवीन शिष्य का॥
× × × ×
महास्त्र विज्ञान महेन्द्रशास्त्र के, तथा धनुर्वेद अथर्ववेद के।
सभी अनाज्ञात रहस्य युद्ध के, उसे बताए कृतविद्य विप्र ने॥
दिया उसे कीर्तित भार्गवास्त्र भी, समन्त्र ब्रह्मायुध-दान भी किया॥'

(सर्ग ४, पृ० ४३)

इसके पश्चात एक दिन कर्ण की अविप्रता का रहस्योद्घाटन हो जाने पर परशुराम ने उसे घोर शाप दिया कि—

'प्रहारवान म बन अप्रमेय तू पराप्त होगा न कदापि शत्रु से।
परन्तु आकस्मिक रीति से कभी अवश्य होगा हत वीर क्षेत्र मे॥
प्रयुद्ध म तुल्य अराति-संग तू प्रवृत्त होगा जब प्राण द्यूत मे।
व्ययास्त होगा स्मृति भ्रष्ट सर्वथा, अशक्त ब्रह्मायुध के प्रयोग म॥"

(सर्ग ४ पृ० ५२)

महर्षि महेन्द्र ने क्रोध में भयंकर अभिशाप तो अंगराज को दे दिया किन्तु बाद में प्रकृतिस्थ होने पर उसे स्वकण्ठ से लगाकर शुभाशीष देते हुए विदा किया—

उसे लगा के ऋषि ने स्वकण्ठ से विदा किया यों कह साधु भारती।
सुपुत्र जा तू जन लोक ग्राम को तुझे मनोवाञ्छित कीर्ति प्राप्त हो॥
जहाँ रहे तू तुझ को मिले वहाँ, प्रधानता पौरुष विक्रमार्जिता।
बने जय श्रीप्रद लोक शक्तियाँ सदैव तेरी चरणानुगामिनी॥
महायशस्वी बन सप्रभाव तू प्रशस्य हो भारत भूमि भानु सा।
रहे तुझे ध्यान मनुष्य सूर्य का प्रताप संवर्द्धक आत्म ताप है॥"

(सर्ग ४, पृ० ५३)

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि महर्षि परशुराम के आश्रम में छद्मवेश में शस्त्रास्त्र शिक्षा प्राप्त करना कर्ण के समुज्ज्वल चरित्र को गर्हित करता है यद्यपि उसने ऐसा महत्वाकांक्षा के वशीभूत होकर ही किया था। डा० गोविन्द राम के शब्दों में— सर्वगुण सम्पन्न कर्ण का द्विजवेश में परशुराम के आश्रम में शस्त्र विद्या की शिक्षा प्राप्त करना उसके महिमामय उत्कृष्ट चरित्र को आघात अवश्य पहुँचाता है।[1]

कर्ण के मैत्री-आदर्श और वीरत्व कौशल का परिचय पाँचवें और छठे सर्गों में मिलता है। कलिंगाधिप चित्रांगद की राजकुमारी को स्वयम्वर से अपहृत करके दुर्योधन जब ले चला तो कलिंग की विशाल वाहिनी और स्वयम्वर में समागत नरेशों ने उसका पीछा किया। इस अवसर पर कर्ण ने अद्भुत साहस और शौर्य का प्रदर्शन कर राजाओं को रोका और मित्र के मार्ग को निरापद बनाया। कर्ण के युद्ध कौशल का वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि—

जिधर गया उद्दण्ड चण्डतम वह कोदण्डी।
पहुँच मुण्डमालिका उधर नाची रणचण्डी॥
जपाकुसुम वन सा क्षितितल शोणित रंजित था।
अंगराज रणराग वहाँ मानो व्यंजित था॥'

(सर्ग ५, पृ० ५८)

द्यूत क्रीड़ा में सर्वस्व हारकर जब पाण्डव अज्ञातवास कर रहे थे तब वे कौरवों के विरुद्ध नाना प्रकार की योजनाएँ बना रहे थे। कौरव समाज में कुछ

[1] हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य पृ० ४०४

लोग पार्थ के पराक्रम, द्रुपदराज की शक्ति और कृष्ण की कूटनीति से आतंकित होकर कुरुराज को पाण्डवों से संधि करने का प्रस्ताव कर रहे थे। श्रोताओं में भीष्म और द्रोण प्रमुख थे, किन्तु कर्ण ने सदर्प कहा कि कुम्जनों से भयवश प्रीति करना कायरता है। राधेय के रहते हुए कुरुराज का भयभीत होने की तनिक भी आवश्यकता नहीं। कर्ण के निम्नोद्धृत कथन में उसका आत्मविश्वास और ओज द्रष्टव्य है—

"एक एक क्या कोटि कोटि हों, द्रुपद, कृष्ण, कौन्तेय।
भीत न होगा कुरुपति जब तक जीवित है राधेय॥"

(सर्ग ६, पृ० ८३)

कर्ण ने जो कहा वह कर भी दिखाया। कौरव शक्ति के प्रभाव को जगत विभापित करने के लिए दुर्योधन ने जगद् विजय का प्रस्ताव किया। इस गुरुतर दायित्व को कर्ण ने सदर्प सवहन किया। उसने चतुरंगिणी सेना लेकर पांचाल, मत्स्य, काश्मीर, शलद्रस्थ, वंगदेश, मिथिला, मगध, कलिंग, उत्कल कोशल, विदर्भ, केरल चेदि, अवन्ती, मध्यदेश आदि प्रदेशों को वीरतापूर्वक विजित करके कुरु साम्राज्य के अधीनस्थ कर दिया। इन प्रदेशों को विजित करने में कर्ण ने अदम्य साहस अपूर्व पराक्रम, अनन्त शौर्य और अद्भुत रणकौशल का परिचय दिया। उदाहरणार्थ दक्षिण प्रदेश के यवन मलेच्छ-बर्बर-समाज से संगरस्थ कर्ण के सम्बन्ध में कवि का कथन है—

"स्यन्दनस्थ वसुषेण आर्यों के प्रदेश में।
शस्त्र बजाता बढ़ा वेग से रणावेश में॥
प्रथम आक्रमण से अरि-अग्रानीक भेदकर।
व्यूहित प्रतिबल अन्तराल में गया वीरतर॥
सागराम्बरा वहाँ बन गई शोणितवसना।
रक्तप रण क्षिति बनी यथा चण्डी की रसना॥
प्राची सदृश्य प्रदीप्त हुई रण दग्ध प्रतीची।
दण्ड भीत रिपु-हेतु बनी पृथ्वी कालीची॥

(सर्ग ७, पृ० ९१)

इस प्रकार सम्पूर्ण धराखण्ड को कुरुक्षेत्र के चरणाश्रित करके जब जगत् विजेता कर्ण हस्तिनापुरी लौटा तो कर्ण और उसकी भारती जयन्ती फहराती जयवंता पताकिनी का जनगण और नृपसमाज ने भव्य स्वागत किया। वसुन्धरा-सम्राट सुयोधन ने कर्ण की जयी भुजा को जयस्वर्ण से विभूषित किया,

मलयज कुंकुम से तिलक कर बलपति को विजय किरीट धारण कराया। महाभाग धृतराष्ट्र ने महाबली कर्ण का अभिनंदन करते हुए कहा—

'सर्वोपरि तुम आज राज सम्मान पात्र हो।
मानवेन्द्र, वसुधा वरेन्द्र तुम एक मात्र हो॥
अंगराज तुमने हमको चिरऋणी किया है।
दे न सके जो भीष्म द्रोण वह हमें दिया है॥'

(सर्ग ७ पृ० ९३)

विष्णु-यज्ञ के याजक ने भी अंगराज को पुरुषेन्द्र मानकर उसका सविधि अग्रपूजन कर सम्मानित किया। जगद् विजय सदृश्य महोद्योग की सिद्धि के अवसर पर कर्ण ने एक अभूतपूर्व प्रण किया, जिसके कारण वह कर्मवीर और युद्धवीर के साथ साथ दानवीर के रूप में भी सुविख्यात हो गया—

अंगराज ने सिद्धि प्राप्त महोद्योग में।
महान् प्रण किया कीर्तिदायी सुयाग में॥
सुजन अकिंचनगण का बन अभिमत वरदायक।
राज-सहायक कर्ण हो गया प्रजा सहायक॥

(सर्ग ७ पृ० ९५)

इस प्रतिज्ञा के पश्चात् कर्ण नित्यप्रति रवि वन्दन के अनन्तर गंगातट पर मुक्त कर से दीन जनों को दान देने लगा। वस्तुतः लोक जीवन में इतना विश्रुत हो गया कि उसे अबल का बल और अनाथ का नाथ कहा जाने लगा। कर्ण के श्लाघनीय दातृत्व भाव का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है कि—

बोला सबसे दानी प्रशस्त हैं उठे हमारे वरद हस्त।
देकर याचित धन धरा धाम हम तुम्हें करेंगे पूर्ण काम॥
देना भी हो यदि निज शरीर व्रत विमुख न होगा दानवीर।
आशामय हो सब प्रकार वर मांगो तुम स्वेच्छानुसार॥

× × × ×

देकर सुवर्ण निधि राजरत्न कर दिया निराश निशा भग्न।
पतितों में जागृति कर महान्, अभिवन्द्य हुआ वह रवि समान॥

(सर्ग ८ पृ० ९८)

कर्ण के दानकर्म की अग्निपरीक्षा हेतु देवाधिराज द्वारकेश ने विप्रवेश धारण कर लिया। उन्होंने अंगराज के नवकुमार के मांस की याचना की और अप्रतिम मनस्वी ने कर में कृपाण लेकर पुत्र को विगत प्राण कर याचक को संतुष्ट किया—

"सुत मांसपिण्ड को कर सखण्ड, निभग्न धयवन वन प्रचण्ड ।
सस्कारित कर उसका यथष्ठ, दाता न द्विज का दिया भेंट ।।
(सग ८, पृ० ९९)

कण की दानशालता, आत्मत्याग, उपकारवृत्ति और सत्यानुराग स प्रसन्न होकर श्री द्वारिकाधीश रकवप त्याग कर प्रकट हो गये और मनोवाछित वर प्राप्ति के लिए कहा। कण ने इस अवसर पर जो वरदान मागा वह उसकी उदात्तता और महानता का परिचायक है—

'यदि हैं प्रसन्न हे देव, आप तो यह आशिष दें सप्रताप ।
निधन सुपात्र-सेवा प्रसग, हो सुलभ हमें इस विध अभग ।।
× × × ×
जब तक मम तन में रहे श्वास, हम मातृ भूमि में करें वास ।
पालन करके निज आय धम, हम करें श्रेष्ठ कत्तव्य कम ।।'
(सग ८, पृ० १०२)

अङ्गराज के का यनायक की विलक्षण दानवीरता का प्रत्याख्यान नवम सग में पुन कवि न किया है। कण के आराध्यदेव भगवान भास्कर ने उसे छद्मवशी सुरन्द्र का अपने जन्मजात कवच और कुण्डल न देने के लिय सचेत किया। किन्तु कण ने दानकम के प्रति अपनी अडिग आस्था को व्यक्त करते हुए कहा—

परहित करना आत्मत्याग है आयजनों की रीति सनातन ।
इस नश्वर जग में मरकर भी रहते अमर इसी विध सज्जन ।।
वस्तुमात्र क्या यदि तन का भी साधु अकिंचन करे प्रयाचन ।
देकर उसे सहष करेंगे हम कीतद सत्कम फलाजन ।।'
(सग ८, पृष्ठ १०६)

व्यास प्रणीत महाभारत में भी कण इसी प्रकार की भावाभि यक्ति करता है—

मद्विधस्य यशस्य हि न युक्त प्राणरक्षणम ।
युक्त हि यशसा युक्त मरण लाकसम्मतम ।।
(महाभारत, कण पर ३००/२८)

दिननायक तो कण को सचेत कर चल गये। आगामी दिवस इन्द्र ने विप्र वेश में समुपस्थित होकर कण स कवच कुण्डल की याचना की। अगराज न साभिमान गात्र-सलग्न कवच और कुण्डलों का अपना वक्षस्थल विदीर्ण कर इन्द्र को समर्पित कर दिया। वक्षस्थल विदाण कर अवतस कवच के उत्कतन क

कारण अंगराज का शरीर रुधिर मज्जित हो गया। उस मर्म विदारक दृश्य को देखकर अचला सहित हिमाचल और सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड प्रकम्पित हो गया। स्वर्ग के पितृगण प्रसन्न होकर दिव्य कुसुम बरसाने लगे। कर्ण की कीर्ति प्रसारित करती हुई देव दुन्दुभियाँ बजने लगीं। उस समय सत्यसम्पृक्त सूर्यपुत्र सूर्य के समान विभासित हो रहा था। एक स्वर में देवता गगनागार में गाते हुए कह रहे थे—

एक स्वर से कहा सुरों ने—अहा शक्तिशाली है मानव।
स्वयमर्जित अमरत्व प्राप्त कर देता है जो हमें पराभव॥
आर्यों का यह देश धन्य है करते जहाँ तपस्या तापस।
विधि विधान विपरीत यशस्वी सत्यव्रत बनता मृत्युञ्जय॥
कर्म भूमि यह परम धन्य है होता जहाँ आत्म उत्सर्ग।
अमरों से भी धन्य धरा है करते जहाँ देव भिक्षाटन॥

(सर्ग ८ पृष्ठ १०८)

वसुषेण के महान त्याग से प्रसन्न होकर शक्र ने उसे दिव्यास्त्र प्रदान किया और शक्र ने ही उसे कर्ण नाम दिया। इसी घटना के आधार पर जनश्रुति के कारण वसुषेण कर्ण नाम से सर्वत्र सुविख्यात हो गया। कवि के शब्दों में—

दुष्कर कर्म सिद्धि विनायक सुना यहाँ शक्र से पाकर।
विदित हुआ वसुषेण जगत में कर्ण नाम से ही तदनन्तर॥
दिन प्रतिदिन प्रख्यात हुआ वह दानी सत्य प्रताप प्रतिपर।
नित्य प्रवर्द्धित हुआ जनप्रिय उसका अक्षय कीर्ति सुधाकर॥

(सर्ग ९ पृ० ११०)

कर्ण चरित्र की उत्कर्ष विधायक गुणात्मक विभूतियों में मित्र धर्म का अनुपालन भी उल्लेखनीय है। कर्ण ने अनेक अवसरों पर अपने आचरण द्वारा मैत्री के उच्चादर्शों को प्रस्थापित किया। यही कारण था कि दुर्योधन अपने सम्बन्धियों और सभासदों में सर्वाधिक सम्मान कर्ण का ही करता था। जिस समय श्री कृष्ण दूत के रूप में पाण्डवों का सन्धि प्रस्ताव लेकर कुरुसभा में समुपस्थित हुए तो कुरुराज ने भीष्म द्रोण आदि सहित सभी सभासीन नरेशों और महारथियों का परिचय कृष्ण से कराया किन्तु जिस गौरव और गरिमा से कर्ण का परिचय दिया उससे कुरुराज का कर्ण के प्रति उच्च समादर भाव प्रगट होता है। यह परिचय महाबली कर्ण के वैभव और विक्रम का भी परिचायक है। दुर्योधन ने कहा—

समीप हो केशव आप देखिए विराजते वीर वीरेन्द्र अंश के।
वसुंधरा में जिनकी प्रशस्त है मनस्विता, अद्वय कर्मशूरता॥

स्वबाहु से, अर्जित राज्य कीर्ति के, स्वकम से सचित भाग्य के धनी ।
हठोद्य सत्य, पराक्रमी तथा अन य दानी नरराज कण हैं ॥
स्वय विधाता इनके ललाट की, अदृष्ट लेखा यदि मेटन लगे ।
कभी न होवे मन म हताश ये, समय जो हैं पुरुषाथ शक्ति से ॥
महान सहार कला प्रवीण ये, महारथी हैं जिनके प्रभाव से ।
विवण होती मम शत्रु मण्डली, शशी यथा कुजर कणताल से ॥"

(सग १२, पृ० १२७)

दुर्योधन की प्रशसोक्तियो की सत्यता को कण न प्राणपन से अक्षरश प्रमाणित भी किया । कुरुसभा म ही जब माधव ने कुरुराज को पाडवो की युद्ध योजना से अवगत कराते हुए राज्य का कुछ भाग पाडवो को देकर वैर विरोध समाप्त करने का परामश दिया, तो सुमेरु श्रृगोपम शीशखण्ड और सुवण बाहुदण्ड को उठाकर नर रत्न कण ने ओजस्वी वाणी मे कहा—हे केशव ! गुणहीन व्यक्तियो की व्यथ प्रशसा न कीजिये । पाडव क्षत्र भ्रष्ट हैं । वे महा-अकमण्य बने स्वपत्नी-अपमान देखते रह वसुधा सतीत्व का सरक्षण किस प्रकार करेंगे ? स्वराष्ट्र रक्षण सामथ्यवान द्वारा ही होता है और इसके योग्य केवल कुरुराज हैं, पाडव नहीं । और पाथ यदि युद्धाकाम्नी है तो रणक्षेत्र म आए । हम दया या कृपा भाव के लिए राजधम का परित्याग नहीं करेंगे—

स्वराष्ट्र के रक्षण हेतु सवदा, समथ का शासन सवमान्य है ।
सुयोग्य है कौरवराज सवथा, अत उन्हे है अधिकार राज्य का ॥
यही कहेंगे हम स्पष्ट रूप से प्रभुत्व है दुलभ कमहीन को ।
विरोध हो सगर व्यग्र पाथ तो, सहष आए बलिदान भूमि मे ॥
दया कृपा भी मन म लिए हुए, न त्याग देग हम राज धम को ।
कहा हुई पाडव की प्रशस्ति स न भीत होग हम अल्पमात्र भी ॥

(सग १२, पृ० १३२ १३३)

इसके पश्चात श्रीकृष्ण न लौटत हुए एकात म कण को बताया कि अब भीषण युद्ध होना अनिवाय है मित्रवत सम्भवत हम अतिम बार मिल रहे है । अब धमत सबके लिए कत्तव्य प्रश्न विचाय है । ह प्रन ! तुम निज ज म कथा से अनभिज्ञ होने के कारण मूल से धन म पडे हो । वसुषण ! तुम राजवश प्रसूत हो कुती तुम्हारी जननी और पाण्डव तुम्हार अनुज ह । श्रीपति न कुमारी कुन्ती की सूर्योपासना वरयाचना और कण ज म के इतिवृत्त का विस्तार पूवक बताकर अ त म कहा—

'कुलवान गर्भेश्वर स्वयं को मान सब प्रकार से ।
तुम राज्य लक्ष्मी भोग क्यों करते नहीं अधिकार से ।।
अब कौरवों को त्याग तुम निज राज्य लेकर हाथ में ।
भोगो अनुजगण और श्यामा सुन्दरी के साथ में ।।

(सर्ग १३, पृ० १३६)

प्रत्युत्तर में वसुषेण ने कहा—हरि ! मुझे वंश गौरव प्राप्ति का मिथ्या लोभ नहीं है। पृथा से परित्यक्त होने के पश्चात् कौन्तेय के रूप में तो मैं मृत हो गया हूँ। मुझे तो राधेय के रूप में पुनर्जीवित किया गया है। भ्रम से मैं पृथा का देव प्रदत्त कुमार होकर भी मित्रघातक कर्म नहीं करूँगा। पाण्डवों के निमित्त मैं सुयोधन की मित्रता नहीं त्यागूँगा। क्योंकि मेरे लिए वे धुरव से भी अधिक महत्वपूर्ण मानवता का संरक्षण है। कर्ण ने प्रखर होकर कहा—हे कर्मयोगी ! मुझे कर्मभ्रष्ट मत कीजिये। आप जिस प्रकार पार्थ के अनन्य स्नेही हैं उसी प्रकार मैं कुरुराज का सुहृद्-सन्मित्र हूँ। जब मेरे दुःख के दिन थे और मैं निरुपाय था तब मेरे एकमात्र सहायक कुरुराज ही बन थे। अब लोभवश उनका त्यागकर मैं मित्रघाती और कृतघ्न नहीं बनूँगा। कर्ण के अकाट्य तर्कों को सुनकर श्री हरि ने दूसरा प्रस्ताव किया कि महासंग्राम होना तो निश्चित है अतः तुम तटस्थ और विरत हो जाओ क्योंकि वैसे भी दैवयोग से (अभिशाप के कारण तुम विजयी तो हो नहीं सकते हो) और पार्थ सम्पूर्ण दैवी शक्तियों से युक्त होने के कारण अन्ततः विजयी होगा ही। यह सुनकर कर्ण उत्तेजित हो गया और उसने कहा—

नदिवा विभव कहिए न केशव भूलकर नदराज से ।।
जिस भाँति चिरवांछित समर होगा हमारा पार्थ का।
तब देखिएगा आप अन्तर दैवबल पुरुषार्थ का ।।
वसुसेन वंश का मान मर्दन राजवंश समाज का ।
हम माँग कर दम अकटक मित्रवर कुरुराज का ।।
यदि मित्र हित हमको मिटना अन्तर्गति ही अन्ततः ।
तब भी मिलेगी आत्मवत्ति से आत्म जय ही पूर्णतः ।।

(सर्ग १३, पृ० १४१)

महाभारत में भी कर्ण इसी प्रकार का उदात्त मैत्री भाव प्रकट करते हुए कहता है—

धार्तराष्ट्रन् मनसः हि राजा वर्षिन्य वीर्यस्य सुना समासीन् ।
तस्मात् भिद्वयस्य मन्ये त्यजामि प्रियान् भोगान् दुस्त्यजं जीवितं च ।।

(महाभारत कर्णपर्व ९१/२६)

चतुदश सग मे कण दम्पत्ति का सुदर परिसवाद है जिसम कण भार्या प्रकृति की रमणीयता और सुन्दर दृश्यावली का मादक वणन करती हुई प्रेम भाव प्रदशन करती है। प्रिया के प्रेमालाप से अप्रभावित रहकर अधिरथात्मज ने जो उत्तर दिया, वह उसकी कत्त व्यनिष्ठा और स्वाभाविक वीर मनोवृत्ति का व्यजक है—

"सुख विलास तथा रसवाद से हम विमुग्ध न हो सकते यहा।
अरुण के परमोज्ज्वल तेज को घनघटा न घटा सकती कभी ॥
गृह विनोद सभी अब भूल के, समर है उनसे करना हम ।
भ्रमणशील अभी तक नित्य थे, वन वनीक वनी-कपि तुल्य जो ॥

× × ×

अब न हमको प्रियचद्र की रुचिरता मदुता, कलहासता।
हम उसे भजते जिम भानु की, किरण की रणकीर्ति प्रसिद्ध है ॥

(सग १४, पृ० १५१–१५२)

यह कह कर कण ने समर प्रस्थान हेतु जब प्रिया से विदा करने को कहा तो कण प्रिया बोली कि अब युद्ध अभीष्ट नही है। प्रकृति के सभी उपादान शान्ति उपासना के लिए प्रेरित करते हैं। रण कम जन विनाश का साधन होने के कारण ग्रहण योग्य नही है। युद्ध के परिणाम तो व्यथा, क्रन्दन, मत्यु और वेदयना हैं। गृह-समद्धि और जन सम्पदा का महानाश अवाछनीय है। अत सकल कौरव और पाडव वर्ग का हितैषी बनकर युद्ध की विभीषिका से सभी को बचाना चाहिए। किन्तु दृढव्रती कण ने अपने निश्चय को इन शब्दो मे व्यक्त किया—

'जाना है हमको उसी कम भूमि मे मान से।
जीवन है मिलता जहा प्राणो के बलिदान से ॥
यदि विजयी हम हुए मित्र का मान बढ़ेगा।
कुरुपति-पद पर धमराज का शीष चढ़ेगा ॥
यदि हारा रण प्रहत, कहेगा लोक यही नित।
कण धन्य था जो गतायु हो गया मित्र हित ॥'
दानों मे सतोष है विजय मिले या वीरगति।
अमर रहेगी विश्व म कीर्ति हमारी नित्य प्रति ॥

(सग १४, पृ० १५३)

दृढ प्रतिज्ञता कण चरित्र की ऐसी विशेषता है जो काव्य म आद्यात दृष्टिगत होता है। कृष्ण प्रयाण के पश्चात भारत के भवनीय महारण की परिकल्पना से सबसे अधिक अधार और सशस्त कुन्ती थी। पुत्र-स्नेह उसे व्यथित

"वीरप्रसू इससे तव वीर सुत द्वय कीर्ति प्रमाण होगा।
एक किसी सुत का जयलाभ सदा तव गौरव कारण होगा॥
× × × ×
अर्जुन के अतिरिक्त किसी तव आत्मज का हम प्राण न लेंगे॥
पार्थ हुआ विजयी यदि तो सुत-तत्त्व सभी तव शेष रहेंगे।
मृत्यु मिली उसको यदि तो हम निश्चय ही तव पुत्र बनेंगे॥"
(सर्ग १५ पृ० १६५)

यह सुनते ही कुंती ने स्नेह विमुग्ध होकर कर्ण को कण्ठ से लगा लिया। कर्ण ने भी सादर शीश झुकाकर वद्धकर से प्रेम और ममत्व का अकल्पनीय भाव प्रदर्शन किया। कुंती को वर देना तथा उसके प्रति सम्मान व्यक्त करना कर्ण की सदाशयता और औदार्य का ही परिचायक है। इस कृत्य से कर्ण का चरित्र मानवीय आचरण की उदात्त भूमिका पर अधिष्ठित होने का अधिकारी बनता है। कर्ण और कुंती के स्नेह विमुग्ध भाव मिलन को कवि ने इस प्रकार शब्द बद्ध किया है—

'होकर स्नेह विमुग्ध वहाँ उसने सुत को निज कण्ठ लगाया।
भूपति ने अति आदर से उसके चरणों पर शीश झुकाया॥
× × × ×
भूल गया वसुषेण स्वयं उस काल विचार सभी प्रभुता के।
मानस में उसके जननी प्रति भाव स्वभाव जगे शिशुता के॥
आनन मस्तक वद्ध कर द्वय व्यंजक थे उसकी लघुता के।
लोचन प्राण कृतार्थ हुए अवलोक इसे नृप भोज सुता के॥"
(सर्ग १५, पृ० १६५)

'अंगराज महाकाव्य' के द्वितीय खण्ड में दस सर्ग हैं। सोलहवें से पच्चीसवें सर्ग तक के कथाक्रम में महाभारत के युद्ध और उसमें महारथी कर्ण की गौरवान्वित भूमिका का कलात्मक मूल्यांकन है।

षोडश सर्ग में महाभारत युद्ध की साज सज्जा का वर्णन है। देश देश के नरनेतागण मन में रणोत्साह लेकर कुरुराज के आमन्त्रण पर राजागण में एकत्र हुए। कुरुवाहिनी के सेनापतित्व के लिए जब परिसंवाद प्रारम्भ हुआ तो भीष्म ने अंगाधिराज को महाशूद्र होने के कारण सेनापति बनाने पर आपत्ति की। कर्ण ने स्वेच्छा से युद्ध-नीति के हित में चमूपति-पद से स्वयं को विलग कर लिया। भीष्म को यद्यपि वयोवृद्ध होने के कारण कुरुवाहिनी-पति बना दिया

गया, किन्तु दुर्योधन ने अगपति की निन्दा को अक्षम्य मानते हुए भीष्म पितामह से स्पष्ट शब्दों में कहा —

'क्षमा सभी है पर अगम्य है निन्दा यहाँ अगपति की।
सभी मानते है प्रधानता जिस मनुजेन्द्र महामति की॥
उचित इसी प्रारम्भ केतु को प्रथम वलाग्र बनाना था।
इसी दिग्जयी के आश्रय मे कुरुक्षेत्र को जाना था॥
पर वयस्कता देख आपकी वृद्धजनो के आग्रह से।
दी है पद मुख्यता आपको हमने जाति अनुग्रह से॥

(सर्ग १६, पृ० १७५)

दुर्योधन के उद्धृत कथन से ज्ञात होता है कि कर्ण का कुरुसमाज में कितना समादर सम्मान था। सत्रहवें सर्ग में कुरुक्षेत्र के लिए प्रस्थान करती हुई विशाल वाहिनी और वाहिनी पतियों का प्रभावशाली वर्णन है। इसी क्रम में कर्ण का वर्णन करता हुआ कवि कहता है—

'और सुनो वह मनोभिमानी अग देश का राजा कर्ण।
पतझड बन जो सदा गिराता शत्रु शिरो को यथा प्रपर्ण॥
होती जिसकी ध्वजा देखकर दिग गयन्द बन्धन भय मुक्त।
नाग शृंखला केतु उडाता जाता यथा नाग निर्मुक्त॥
× × ×
चाप किणकित है जिसके कर श्रम बिन्दु अकित जिसका भाल।
वह काल सा बली उठा है लेकर कालपृष्ठ विकराल॥'

(सर्ग १७ पृ० १८३)

सर्ग अठारह में भीष्म के सेनापतित्व में कुरुवाहिनी और पाडवचमू में हुए समर का रोमाचक वर्णन है। दसवें दिन प्रातःसैन्य का नेतृत्व शिखण्डी को करते हुए देखकर भीष्म पितामह की दृष्टि झुक गई, तभी अर्जुन ने शिखण्डी के रथ के ओट से प्रहार कर उन्हें धराशायी कर दिया। रणोपरान्त रात्रि के समय शर शय्या पर शयन करते हुए भीष्मपितामह के प्रति सम्मान प्रगट करने के लिए जब कर्ण उनके समक्ष श्रद्धावनत हुआ तो भीष्म ने जो उद्गार व्यक्त किए उनसे ज्ञात होता है कि कर्ण के प्रति उनके मन मे उच्च भावनाएँ थी। भीष्म ने कहा—

'तुम हो वीर जगत के नेता। पुरुष रत्न ससार विजेता॥
तुम कीर्तित हो अनुपम दाता। कृष्णार्जुन सम रण विख्याता॥
विदित हमें तव गुणवत्ता है। स्वीकृत तव अनन्य सत्ता है॥
देख रूप गुण कर्म तुम्हारे। पुलकित होते प्राण हमारे॥

जिससे नप परिवार म, बढे न वन्धु विरोध।
तुम पर करते थे प्रगट, हम निज कृत्रिम क्रोध॥"

(सग १८ पृ० १६६)

उद्धृत काव्याश 'महाभारत' मे भीष्म के निम्नाकित कथन से तुलनीय है—

"जानमि समरे वीय शत्रुमिदु सहभुवि।
ब्रह्मण्यता च शौय च दाने च परामास्थितिम॥
न त्वया सदृश कश्चित्पुरुषेष्वमरोपम।
कुल भेद भयाच्चाह सदा पुरुष मुक्तवान॥

भीष्म के पतन के पश्चात द्रोणाचाय को यद्यपि सेनानायक नियुक्त किया गया था, किन्तु पाथ से सन्त्रस्त सनिक और महारथी व्याकुल होकर कण के नेतृत्व की आकाक्षा कर रहे थे। कवि के अनुसार—

'कहते थे सब एक स्वर से—कण कहा हैं?
महाशक्तिधर देवेश्वर से—कण कहा हैं?
रण प्रलयकर वीरेश्वर से—कण कहा हैं?
पाथ भुजग हित वीर घर से—कण कहा हैं॥'

(सग १६ पृ० १६८)

द्रोणाचाय के दिवगत होने के पश्चात कुरुवाहिनी का नेतृत्व महारथी महाबली अगराज कण ने सम्भाला। कण ने भयकर प्रहारो से पाण्डवों की सैन्य सरचना को ध्वस्त कर दिया। एक अवसर पर वह युधिष्ठिर का वध ही कर देता किन्तु कुन्ती को दिए गए जीवन रक्षा वर का स्मरण आते ही उसे छोड दिया। कण के युद्ध कौशल का वणन करते हुए कवि ने लिखा है—

'किया घोर सहार कण ने वरी हुए परास्त दृष्टिगत।
शत्रु घटाएँ नष्ट हो गइ प्रखर वाण झझानिल आहत॥

× × ×

अधिरथसुत अधिरथसुत अधिरथ, अधिरथ कण लिए निज अधिरथ।
प्रतिरथियो की भीमरथी म बना अधिरथी सम अप्रतिरथ॥
एक एक को वाण विद्ध कर महारथी का मान विमदन।
प्रहत पराहत उन्हें बनाकर उसने किया सिंहवत नदन॥

(सग २० पृ० २१४ २१५)

कण द्वारा कि जा रहे नर सहार को देखकर कृष्ण की सम्मति से पाथ, भीम आदि प्रमुख योद्धागण उसे मण्डलाकार घेर कर शस्त्रास्त्रो का प्रहार

करने लगे। किन्तु सभी देख रहे थे कि अंगराज प्रतिपक्षियों की सभी योजनाओं को असफल बनाता हुआ घातक प्रहार कर रहा था। कवि के शब्दों में—

देखा सभी ने प्रभुता दिखाता ब्रह्माण्ड पृथ्वी तल को कँपाता।
निर्द्वन्द्व था लक्ष्य समीप जाता अङ्गार आभावित अङ्गराजा॥
गोविन्द के गौरव को मिटाता मद्रेश था स्यन्दन को चलाता।
यानस्थ था कीर्ति निकेतु नाशी नागेन्द्र शिञ्जाकित केतुशाली॥"

(सर्ग २०, पृ० २१८)

कर्ण की सबसे बड़ी विशेषता यह रही कि वह युद्ध क्षेत्र में प्रतिकूल परिस्थितियों में भी कभी हतोत्साहित नहीं हुआ। एक अवसर पर कर्ण के सारथी मद्रेश्वर ने कहा कि अङ्गराज पार्थ ऐसा पुरुषेन्द्र है कि जिसकी रक्षा सभी लोक शक्तियाँ कर रही हैं। वह पुरन्दर पुत्र है जो सम्पूर्ण सुरायुधों से सज्जित है, और उसके सारथी चक्रपाणि हैं। उस शूर ने भीष्म द्रोण सदृश्य युद्ध दुर्गम महारथियों को भी विजित किया है। अतः उसका कमाल तुम कपालिका को क्या भेंट करोगे? कहीं वह ही तुम्हारा भाल शृगाल को न दे दे। मद्रराज शल्य की व्यंग्योक्तियों को सुनकर अंगराज ने कहा—

'पार्थ हो समृद्ध भले भिन्न-भिन्न प्रसाधनों से
सर्वसिद्धिदायक हमारा पुरुषार्थ है।
आत्मशक्ति के सहारे हम बार-बार
स्वजन रक्षित सुरायुधी अराति को—
द्वन्द्व में निमित्त ललकारते हैं किन्तु वह,
भीरु मम सम्मुख न आ रहा है आज भी॥

(सर्ग २१, पृ० २२१)

कुरुक्षेत्र में कर्ण ने न केवल स्वकीय युद्ध-कौशल से प्रतिपक्षियों को सत्रस्त कर रखा था अपितु अप्रतिम सेनानायक की भाँति वह अपने सैनिकों का सम्यक् उद्बोधन द्वारा समुत्साहित करता हुआ प्रयाण के लिए प्रेरित कर रहा था। कवि के अनुसार—

'अग्रस्थ अंगराज ने प्रयाण वेग से किया।
अराति व्यूह धर्म को स्वधाम पार्श्व में लिया॥
पुकार के कहा—बढ़ो समस्त राजसैनिको!
करो विनष्ट भूमि भ्रष्ट पृष्ठ शत्रु-व्यूह का॥
बढ़ा समस्त अङ्गराजपुत्र साथ सैन्य।
बढ़ा कराग्नि-धार से समस्त क्रूर ताड़ने॥

बचे न दृष्टिमार्ग में अमित्र शेष एक भी।
बढ़े चलो स्वदेश शत्रुहीन हो सको तभी॥
महारथी विलम्ब आज हो न सम्प्रहार में।
विपक्ष को करो विलीन काल अंधकार में॥
बचे न एक शत्रु मात्र जो न बाण विद्ध हो।
प्रयोग है वही प्रशस्य जो सकाल सिद्ध हो॥"

(सर्ग २१, पृ० २२८)

बलाग्र कर्ण के निदेश से कुरुवाहिनी सवेग बढ़ चली। उस अवसर पर धरा-सिन्धु प्रकम्पित हो रही थी। जैसे तरंगिता तरंगिणी उमंग से बढ़ती है वैसे ही अभग्न भारती सेना प्रयाण कर रही थी। कुरुराज की विशाल वाहिनी ने पार्थ की समस्त व्यूह रचना को अस्त व्यस्त कर दिया। इसके पश्चात कवि ने पार्थ और कर्ण के लोमहर्षक समर का वर्णन किया है। वसुषेण ने कोटि-कोटि शोणित महास्त्रों का प्रयोग करके धर्मराज का वध किया, अर्जुन भी रुधिराक्त हो गया। कुपित पार्थ ने भी अपने दिव्यायुधों के विस्मयकारी प्रयोगों द्वारा कुरुचमू को संत्रस्त कर दिया। उस युद्ध मेदिनी में शत्रुवाहिनी के प्रवेग को देखकर कर्ण ने अपने सारथी शल्य से कहा कि तुम मेरा स्यन्दन उस स्थल पर शीघ्र पहुँचाओ जहाँ हरि रक्षित पार्थ ध्वजा उड़ रही है—

"शल्य करो रथ की गति तीव्र महारण आज धरा पर होगा।
भीषण बाण प्रवर्षण घर्षण घोष प्रघोष निरन्तर होगा॥
ध्वंसक, लोमप्रहर्षक कर्ण धनञ्जय का अब संगर होगा।
भारत वीर समाज समक्ष अभी कुरुभूमि स्वयंवर होगा॥
घात विघात प्रघात प्रबोधक दारुण दृश्य महायम देखें।
भांति विभासक भरत भी मम भरव नर्त्य रणोत्तम देखें॥
श्री प्रलयंकर रुद्र भयंकर संहृति-नृत्य मनोरम देखें।
कन्धरवीर, धुरंधर धीर पुरन्दर सत्य पराक्रम देखें॥"

(सर्ग २१, पृ० २३५)

'महाभारत' में भी मद्रराज के समक्ष सेनापति कर्ण का यही वीरोचित स्वाभिमान प्रकट हुआ है—

नहि कर्णः समुद्भूतो भयार्थमिह मद्रक।
विक्रमार्थमहं जातो यशोर्थं च तथात्मनः॥"

(महाभारत—कर्ण पर्व, ४३ ६)

महारथी कर्ण सम्पूर्ण युद्ध क्षेत्र पर छाया हुआ था। उसका एकमात्र लक्ष्य शत्रुपक्ष की व्यूह रचना को ध्वस्त करना था। एक स्थल पर कुरुराज को सकटापन्न स्थिति मे फसे देखकर जब वह उस स्थल पर आ रहा था तो बीच मे ही उसे स्वपुत्र सुषेण का वीरगति प्राप्त शव दृष्टिगत हुआ। किन्तु कर्ण विचलित हुए बिना यह कहता हुआ आगे बढ गया कि—

पुत्र हानि क्षोभ से न भूलें हम प्रण का ।।' (सर्ग २१ पृ० २३७)

और निश्चयत यह प्रण अपने मित्र सुयोधन की प्राणरक्षा और मान रक्षा का ही था। किन्तु इस प्रणपूर्ति म कर्ण ने कहीं भी अनीति का आश्रय नहीं लिया। एक अवसर पर पार्थ ने महाचाप से वरुणास्त्र और रुद्र महास्त्र का प्रहार कर्ण पर किया। कर्ण ने उन महास्त्रो को प्रभावशून्य बनाने के लिए जिन शरो का प्रयोग किया उससे अर्जुन मूच्छित हो गया। इस अवसर पर दुर्योधन ने अर्जुन के वध करने का परामर्श कर्ण को दिया, किन्तु महारथी कर्ण न इसे धर्म प्रतिकूल कहकर टाल दिया—

"मूर्च्छित पृथाज हुआ बोला कुरुराज तभी
मित्र इसे मार दो उठे न यह स्वाप से।
रोक प्रहार कर्ण बोला—हमें इष्ट नहीं
धर्म प्रतिकूल स्वार्थ सिद्धि कभी पाप से ।।'
(सर्ग २१ पृ० २५०)

उद्धृत कथन से महाव्रती कर्ण के चरित्र की महानता ही व्यजित होती है। एक अन्य अवसर पर पुन व्याल कर्ण को सुझाव देता है कि मुझे बाणस्थ कर घातक प्रहार करो जिससे निश्चयत पार्थ हतप्राण होगा किन्तु यहाँ पुन अगराज धर्ममय युद्ध का ही समर्थन करता हुआ कहता है कि—

यह सत्य समर है नागराज। है सत्यव्रती यह अङ्गराज ।।
हो जाय भले वह प्राण मुक्त। पर कर्म करेगा धर्म युक्त ।।
कर के दूषित शर का प्रयोग। हम नहीं चाहते विजय योग ।।
हो यहाँ हार या मिले जीति। होगी न कुटिल मम युद्धनीति ।।
(सर्ग २१ पृ० २५६)

किन्तु विडम्बना यह है कि उस महाव्रती कर्ण का वध अनीतिपूर्वक पार्थ ने किया। रश्मिरथी प्रबन्ध काव्य मे श्री दिनकर जी ने भी यही दर्शाया है कि युद्ध क्षेत्र म कर्ण क रथ का एक पहिया फस गया था और जब वह पहिया निकाल रहा था तभी कृष्ण के आदेश से अर्जुन ने कर्ण का वध

कर दिया।[१] वस्तुत अर्जुन ने अधम और अनीतिपूर्वक निशस्त्रावस्था मे ही कर्ण का वध किया।[१] कर्ण के निधन पर कवि ने उसकी चारित्रिक गरिमा का वर्णन करते हुए पश्चाताप के स्वर मे कहा है कि—

मानवीय शक्ति का प्रतीक भारतीय वीर,
कर्ण शस्त्र पूत होके वीर लोक को गया।
दीन हीन प्राणियों का चिंतामणि रत्न था,
रत्नवती रत्न नर रत्नराज खो गया।
सज्जनो का कल्पवृक्ष मूल से विनष्ट हुआ,
जागरुक द्वारप स्वतन्त्रता का सो गया।
हो गया अजीव राज-अग अगराज बिना,
और अगराज दिनराज अस्त हो गया॥"

(सर्ग २१, छन्द २२५)

पाडव पुत्रो सहित श्रीकृष्ण जब युद्ध क्षेत्र का परिभ्रमण कर रहे थे, तभी मृत कर्ण भाल का लक्षित कर उन्होंने पृथाज से कर्ण के अपरिमित शौर्य का प्रत्याख्यान करते हुए कहा कि—

जयाधिकारी वसुषेण मृत्यु से, हुआ महाभारत ही समाप्त है।
यही बली था जिस के त्रास से, प्रवास म द्वादश वर्ष रात्रि म॥
प्रजागर ग्रस्त नरेश आप थे तथा किरीटी हम भी सशंक थे।
किरीटधारी प्रति भूप भाल को झुका दिया था इसी मानवेन्द्र ने॥
न स्वप्न मे परवीर त्रास से झुका कभी मस्तक अगराज का।
नलोक म एक यही ललाट था, महामनस्वी इस शौर्य मूर्ति का॥
हुआ न आनत दीन भाव से, कभी किसी के चरणारविन्द मे।

(सर्ग २१, पृ० २६८)

बाईसवें सर्ग मे कवि ने कर्णप्रिया के मर्मस्पर्शी करुण विलाप का वर्णन किया है। कर्ण भार्या प्राणेश्वर के खडित माथे को अक म लेकर उसे बारम्बार बिलखती हुई करुण क्रन्दन कर रही थी। वह अश्रुस्नाता अपनी मर्मव्यथा को अभिव्यक्त करते हुए कह रही थी कि हे चिरसगी! तुम स्वप्न म भी मेरे साथ थे। आज निर्मोही की भाति प्रणय बन्धन तोड कर कहा चले गए

[१] रश्मिरथी—सप्तम सर्ग पृ० १८७ से १९९
[१] हिन्दी के आधुनिक पौराणिक महाकाव्य पृ० १७८

हो। तुम्हारा तो यह प्रण था कि जब तक नभ म चन्द्र-तारे हैं, हम साथ हैं और रहेंगे। सुखमय अतीत का स्मरण करती हुई वह कुमारान्ना चन्द्रमा की ओर इंगित कर कहने लगी कि यह मन्दमित्र हमारे मधुमय मिलन का साक्षी है। अहो वह सुधासिक्त रजनी कितनी सुखदायी थी जब नभ म चन्द्र और अपने समीप तुम्हारा मुखचन्द्र देखकर मेरे अन्तस्तल में पीयूषधार प्रवाहित हो रही थी। हे वीरव्रती उठो और अभिनन्दन करो। इस प्रकार निरन्तर आर्तनाद करती हुई वणवामा को धैर्य धारण कराने के लिए गगनध्वनि हुई जिसमे उसने सुना कि—कोई कितना भी महान् नेता या विश्वविजेता हो, किन्तु काल से तो वह भी परास्त होता है। उदय अस्त और उत्थान-पतन तो नित्य नियति का सतत क्रियमाण अबाध क्रम है जिसका कोई अतिक्रमण नहीं कर सका ? वण महान् वीर था और उसे देवोपम अमरत्व प्राप्त हुआ है। उसके समान कीर्ति कलेवरधारी प्राणी जग म मिलना दुलभ है। तुम हृदय की जड़ता और व्याकुलता का परित्याग कर अपने दिवंगत पति की मरता को भूलकर उसकी दवीय विभूतियो का पुण्य स्मरण करना चाहिए—

'वण वीर था महावीर था देवोपम बलधारी।
पुण्यशील मानी सज्जन था अनुपम परोपकारी॥
किन्तु उसे भी काल नियम वश प्राण त्याग करना था।
कर्मवीर था अत कम करते-करते मरना था॥

× × ×

कौन भाग्यशाली नर होगा जग म उससे बढ़के।
परमोन्नति जो करे स्वनिर्मित सोपानो पर चढ़के॥
परमाहव मे विजित नहा पर जयी हुआ तव स्वामी।
करके वह परमत्व प्राप्त ही हुआ स्वग पथगामी॥

× × ×

मिली परम गति अगराज को अन्तिम जीवन रण म।
एकमात्र वह सफल हुआ है स्वाभिमान रक्षण म॥

(सग २२ पृ० २७२ ७३)

गगन गिरा से वण वामा यद्यपि आश्वस्त हुई किन्तु उसके सन्ताप का सबसे बडा कारण यह था कि छल प्रयोग तथा हरि योग से शत्रु ने प्राणनाथ का वध किया, अन्यथा तो वे अविजेय थे। वण प्रिया की मनोव्यथा कितनी

यथाथ और तलस्पर्शी प्रतीत होती है जब वह कहती है कि कुरु जातीन भारत राज्य की दक्षिण बाहु ही कण निधन से कट गई है—

कुरु कुलाश्रित भारत राज्य की, कट गई अब दक्षिण बाहु ही।
वहन था करता नपराजता, वह महीभुज ही गुज शक्ति से ॥'

(सग २२, छद ४२, पृ० २७६)

चौबीसवें सग म हम धमराज युधिष्ठिर का भी महारथी कण के निधन पर मानसिक सन्ताप और आत्मिक सम्मान प्रकट करते हुए पाते हैं। जिस समय गगातट पर कुलाग्रणी पाडवराज सभी मृतजनो का शास्त्रोक्त विधान से दाह-सस्कार एव तपणकम कर चुके तो कुन्ती ने कणजन्म का रहस्यपूण वृत्तान्त बताते हुए धमराज स कण का तपण करने के लिए अनुरोध किया। इस रहस्यमय इतिवृत्त का परिज्ञान होते ही युधिष्ठिर पश्चातापपूण मुद्रा म कहने लग कि यदि पहले ज्ञात हो गया होता कि कण हमारे अग्रज हैं, तो हम युद्धकामी न होते, क्योंकि—

'अगेश क दशन से हमारी, होती सदा थी बलवान श्रद्धा।
विलोकते ही पदश्री उसकी विनीत होते हम सवदा थे ॥
होता जहा था वह कापशाली होते वहा थे हम गुप्त स्नेही।
विचार होता मन म यही था, सुसह्य है पूज्य मनुष्य वाणी ॥'

(सग २४, पृ० २६८)

काव्य की परिसमाप्ति मातण्ड के कण क प्रति इस कथन से होती है कि—
आत्म विजय ही सत्य विजय है हुई तुम्हें जो प्राप्त।''

(सग २४ पृ० २६६)

इस प्रकार अङ्गराज महाकाव्य के माध्यम से कण चरित की जो विभूतिया व्यजित हुई हैं उनके कारण कण सचमुच 'भारती नायक' सिद्ध होता है। कण के चरितमूलक गुणात्मक उत्कष का अनुमान तो इसी बात स लगाया जा सकता है कि उसकी प्रशसा कृष्ण, अजुन युधिष्ठिर प्रभृति विपक्षियो ने भी मुक्त कठ स की है। विरोधियो द्वारा कण की प्रशस्ति 'अङ्गराज' के कवि न ही नहीं अपितु महाभारत म महर्षि व्यास न भी करायी है। उदाहरणाथ महाभारत म श्रीकृष्ण स्पष्ट शब्दो म अजुन से कहते हैं कि मैं कण को तुम स श्रेष्ठ महारथी मानता हू—

कर्णो हि बलवा दृप्त कृतास्त्रश्च महारथ।
कृती च चित्रयोधी च देश कालस्य कोविद ॥

बहूनाम् हि गुणैर सशेषाच्छ्रेष्ठ पाण्डव ।
त्वत्सम सर्वविशिष्ट या कर्ण मन्ये महारथम् ॥

(महाभारत कर्ण पर्व)

एक अन्य स्थल पर कृष्ण कर्ण की शक्तिमत्ता और कृतास्त्रता के सम्बन्ध में अर्जुन से कहते हैं कि युद्ध में उसे तुम गाण्डीव से और मैं सुदर्शन चक्र से भी जीतने में समर्थ नहीं हो सकते—

'गाण्डीव मुद्यम्य भवाश्चक्र चाहं सुदर्शनम् ।
न शक्तौ स्वोऽरण जेतु तथा युक्त नापमम् ॥'

(वही, कर्ण पर्व)

महाभारत युद्ध के प्रत्यक्षदृष्टा संजय ने तो धृतराष्ट्र को यहाँ तक कह दिया कि युद्धक्षेत्र में भीष्म द्रोण या अन्य कोई भी वीर कर्ण के समान पराक्रम का प्रदर्शन नहीं कर सका—

नव भीष्मो न च द्रोणो नान्ये युधि च तावका ।
चक्रस्म तादृश कर्म यादृश वहुत रणे ॥

(वही कर्ण पर्व)

इस दृष्टि से अङ्गराज के रचयिता का यह कथन सर्वथा सत्य प्रतीत होता है कि— कौरव-समाज में ही नहीं महाभारत-काल के समस्त मानव समाज में सबसे प्रभावशाली एवं स्वतन्त्र व्यक्तित्व अंगराज कर्ण का ही मिलता है।[11] आलोच्यकाव्य में कर्ण के अनेक नाम यथा—वसुषेण कर्ण वृष जीव आदि प्रयुक्त हुए हैं। ये सभी नाम कर्ण की गुणवत्ता का द्योतन करने वाले हैं। जन्म जात कवच कुण्डलधारी होने के कारण सूत अधिरथ ने उसे वसुषेण कहा शरीर से कवच कुण्डल का उच्छेदन कर दान करने के कारण पुरन्दर ने उसे कर्ण कहा और ब्रह्मण्य सत्यवादी तपस्वी व्रती और रिपु के प्रति भी दयावान होने के कारण उसे वृष अभिधान दिया गया। श्रीकृष्ण के अनुसार—

ब्रह्मण्य सत्यवादी च तपस्वी नियतव्रत ।
रिपुष्वपि दयावाश्च तस्यात्कर्णो वृष स्मृत ॥'

(महाभारत)

वस्तुतः कर्ण का व्यक्तित्व और कृतित्व 'यथानाम तथा गुण' वाली उक्ति के अनुसार गुणाभिभूत था। कर्ण के चरित्र में वीरत्व के उत्कर्ष विधायक आदर्श त्रय (कर्मवीर, युद्धवीर, दानवीर) की अद्भुत समाहृति परिलक्षित

---

[11] अंगराज—भूमिका पृ० २८

होती है। 'अङ्गराज' के रचयिता ने कर्ण के उत्सर्गमय निधन के कारण उस महान कर्मवीरों की कोटि में परिगणित करते हुए लिखा है कि—"जहाँ दधीचि ने तप करके अस्थिदान किया वहीं कर्ण ने तप करके जीवन दान किया। कर्मयज्ञ की पूर्णाहुति प्रायः कर्मवीर के बलिदान से होती है। कृष्ण, कर्ण, दयानन्द गांधी के जीवन से यही सिद्ध होता है।" (भूमिका, पृ० ३९ से उद्धृत) उद्धृत मत न अतिरंजित नहीं है, क्योंकि इसकी प्रामाणिकता आलोच्य काव्य के घटनाक्रम और चरित्र विकास द्वारा सिद्ध हो चुकी है। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि कर्ण का चरित्र महान् मानवीय गुणों, उपार्जित दवीय विभूतियों, कर्तव्यनिष्ठा के उदात्त आदर्शों, अनीति विरोधी संघर्षों तथा कौलिन्य-दर्प की विडम्बनाओं से उत्पीड़ित शोषित मानवता का सशक्त प्रतिनिधित्व करने के कारण निश्चयतः महार्घ, युगप्रेरक और वरेण्य है। श्री आनन्दकुमार ने कर्ण के महान् चरित्र पर 'अङ्गराज' महाकाव्य की रचना द्वारा भारती के भण्डार का गौरवपूर्ण अभिवृद्धि की है, अतः उनकी यह काव्य कृति सर्वथा अभिनन्दनीय है।

'रावण' और 'दैत्यवश' महाकाव्य

मानवीय जीवन मूल्यो की प्रतिष्ठा के काव्य सकल्प

३-४

'रावण' और 'दैत्यवश' महाकाव्य
मानवीय जीवन-मूल्यो की प्रतिष्ठा के काव्य सकल्प

पौराणिक युग के कलकित, तिरस्कृत एव उपेक्षित पात्रा के उचित मूल्याकन और सम्यक समालोचन की प्रवृत्ति हिन्दी के साहित्यकारो ने बगला के मानवतावादी लेखको और युगद्रष्टा कवियो से प्राप्त की। महाकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर के 'काव्येर उपेक्षिता' लेख ने श्री मथिलीशरण गुप्त को 'साकेत और श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' को 'ऊर्म्मिला महाकाव्य लिखने की प्रेरणा दी। इसी प्रकार माईकेल मधुसूदनदत्त के 'मेघनाद वध' महाकाव्य म तिरस्कृत और कलकित पात्रो को मानवीय दृष्टि और युगीन सन्दर्भो मे अवलोकन की काव्य दृष्टि प्रदान की। हिन्दी म श्री हरदयालुसिंह विरचित दैत्यवश और 'रावण' नामक महाकाव्य इसी प्रेरणा क परिणाम ह। मानवतावादी जीवन दृष्टि स प्रेरित होकर ही सतपुत्र कण पर श्री दिनकर ने 'रश्मिरथी' और निषाद पुत्र एकल य पर डा० रामकुमार वर्मा ने 'एकलव्य नामक महाकाव्या की रचना की है। प्रसन्नता का विषय है कि इस कोटि के काव्या म कृतिकार की मेधा और अनुभूति युग चेतना से अनुरजित होकर मुखरित हुइ है। ऐस कविया का प्रयास मानवता के पुरातन कलको का पूत प्रक्षालन है, एतिहासिक त्रुटिया का सम्माजन है, चिरन्तन सत्य का अनुसधान है और साहित्य म मानवतावाद की महान उदघोषणा है।

हिन्दी महाकाव्य लेखन की सुदीघ परम्परा मे 'दैत्यवश और 'रावण का उल्लेखनीय स्थान है क्योकि इन महाकाव्या म प्रथम बार एक कवि ने दत्य और दानव कह जाने वाले पात्रा म दवीय गुणो और मानवीय विशेषताओ का सधान किया है। श्री सिंह का यह प्रयास सवथा अभिनन्दनीय है।

'दत्यवश की रचना कालिदास कृत रघुवश महाकाव्य की शिल्प विधि क आधार पर हुई है। दत्यवश' का इतिवृत्तात्मक सयोजन श्री मदभागवत

महापुराण तथा रावण का वाल्मीकि रामायण' के आधार पर हुआ है। दैत्यवंश में दैत्यकुल के हिरण्याक्ष हिरण्यकशिपु विरोचन बलि, बाण और अस्वन्दकुमार नामक छह राजाओं की कथा का वर्णन है। 'रावण महाकाव्य में पुलस्त्य ऋषि के वंश का (विश्रवा से लेकर अक्षयकुमार अरिमर्दन तक) वर्णन है। दोनों महाकाव्यों का कथात्मक आधार पौराणिक होते हुए भी नवीन प्रसंगोद्भावनाओं द्वारा कवि ने कथा चयन में मौलिकता का परिचय दिया है। उदाहरणार्थ दैत्यवंश के प्रथम सर्ग में वराह द्वारा हमलावन की पुष्प-वाटिका उजाड़ना चतुर्थ सर्ग में सिंहसुता के स्वयंवर में सरस्वती द्वारा विभिन्न देवों और अदेवों का परिचय देना सप्तम सर्ग में इन्द्र का दूत द्वारा शची को सन्देश भेजना, दशम सर्ग में वामन के जन्म तथा बालक्रीलाओं का चित्रण और त्रयोदश सर्ग में चित्ररेखा द्वारा अनिरुद्ध का हरण मौलिकता पूर्ण हैं। इसी प्रकार रावण' महाकाव्य में रावण के देव विरोध का कारण, षष्ठ सर्ग में पुत्र प्राप्ति के लिए मन्दोदरी द्वारा पार्वती-पूजन, सप्तम सर्ग में सुलोचना और मेघनाद का गन्धर्व विवाह सीता हरण का कारण, विभीषण के चरित्र में बन्धु द्रोह एवं विश्वासघात तथा १५वें व १६वें सर्गों का सम्पूर्ण कथा विधान कवि कल्पना प्रसूत है। कथा संयोजन में कवि ने परम्परा प्रख्यात कथानक के स्वरूप की रक्षा करते हुए युगीन सन्दर्भों के अनुरूप कथासूत्रों को संजोया है। दैत्यवंश में बलि की राज्य व्यवस्था का वर्णन भर कथन की पुष्टि में द्रष्टव्य है।

वस्तुत दैत्यवंश' और रावण चरित्र प्रधान महाकाव्य हैं। अदेव, राक्षस और असुर कहे जाने वाले पात्रों की चरित्रगत विशेषताओं का मानवतावादी परिप्रेक्ष्य (Humanitarian Perspective) में प्रदर्शन इन महाकाव्यों की रचना का मुख्य प्रयोजन है। इन महाकाव्यों के चरित्र विश्लेषण से पूर्व यह समझ लिया जाय कि देव और दानव कौन हैं? क्या देव और दानव मानवेतर जातियाँ हैं। यदि हाँ, तो उनका मानवीय दृष्टि से मूल्यांकन कैसे किया जा सकता है? प्रतीक दृष्टि से देवत्व और दानवत्व मानवीय वृत्तियाँ हैं। श्री उमेश मिश्र के अनुसार— मानव का अविकसित या अपविकसित रूप दैत्य और सुविकसित रूप देव है। फलत दैत्य प्रकृति का आदि मानव रूप कहा जा सकता है जिसमें शारीरिक बल प्रचुर मात्रा में मौजूद है क्योंकि वह प्रकृति की सीधी देन है। परन्तु मस्तिष्क बल उसमें अधिक नहीं है। शारीरिक और मानसिक शक्तियाँ प्राय एक-से अनुपात में किसी वर्ग में नहीं पायी जाती। विकासक्रम में यह भी देखा गया है कि किसी वर्ग में जैसे-जैसे

मस्तिष्कीय शक्तियों का विकास होता है, शारीरिक बल का ह्रास भी होता जाता है। छल, प्रपंच धूर्तता विश्वासघात आदि मस्तिष्क के विकास के आवश्यक परिणाम हैं। दैत्य शारीरिक बल में बढ़े चढ़े हैं पर उनमें सरल विश्वास सत्यनिष्ठा और मिठाई विद्यमान है। देवगण शरीर बल में निर्बल हैं, पर चतुर अधिक हैं वे बात बात में दैत्यों को धोखा देते हैं और उनकी सरल प्रकृति से लाभ उठाकर उन्हें छल लेते हैं।"[1]

उपर्युक्त विवेचन के आलोक में यदि हम देव और दानव के प्रश्नों पर विचार करें तो पायेंगे कि जिन्हें हम दानव कहकर तिरस्कार और उपेक्षा की दृष्टि से देखते आये हैं, वे अनेक मानवीय गुणों और विभूतियों से उपेत हैं। पौराणिकता के प्रभूत प्रभाव रूढ़िबद्ध मान्यताओं की अन्ध स्वीकृति अवतारवाद की परिकल्पना के व्यामोह एवं तथाकथित धार्मिक प्रतिबद्धता के कारण हमारा दृष्टिकोण अवैज्ञानिक और अमानवीय रहा है। यदि हम निरपेक्ष वैज्ञानिक दृष्टि और आग्रहमुक्त तटस्थ भाव से देव दानव संघर्ष के इतिहास का अध्ययन करें तो पायेंगे कि इस अनादि संघर्ष के लिए दोनों ही उत्तरदायी हैं। यह बात दूसरी है कि इसके दायित्व का कितना प्रतिशत देवों पर है और कितना अदवों पर। देव दानव विरोध के कारणों की 'रावण' और 'दैत्यवंश' के आधार पर खोज की जा सकती है।

सृष्टिकर्ता ब्रह्मा के पुत्र मरीचि थे। मरीचि के पुत्र कश्यप हुए। इन्हीं कश्यप ऋषि की दिति नामक पत्नी से दैत्य और अदिति से देवता उत्पन्न हुए। इस प्रकार देव और दानव एक ही पिता की सन्तान थे। दैत्यवंश में हिरण्याक्ष शक्तिशाली और पराक्रमी था। देवताओं का उससे बस न चलता था। उन्होंने विष्णु से प्रार्थना की। विष्णु ने वराह रूप धारण कर हिरण्याक्ष की वाटिका को उजाड़ दिया। फलस्वरूप संघर्ष हुआ जिसमें वराह रूपधारी विष्णु ने हिरण्याक्ष को मार डाला। इसी प्रकार हिरण्यकशिपु का वध भी उन्होंने किया। दैत्यवंश के राजाओं में बलि सबसे चतुर था। राज्यासीन होते ही उसने सैन्य-संगठन किया तथा प्रजाहित के कार्य किये। उसने ९९ अश्वमेध यज्ञ किये। बलि के उत्कर्ष को देखकर देवता मन ही मन कुढ़ते थे। उन्होंने छद्मपूर्ण संधि प्रस्ताव करके दैत्यों के सहयोग से समुद्र मन्थन किया। सागर से निकले अमृत को देवता छलपूर्वक अकेले पी गये। यद्यपि

---

[1] दैत्यवंश, भूमिका, पृ० ६ ७

सागर मन्थन में दैत्यों का ही श्रम अधिक था। फलस्वरूप युद्ध हुआ जिसमें बलि ही विजयी हुआ। तदन्तर बलि ने इन्द्रासन की प्राप्ति के लिए सौवां अश्वमेध यज्ञ प्रारम्भ किया। तभी वामन रूप धरकर विष्णु ने तीन पग पृथ्वी मांगकर बलि का सर्वस्व अपहरण कर लिया। बलि ने दो पगों में सम्पूर्ण पृथ्वी और आकाश देकर तथा तीसरे पग में अपना हिमगिरि के समान उच्च और दर्पित शीश अर्पित करके दानशीलता का अन्यतम उदाहरण प्रस्तुत किया। बलि का पुत्र बाण भी महान पराक्रमी था। उसने दिग्विजय कर जीवन के अन्तिम चरण में राज्य पुत्र को सौंप शिवाराधन के लिए वन गमन किया। बाण का पुत्र अनिरुद्धकुमार भी प्रजारक्षक था। उसने प्रजाहित के लिए गुरुकुलों यज्ञशालाओं राजमार्गों, वनवीथियों और ग्रामों का पर्यवेक्षण किया तथा समाज के विभिन्न वर्गों से सम्पर्क स्थापित किया। इसी प्रकार 'रावण' महाकाव्य को देखें तो ज्ञात होगा कि रावण का देवों से जन्मजात वैर न था। एक दिन पुलस्त्य ने बताया कि देवताओं के अनुरोध से विष्णु ने नानामाली को मार डाला था। यहीं से रावण देव विरोधी हो गया। उसने देवकुल के संहार का निश्चय किया। अपने शौर्य और पराक्रम से रावण ने त्रैलोक्य में विजय का झण्डा फहरा दिया। राम से रावण के द्वेष का कारण यह था कि राम राक्षसकुल के अनिष्ट के लिए तप कर रहे मुनियों के सहायक हुए। राम ने ताड़का का वध किया। जनस्थान की गवर्नर शूर्पनखा ने जब यज्ञों पर प्रतिबन्ध लगा दिया तो मुनियों ने उसका विरोध किया। फलस्वरूप, खरदूषण को ससैन्य भेजा गया। उनका भी राम ने वध कर दिया। लक्ष्मण ने शूर्पनखा के नाक कान भी काट दिये। प्रतिशोध की भावना से रावण ने सीता का हरण किया, जो अन्ततः राम रावण युद्ध का कारण बना।

दोनों महाकाव्यों की प्रमुख घटनाओं के विहंगावलोकन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि देव दानव संघर्ष के मूल में देवों का ईर्ष्याभाव और छल छद्मपूर्ण व्यवहार प्रमुख रहे हैं। इसके विपरीत दैत्यों और राक्षसों के चरित्र में दानशीलता शौर्य साहस पराक्रम तपश्चर्या तेजस्विता शिवाराधन निष्ठा, प्रशासनिक योग्यता जैसे गुण निहित हैं जिनकी पूर्वाग्रही दृष्टिकोण के कारण सदैव उपेक्षा की गयी है। अब हम राक्षसों और दैत्यों के गुणों का विवेचन करेंगे।

बलि ने राज्यपदासीन होते ही प्रजाहित के अनेक कार्य प्रारम्भ कर दिये

'खोले गुरुकुल अमित सबनि विद्या पढ़वाई
सनिक सिच्छा काज व्यवस्था सकल कराई।
× × ×
किया स्वास्थ्य रक्षा हित भूपति अमित उपाई,
दीन्हों नगरनि माहिं, औषधालय सुखदाई।
× × ×
कृषि विभाग को भूप अमित सम्पन्न बनायो
अरु सहकारी कोष खोलि उन्नति करवायो।'[१]

दैत्यवंश के राजाओं में अक्षयकुमार ने तो राज्य कार्य मन्त्रियों को सौंपकर एक-एक गांव का भ्रमण किया और प्रजा के दुःख सुख की बातें सुनी—
'खेती सार ग्राम की मत निरख्यो नरनाह
कृषिजन को दुख सुख सुन्यो सब मह अमित उछाह।'[२]

दैत्यवंश के राजा प्रजाहितैषी होने के साथ साथ अपार दानी भी थे। गुरु शुक्राचार्य के समझाने पर भी कि वामन बटु के रूप में विष्णु आये हैं राजा बलि ने उन्हें तीन पग पृथ्वी दान देना स्वीकार कर लिया और अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया।[३] दैत्य जितने भोग विलासी थे उतने ही त्यागी, तपस्वी और वैरागी भी। वाणासुर ने विश्वविजय की अपार वैभव से सम्पन्न सोनपुर नगर बसाया, अनन्त ऐश्वर्य-सुख का भोग किया। यही वाणासुर वृद्धावस्था आते ही पुत्र को राज्य पर सौंप कर शिवाराधन के लिए चला गया। कठोर तप करते हुए वाण ने शरीर त्यागा—

'रह्यो एक पग रह्यो व्योम दिसि हाथ उठाये,
सिर सिव निज मुख धरत मानु दिसि दीठि लगाये।
यहि विधि करि तप घोर दिवस निसि नर त्राता
गयो सुखाय सरीर सहत हिम आतप वाता।
× × ×

---

[१] दैत्यवंश, सर्ग २ पृ० २५-२६
[२] वही सर्ग १८, पृ० २५५
[३] वही, सर्ग १२ पृ० १८४

सूख गयो नृप गात विसाल
रही ठठरी तन मे अवसेखी।
फोरि क ब्रह्म के रन्ध्रहि प्रान,
मिल्यो शिव शकर मे सविसेखी।
यो तन जोगु की आग म जारि
गयो सिवधाम बनो हर वेखी।[५]

बाण ने यह कृच्छ्र तप साधना किसी भौतिक ऐश्वय की प्राप्ति के लिए नहीं की वरन इस तपश्चर्या द्वारा उसने आश्रम धम की व्यवस्था का विधिवत् अनुपालन कर उच्चतम आदश प्रस्तुत किया। कठोर तप-साधना सभी दैत्यवशी राजाओ ने की। रावण महाकाव्य मे ककसी अपने पुत्रो (रावण, कुम्भकरण विभीषण आदि) को तप के लिए प्रेरित करती हुई कहती है

'तप बल ही सौं रचत विश्व प्रपच विधाता
तप बल ही सौं बनत विस्नु वाको परित्राता।
तप बल ही सो रुद्र ताहि पल मैं निनसावैं,
तप का महिमा और कहाँ लौं तुमहि सुनावैं।
× × ×
अब विलम्ब जनि होय करहु तप हेतु तयारी,
बसहु जाय बन माहि सिद्धि दहैं त्रिपुरारी।'[६]

रावण और कुम्भकरण की कठोर तप साधना का वणन कवि न निम्नांकित प्रकार से किया है

'ग्रीषम दाघ निदाघ पचागिनि तापि वितायो
बहु दारुण हिम राति सकै जल माहि गवायो।
अरु वीरासन बठि कष्ट बरषा का झेल्यो
इमि तन क घटाग्न आपु प्रानन प गेल्यो।
इहू न बनि वन्नि उग्र न्समुग्र तप कीन्हो
निज नव सीमन काटि हाम हुतभुग मह दीन्हो।'[७]

---

५ दैत्यवश सग १७ पृ० २२१
६ वही सग ३ पृ० ६७
७ वही पृ० ६६

इसी तप साधना के बल पर दत्य और राक्षस अमोघ शक्ति प्राप्त करते थे। उनके अनन्त शौर्य और पराक्रम का परिचय हमे देवासुर सग्रामो मे मिलता है।

दत्या के समान उनकी स्त्रियाँ और कन्याएँ भी गुणवती थी। बाणासुर की पुत्री उषा असाधारण सुन्दरी बाला थी। वह चौदह कलाओं की ज्ञाता और सगीतशास्त्र म प्रवीण थी। उसका विवाह श्रीकृष्ण के पुत्र अनिरुद्ध से विधिवत सम्पन्न हुआ।[८] षोडशी उषा का रूपचित्र कवि के शब्दो मे द्रष्टव्य है

'या विधि षोडस वष गये
अधरानि पैं वाके ललाई लस लगी।
चन्दन हू के लगाये विना,
सबै अगनि सौरभ सी सरस लगी।
अजन रजन कीन्हो नही
पल काजर रेख दरस रागी।
बारा के आनन सो मुसकानि
सुधा घनसार घनी बरस लगी।'[९]

इसी प्रकार पतिपरायणा के रूप म 'रावण' महाकाव्य की मन्दोदरी और सुलाचना, वात्सल्यमयी मा के रूप म ककसी और राजनीति विशारद कुलबाला के रूप मे शूपनखा के चरित्र दृष्टव्य हैं।

मन्दोदरी मय दानव का पुत्री थी जो हेमा नामक अप्सरा की कोख से उत्पन्न हुई थी। कवि न उसे अनिद्य सुन्दरी के रूप मे अकित किया है। उसकी रूप छटा मानसरोवर म खिल हुए सरोज की सुषमा और नीलाम्बर में कलाधर की जुन्हाई के समान थी। मन्दोदरी के जावक से रगे पकज पगा की शोभा के समक्ष जपाफल विद्रुम और बधूकन की प्रभा भी मन्द पड जाती थी।[१] पावती को पूजन-अचन से प्रसन्न कर उसने मेघनाद के समान बलशाली पुत्र प्राप्त किया।[११] इसी प्रकार विश्रवा ऋषि को प्राप्त करने के लिए रावण की

---

[८] दत्यवश, सग १३ पृ० १६६
[९] वही सग १३, पृ० १६६
[१] रावण, सग ६, पृ० ६०
[११] वही पृ० ६१

मौ यशस्वी वल्कलवसना तपस्विनी बनी।" वर्षों की कठोर साधना के बाद कैकसी को विश्रवा से मानसपुत्र प्राप्ति का वरदान मिला। शूर्पणखा राजनीति म निपुण थी। इसीलिए उसे नृपदूत नियुक्त किया गया। अपनी योग्यता के कारण ही वह जनस्थान म चौदह हजार राक्षसो की सेना की अध्यक्षा बनायी गयी।" इस प्रकार तटस्थदृष्टि से देखा जाय तो दत्य और राक्षस कुल की नारियो म हम स्त्रियोचित सभी गुण और विशेषताए पाते हैं। इन नारियो के चरित्र म भारतीय नारी के नाना रूपो (पुत्री, पत्नी, माता, भगिनी आदि) की गौरवपूर्ण झाँकियाँ हैं।

चरित्र विश्लेषण के अनन्तर यदि आलोच्य महाकाव्यो म दैत्यो और राक्षसो के रीति रिवाजो और सास्कृतिक परम्पराओ का अध्ययन किया जाय तो भारतीय संस्कृति की आधारभूत मान्यताएँ उनम प्रतिपादित मिलेंगी। शिवाराधन यज्ञ विधान आश्रम धर्म की मर्यादा का पालन, तपश्चर्यापूर्ण जीवन, सन्तान की नाना कलाओ और शास्त्र शस्त्र म शिक्षा-दीक्षा जन्म विवाह मृत्यु आदि सस्कारो का विधिवत् सम्पादन दत्यो और राक्षसो को भारतीय संस्कृति का अभिन्न अग सिद्ध करता है।

अस्तु रावण' और दत्यवश के रचयिता ने दत्य और राक्षस कहे जाने वाले जिन पात्रो का चारित्रिक औदात्त और सास्कृतिक निष्ठा से पूर्ण आचार व्यवहार प्रस्तुत किया है वह काव्य लेखन की एक क्रान्तिकारी एव प्रगतिशील परम्परा का जन्मदाता है। इस प्रयास म कवि की विशेषता यह रही है कि उसने अपने नायको का उत्कर्ष दिखाने के लिए प्रतिनायको का अपकर्ष नही दिखाया है। वास्तव म महाकाव्य रचना का सवप्रमुख प्रयोजन ही यह होता है कि उसके माध्यम से युग जीवन की चेतना प्रतिफलित हो। इस दृष्टि से विचार करें तो रावण' और 'दत्यवश हमारे आधुनिक हिन्दी साहित्य और साहित्यकारो की उस जीवन्त आस्था और चेतना के प्रतीक हैं जो मानवता वादी जीवन दृष्टि से प्रेरित होकर सजनोन्मुख हुई है यही इन दोनो महाकाव्यो की रचना की सबसे बडी सिद्धि है। मानव मूल्यो की महिमा से मण्डित ये महाकाव्य हिन्दी महाकाव्य परम्परा की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि के रूप मे सदव मान्य रहेंगे।

" रावण सग २ पृ० ५५
" वही सग १० पृ० १४७

'जयभारत' महाकाव्य

कथाशिल्प सयोजन विधि का वैशिष्ट्य

५

'जयभारत' महाकाव्य

कथाशिल्प संयोजन विधि का वैशिष्ट्य

महाकाव्य के रचना विधान में सर्वप्रमुख स्थान कथानक का है। महाकाव्य सृजन में कथा-तत्त्व की महत्ता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि आचार्यों ने महाकाव्य का विवेचन करते समय उसे 'कथाकाव्य' अभिधान दिया है। पाश्चात्य विद्वानों ने सर्वत्र ही महाकाव्य (Epic) को कथा-काव्य (Narrative Poetry) का पर्याय कहा है। मायर ने एक स्थान पर लिखा है कि—"महाकाव्य शब्द का व्यवहार सभी समालोचकों द्वारा कथात्मक साहित्य के अर्थ में किया गया है।"[1] बावरा ने महाकाव्य की परिभाषा देते हुए कहा है कि— महाकाव्य वृहदाकार कथात्मक काव्य रूप है।'[2] साहित्य विश्वकोश में महाकाव्य का अर्थ एक कथात्मक कविता ही दिया गया है।[3] श्री कोकिलेश्वर शास्त्री ने महाकाव्य का विकास कथात्मक आख्यानों में ही माना है। डॉ० उमाकान्त गोयल का मत है कि— महाकाव्य अंततः कथा काव्य है।'[5]

---

[1] Epic is a term applied by them (Critics) all to Narrative Literature The fundamental distinction of the epic from other species of Literature is that upon which they all agree—its narrrative form '

—I T Myers *A Study in Epic Development—Introduction*, p 32

[2] C M Bowra *From Virgil to Milton*, p 1

[3] Cassell s *Encyclopaedia of Literature* Vol I, p 195

[4] Kokileshwar Shastry *A Brief History of Sanskrit Literature* (Vedic & Classical) p 19

[५] डॉ० उमाकान्त गोयल मैथिलीशरण गुप्त कवि और भारतीय संस्कृति के आख्याता, पृ० १५६

उपर्युक्त मतों से स्पष्ट है कि कथातत्त्व महाकाव्य का अपरिहार्य अंग है। महाकाव्य में कथातत्त्व के संयोजन की निश्चित शिल्प विधि भी है। शास्त्रियाचार्यों के अनुसार, महाकाव्य का कथानक लोकविश्रुत या प्रख्यात होना चाहिए। दण्डी, विश्वनाथ आदि आचार्यों का मत है कि महाकाव्य का कथानक इतिहास उद्भूत होना चाहिए।[६] रुद्रट के अनुसार महाकाव्य की कथावस्तु उत्पाद्य (काल्पनिक) और अनुत्पाद्य (प्रसिद्ध) दोनों ही प्रकार की हो सकती है।[७] किन्तु एबरक्राम्बी का मत है कि महाकाव्य की मुख्य विषयवस्तु वास्तविक होनी चाहिए, काल्पनिक नहीं।[८] यह मत उचित भी है। वस्तुतः महाकाव्य जैसे काव्य का गुरुत्व और गाम्भीर्य लोकविख्यात कथानक के अभाव में सम्भव भी नहीं है। हाँ, महाकाव्यकार को इतिहास पुराण प्रसिद्ध कथानक में युग जीवन की प्रवृत्ति के अनुकूल परिवर्तन-परिवर्द्धन का अधिकार अवश्य होना चाहिए। इस परिवर्तनक्रम में वह अपनी कल्पनाशक्ति का भी परिचय दे सकता है। इसके अतिरिक्त उल्लिखित नियमानुसार महाकाव्य की कथावस्तु का विनियोजन भी विशेष विधि से होना चाहिए। कथावस्तु में पंच सन्धियों की योजना और सर्गक्रमानुसार विभाजन होना चाहिए। सर्गक्रम घटनान्विति की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है। मुख्य कथा से अवान्तर कथा प्रसंगों का सुसम्बद्ध रहना भी आवश्यक है। नवीन मान्यताओं के अनुसार महाकाव्य की कथावस्तु में यद्यपि सन्धियों का निर्वाह और सर्ग संख्या आदि के नियमों का कठोरता से अनुपालन नहीं किया जाता है तथापि कथावस्तु का समुचित विकास करने की दृष्टि से घटनाओं की पूर्व प्रसंगानुसार अन्विति एवं प्रस्तुतीकरण-कौशल भी

---

६ (अ) इतिहासकथोद्भूतमितरद्वा सदाश्रयम्। —दण्डी काव्यादर्श, १/१५

(आ) इतिहासोद्भवं वृत्तमन्यद्वा सज्जनाश्रयम्।

—विश्वनाथ साहित्य दर्पण ६/३१८

७ सन्ति द्विधा प्रबन्धाः काव्यकथाख्यायिकाद्याः काव्ये।
उत्पाद्यानुत्पाद्या महल्लघुत्वेन भूयोऽपि॥

—काव्यालंकार अ० १६

८ The prime material of epic poet must be real and not invented. The reality of the central subject is of course to be understood broadly. It means that the story must be founded deep in the general experience of men.'

—L. Abercrombie *The Epic* p. 55

वांछनीय है। कथा-योजना में मार्मिक प्रसंगों की सृष्टि और नवीन प्रसंगोद्भावनाएँ महाकाव्यकार के कथा विधान कौशल का सशक्त प्रमाण होती हैं।

श्री मैथिलीशरण गुप्त विरचित 'जयभारत' आधुनिक युग का महाकाव्य है। प्रस्तुत प्रसंग में 'जयभारत' के कथा शिल्प पर उपर्युक्त परिसंदर्भों में विचार अभीप्सित है।

'जयभारत' की कथा का मुख्य आधार व्यासरचित 'महाभारत' है। महाभारत आख्यानों और उपाख्यानों का विराट वन है जिसके एक-एक प्रसंग को लेकर संस्कृत और हिन्दी में अनेक महाकाव्यों की रचना हुई है। जयभारत के रचयिता श्री गुप्त जी ने कौरव-पाण्डवों के आख्यान को प्रस्तुत महाकाव्य की रचना के लिए ग्रहण किया है। राजा नहुष के वृत्त से लेकर यदु-पुरु वंशों के वर्णन, कौरव-पांडवों के जन्म से लेकर स्वर्गारोहण तक की समस्त घटनाएँ और कथा प्रसंग जयभारत में संकलित हैं। गुप्तजी ने 'महाभारत' की उन्हीं घटनाओं और प्रसंगों को ग्रहण किया है जो कौरव पाण्डवों की मूलकथा से सम्बन्धित हैं। कवि ने अन्य प्रसंगों को छोड़ दिया है—यथा सत्यवान सावित्री, नल दमयन्ती, शकुन्तला आदि के उपाख्यान।

'जयभारत' का सम्पूर्ण कथानक ४७ सर्गों में विभाजित है। प्रत्येक का नामकरण प्रतिपाद्य अथवा पात्रों के आधार पर किया गया है, जैसे—नहुष, यदु और पुरु, योजनगंधा, बन्धु विद्वेष, एकलव्य परीक्षा, लाक्षागृह, हिडम्बा, लक्ष्यभेद, इन्द्रप्रस्थ, वनवास आदि।

'महाभारत' के विशाल कथानक को 'जयभारत' के रूप में महाकाव्योचित गरिमा प्रदान कराने में गुप्तजी की प्रबन्ध क्षमता वास्तव में सराहनीय है। उन्होंने कौरव पाण्डवों की मुख्य कथा से सम्बन्धित कथा प्रसंगों को चुनकर जयभारत में सुनियोजित किया है। इस प्रयास में गुप्तजी को अपेक्षित सफलता भी मिली है। किन्तु अनेक महत्त्वपूर्ण प्रसंगों को सम्मिश्र करने के प्रयास में उन्हें छोड़ना भी पड़ा है। उदाहरणार्थ, नल दमयन्ती, सत्यवान-सावित्री, शकुन्तला दुष्यन्त आदि के मनोरम उपाख्यानों को कवि ने छोड़ दिया है। इसके कारण 'जयभारत' में कहीं कहीं इतिवृत्तात्मक रूक्षता भी आ गई है। इसका एक कारण यह भी रहा है कि सम्पूर्ण काव्य का रचनाकाल एक नहीं है। 'जयभारत के निवेदन' में कवि ने इस तथ्य को स्वीकार भी किया है। 'जयभारत के ही रचनाकाल में कवि ने महाभारत के कथा प्रसंगों पर अन्य काव्यों की रचनाएं भी की, किन्तु उनका उपयोग इस काव्य में न कर उनका

उसने पुन सृजन किया। उदाहरण के लिए जयद्रथ वध। कवि ने इस पुन सृजन को अपनी लेखनी का विकासक्रम कहा है। सत्य यह है कि गुप्तजी की प्रबन्ध शैली म निरन्तर विकास भी होता रहा है। जयभारत की अभिव्यजना शैली म इस विकासक्रम को हम स्पष्ट रूप म देख सकते हैं। 'जयभारत के आरम्भिक सर्गों म वणनात्मकता की अधिकता है, किन्तु मध्य भाग के अनन्तर के प्रकरणा म समास शैली का ग्रहण किया गया है, जिसके कारण वाक्य रचना म कसाव और विचार गाम्भीय आ गया है।

जयभारत' के कथानक की मुख्य विशेषताए निम्नांकित हैं

१ महाभारत' के कथा प्रसगा की अलौकिकता का प्रक्षालन कर कवि ने उन्हें युग की भावना और प्रवृत्ति के अनुरूप प्रस्तुत किया है। एसा करने म गुप्तजी न नवीन कथा प्रसगा की सजना की अपेक्षा प्राचीन आख्याना को ही नवीनता प्रदान की है। उदाहरणाथ द्रौपदी चीरहरण, हिडम्बा का रूपान्तर, कीचक कथा, युद्धक्षेत्र की घटनाएँ आदि द्रष्टव्य है।

२ पौराणिक आख्याना को अपनी कला और कल्पनाशक्ति के उपयोग से बुद्धिजीवी पाठक के लिए सहज ग्राह्य बनाया गया है। द्रौपदी चीरहरण के समय कृष्ण द्वारा चीर बढ़ाने का उल्लेख महाभारत म है। वहा दु शासन थककर लज्जित हो बठ जाता है

> यदातुवाससा शशि समामध्य समाचित ।
> तदा दु शासना श्रान्तो व्रीडित समुपाविशत ॥

किन्तु जयभारत म द्रौपदी को करुण क्रन्दन करते हुए दिखाया गया है। वह असहायावस्था म दु शासन को धिक्कारती हुई उसके मन म पाप का भय जागृत कर देती है। द्रौपदी की आत्त वाणी से दु शासन भीतिमान होकर चारो ओर अधकार ही अधकार देखता है और अतत स्तम्भित होकर बैठ जाता है

> 'सहसा दु शासन ने देखा अधकार सा चारो ओर।
> जान पड़ा अम्बर सा वह पट जिसका कोई आर न छार ॥
> आकर अकस्मात अति भय सा उसके भीतर बैठ गया।
> कर जड हुए और पद कापे गिरता-सा वह बठ गया ॥ [६]

इसके बाद गाधारी न सभा म प्रवेश कर सबको इस कुत्सित आचरण के लिए

---

[६] जयभारत द्यूत सभा पृ० १४८

धिक्कारा। गाधारी के शब्दो म उसके कातर माव की चरम व्यजना हुई है, जब वह कहती है

'हाय लाख की लज्जा भी अब नहीं रह गई रक्षित क्या ?
आज वह का ता कल मेरा कटिपट नहीं अरक्षित क्या ?'[1]

महाभारत' म धृतराष्ट्र ने दुर्योधन को कोसा था कि तु उसका अपेक्षित प्रभाव न पडा था। यहा गाधारी के कथन मे नारीत्व की मम वेदना अधिक सक्षमता से साकार हुइ है। उपयु क्त कथा प्रसग का गुप्तजी ने बडे मार्मिक और मनो वनानिक ढग से प्रस्तुत किया है।

इसी प्रकार 'महाभारत म हिडम्बा का स्वरूप पाठक के मन मे विकपण का माव भरता है। हिडम्बा और भीम के विवाह का 'महाभारत' के रचयिता ने सामाजिक मयादा का उल्लघन बताया है। कि तु जयभारत म हिडम्बा को गुणवती सु दरी के रूप म चित्रित किया है। गुप्तजा का कवि मानवता वाद का प्रतिष्ठाता है। अ य काव्या की भाँति 'जयभारत' का उद्घोप मानव घम की जय है। अस्तु हिडम्बा और भीम के वार्त्तालाप म मानव मूल्या की सु दर व्याख्या हुई है। हिडम्बा तो यहा तक कहती है कि

'यदि तुम आय हो तो दो हमे भी आयता ?
अपनी ही उच्चता म कैसी कृतकायता ?
× × ×
होकर मैं राक्षसी भी अ त म ता नारी हूँ
ज म स मैं जा भी रहूँ जाति से तुम्हारी हूँ।'[11]

इसी प्रकार अज्ञातवास के समय कीचक द्वारा अपमानित होने पर द्रौपदी ने जाकर विराट की सभा म प्रार्थना की। उसका घम विरुद्ध आचरण की निन्दा करना और राजा क अधिकारा का एक दासी द्वारा चुनौती देना वतमान युग की जनत त्रीय मावना का प्रतीक है

'लज्जा रहती अति कठिन है कुल वधुओ की भी जहाँ
हे मत्स्यराज, किस भाति तुम हुए प्रजारजक यहाँ।
× × ×

---

[1] जयभारत पृ० १४६
[11] वही हिडम्बा सग, पृ० ८३

तुम म यदि सामथ्य नहीं है जब शासन का,
तो क्या करते नही त्याग तुम राजासन का ?
करने म यदि दमन दुजनो का डरते हो
तो फिर क्यो राजदण्ड दूषित करते हो ?
तुमसे निज पद का त्याग भी भली भाँति चलता नही,
अधिकार रहित इस छत्र का भार तुम्हें खलता नहीं।[1]

द्रौपदी के इन शब्दो म युग धम की ममस्पर्शी व्यजना है। ऐसे अनेक प्रसगो का चयन गुप्तजी ने अपनी कल्पनाशक्ति से किया है।

३ जयभारत के कथानक के समस्त पात्रो का चरित्र विधान भी नवीन ढग से किया गया है। साकेत और यशोधरा का य म उनकी पात्र रचना देखी जा चुकी है। गुप्तजी न पौराणिक पात्रो को भी युग भावना के अनुरूप ही ढाला है। पात्रो की योजना कथा चयन की सार्थकता को लक्ष्यगत करके हुई है। महाभारत की चरित्र योजना म से गुप्तजी न कतिपय को ही ग्रहण किया है। उन चरित्रो का परिष्कार करके ही प्रस्तुत किया गया है।

४ जयभारत के इतिवृत्त म महाकाव्य वस्तु की गम्भीरता और व्यापकता भी है। वह कथा परिधि सरगित होते हुए भी जीवन की समग्रता का अकन करने म सक्षम है। काव्य का मूल प्रतिपाद्य मानवीय महिमा का प्रतिष्ठा और धम का जय है। इस लक्ष्य की प्राप्ति की दृष्टि से ही कथा को विस्तार दिया गया है।

५ जयभारत क कथा सयोजन का सबस बडा अभाव यह है कि विभिन्न प्रकरणो म अन्विति क समृद्ध रूप का अभाव है। कथा वणन म वह वगवान प्रवाह नही है जो महाका य म होना चाहिए और जिसम मथिलीशरण जी की लेखनी अत्यत समथ है। खण्ड रूप मे लिखी हुई वस्तु म प्रवाह आना सम्भव भी नही है।[2] कवि ने प्रकरणो क नाम के अनुरूप अपने ढग से कथा का विस्तत किया है। इस कारण कथान्विति में व्यवधान अवश्य आया है किन्तु इससे प्रबन्धात्मकता खत नहीं हुई है क्योकि पूर्वापर सम्बन्ध निर्वाह किसी न किसी रूप म होता रहा है।

---

[1] जयभारत सरन्ध्री सग पृ० २६८

[2] डा० नगद्र विचार और विश्लेषण पृ० १२३

जयभारत' और 'महाभारत' की इतिवृत्त विधान की दृष्टि से तुलना

'महाभारत' का कथानक महान, समृद्ध और शक्ति समन्वित है। उसमे भारतीय जीवन और संस्कृति की विराट योजना है। उसके वस्तु विस्तार म समस्त व्यावहारिक नीति, जीवन दर्शन धर्म बोध और परम्पराओ का समाहार हो गया है। जयभारत' के कथानक मे वह गुरुत्व गाम्भीर्य नही है। जयभारत का एक निश्चित लक्ष्य है। उसमे नारायण नहीं, नर की महिमा का गौरव गान है। इसीलिए 'जयभारत' म असम्भाव्य और अलौकिक घटनाओ का स्थान नहीं मिला है। जयभारत' के रचयिता के कथा चयन का आधार पौराणिक उपाख्यान होते हुए भी उसका स्वरूप मनोवैज्ञानिक, युगीन और बौद्धिकतापूर्ण है। जयभारत का कथानक पाठक को उसकी व्यावहारिक उपलब्धियो एव सामयिकता के कारण ग्राह्य है जबकि महाभारत' के कथानक को पाठक श्रद्धा (पौराणिक आस्था), कौतूहल या औत्सुक्य के कारण ग्रहण करता है। 'जयभारत म भारतीय संस्कृति का उत्कर्ष और प्रकर्ष समसामयिक जीवन परिवेश म चित्रित किया गया है।

समष्टि रूप म जयभारत का कथानक महाकाव्योचित गरिमा से पूर्ण है। उसम पौराणिक उपाख्यानो का नवीन निरूपण ही नही, अपितु मौलिक उपलब्धिया भी हैं। उसम धारावाहिकता का एक सीमा तक अभाव होने हुए भी कथानक की सम्पूर्ण अन्विति प्रसगगत सुसम्बद्धता के कारण अक्षुण्ण रही है। सबसे बडी बात कथा महाकाव्य के मूल मन्तव्य की प्राप्ति मे सहायक है। गुप्तजी ने जयभारत के कथानक को युद्ध सर्ग तक ही समाप्त न कर, स्वर्गारोहण प्रकरण तक पहुँचाकर अंतिम सर्ग का विशेष ढग से प्रतिपादित कर कथा के उपसहार का भी पूर्ण गौरव के साथ अंकित किया है।

'पार्वती' महाकाव्य

मानवतावादी सस्कृति की युगीन अवधारणाएँ

६

'पार्वती' महाकाव्य

मानवतावादी संस्कृति की युगीन अवधारणाएँ

वैज्ञानिक युग में काव्य-लेखन एक साहसिक प्रयास है। इस सन्दर्भ से विरहित होकर किया गया काव्य-सृजन हमारे युग की वैज्ञानिक प्रगति और गद्यात्मक विधाओं के विकास की अपूर्व गति में पिछड़ ही नहीं जाएगा, वरन् अपने अस्तित्व को उतना ही क्षणिक, निरुद्देश्य, अनपेक्षित और एकांगी बना देगा जैसा कि आज अधिकांश हिन्दी कविता के नाम से प्रकाशित होने वाली काव्य रचनाओं के विषय में चरितार्थ हो रहा है अर्थात् प्रकाशन, प्रचार, विक्रय और विनाश। काव्य के स्थायित्व और चिरन्तनता का प्रश्न जीवन मूल्यों की शाश्वत कल्पना से जुड़ा है। वही काव्य वाङ्मय की स्थायी निधि बन सकते हैं जो मानवीय चेतना के विकसनशील स्तरों को स्थापित करने में सक्षम तथा सामाजिक जीवन मूल्यों के संगठन, विघटन और संतुलन को साकार करने की अपूर्व शक्ति संधारण किए रहते हैं। इस शक्ति का ही युग जीवन का अमित प्रवाह कहा जाता है।

युग-जीवन की स्फूर्ति (शक्ति) की व्यंजना साहित्य और काव्य के विभिन्न रूपों में होती है। किन्तु जीवन-मूल्यों के व्यापक विकास का चित्रांकन करने की सबसे अधिक क्षमता महाकाव्य नामक काव्य-रूप में होती है। महाकाव्य सच्चे अर्थों में जातीय जीवन और सामाजिक चेतना के आकलन का सांस्कृतिक प्रयास है। सृजन के उपकरणों अर्थात् जीवन्त कथानक, महान नायक, गरिमामयी उदात्त शैली, महत् उद्देश्य, युग जीवन के व्यापक चित्रण, गम्भीर अभिव्यंजना शक्ति, रस-परिपाक, विराट् कल्पना और जीवन-दान की बलवती प्रेरणा के कारण महाकाव्य निश्चय ही सर्वोपरि काव्य-रूप है। इसीलिए रामायण, महाभारत, कुमारसम्भव, रघुवंश, किरातार्जुनीय

[illegible] भरित ग्रामचरित्र [illegible] कृतिकारा[illegible] भारतीय मानस का चित्रण किया गया है।

[illegible] का युग है। [illegible] हो गया है। डॉ० तिवारी का अभिमत है कि अठारहवीं शताब्दी में महाकाव्य लेखन की परम्परा का अन्त हो गया था। अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक इतना व्यापक प्रसार हुआ कि [illegible] सम्पूर्ण समाज का चित्रण [illegible] हो गया। [illegible] के व्यापक-से-व्यापक रूप में भी जीवन का [illegible] का ही चित्रण सम्भव हो गया। मध्ययुगीन समाज का चित्रण उपन्यास में हुआ। १९वीं शताब्दी में महाकाव्य का स्थान उपन्यास ने ले लिया परिलक्षित हो गया।[1] फिर भी [illegible] यही सत्य है महाकाव्यों का सृजन हो रहा है। सन् १९१४ से अद्यावधि हिन्दी में ही अनेक महाकाव्य लिखे गये हैं।[2] यद्यपि इनमें से अधिकांश नाम के ही महाकाव्य हैं।

---

1 A certain epic tradition expired in eighteenth century the possibility of epic writing in a different tradition was shut out What happened in 18th century (if not in the second half of the seventeenth) was this life had become so complicated so much has been added to the stock of human learning there was so much ecumenical freedom to exchange ideas that the epic spanning a total society like Homer s or Dante s became impossible Any great work of literature however ambitious of universality was forced to be in some degree specialist Now the speciality that turned out most propitious for the epic was middle class novel that began to flourish in the 18th century By the nineteenth century the real course of the epic had forsaken the tradition for the novel

—E M W Tillyard *The Epic Strain in English Novel* pp 530 31

२ (१) प्रियप्रवास (२) साकेत (३) कामायनी (४) वदेही-वनवास (५) कृष्णायन (६) साकेत सन्त (७) सिद्धार्थ (८) दैत्यवंश (९) नूरजहाँ (१०) नलनरेश (११) अंगराज (१२) वर्द्धमान (१३) जयभारत (१४) पार्वती (१५) रश्मिरथी (१६) मीरा (१७) एकलव्य (१८) उर्मिला (१९) तारक वध (२०) सेनापति कर्ण (२१) कुरुक्षेत्र

दूसरे शब्दो म इन काव्यो के रचयिताओ ने महाकवि की उपाधि के लिए कतिपय रूढ शास्त्रीय लक्षणो का सफल निर्वाह कर रचना को महाकाव्य कह दिया है। तथापि इसी युग म उत्कृष्ट कोटि के महाकाव्य भी लिखे गये हैं। कविवर जयशकरप्रसाद कृत 'कामायनी महाकाव्य इस युग की अन्यतम कृति है जिसम मानवता के जनक मनु के पौराणिक इतिवृत्त को सूत्र रूप में लेकर विराट कल्पना और काव्य प्रतिभा के प्रश्रय से, मानवोत्पत्ति एव विकास का अद्भुत चित्राकन हुआ है। कामायनी काव्य समय के परस्पर विरोधी प्रश्नो के समाधान की चेष्टा है, इसमें मानव मन के अन्तद्वन्द्व, हृदय बुद्धि के सघर्ष प्रकृति के प्रेम और प्रकोप, व्यक्तियो के स्वार्थ और प्रवचना, अर्थलोलुपता और काम वासना शोषण और द्रोह नारी गौरव एव अदम्य उत्साह आदि अनेक युगीन समस्याओ का समुचित समाधान एव व्यावहारिक निदान प्रस्तुत किया गया है। इसीलिए प्रसादजी हमारे युग के महान काव्यकार और 'कामायनी' महान रचना मानी जाती है।

डा० रामानन्द तिवारी 'भारतीनन्दन' विरचित 'पावती' महाकाव्य भी इसी समृद्ध साहित्यिक परम्परा की रचना है। इस काव्य मे भी युगीन जीवन चेतना की विराट व्यजना हुई है। 'पावती मे भारतीय सस्कृति के आदश स्वरूप का व्यापक चित्रण हुआ है। पावतीकार ने विज्ञान युग का दिग्भ्रान्त मानव जाति के प्रति शिव सस्कृति का सन्देश प्रसारित कर स्वस्थ मानवता धारी जीवन मूल्यो की स्थापना का सफल प्रयास किया है। धर्म और नीति अर्थात सत्व शील और नय भारतीय सस्कृति के अनिवाय उपकरण हैं। 'पावती' काव्य म इन स्थायी जीवन मूल्यो (सत्व, शील और नय) का [illegible] महत्त्वाकन और प्रतिपादन हुआ है।

आधुनिक युग के हिंदी महाकाव्यो म आकार की दृष्टि से 'पार्वती'

(२२) हल्दीघाटी (२३) आर्यावर्त्त (२४) विक्रमादित्य (२५) [illegible] (२६) महामानव (२७) जगन्नाथ (२८) जौहर (२९) [illegible] (३०) दमयन्ती (३१) उवशी (३२) सारथी (३३) प्रेमचन्द (३४) [illegible] (३५) रामचरित चिन्तामणि (३६) कृष्णचरित [illegible] (३७) झाँसी की रानी (३८) अनघ (३९) रामराज्य (४०) [illegible] (४१) मेधावी (४२) वानिदास (४३) गुरु [illegible] (४४) [illegible] (४५) [illegible] (४६) मानवन्द्र (४७) प्रियमिलन (४८) [illegible] (४९) देव पुरुष गांधी (५०) चन्द्रगुप्त मौर्य (५१) निग्रहा।

व्यापक वृहदाकार रचना है। 'पार्वती' महाकाव्य का कथात्मक मूल आधार शिव पुराण है। कथात्मक संयोजन की दृष्टि से पार्वतीकार ने कालिदास के 'कुमारसम्भव' का अनुकरण किया है। 'पार्वती' के प्रथम १७ सर्गों में 'कुमार सम्भव' के १७ सर्गों की सम्पूर्ण कथा गृहीत की गयी है। पार्वती महाकाव्य के प्रथम १७ सर्गों को काव्य का पूर्वार्द्ध कह सकते हैं। उत्तरार्द्ध खण्ड में प्रौढ़ कवि-कल्पना, विलक्षण काव्य प्रतिमा, भाव-सौन्दर्य, रस-परिपाक, कलात्मक कौशल और प्रबन्धत्व प्रवाह आदि द्रष्टव्य हैं। साथ ही मौलिक सृजन प्रतिमा, कलात्मक औदात्त वैचारिक निधि और भाव गाम्भीर्य की दृष्टि से भी काव्य का उत्तरार्द्ध (सर्ग १८ से २७) महत्त्वपूर्ण है। 'पार्वती' महाकाव्य के अन्तिम १० सर्ग निश्चय ही कवि की चरम साधना के ज्वलन्त प्रतीक हैं। इन सर्गों में कवि के अध्ययन, मनन और चिन्तन ने जीवन-दर्शन के रूप में ढलकर बलवती प्रेरणा का रूप ग्रहण कर लिया है। शैवागमों के निगूढ़ अध्ययन और तत्त्व चिन्तन ने शिव संस्कृति के रूप में एक महान उपलब्धि करायी है। पार्वतीकार की शिव संस्कृति विषयक परिकल्पना नितान्त मौलिक, उपादेय एवं युगानुरूप है।

पार्वती महाकाव्य के १७वें सर्ग में पार्वतीपुत्र सेनानी कार्तिकेय द्वारा तारकासुर का वध हो जाता है। यहाँ तक का वस्तु विधान 'कुमारसम्भव' पर आधारित है।

१८वें सर्ग में जयन्त अभिषेक और १९वें सर्ग में विजय पर्व के आयोजन के साथ साथ तारक के तीन पुत्रों का तप तथा ब्रह्माजी द्वारा वरदान देने का वर्णन है। सर्ग २०, २१ और २२ में रजतपुर, आयसपुर एवं कांचनपुर नामक त्रिपुरों का बड़ा सजीव वर्णन है। उदाहरणार्थ—

> रजतपुर में ज्ञान धर्म का सूक्ष्म छद्म बन करुणा भीति,
> फलित हुआ कमलाक्ष कूट की बन अधम की रुचिर अनीति
> शक्ति और वैभव से मोहित दुर्बल दीन अकिंचन ज्ञान
> बन अज्ञान बना जीवन का मायामय नय धर्म विधान।
>
> × × ×
>
> आयसपुर में दर्प क्रोध से उन्मद मद से कुण्ठित काम
> फलित हुआ विद्युन्माली के बल वैभव में फिर उद्दाम
> अन्न दीन बल हीन प्रजा की अल्पदृष्टि में बनकर शान्ति
> प्रकट हुई शासन सेवा औ पद नियमों की भूषित भ्रान्ति।

× × ×

काचनपुर म मय-वरुणा औ क्रोध-दप का द्वन्द्व विकार,
शान्ति, समृद्धि और सुख का बन छद्म हुआ सहसा माकार
जिसकी माया के विमोह म स्वप्नो के स्वर्णिम प्रासाद,
कर निर्मित, श्रम और सेवा का वहन कर रहे जन अवसाद।"

(सग २३, पृष्ठ ४७०)

त्रिपुरो क इस घोर अनथ से सकल लोक व्याकुल हो उठे जीवन-सत्य को तथाकथित धम शक्ति और माया के आडम्बर ने आच्छन्न कर लिया। तारक-वध से जो देव ससति को प्रसन्नता हुई थी, शोक म परिवर्तित हो गयी

धम शक्ति धन की माया म हुआ सत्य जीवन का लुप्त,
उगल रहे थे विष अनथ का कौन अनगल विषधर गुप्त
हुआ विषाक्त वायुमण्डल था सिसक रहे जीवन के प्राण,
विकल हुए अपनी कृतियो से मकल भूप, श्रीपति भगवान।

× × ×

त्रिपुरो के अनथ उपचय से विकल हो उठे तीनो लोक,
देवो का जय हप अ तत बना हृदय का नूतन शोक।"

(सग २३, पृ० ४१७)

त्रिपुरा के अत्याचारो से उत्पीडित होकर अयन ब्रह्माजी के पास गया। ब्रह्माजी ने जो त्रिपुर उपचार बताया वह भी महत्वपूण है। ब्रह्माजी ने त्रिपुर उपचार के लिए प्रेम और शिवत्वबोध का माग सुझाया। प्रेम-माग और शिवत्वबोध आज के विश्व जीवन की विडम्बना का भी महत्वपूण निदान है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि पावनीकार की त्रिपुर उपचार की परिकल्पना की कामायनीकार (प्रसादजी) के त्रिपुरदाह की सयोजना से पूण सगति बैठती है। प्रसादजी ने त्रिपुरो की विडम्बना का वणन 'रहस्य' सग मे किया है

"यही त्रिपुर है देखा तुमने, तीन बिन्दु ज्योतिमय इतने,
अपने केन्द्र बने दुख-सुख म भिन्न हुए हैं यह सब कितने।"

(कामायनी, रहस्य सग)

'कामायनी' का त्रिपुर रूपक मानव-सृष्टि के सन्दभ से इच्छा ज्ञान और क्रिया की दूरी है अर्थात असामजस्य है

"ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न है, इच्छा क्या पूरी हो मन की ।
एक दूसरे से न मिल सके यह विडम्बना है जीवन की ॥"
(वही, रहस्य सर्ग)

इन तीनों के समंजन का उपाय तीनों में सामरस्य (समन्वय) की स्थापना है। 'पार्वती' महाकाव्य का त्रिपुर रूपक भी हमारे युग जीवन के सन्दर्भ में धर्म शक्ति और धन की माया का संघर्ष है।

जयन्त त्रिपुर उपचार के उपाय पूछने ब्रह्मा शिव और पार्वती के पास गया। तीनों ने बड़े सुन्दर उपाय बताये

ब्रह्मा—"असुर शक्ति के तप के बल से हुआ तात ! इनका निर्माण,
है निमित्त मेरे सर्ग नियम का मेरा अवधि-पूर्ण वरदान
एकाकी तारक का सम्भव शक्ति-योग से था संहार,
पर त्रिपुरों का नहीं शक्ति से सम्भव है करना प्रतिकार।

× × ×

सर्ग नियम में नहीं अनय का सम्भव है कोई प्रतिरोध
है उसका उपचार शक्ति से अधिक शिव का शाश्वत बोध।"
(सर्ग २३ पृष्ठ ४७४)

पार्वती— सुन जयन्त के वचन उमा ने कहा दृगों में भरकर स्नेह
तात ! त्रिपुर के जन जीवन है शोचनीय अति निस्सन्देह
कर न सकी यदि शक्ति तुम्हारी सरक्षित जीवन का क्षेम,
ज्ञान शक्ति की स्फूर्ति चाहती अभी कांति मा कामल प्रेम।

× × ×

इसी प्रेम के बिना बन गया राजतपुर का ज्ञान विमोह
इसी प्रेम के बिना छा रहा आयसपुर में बल विद्रोह
इसी प्रेम के बिना स्वर्णपुर पाल रहा केवल व्यापार
बिना प्रेम के ज्ञान शक्ति औ अर्थ सहज बनते अविचार।

× × ×

एक पाशुपत ही कर सकता त्रिपुरों का युगपत संहार
पर सकती है विश्व जागरित नवल डमरू की झंकार।
(सर्ग २५ पृष्ठ ४७६-७७)

शिव—"शिव बोले गम्भीर शान्तिमय वचन स्नेह से पूर्ण उदार—
प्रकृति और प्रतिराग भाग से चलता यह अपूर्ण संसार,
नान शक्ति सयोग विश्व का रक्षिन करता पावन क्षेम
त्रिपुरा से उद्धार विश्व का कर सकता पर जाग्रत प्रेम ।।"
(सर्ग २३, पृष्ठ ४७६)

इसी क्रम मे शिव का महत्त्व सन्देश है। इस सन्देश के एक एक शब्द म मानवतावादी स्वरोदघोष है सजीवनी शक्ति और अमरत्व है। विस्तार भय स कतिपय पक्तियाँ ही उद्धृत की जा रही हैं

जन जन के जाग्रत गौरव से कम्पित होगी अघ अनीति,
दम्भ, दर्प अतिचार आदि को प्रलय बनेगी भीषण भीति।
धर्म धुरंधर अन्ध पुजारी मद विभोर शासक सामन्त,
धन-कुबेर श्रीमान दानपति सबका शांति करेगी अन्त।

× × ×

मागेंगे जाग्रत मानव से वे जीने का बस अधिकार।

× × ×

जाग्रत मानव की करुणा से मागेंगे वे जीवन दान।

× × ×

जाग्रत मानव से मागेंगे वे केवल श्रम का वरदान।

× × ×

मानव की सस्कृति का गौरव होगा नारी का सम्मान
नारी के स्वतन्त्र जीवन का स्नेह बनेगा चिर वरदान।

× × ×

प्रति मानव के शीष और मुख होंगे जब द्विज का प्रबोध
प्रति मानव के बाहु बनेंगे क्षत्र शक्ति के रक्षा लीन।
प्रति मानव की जघाएँ जब होगी अर्थ काम से पुष्ट
सेवा-श्रम ॥ प्रति मानव के पावन पद होंगे सन्तुष्ट।

× × ×

तब मानव मानव वन मन से औ तन से बन देव समान
होगा नव विश्व का स्रष्टा औ पालक अनन्त भगवान।
मान शक्ति श्रम और स्नेह से कर सुदर का चिर निर्माण
नव जीवन के पर्व-पर्वों म नित्य करेगा रूप विधान।

इस नव्य मानवतावादी संस्कृति के निर्माण से युगों की संचित भ्रान्ति का विनाश और नव चेतना का विकास होगा

जब जन-जन के उर में पावन आत्मा का उज्ज्वल आलोक,
होगा उदित स्नेह-करुणा का बन कर श्रुति मंगलमय श्लोक।
जब जन गन के तन औ मन में छिपी सत्य की शक्ति अपार,
जाग्रत हो मांगेगी सहसा जीवन का गौरव अधिकार।

× × ×

तब नव चेतनता से होगा भग युगों की संचित भ्रान्ति,
नवयुग का निर्माण करेगी श्रममुखी जीवन की क्रान्ति।
(सर्ग २४, पृष्ठ ४८३)

त्रिपुर उद्धार' नामक २४वें सर्ग में शिवस्वरूप और अनय से अनय रूपी त्रिपुरों का उद्धार वर्णित है। यहीं मानवता का स्वतन्त्र वैभव की चेतना से जागृत भी किया गया है

मानव हो अपने जीवन के गौरव को पहचानो,
नर हो, तुम अपने पौरुष के वैभव को पहचानो।'

इस चेतना आह्वान ने जन जन के जीवन में जागरण की लहर दौड़ा दी

बोल उठे सब एक कण्ठ से मानवता की जय हो
गूंज उठा स्वर अन्तरिक्ष में 'अन्त समस्त अनय हो।

× × ×

जीवन का श्रम श्रम और सुख चिर अधिकार हमारा,
करना हमको सिद्ध सत्य के शक्ति मन्त्र के द्वारा।'
(पृष्ठ ४९६)

त्रिपुर उद्धार के उपरान्त नये सर्ग की सर्जन ध्वनि शिव के डिम्ब निनाद से निःसृत हुई

विश्व भारती के मंगल सा शिव का डमरू बोला
शिव ने आज नवीन सर्ग का सूत्र मर्ममय खोला।

× × ×

अन्तरिक्ष में उगा ज्ञान का सूर्य अनामित छवि से
गन्धकोष निज खोल कली ने कहा जागरित कवि से—

आज न कलियां के कानों म केवल मधुरस घोलो,
नय सग के बीज म त्र की मव्य अगला खोलो।"

(सग २८ पष्ठ ५०६)

इस नवीन सग (ससति) की सस्कृनि भी आदश और महान् थी। त्रिपुर-दाह शिवत्वबोध के कारण हुआ, अत नवीन सष्टि म जिस धम नीनि और सस्कृति का विकास हुआ वह शिवमय थी। पावनी महाकाव्य के २८ २६ और २७वें सर्गों म शिव धम शिव नीति और शिव सस्कृति का वणन है। इन सर्गों का सजन नितान्त मौलिक और नवीन है।

शिव धम' नामक सग म धम के जिस स्वरूप का निरूपण हुआ है, वह शैव सम्प्रदाय की किसी सद्धान्तिक दूरारूढ कल्पना का प्रस्तुतीकरण नहीं, वरन मानवतावादी कल्याणमय (शिवम) धम की स्थापना का प्रशसनीय प्रयास है

शिव धम म—

"मानव ही रह गया एक ईश्वर की आशा,
जीवन ही बन गया धम की नव परिभाषा,
आत्मा का परमाथ अथ म अचिन होता
आत्मा का परमाथ काम से सरसित होता।

(सग २५, पृ० ५१७)

मानवता ही सवस्व थी—

"मानवता थी मानदण्ड नूतन सस्कृति का
आत्मभाव था मूल म त्र नूतन ससृति का,
नहीं मनुज को मनुज मानते जो अतिचारी,
उनको काल कृतान्त बने अतिम त्रिपुरारी।'

नारी का बहुमान—

नारी का बहुमान बना सस्कृति की कला
जीवन सागर रहा था त जिसमे अलग ना,
मानवता की मयादा थी निमल नारी
शचितमनो श्रीमूर्ति मनाहर औ सुकुमारी।

×   ×   ×

वह युग युग की आतकित औ लाछित नारी,
महिमा मण्डित हुई प्राप्त कर गरिमा सारी।'

(सग २५, पृ० ५१८)

यही नहीं—

'मानवता ही था बना विश्व का नया विधाता,
मानवता का बना नया मानव निर्माता,
मानव में साकार हो गये विधि, हरि, हर थे
वे अदृष्ट के रूप अयुत जीवित सुन्दर थे।

× × ×

नारी में साकार हुई थी वीणा-पाणी,
नारी में ही मूर्त हुई लक्ष्मी कल्याणी
हुई उमा की तप शक्ति से जाग्रत नारी,
ज्ञान शक्ति श्री नारी में अन्वित थी सारी।

(सर्ग २५, पृ० ५२६)

२६वें सर्ग में उल्लिखित शिव क्रान्ति का स्वरूप भी श्लाघनीय है—

'धर्म अर्थ औ काम मुक्ति का अन्वय-पूर्ण विधान,
करता था मानव समाज में शिवमय का निर्माण
ज्ञान शक्ति तप क्षेम शान्ति का श्रेयान्वित उत्थान,
करता था कृताथ मानव का जीवन साधन योग।

(सर्ग २६ पृष्ठ ५४६)

काव्य के अन्तिम सर्ग में शिव-संस्कृति के आनन्दवादी स्वरूप की विशद व्याख्या है। कवि ने नारी को संस्कृति और सृष्टि की सधारिणीशक्ति कहा है। मानव के मंगल विधान और विजय-यज्ञ की प्रतीक नारी ही है। इस मूल तत्व की स्वीकृति इस २७वें सर्ग की अन्यतम विशेषता है

'बहु सिद्धशक्तियों काटि अस्त्र-कर धारी,
मानव संस्कृति की निरुप निर्मला नारी।

× × ×

बन मधुर वसन्ती यामा का उजियारा
बिखराता स्वर्ग विभूति भूमि पर नारा।

× × ×

बन धार बधु का बन्न निमना नारा
बनना संस्कृति की सुरक्षा काम कुमारा।

× × ×

उस ज्योति पथ की पुण्य निमला ऊषा,
पावन भावो की मधुर मुक्त मजूषा।
× × ×
यह शक्ति भूमिका तजमयी कल्याणी,
हो रही सफल पाकर जीवन की वाणी।"

कवि ने नारी के सम्मान को सास्कृतिक विकास का आधारमान भी माना है

'नारी का नय औ मान माप सस्कृति का,
पथ उसका शुचि सस्कार निसग प्रकृति का।

(पृ० ५४६)

महाकाव्य की इतिश्री पर भी कवि मानवता का मगलकामी रहा है। देखिए यह गीत

'जग म मगल दीप जलें।
जीवन के ध्रुवतार बनकर स्नेह प्रदीप जलें।
पूण सत्य की प्रभा विश्व म निमल बिखरे,
ज्योति पथ म स्नात रूप मानव का निखरे,
सत्य शक्ति, शिव औ सुदर के पथ म लोक चलें।
× × ×
हो शिव का साम्राज्य विश्व म मगलकारी,
शान शक्ति-युत बने श्रेय का चिर प्रतिहारी
चिर जीवन की कल्पलता पर श्री आन द फलें।

इस प्रकार पावती महाकाव्य म भारतीय सस्कृति के विराट रूप का अकित करने की सफल चेष्टा हुई है। आज के विश्व जीवन म मानव की सकटापन्न स्थिति कुण्ठित आत्म चेतना और भयावह वातावरण का मूल कारण मानवीय चिन्तन बोध के स्तरा म विशृखलन और बौद्धिक अनुविरोध है। इस परिस्थिति-द्वन्द्व का विधायक मानव का अहवाद है। इस अहवाद को व्यावहारिक दृष्टि से विज्ञान के दुवह आणविक अनुसधाना का स्वच्छन्द विकास, बौद्धिक शक्ति या चेतना का व्यतिक्रम भी कहा जा सकता है। हमारे युग जीवन म भौतिकवादी मूल्यो की अध पराकाष्ठा ने मानव की आध्यात्मिक आस्थाओ को आहत कर कुण्ठा सशय या स्वीकृति से भी पराङमुख कर दिया है। स्व और अह की अथ-साधना म लिप्त चेतना हतप्रभ और विहृत हास-हास

विघटनकारी तत्त्वों पर अवलम्बित रहने लगी है। परिणामस्वरूप समग्र सामाजिक संगठन में विघटनकारी स्वार्थसाधक शक्तियाँ परम्पराओं से स्थापित मूल्यों के मूलोच्छेदन में अनवरत रत हैं। समाज के विघटनकारी तत्त्वों ने सांस्कृतिक जीवनादर्शों की अवहेलना भी प्रारम्भ कर दी है। और यही कारण है कि हम समाज के अनुसरण में असमर्थ हो रहे हैं। ऐसी परिस्थिति में साहित्य क्या कर सकता है? एक प्रश्न है। अस्तु—

वर्तमान युग के इस परिस्थिति द्वन्द्व में सचेतन साहित्यकार जागरूक कलाकार और अन्तश्चेतना के अनुसंधाता कवि का कर्त्तव्य शाश्वत जीवन बोध का दिशा निर्देश कर दिग्भ्रमित मानवता को प्रगति पथ पर गतिमान करना है। स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व इस देश की पराधीन, हतप्रभ और विवेकशून्य सांस्कृतिक चेतना को स्वाधीनता संग्राम के लिए आह्वान कर विजय संदेश प्रसारण की आवश्यकता थी। इस गुरुतर दायित्व का भार वहन तत्कालीन साहित्यकारों ने किया। प्रसादजी के ये स्वर मेरे कथन की पुष्टि करेंगे

> शक्ति के विद्युत्कण जो व्यस्त
> विकल बिखरे हैं हो निरुपाय।
> समन्वय उनका करे समस्त
> विजयिनी मानवता हो जाय।

(कामायनी श्रद्धा सर्ग)

तत्कालीन परिस्थितियों में समाज के शक्ति अंगों के समन्वय की आवश्यकता थी। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् जीवनादर्शों के संगठन की समस्या बलवती होती जा रही है। सामाजिक जीवन मूल्यों के सुदृढ़ संगठन के लिए संस्कृति रूपी वट वृक्ष के अतिरिक्त सुदृढ़ और शीतलच्छाय स्थल की कल्पना नहीं की जा सकती। भारतीय समाज और जीवन की विविधताओं (Diversities) का समन्वय संस्कृति ही बन सकता है। धर्म, जाति, वर्ग, प्रान्त, भाषा या मनावृत्त संगठन आज के संघर्ष-युग में ऐक्य के प्रतीक (Symbol of Unity) नहीं बन सकते। वस्तुतः संस्कृति में इन सब इकाइयों (Unities) का भी समन्वय हो जाता है। डॉ॰ रामानन्द तिवारी भारतीनन्दन ने 'पार्वती' महाकाव्य में इसी सांस्कृतिक वट वृक्ष की छाया प्रदान की है। उनका सांस्कृतिक निरूपण विघटित मानव मूल्यों के संगठन का प्रशंसनीय प्रयास है। सत्यं शिवं,

सुन्दरम् जीवन के शाश्वत मूल्य हैं। सत्य, शील और नय भारतीय संस्कृति के अमोघ अस्त्र रहे हैं। डॉ० तिवारी ने इन्ही चिरंतन संगठन-तत्त्वो का युगानुरूप पुनर्मूल्यांकन किया है। पौराणिक कथा सत्य को उन्होंने युग-सत्य और सामयिक परिस्थितियों के अनुकूल ही चित्रित किया है। 'पार्वती' महाकाव्य का शिव संस्कृति निरूपण उनकी काव्यकला चिन्तनशक्ति और प्रखर मेधा का सबल प्रमाण है। इस दृष्टि से पार्वती महाकाव्य की रचना 'मानस और 'कामायनी' जैसे विश्व महाकाव्यो की परम्परा मे ठहरती है। पार्वती' सच्चे अर्थों मे महाकाव्य ही नहीं, अपितु महानकाव्य भी है—ऐसी मेरी विनम्र दृढ धारणा है।

'कालिदास' महाकाव्य

मानवीय वेदनाओं के गायक की गौरव-गाथा

७

'कालिदास' महाकाव्य

मानवीय संवेदनाओं के गायक की गौरव-गाथा

भारत की सांस्कृतिक चेतना का प्रतिनिधित्व करने वाली गौरवान्वित काव्य कृतियों के प्रणेताओं के रूप में वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, तुलसीदास, रवीन्द्रनाथ टगोर और जयशंकर प्रसाद प्रभृति कवि पुंगवों के नाम चिर-स्मरणीय हैं। इन प्रबुद्ध रचनाकारों ने अपने गौरव ग्रंथों में भारतीय मनीषा के निरंतर विकासशील स्तरों का रूपांकन करते हुए काव्य कला, साहित्य, शास्त्र, संगीत, संस्कृति, दर्शन, इतिहास एवं अन्य ज्ञान विज्ञानों के नाना क्षेत्रों में किए गए विराट मानवीय प्रयत्नों का युगीन महत्वांकन किया है। मनीषी कवियों की परम्परा में ऐतिहासिक दृष्टि से महाकवि कालिदास का विशिष्ट स्थान है। कालिदास की काव्य साधना मानवीय-संवेदनाओं को कलात्मक स्तरों पर साकार करने वाली चेष्टाओं से परिपूर्ण है। इतिहास पुराण और कल्पना के समन्वित आधार पर महाकवि ने ऐसे गरिमापूर्ण काव्य भवनों का निर्माण किया है जो आज अनेक शताब्दियों के पश्चात भी शिल्पक-संरचना के प्रतिमानों एवं प्रतिपाद्य के आयामों की दृष्टि से अतुलनीय हैं। महाकवि कालिदास के काव्य का रचनाफलक इतना विराट एवं वैविध्यपूर्ण है कि मानवीय चेतना के सूक्ष्मातिसूक्ष्म एवं गूढ़ स्तर उसमें सहज ही समाविष्ट हो गए हैं। 'रघुवंश' 'कुमार सम्भव' मेघदूत, 'विक्रमोऽर्वशीय' 'अभिज्ञान शाकुन्तल' आदि काव्य एवं नाट्य ग्रंथ महाकवि की चिरंतन कीर्ति के अक्षय स्रोत हैं। अकेले अभिज्ञान शाकुंतल का कलात्मक-वैभव एवं रचनात्मक औदात्त समादृत स्वदेशी एवं विदेशी विद्वानों को गत अनेक दशाब्दियों से इतना

अभिभूत किए रहा है कि उन्होंने मुक्त कंठ से कालिदास को विश्व कवि की संज्ञा दी है। ऐसी गौरवशाली कृतियों के यशस्वी प्रणेता कालिदास का जीवन अनेक विस्मयकारी घटना प्रसंगों का संघात रहा है और उनका जीवन दर्शन मानवतावादी चिंतनधारा से अनुस्यूत होने के कारण नितान्त स्पृहणीय एवं वरेण्य है। समष्टि रूप में महाकवि कालिदास का व्यक्तित्व कृतित्व और जीवन दर्शन अत्यन्त प्रेरक होने के कारण समालोचकों एवं शोधकर्ताओं के समीक्षण और अनुसंधान का विषय तो रहा ही, वर्तमान-युग में एक महाकाव्य के कलेवर में भी निबद्ध हुआ है। आधुनिक हिन्दी महाकाव्य के सर्जना क्रम मे आलोच्य महाकाव्य के प्रकाशन से पूर्व तीन महान रचनाकारों की जीवन गाथा का आधार बनाकर निम्नांकित महाकाव्यों का प्रणयन हुआ—

१ गोस्वामी तुलसीदास पर श्री रंगीन द्वारा सन १९५२ में 'देवायन' महाकाव्य।

२ उपन्यास-सम्राट प्रेमचन्द पर श्री परमेश्वर द्विरेफ द्वारा सन् १९५६ में 'युगद्रष्टा प्रेमचन्द' महाकाव्य।

३ बाणभट्ट पर पोद्दार रामावतार अरुण द्वारा सन १९६१ में 'बाणाम्बरी' महाकाव्य।

इसी क्रम की रचना बिहार के उदीयमान कृतिकार श्री तिलक का 'कालिदास' महाकाव्य है, जिसका प्रकाशन संवत् २०१८ में हुआ।

कालिदास महाकाव्य में कुल १६ सर्ग हैं। प्रथम सर्ग में महाराज शारदानन्द अपनी पुत्री विद्योत्तमा से प्राकृतिक सुषमा पर हुए वार्तालाप में पुत्री के वाक् चातुर्य एवं कला नैपुण्य से मुग्ध होकर मन ही मन किसी अत्यन्त बुद्धिमान वर से उसके विवाह करने का संकल्प करते हैं। द्वितीय सर्ग में विद्योत्तमा की रूप माधुरी का वर्णन है। विद्योत्तमा मन ही मन अपनी रूपगंध से आकुल होकर प्रियतम के भुजपाश में निबद्ध हो जाने की कल्पना करती है। उसकी मनोदशा का विश्लेषण करते हुए कवि ने लिखा है कि—

मन मे कितने रंगीन स्वप्न आकर उसको दुलराते हैं
जीवन के भावी साथी का नव रूप मधुर दिखलाते हैं।
नयनों में झाँक रही अपने वह प्रियतम की छवि सम्मोहन
उगता उसको ज्यों गूंथ रहा कोई कुंतल में फुल-सुमन॥
(सर्ग २ पृ० ८, ९)

तृतीय सर्ग में देश के कोने कोने से विद्योत्तमा के स्वयम्वर में शास्त्रार्थ हेतु मूर्धन्य विद्वानों के आगमन का वर्णन है। चतुर्थ सर्ग में समागत दस सहस्र

विद्वानो से विद्योत्तमा यथोचित उत्तर की उपेक्षा करती हुई अनेक गूढ प्रश्न करती है। उसके प्रश्न थे—जीवन का अर्थ क्या है ? विश्व मे सबसे बडा कौन है ? विश्व भर म सबसे सुदर कौन है ? विश्व म सबसे बडा दान क्या है ? विश्व म सबसे बडा बलवान कौन है ? आदि। पण्डितो ने अपनी मति अनुसार इन प्रश्नो के उत्तर दिए किन्तु विद्योत्तमा किसी भी उत्तर से आश्वस्त नही हुई। उसने स्वय सभी प्रश्नो के विद्वत्तापूर्ण उत्तर देकर सभी को हतप्रभ कर दिया। विद्योत्तमा ने जीवन का अर्थ जनहित के लिए जीना, विश्व म सबसे बडी माता, प्रेमपूर्ण हृदय वाले व्यक्ति को सबसे सुदर, काल को महाबलवान और विश्व का सबसे बडा दान विद्या को बताया। विद्योत्तमा की ज्ञान गरिमा से विद्वमण्डली यद्यपि अभिभूत थी किन्तु स्वय को अपमानित मान कर प्रतिशोध के लिए भी कटिबद्ध थी। अत उन्होंने एक ऐसे महामूर्ख व्यक्ति को खोज लिया जो जिस डाल पर बैठा था, उसी को काट रहा था। विद्योत्तमा ने अगुलि सकेत से समुचित परीक्षण के पश्चात उस मूर्ख व्यक्ति को पति रूप म वरण कर लिया। सप्तम सर्ग म रूप राशि विद्योत्तमा सज धज कर प्रियतम से मिलन के लिए प्रस्थान करती है। अभिसार सज्जिता विद्योत्तमा की सौदर्य-सुषमा का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

'भावो से पुलकित मलय-गात,
ज्यो खिला प्रात म अम्बुजात।
छवि के जल से हो रहा स्नात,
अधरो से खुलती नही बात ॥" (सर्ग ७, पृ० ५१)

पूनम की मधुमयी यामिनी म प्रथम मिलन के हेतु उमगो का तूफान लिए विद्योत्तमा जब अभिसार भवन पहुँची तो उसने अपने प्रियतम को पृथ्वी पर सोते हुए पाया। पति के भोलेपन पर रीझ कर विद्योत्तमा ने सुरभित-पाटल का जल श्वेत-कमल से बरसाकर अपना चदन चर्चित गात प्रिय के चरण-तल म रख दिया। मूर्ख नींद से हडबडा कर उठ खडा हुआ। उसने पण्डितो के आदेश पर जो स्वाग भरा था उसका भी रहस्योदघाटन कर दिया। विद्योत्तमा पण्डितो की चाल समझकर खिन्न हो उठी। क्रोध के आवेग मे उसने मूर्ख को खिडकी से ढकेल दिया। इस दुव्यवहार से मूर्ख के मन मे ऐसी असीम वेदना जगी जिसने उसकी ज्ञान चेतना को जागृत कर दिया। वह सोचने लगा कि मैं पण्डित भी तो हो सकता हूँ। कवि के अनुसार—

'जब लगी चोट उस मूरख को, मन म असीम वेदना जगी,
युग से सोई उसके मन की, तब ज्ञान-दीप्त चेतना जगी।

× × ×

'मैं मूरख हूँ' यह प्रथम बार उसके मन में आभास हुआ,
'मैं पण्डित भी हो सकता हूँ, उसको मन मे विश्वास हुआ ।।"

(सर्ग ८ पृ० ५६)

वह तुरन्त माँ काली के मन्दिर में पहुँचा। उसका मन कह रहा था कि रोना पागलपन है। मनुष्य सब कुछ कर सकता है। मूरख के अन्तजगत में अनन्त मानवीय सामर्थ्य का भाव प्रादुर्भूत हो गया। वह सोचने लगा—

मानव ही है जो पत्थर को भगवान बना रख देता है
मानव ही है जो मुट्ठी में निर्माण छिपा रख लेता है।
मानव ही है जो साँसों में तूफान छिपाए रहता है,
मानव ही है जो अन्तर में दिनमान छिपाए रहता है ।।

(सर्ग ८ पृ० ५६)

काली मन्दिर के पुजारी ने मूरख का श्लोक वाचन का अभ्यास प्रारम्भ कराया। मूरख की वाणी मे सरस्वती अधिष्ठित हो गई। एक वर्ष की कठोर साधना ने अलौकिक ज्ञान की दीप्ति से युगों से सुप्त मन को आलोकित कर दिया। पण्डित ने उसे कालिदास नाम दिया जिसे गुरु आज्ञा मानकर उसने स्वीकार किया। एक दिन स्वप्न में माँ काली ने कालिदास को परिश्रमपूर्वक काव्य सुमनों से सरस्वती का शृंगार करने का अनुपम वरदान दिया—

जाओ अब कवि तुम घूम घूम कर वाणी का भण्डार भरो
कविता के नव नव फूलों से वाणी का नित शृंगार करो।
जिसने श्रम का सम्मान किया वह व्यक्ति बना जग मे महान
गूँजी उसके श्रम की महिमा जग जग मे बन कर अमर गान ।।

(सर्ग ८ पृ० ६०)

अब कालिदास के मन में स्वर्णिम भविष्य की रङ्गीन कल्पनाएं साकार होने लगी। प्रकृति का कण कण कालिदास को सृजन की प्रेरणा प्रदान करने लगा। उषा की मधुमय लालिमा मे कवि का जीवन हास झलकता दिखाई दिया। पक्षियों का कल कूजन सुन उसके मन प्राण सिहर उठे। निर्झर का कल कल रव उसके प्राणों को उल्लसित करने लगा। लहलहाते खेतों की हरीतिमा उसके मन में बस कर नयी नयी कल्पनाएँ जगाने लगी। ज्योत्स्ना आज उसके प्राणों मे गीत और स्वर में संगीत भरने लगी। चन्द्रपूर्णिमा के साथ वह रात रात भर जाग कर काव्य गीत रचने लगा। आषाढ के प्रथम दिवस, पावस की रिम झिम और पतझर की सूनी साँझ ने उसे मिलन और विरह के

गीत लिखने को प्रेरित किया—

'अब लिखता गीत मिलन के वह
अब लिखता गीत विरह के वह
अब लिखता गीत सुखों के वह
अब लिखता गीत दुखों के वह।' (सर्ग ९, पृ० ६३)

कालिदास को काव्य साधना करते हुए अनेक वर्ष बीत गए। एक दिन वे निर्जन वन में प्रशान्त भाव से सरोवर के तट पर बैठे हुए प्रकृति-सुषमा का विहंगावलोकन कर रहे थे कि एक सुन्दरी सखियों सहित सरोवर तट पर आई। वह मलयानिल को अलकों में बांधे हुए थी, उसकी पलकों में मद का महोदधि लहरा रहा था, मेघों का अंजन, सुरधनु सी भौंहें, उन्नत उरोज और नूतन यौवन का मन्दिर भार लिए वह रूपसी जब कालिदास के समीप पहुँची तो वह स्तब्ध हो गई। उसे याद आया कि यह वही व्यक्ति है जिसे उसने कुछ वर्षों पूर्व गवाक्ष-पथ से ढकेल दिया था। कालिदास से दृष्टि मिलन होते ही उसके मन प्राणों का हुलास असीम वेदनाज्वार में बदल गया। वह मुरझाये यौवन और ज्वलन भार का लेकर लौट गई। इधर कालिदास को भी सूरत जानी पहचानी सी लगी और वे मन ही मन सोचने लगे कि—

'वह कौन?
लिए यह रूप राशि
यौवन विलास
सौंदर्य हास
तन में मलयानिल की सुवास
आई सरवर के आज पास
सुलझान को दे गई प्रश्न
मैं देख रहा हूँ सत्य या कि मदभरे स्वप्न।"
(सर्ग १०, पृ० ७०)

वह रूपसी विद्योत्तमा ही थी। उसके मन में संशय उठ खड़ा हुआ। वह मध्य रात्रि के समय अपने अक्षत सुकुमार यौवन को नूतन शृङ्गार से सज्जित कर प्रियतम से मिलन चल दी। एक विचित्र अन्तर्द्वन्द्व विद्योत्तमा के मन मस्तिष्क को आन्दोलित किए था। उसे अतीत की भूल पर घोर पश्चात्ताप था क्योंकि उसने पति का अपमान किया था। दूसरी ओर यह सोचकर वह आश्वस्त हो रही थी कि—

'क्षमा कर देंगे मुझे जरूर, नहीं है उनको तनिक गरूर।
कि शरणागत को करते क्षमा, यही विद्वानों का दस्तूर॥
× × × ×
क्षमा कर अपनाएँगे मुझे, मुझे विश्वास अटल विश्वास।
न मुझको रोने देंगे और, न होने देंगे और निराश॥'
(सर्ग ११, पृ० ७६-७७)

इधर कवि चुपचाप सोच रहा था कि वह रूप का अम्बार और यौवन की मदिरा लिए कौन आई थी? उसने भौंहों के सुरचाप पर नयनों के बाण से ऐसा प्रहार किया कि मेरे मन प्राण घायल हो गए। उमंगों सी सुंदर, विहगों सी चंचल प्रीत सी नव लावण्यमयी तथा जलद सी करुण-तरल वह कौन थी? मधु ऋतु की प्रथम बहार यौवन के प्रथम उभार, कवि के पहले उदगार और उर में अपरिमित मधुर-दुलार लिए वह सुकुमारी कौन थी? सुरधनु सा सुन्दर-हास नई किरणों का मृदु उल्लास, स्वरों में गीत, नूपुरों में संगीत और अलकों में सुवासित मलय बयार लिए वह कौन थी? कवि यह सोचने को विवश था कि—

रूप का ऐसा मादक ज्वार, आज देखा बस पहली बार।
देखते ही वह रूप अपार, झनक कर उठे हृदय के तार॥
× × ×
कौन वह छवि की नई बहार सुषमाओं का आगार।
रूप के आगे जिसके स्वयं गया सौन्दर्य कभी का हार॥
(सर्ग ११ पृ० ७६)

काली-मन्दिर के पास अशोक के पेड़ की एक डाल पकड़े कवि यह सोच ही रहा था कि उसे पायल की मधुर झंकार सुनाई दी और थोड़ी देर में वह कल्पना-छवि कवि के पास करुण उच्छवास छोड़ती हुई मौन गम्भीर समुपस्थित हो गई। कवि विस्मय से भर गया। उसने आगन्तुक को लक्ष्य कर प्रश्नों की झड़ी बाँध दी—

कौन तुम छवि निर्मित नव वेश? लजाता जिसको सरद राकेश।
कौन तुम सपनों-सी सुकुमार लिए यौवन का यह उन्माद॥
कौन तुम लिए सुरभिमय हास छुपाए नयनों में आकाश।
आज क्यों आया रात का दवि! खड़ी आकर हो मेरे पास॥
कौन तुम रूप-सिन्धु छविमान? कौन तुम? सुषमा की मुस्कान।

कौन तुम मधु के स्वर्ण विहान ? कौन तुम ? उपमा के उपमान ॥
कौन तुम वाल्मीकि के श्लोक ? कौन तुम ? जीवन के आलोक ?
कौन तुम सामवेद के गान ? चाँद भी तुमको रहा विलोक ॥
कौन तुम ? कवि की क्या कल्पना ? गायकों की तुम क्या साधना ?
भक्त जन की तुम क्या वंदना ? शिल्पकारों की क्या सजना ?
कौन तुम ? मैं अब तक अनजान कौन तुम ? किस कुल का अभिमान ?
कौन तुम ? किस माँ का वरदान ? कौन तुम ? किस भाई की शान ?'

(सर्ग ११, पृ० ८४-८५)

कवि की मीठी वाणी सुनकर सौन्दर्यमयी रमणी कवि के पाँव पर गिर पड़ी और अपने अश्रुकणों से पदतल का निमज्जित करने लगी। कवि ने उस छवि सुषमा की बाहु मृणाल को पकड़ कर उठाया। स्पर्श से कवि का गात सिहर उठा, भाल पर पसीना भर गया और मन में रंगीन वासनाएँ साकार हो उठीं। रूप का छविमान सागर कवि के इन्सान और ईमान को चुनौती दे रहा था। किन्तु कवि अडिग रहा, उसने पुनः गम्भीरता से प्रश्न किया कि—

'कौन तुम ? गंगाजल सी स्वच्छ !
कौन तुम ? वाणी जैसी दक्ष !
कौन तुम ? सागर सी गम्भीर !
कौन तुम ? पूर्ण विराम सुलक्ष !'

(सर्ग ११, पृ० ८७)

कवि की रसमयी वाणी को सुनकर उस छवि ने सुधा-स्नात स्वर में अतीत की घटनाओं का बखान कर पश्चाताप प्रकट किया और अपने अभद्र कृत्य के लिए क्षमा याचना करते हुए महाकवि के चरणों में शरण माँगी। कवि ने कुछ नहीं कहा, किन्तु दो कदम पीछे हटकर अपनी मौन-अस्वीकृति का बोध विद्योत्तमा को करा दिया। विद्योत्तमा मलिन उदास होकर लौट गई।

आलोच्य महाकाव्य के द्वादश सर्ग में विद्योत्तमा की विरह वेदना का निरूपण हुआ। विद्योत्तमा का मुख कमल मुरझा गया उसका छविमान गात धूमिल हो गया। शीतल मन्द मलय वातास रजनीगंधा का सुवास और कुमुद कुसुमों का हास उसका ज्वलित उपहास कर रहे थे। अनुराग भाव काला नाग बन कर उसे डँस रहा था। आम्र पक्षियों की सुरीली तान, सरिता का कल कल गान और मधुर अरुण स्वर्ण विहान उसके लिए शापमय वरदान बन गया था। विद्योत्तमा बुझे हुए दीपक के धूम के समान विकल थी। वह पीत चाँद

सी छविहीन तथा भोर के समय डूबते उडदीप के समान मलीन दिखाई दे रही थी। जीवन उसके लिए असह्य भार बन गया था। उसके नेत्रों में अश्रुओं का पारावार उमड रहा था। मेघ मण्डित आकाश को देखकर वह निश्वास छोड़ती थी। कवि के अनुसार विद्योत्तमा का जीवन निरुपाय हो गया था—

आज नयनों में तिमिर साकार शून्य सा लगता उसे संसार।
चले गई आज वह निरुपाय, सह नहीं पाता व्यथा सुकुमार।
× × ×
जा रहे बीते दिवस औ मास किन्तु उसका एक सा इतिहास।
लौटकर आया न उसके पास फिर कभी मान्मथ मदिर मधुमास॥"

(सर्ग १२ पृ० ९८ ९९)

उधर कालिदास का मन विषाद पूरित हो गया था। एक दिन माँ काली को प्रणाम कर वे अज्ञात दिशा में चल गए। कवि के शब्दों में—

वह पार कर रहा नगर ग्राम
वह पार कर रहा तीर्थ धाम।
वह बढ़ा जा रहा लक्ष्यहीन
मिलता न कहीं उसको विराम॥'

(सर्ग १३ पृ० १०३)

कालिदास ने काश्मीर, अल्मोडा कौसानी धवलगिरि कंचनजंघा काठमाडू वैशाली जीरादेई पाटलीपुत्र सिमरिया ओन्दासी बङ्ग प्रान्त महिषादल, बेन्दुबील, काशी इलाहाबाद झाँसी राजस्थान काठियावाड़, सोमनाथ, साबरमती और मालवा नामक स्थानों का देशव्यापी परिभ्रमण किया। कहीं उसने प्राकृतिक सुषमा का साक्षात्कार किया तो कहीं प्रतिमाओं के दर्शन से सृजन की दवीय प्रेरणा प्राप्त की। काश्मीर और हिमगिरि की स्वर्गिक शोभा लखकर महाकवि ने नवीन उपमाएं सजायी। सौन्दर्य विभासित कौसानी प्रदेश के सुषमामय हरिताचल ने कवि को युग स्रष्टा के आकर्षण से परिचित कराया। धवलगिरि और कंचनजंघा के रजत शिखरों की स्वर्णाभा का अवलोकन कर महाकवि का मन हर्ष पुलक से सिहर उठा। महाकाव्यकार के शब्दों में—

वह भूल गया जीवन का गम,
मुख से फूटा सुख का सरगम।

आनन्द विभोर हुआ जाता,
बढ़ता जाता रुक कर थम थम ॥
(सर्ग १३ पृ० १०८)

काशी पहुँच कर कालिदास के मन में उन्नत भाव जागरण हुआ। महाकवि ने पतित मानव के अभ्युत्थान करने का पुनीत संकल्प किया। उसने कहा कि मैं मानव की मंगल कामना के चिरंतन गीत गाऊँगा। ऐसे गीत जो—

मानव का जो कल्याण करे मन में उसके सम्मान भरे।
है गीत वही जिसमें मानव सच्च पथ की पहचान करे ॥
जो मानव मन में ज्ञान भरे सत चित्त आनन्द विधान करे।
है गीत वही जिसमें मानव नित नूतन अनुसंधान करे ॥
(सर्ग १६, पृ० ११६ ११७)

इलाहाबाद में त्रिवेणी के संगम पर अक्षय वट के नीचे महाकवि के मन ने साधना की महत्ता का अनुभव किया। कवि कृत-संकल्प हुआ कि उसे मानवीय अभ्युदय के लिए निःस्वार्थ साधना में निरत होना ही होगा—

'साधना निरत रहना होगा, हिम सा मुझको गलना होगा।
मानव का अगर उठाना है तो जीवन भर जलना होगा ॥
साधना कीर्ति का सधनाम, साधना मोक्षदायी संग्राम।
साधना बनाए देती है, मानव को जग में पूर्णकाम ॥'
(सर्ग १३ पृ० ११६)

मानवता के चिर कल्याण और विराट निर्माण का पुनीत संकल्प लिए कवि कालिदास निरन्तर अग्रसर हो रहे थे। झाँसी नगरी की मिट्टी में उन्हें उमंग की आग और देशभक्ति के अनुराग का अपूर्व दर्शन हुआ। इस वीर प्रसूता मृत्तिका के कण कण में शौर्य ऐश्वर्य और सौन्दर्य को देखकर कवि ने कहा—

'यह मिट्टी वीरों की जननी, यह मिट्टी कवियों की जननी
इस मिट्टी पर है न्योछावर, मेरे मन की ममता अपनी।
इस मिट्टी का मेरा अर्चन इस मिट्टी का मेरा वन्दन
मेरे कवि का सौन्दर्यमयी इस मिट्टी को सौ बार नमन ॥'
(सर्ग १३, पृ० १२१)

राजस्थान की वीर भोग्या वसुंधरा में पहुँच कर कवि वहाँ के लोक जीवन की रंगरेलियों से अभिभूत हो गया। उसने देखा कि—

'घुंघरू बांध कर पग निज द्रय, नाचत पुरुष के दल तन्मय।
होली में वे घींदड़ा नृत्य, गाते विरहा भरकर स्वर लय॥
डप जानि बजावे बलम रसिया डोले जियरा ओ मनबसिया
गाती नारियाँ उमगा से 'बाजूबंध देउ गढ़ाय रसिया'॥
(सर्ग १३ पृ० १२३)

गुजरात में सोमनाथ महालय के विशाल भवन और असमी मन सोने के महाघट को देख कर कवि के मन में उदार कलाकार के प्रति प्रशस्ति भाव जगा। उसने सोचा सच्ची कलाकृति ही कलाकार को मृत्युंजयी बनाती है। सच्चा कलाकार हिम के समान अहर्निश गल बन कर सृजन करता है। महान कलाकार के सम्बन्ध में कवि का निम्नोद्धृत कथन कितना सटीक है कि—

"पाषाणों में युग प्राण भरे, चट्टानों में युग-गान भरे।
वह कलाकार जो पत्थर में मानव मन का निर्माण करे॥
× × ×
नित नूतन अनुसंधान करे मिट्टी में नव सम्मान भरे।
वह कलाकार जो मिट्टी से युग मानव का निर्माण करे॥'
(सर्ग १३ पृ० १२८-१२६)

अन्ततः महाकवि उज्जैन में महाकाल के विशाल मन्दिर में पहुँचे। वहाँ भगवान विश्वनाथ (महाकाल) के दर्शन कर कवि को शिवत्व बोध हुआ। कवि ने शिवत्वभाव के सम्बन्ध में चिंतन प्रारम्भ किया कि शिव जीवन का शुभ्र प्रकाश मानव की महानता का दिव्य रूप और कर्म का चन्द्रहास है। शिव ही मानव का सम्पूर्ण ज्ञान कर्मयोग का महाप्राण और मन का स्वाभिमान है। शिव की जाज्वल्यमान महाशक्ति ही मानव को विषम गरल पान की सामर्थ्य प्रदान कर सकता है। जन्म मरण अनन्त पवन और अजय काम को शिव शक्ति ही विजित करता है। शिवभाव के सृष्टि व्यापी प्रसार का अमित आख्यान करते हुए कवि ने कहा—

शिव मानव की साधना अटल शिव मानव की प्रार्थना विमल
शिव मानव की निष्काम भक्ति शिव मानव की कामना सफल।
× × ×

शिव मानव मन का आत्म ज्ञान, शिव मानव मन का महागान।
शिव मानव का है पूर्ण रूप, शिव मानव का नैतिक प्रमाण।।"
(सर्ग १३, पृ० १३५ १३६)

कवि जिस क्षण शिव की व्यापक सकल्पना से अभिभूत हो रहा था कि गणिकाएँ छूम छनन करती हुई मन्दिर के प्रागण में नृत्य करने लगी। उपस्थित भक्त जनों की दृष्टि देव से वेश्याओं पर केन्द्रित हो गई। कवि को यह देखकर ठेस लगी। वह नारी के वारांगना रूप को धिक्कारते हुए, नारी की असहाय स्थिति पर विचार करने लगा कि नारी को जग जननी, आदि शक्ति के अभिधान से अभिषेकित करने के स्थान पर उसे वासनापूर्ति का तुच्छ साधन माना जाता है। कवि ने आवेशपूरित स्वर में कहा कि— बस बन्द करो यह छूम छनन, यह शास्त्र विरुद्ध नहीं शमन और उसने उद्बोधन के स्वर में गणिकाओं को कहा कि—

'तुम आदिशक्ति तुम जग जननी यद्यपि तुम मा, प्रेष्ठा, भगिनी,
आत्मा में छिपी असीम शक्ति, नारी तुम भूल गयी अपनी।

× × ×

तुम आदि शक्ति तुम जग जननी, तुम जीवनदायक पयस्विनी,
तुम आदि अन्त तुम मणि मर्मा, तुम नहीं सिर्फ हो कामायनी।
तुम से दिनकर है भासमान, तुम से मयंक है सावधान,
पाई असीमता सागर ने, तुमसे नारी लो इसे मान।
तुमने सागर को दिया गान अम्बर को नवछवि का वितान,
तुमने वसुन्धरा को गति दी, दे दिया सृष्टि को अमर प्राण।।
(सर्ग १३ पृ० १३६ १४०)

महाकवि के प्रेरक वचनों को सुनकर प्रश्नोत्तर के पश्चात गणिकाओं ने अपने जीवन क्रम को परिवर्तित करने का प्रण किया। इस प्रकार भारत भ्रमण कर ज्ञान प्रेरणा और अनुभूति तत्त्व संचित कर कालिदास ने काव्य सृजन प्रारम्भ किया। उनके गीतों का सौरभ सम्पूर्ण मालव प्रदेश में फैल गया। उनके गीतों का माधुर्य भाव अधिग्रहण करने के लिए अपार जन-समूह उमड पडा। कवि कुटी तीर्थ धाम बन गई। चतुर्दश सर्ग में बताया गया है कि महाराज विक्रमादित्य काव्य रसिक थे। वे कवियों को अनुदान में असंख्य मुद्राएँ प्रदान किया करते थे। एक दिन उनके मन्त्री ने निवेदन किया कि कवि

का क्रम ऐसे नवगीत का सृजन है जो मानवता को नया विश्वास प्रदान करे—

नया गीत देता मानव को नया नया विश्वास,
नया गीत भरता जीवन में, नया नया उल्लास।
नया गीत देता मानव को, नित नूतन सन्देश
नया गीत जीवन का कर देता पूरा उद्देश्य।
× × ×
नया गीत मानवता का करता नूतन शृंगार
नया गीत देता जन जन को जीने का अधिकार।
× × ×
नया गीत लाता वसुधा पर युग का नया प्रभात
नये गीत में स्वर किरणों से खिलता युग-जलजात।'

(सर्ग १४ पृ० १४६)

मंत्री ने प्रार्थना की कि यदि महाराज का आदेश हो तो यह घोषणा कर दी जाय कि नव गीत के सर्जक को एक लक्ष मुद्राओं का अनुदान दिया जायगा। महाराज विक्रमादित्य ने महामंत्री के प्रस्ताव को स्वीकृति प्रदान करते हुए कलाकार की महत्ता का इन शब्दों में प्रगट किया—

कलाकार पैदा करता है मिट्टी से इन्सान।
× × ×
कलाकार पाषाणों में भी भर देता है प्राण।
× × ×
कलाकार ही किसी राष्ट्र का करता है निर्माण।

(सर्ग १४, पृ० १५१)

यह विचित्र घोषणा सुनकर कालिदास महाराज विक्रमादित्य के दरबार में पहुँचे और अपनी सद्य नवीन रचना सुनाकर महाराज को मंत्र मुग्ध कर दिया। पुरस्कार में प्राप्त एक लक्ष मुद्राओं को भी कवि ने जनहित में खर्च करने का अनुरोध किया। महाकवि की काव्य मेधा और समुन्नत विचार दर्शन से प्रभावित होकर विक्रमादित्य ने उन्हें राजकवि का सम्मान प्रदान किया। उधर महाराज विक्रमादित्य की पुत्री प्रभावती कालिदास के व्यक्तित्व की गरिमा और चिन्तन की उदात्तता से अभिभूत होकर सोच रही थी कि—

कितना महान् कवि कालिदास, नयनों में चिर उज्ज्वल प्रकाश,
अधरों पर उसके मधुर-हास, अन्तर में छवि ज्योत्स्ना वास,
वाणी में सौरभ की मिठास, जन जन के जीवन का विकास,

× × ×

कितना उन्नत कितना उदार, जन जन का उर मे भरा प्यार,
अपने से उनको नहीं मोह, जन के जीवन से अधिक छोह,
वे वीतराग, वे महाभाग, वैभव से चिर उनको विराग।

(सर्ग १५, पृ० १५६-१५७)

कालिदास को प्राप्त करने के लिए प्रभावती ने कवि से कविता करना सीखना प्रारम्भ किया। वह रूपकों के माध्यम से कविता की वाणी में कवि से कहती कि वल्लरियां तरु से लिपट कर किस इच्छा को प्रकट कर रही हैं? परवान लौ को चूम कर क्या सकेत करते हैं? चातकी रात भर गाकर क्या कहती है? वन में फूली पीली सरसों की सुषमा का रहस्य क्या है? आदि। प्रभावती के अलकों की मलयज मधुर गंध अधरों का पाटल रंगा हास, भौंहों का सुरधनु सम विलास और कजरारे नयनों का विलास कवि के मन में वासना की प्यास उत्पन्न करने लगा। प्रभावती की रूप माधुरी को देखकर कवि सोचने लगा कि—

'जीवन का सच्चा यही स्वर्ग
यह सृष्टि काव्य का मधुर सर्ग।
वरदानों का यह प्रथम वर्ग,
इसस ही जगती का निसर्ग॥

(सर्ग १५, पृ० १६३)

महाकवि के मन में एक ओर अमद वासना जल रही थी तो दूसरी ओर विवेक कह रहा था— मत बनो अन्ध। कवि के अन्तर्जगत में द्वन्द्व मच गया। अन्तत विवेक ने उसे सतर्क किया कि सच्चे कलाकार को रूप से अकथ प्यार होता है किन्तु वह सलाम छवि को लख कर डगमगाता नहीं है, क्योंकि—

'कवि तो होता गुण रूपकार
कवि छवि को छवि देता निखार।
छवि कवि के ढिग आँचल पसार,
माँगती मन से रूप उधार॥
कवि के पग छवि मन गिरा
छवि से कवि की लेखनी बड़ी।

जो करता छवि की मूर्ति खड़ी
जिसको लख आँखें हुई हरी ॥'

(सर्ग १५ पृ० १६५)

कवि के मानस जगत में वासना और विवेक का यह द्वन्द्व चल ही रहा था कि प्रभावती ने अपने गोरी बाँहों की माल कवि के कंठ में डाल दी और लज्जा से लाल हो गई। कालिदास ने बाँहों की माला को तोड़कर कलाइयों को झकझोर दिया। तिरस्कृता और अपमानिता प्रभावती ने जाकर अपनी माँ से कालिदास के कुकृत्य की झूठी कथा कहकर उसे राज्य निष्कासित करा दिया।

जीवन की संघर्षपूर्ण परिस्थितियों से जूझता कवि कालिदास नर्मदा के तट पर बैठकर जगत के मृदु कटु अनुभवों को कविता की भाषा में प्रकट कर रहा था। कवि गा रहा था कि जीवन की राह टेढ़ी मेढ़ी और पंकिलपूर्ण है किन्तु चलने वाले को मंजिल मिल ही जाती है। जीवन उपवन में फूल और काँटे, चाँदनी और अँधियारी हार और जीत तथा पतझर और बसन्त दोनों हैं। तूफानों में अपने पर काबू पाने तथा ज्वारों के थपेड़ों को सह लेने वाला ही सच्चा मानव है। मानव ही सर्वोपरि है। मन की सीमाओं से उठ कर इन्सान ही भगवान बनता है और इन्सान से बढ़कर कुछ नहीं है—

मानव से बढ़कर चाँद नहीं हरगिज सुन्दर
मानव से बढ़कर कभी असीम नहीं सागर।
मानव मन का हुँकार सिन्धु का गान बना
मानव मन का अंगार बना नभ का निकर॥

(सर्ग १६ पृ० १७१)

अपनी कविता के अंश में छंदों में कवि ने कहा कि श्रम मानव के तन का शाश्वत आभूषण है। श्रम की ज्वाला में प्रदग्ध और श्रम के साँचे में ढला हुआ व्यक्ति ही प्रगति पथ पर अग्रसर होता है। मानव जीवन की महिमा सत्य के संरक्षण में है। सत्यवादी मनुष्य धरा को आलोकित कर अमरत्व प्राप्त करता है। कालिदास का ध्यान जैसे ही कविता से टूटा तो उसने अपने समक्ष एक रूपसी को पाया। उसे देखकर कवि ने मन ही मन प्रश्न किया कि—

लिए भौंह सुरधनुषाकार लिए नयनों में मन्दिर खुमार
दृगों में नील नील आकाश कौन ? ले मधु का पहला प्यार।

कल्पना कर छवि का श्रृंगार, भावनाएँ लेकर मनुहार,
रागिनी अपना रूप सवार, आज आई क्या मेरे द्वार ॥'
(सर्ग १६, पृ० १७३)

उधर रूपसी ललना सोच रही थी कि यह कौन विश्व कवि का अवतार लेकर साकार गीत की भांति नदी के तीर पर समुपस्थित है। यह कौन है ? जो हृदय में जग का प्यार भरे इतना अधिक उदार होकर वाणी के फूलों से जगत को सुवासित कर रहा है। वार्तालाप के मध्य सुन्दरी ने बताया वह मालती है और कवि के गीत की मधुरिमा से अभिभूत होकर बरबस चली आई है। तत्पश्चात, वह चली गई और उसने जाकर राजकुमारी मल्लिका को कालिदास के गीतों की गरिमा का बखान करते हुए कहा कि—

'गीतों में भरी अमृत की धार गीत में भरा हृदय का प्यार,
गीत में का हो की बासुरी, बज रही ले उर की झङ्कार।
गीत सुन झूम रहे तरुपात झूमती और मलय की बात,
गीत सुन रहीं लहरियाँ नाच, गीत सुन खिल जाता जलजात ॥'
(सर्ग १६, पृ० १७६)

मल्लिका ने मालती को स्वर्णिम उपहार का प्रलोभन देकर कालिदास को राजमहल में लाने को कहा। मालती के अनुनय विनय पर मालिन के वेश में कवि राजमहल पहुँचा। मल्लिका ने कवि से प्रार्थना की कि मुझे ऐसे गीत सुनाओ जिससे मेरे तन मन प्राण तृप्त हो जायें, मेरे नयनों में मधुमास छा जाए मेरे निष्क्रिय जीवन में उल्लास का भाव जगे। राजकुमारी ने ऐसे गीत सुनने की कामना की जिसस—

'तिमिर में जागे ज्योतिहास धरा पर झुक आए आकाश
स्वर्ग का मोह सदा को त्याग, हृदय में भर कर प्रेम सुवास।
मनुज पर करे मनुज विश्वास, मनुज पर टिके मनुज की आस,
मनुज के प्राणों की आवाज, पहुँच जाए प्राणों के पास।
धरा से मानव का हो प्यार, करे धरती का वह श्रृंगार,
नवल अंकुर बन फूटे सत्य, हृदय के मानव का उदगार।
गीत सुन रुक जाए तूफान, गगन में थम जाए दिनमान,
पिघल जाए निमम पाषाण झुके गिरि का झूठा अभिमान।
ज्योत्स्ना से धरती हो स्नान झरे रिम झिम की मधु बरसात,
गीत की किरणों से प्रस्फुटित विश्व का हो मुरझा जलजात।

हृदय में उठे प्रीत का ज्वार ज्वार से प्लावित हो संसार,
मिले मानव से मानव गले, प्रेम से ईर्षा-द्वेष विसार।"
(सर्ग १६ पृ० १८३)

महाकवि कालिदास ने मल्लिका के आग्रह पर अनेक मधुर गीत सुनाए, जिनकी प्रथम पंक्तियाँ अविकल रूप से निम्नोद्धृत हैं —

१ चाँद को देखूँ मैं या कि देखूँ तुम्हें
बोल दो रूप की उर्वशी बोल दो।।
(सर्ग १६ पृ० १८४)

२ फूल गया शरद हास।
अब न गगन तिमिर वास।। (सर्ग १६, पृ० १८६)

३ मुझे स्वर्ग की नहीं कामना मुझे मही से प्यार।
लहराता है जहाँ अहर्निश सुख का पारावार।।
(सर्ग १६ पृ० १९०)

४ गीत दो ऐसा मुझे जो गा सकूँ।
प्रश्न जीवन के कठिन सुलझा सकूँ।।
(सर्ग १६ पृ० १९२)

५ विष के घूँट पियो तो जानें।
औरों के सुख स्वार्थ लिए तुम
सचमुच अमर जियो तो जानें।। (सर्ग १६, पृ० १९३)

६ श्रम की ज्योत्स्ना से जग का आँगन ज्योतिर्मय हो।
श्रम पूजित हो देवों से बढ़ श्रम की सदा विजय हो।।
(सर्ग १६ पृ० १९४)

७ तुम मेरे गीतों को समझो या मत समझो।
आने वाली पीढ़ी तो इनको समझेगी ही।।
(सर्ग १६ पृ० १९५)

८ समय की शिला पर लिखे गीत मैंने।
धुलेंगे नहीं जो मिटेंगे नहीं जो।।
(सर्ग १६ पृ० १९६)

९ दर्द से भीगे हुए गीले स्वरों में एक दिन।
साँझ की वेला कि हँसता चाँद अनमना।।
(सर्ग १६ पृ० १९७)

१० ग्रामीण नववधू की शर्मीली पलकों सी।
उतरी नभ से यह पावस की साँझ मदभरी ॥
(सर्ग १६, पृ० २०२)

११ विषम गरल भी पी लेना आसान बात है।
नील कंठ जो सुधा उगलता पी हालाहल।
(सर्ग १६, पृ० २०४)

कालिदास की गीत-सुधा का पान कर मल्लिका सहित समस्त समुपस्थित राज समाज गद् गद हो उठा। कवि की सभी ने मुक्तकंठ से भूरि भूरि प्रशंसा की। सिंहल के राजकुमार कुमारदाससिंह ने कवि को सिंहल आने के लिए सादर आमन्त्रित किया। कालिदास की ख्याति सर्वत्र सौरभ की भाँति फैल गई। महाराज विक्रमादित्य ने सहस्र दूत भेजकर कालिदास को ढूँढ निकाला प्रभावती ने अपने दुष्कृत्य पर पश्चाताप प्रकट करते हुए क्षमा याचना की तथा महाराज ने कालिदास को पुनः राजकवि का सम्मान प्रदान किया। किन्तु स्वाभिमानी कवि ने नम्रता-पूर्वक क्षमा याचना कर ली। अष्टदश सर्ग में महाकवि को विद्योत्तमा के प्रति स्वकृत अनुचित व्यवहार पर पश्चाताप होता है और वे महानता की सजीव प्रतिमा विद्योत्तमा से क्षमा याचना करने उसके द्वार पहुँचे। विद्योत्तमा अब कपालवत थी। उसने कवि से प्रार्थना की कि अब तुम सम्पूर्ण विश्व को काव्य का प्रकाश प्रदान करो।

विद्योत्तमा ने कहा—

अब बाँधूगी मैं नहीं तुम्हें मोह के पाश,
तुम्हें विश्व कवि देखकर होगा मुझे हुलास।
तुम से सारा विश्व ये पाये नित आनन्द
मेरी आकांक्षा यही जाओ प्रभु सानन्द॥"

(सर्ग १८ पृ० २१०)

पति की चरण धूलि लेकर विद्योत्तमा ने पति को सादर विदा किया। ऊनविंश सर्ग में कविश्री तिलक ने 'मेघदूत' 'अभिज्ञान शाकुन्तल' और 'कुमार सम्भव' की सर्जन प्रेरणा के स्रोतों का वर्णन किया है। इसके पश्चात कवि की सिंघल-यात्रा का उल्लेख है। एक दिन कवि ने स्वप्न में सिंघल में धधकती हुई चन्दन चिता देखी। उन्हें सिंहल नरेश कुमारदास सिंह के आमंत्रण का स्मरण हो आया और वे चलते हुए सिंहल पहुँचे। वहाँ एक नर्तकी का आतिथ्य ग्रहण कर कवि ने रात्रि को उसके वहाँ विश्राम किया।

सिंहल नरेश ने एक समस्यापूर्ति के उपलक्ष में आधा राज्य देने की घोषणा की थी। समस्या थी—

'कमल से मिले कमल कहते सभी,
पर नहीं देखा गया ऐसा कभी।'

(सर्ग १६ पृ० २३२)

उस रूपवाला नर्तकी को कवि ने सहज भाव से इस समस्या की पूर्ति बता दी—

'मुख कमल में खिल रहे दृग ये कमल
देखते हम प्यार से जिन को विमल।

(सर्ग, १६, पृ० २३२)

नर्तकी ने राज्य प्राप्ति प्रलोभन में सोते हुए कवि कालिदास का तलवार से वध कर दिया। और महाराज कुमारसिंह के यहाँ पहुँच कर समस्यापूर्ति कर दी। किन्तु महाराज को नर्तकी की कथा पर विश्वास नहीं हुआ। अनन्तर उन्होंने नर्तकी से घटित वृत्तान्त को जान लिया। महाराज कुमारसिंह ने चन्दन की चिता बनाकर महाकवि का ससम्मान दाह संस्कार किया। महाराज इतने खिन्नमन हो गये थे कि वे स्वयं भी उसी चिता में कूद कर भस्मसात हो गए। इसके पश्चात नर्तकी भी चिता की लपटों में कूद कर राख हो गई। इस दृश्य की विडम्बना पर कालिदास महाकाव्य के रचयिता का निम्नोद्धृत कथन कितना सार्थक प्रतीत होता है कि—

अगरु चन्दन की चिता पर जल रही विश्व-कवि की लाश
आग की लपटें विहँस कर रही मनुज का परिहास।
जीत लो चाहे भले तुम जल गगन पवमान,
जीत पाओगे स्वयम् को पर न तुम इन्सान।

(सर्ग १६ पृ० २३५)

इस प्रकार आलोच्य महाकाव्य के माध्यम से महाकवि कालिदास की सम्पूर्ण जीवनी का काव्यात्मक समाख्यान प्रथम बार प्रस्तुत किया गया है। कालिदास की इतिहास सम्मत प्रामाणिक जीवनी तो अनुपलब्ध है फिर भी भारतीय जन-जीवन में प्रचलित किंवदन्तियों ऐतिहासिक अनुश्रुतियों एवं लोकचेतना से समुपलब्ध तथ्यों का समाकलन कर कल्पना मिश्रित आधार पर श्री तिलक ने प्रस्तुत महाकाव्य का इतिवृत्तात्मक संयोजन किया है। मार्मिक प्रसंगों की सृष्टि मौलिक उद्भावनाओं तथा सम्बद्धता के कारण 'कालिदास काव्य' का कथा विधान महाकाव्योचित गरिमा से पूर्ण है। कालिदास के चरित्र में जिस

नतिक दृढता, कत्तव्यनिष्ठा, स्वाभिमान, आत्म गौरव, सजगता, विचार गाम्भीय और भाव प्रवणता का उन्मेष कवि ने दर्शाया है, उसके कारण महाकवि का चरित्र नितान्त प्रेरक और स्पृहणीय बन पड़ा है। विद्योत्तमा, प्रभावती, मालती प्रभृति रूपसी कुल ललनाओ के परिसन्दभ मे महाकवि के चरित्र विकास मे अन्तद्वन्द्व की अवतारणा और अन्य मनोवज्ञानिक सस्पश 'कालिदास' के रचयिता की चरित्र विश्लेषण सम्बन्धी मौलिक सूझ-बूझ के परिचायक हैं। सयोग श्रृगार की परिदृश्य योजना म कवि सिद्धहस्त रचनाकार प्रतीत होता है, क्योकि प्रत्येक मिलन प्रसग को उन्होने नितान्त आकषक एव प्रभावपूण ढग से समायोजित किया है। काव्य की भाषा सम्प्रेषणीय और भावाभिव्यजक तथा शैली प्रसगानुकूल माधुय एव ओजगुणमयी रही है। शब्द चयन म परिष्कार की अपेक्षा कवि से की जा सकती है। क्योकि कही कही ठेठ उदू की शब्दावली के साथ सस्कृत गर्भित पदावली का प्रयोग अवाछनीय ही कहा जायगा। किन्तु ऐसे स्थलो पर भी भाषा भाव-सवहन करने म सवथा समथ रही है। शिल्प सरचना के अन्य उपकरणो (यथा छन्दविधान बिम्ब योजना, प्रतीक सयोजन वणन कौशल, प्रकृति चित्रण आदि) की दृष्टि से भी आलोच्य कृति पूण है। सजन उद्देश्य की महाथता का उल्लेख तो प्रारम्भ मे ही किया जा चुका है। भारतीय सास्कृतिक चेतना के अग्रदूत और मानवीय सवेदनाओं के अमर गायक के रूप म महाकवि कालिदास की जीवन गाथा भी उतनी ही प्रेरक है जितनी कि उनकी काव्य कृतियां। मानवतावादी विचारदशन की मूलभूत उपपत्तियो एव अवधारणाओ को कवि ने सहजतापूवक काव्य के कलेवर मे आग्रहमुक्त होकर सन्निविष्ट किया है और इसके कारण काव्य का वचारिक स्तर समृद्ध हुआ है। समष्टि रूप में महाकाव्य सरचना के रूप विधायक तत्वों की दृष्टि से 'कालिदास' एक सफल काव्यकृति है।

'झाँसी की रानी' महाकाव्य

अप्रितम शौर्य की आग्नेय हुँकृति

८

'झाँसी की रानी' महाकाव्य

अप्रतिम शौर्य की आग्नेय हुँकृति

विश्व भर के महाकाव्यों के विकास-क्रम एवं संरचनात्मक प्रवृत्तियों के अनुशीलन परिशीलन से ज्ञात होता है कि महाकाव्यों की रचना का मौलिक आधार वीरगाथाएँ थी, जिन्होंने कालान्तर में गाथाचक्रों (Cycles of Ballads) का रूप ग्रहण किया और जिनसे महाकाव्य का मौलिक रूप निर्मित हुआ। वीर गाथाओं में वीरों का प्रशस्ति-गान होता था। भारतीय वाङ्मय के अन्तर्गत वेदों में इन्द्र एवं अन्य शक्तिशाली देवों (वीरों) के कार्यों की गौरवात्मक प्रशस्तियाँ मिलती हैं जिन्हें दान-स्तुति, गाथा-नाराशंसी और पुराण-वृत्त कहा गया है। विंटरनित्स प्रभृति विद्वानों के मतानुसार प्रशंसात्मक गीतों से ही महाकाव्यों का प्रादुर्भाव हुआ है।[1] भारत ही क्या ? प्रत्येक देश के साहित्येतिहास में आरम्भिक युग, वीर युग (Heroic Age) के रूप में ही जाना गया है और वीरता की भावना तथा वीर पुरुषों का काव्यात्मक यशोगान इस युग की काव्य कृतियों का मूल प्रतिपाद्य रहा है। इस दृष्टि से भारत के आर्ष महाकाव्यों (रामायण और महाभारत), हिन्दी के आदि महा

---

1 The songs in praise of man probably soon developed into epic poems of considerable length, i.e., heroic songs, and into entire cycles of epic songs centering around one hero." —M. Winternitz, *A History of Indian Literature*, Vol I, Page 314

काव्य (पृथ्वीराज रासो) तथा वीरगाथाकालीन काव्यकृतियों का उदाहरण स्वरूप देखा जा सकता है जिनमें वीररस का स्वर एक उद्घोष के रूप में प्रतिध्वनित हुआ है। हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल में हल्दीघाटी, आर्यावर्त, जौहर, विक्रमादित्य, दस्युवंश, अंगराज, जयभारत, रश्मिरथी, सेनापति कर्ण, तारकवध, चन्द्रगुप्त मौर्य, गुरुगोविन्दसिंह प्रभृति महाकाव्यों में वीरों के अनन्त शौर्य पराक्रम और पुरुषार्थ के रोमांचक आख्यान विनियोजित हैं। इन वीर रसात्मक महाकाव्यों में इतिहास प्रसिद्ध और लोकविख्यात नरपुंगवों के पराक्रम, पुरुषार्थ, शौर्य, स्वाभिमान और बलिदान की गौरवगाथाएं ही सकलित हैं। इसी परम्परा की काव्यकृति श्री श्यामनारायण प्रसाद कृत झाँसी की रानी महाकाव्य है जिसमें महारानी लक्ष्मीबाई की अप्रतिम शौर्य सम्पन्न तथा विश्रुत संग्राममयी जीवन गाथा को महाकाव्योचित गरिमा से मंडित करके बाईस हुंकृतियों (सर्गों) में प्रस्तुत किया गया है। काव्यारम्भ से पूर्व परिचय खण्ड के अन्तर्गत महारानी लक्ष्मीबाई के महिमामय व्यक्तित्व का निरूपण करते हुए कवि ने उचित ही कहा है कि वह स्वतन्त्रता के ध्वज को फहराने वाली रणचण्डिका थी। महारानी ने बुन्देलखण्ड में नव जागरण का महान् उद्घोष करके झाँसी के निद्रा निमग्न जन जीवन में नयी चेतना का संचार किया तथा मातृभूमि की अर्चना में अपना सर्वस्व समर्पित कर दिया—

> लेकर स्वतन्त्रता के ध्वज को निर्भय फहराने वाली थी।
> रणचण्डी के क्रोधानल सम बनकर लहराने वाली थी॥
> वह राज योग की भस्म लगा नित अलख जगाने वाली थी।
> रण भेरी में रव में स्वर भर वह वीर बनाने वाली थी॥
> तुम जागो वीर बुन्देलखण्ड,' यह मन्त्र फूंकने वाली थी।
> निज मातृ भूमि के अर्चन में वह नहीं चूकने वाली थी॥
> निद्रित झाँसी के कण कण में, नवशक्ति जगाने वाली थी।
> इस वीर भूमि की पूजा में, सर्वस्व चढ़ाने वाली थी॥
>
> (परिचय पृ० ७)

झाँसी की रानी महाकाव्य के सम्पूर्ण कलेवर में महारानी लक्ष्मीबाई की आग्नेय हुंकृतियों का ही प्रतिध्वनन है। भारतीय इतिहास की गौरवपूर्ण परम्परा में महाराणा प्रताप, छत्रपति शिवाजी, गुरुगोविन्दसिंह, योद्धा बाप्पा, पन्नाधाय, महारानी पद्मिनी, हाडारानी, कर्णवती, ताराबाई जैसे अनेक युगान्तरकारी

व्यक्तित्व हुए हैं जिन्होंने जातीय स्वाभिमान राष्ट्रीय-गौरव और मातृभूमि के हितरक्षण में अपना सर्वस्व समर्पित करके उत्सर्ग के उच्च कीर्तिमान स्थापित किए हैं किन्तु महारानी लक्ष्मीबाई का यशस्वी चरित्र तो बलिदान का ऐसा देदीप्यमान आलोक-स्तम्भ है, जिसके ज्योतिर्मय विकीरण से असंख्य प्रसुप्त जनों में नव-चेतना का आविर्भाव हुआ। ऐसी नवचेतना जिसने सहस्राब्दियों से पराधीन जनगण को स्वाधीनता के महायज्ञ में प्राणों को आहूत कर देने के लिए अनुप्रेरित किया। भारतीय राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन की विप्लवी भूमिका के निर्माण में सन् १८५७ की क्रांति अविस्मरणीय घटना है और इस क्रांति की अग्रदूतिका और प्रेरणादात्री के रूप में महारानी लक्ष्मीबाई का बलिदान निश्चयतः अद्वितीय है। झांसी की रानी ने अँग्रेजी-साम्राज्यवाद से उस समय टक्कर ली जब उनका शासन-सूर्य मध्याह्न के प्रखर-तेज से दीप्तिमान था बड़े-बड़े राजे महाराजे श्रद्धानत होकर समुद्र पार बैठी महारानी विक्टोरिया का यशोगान करते हुए 'यूनियन जैक' को अपनी राज ध्वजा के साथ फहराते थे। अँग्रेजी साम्राज्य की अपरिमित शक्ति-सामर्थ्य का रानी ने सीमित साधना किन्तु असीमित पराक्रम और स्वाभिमान के बल पर लोहा लेकर अँग्रेजी शासन की नींव को झकझोर कर ऐसा जर्जरित कर दिया कि सन् १९४७ में वह ढह ही गया। इसीलिए भारत के स्वाधीनता-संगर में महारानी झांसी के अवदान का पुण्य स्मरण करते हुए मनीषी कवि ने कहा है कि—

'रानी का रण हुँकार प्रबल, नभ में है अब भी गूँज रहा।
रानी का जय-जयकार सतत, भारत मानस में गूँज रहा॥
रानी है अब भी डोल रही, कण-कण में नूतन शक्ति बनी।
× × ×
नश्वर तन से है दूर किन्तु जिह्वा पर अमर कहानी है।
स्वातन्त्र्य वरद कहता रहता मां झांसी वाली रानी है॥'

(परिचय पृ० ८)

झांसी की रानी महाकाव्य के समारम्भ में कवि ने काव्य की सृजन प्रेरणा पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि रानी की अमर कहानी यद्यपि बीते हुए युग की शान है किन्तु यह वह वीर मन्त्र है जिसके द्वारा भारत का कण कण जगाया जा सकता है। जर्जरित जवानियां, रो रही आयभूमि और सो रहे गुरुद्वारों का एक मात्र सहारा यही गौरव गाथा है। लक्ष्मीबाई के जन्म का कवि ने दैवी शक्ति का आविर्भाव कहा है। मोरोपन्त की गर्भिणी पत्नी ने स्वप्न में देखा कि कोई ममस्य शक्ति उनसे कह रही है कि निराश मत हो, मैं पृथ्वी

पर आकर जन जन म ज्योति जगाऊँगी। अबला को सबला बनाकर भारत की ईति भीति को दावाग्नि के समान जला दूगी। लक्ष्मीबाई के प्रसव को कवि ने महाशक्ति का भू पर अवतरण ही माना है —

"वह एक शक्ति भू पर आई
सहसा विपदा घन पटल चीर।
उस व्रती विप्र की दुहिता बन
लक्ष्मी लक्ष्मी बन कर आई॥"

(पहली हुँकार पृ०४०)

मनू (महारानी लक्ष्मीबाई का बचपन का नाम मनू था उसे छबीली भी कहते थे) के जन्म के चौथे दिन ही माँ का निधन हो गया। कुछ समय पश्चात मोरोपन्त के आश्रयदाता चिमा जी भी स्वर्ग सिधार गए। तभी बाजीराव पेशवा के निमन्त्रण पर मोरोपन्त पुत्री सहित काशी छोडकर बिठूर चल गए। शशवावस्था से ही मनू निर्भीकता और अटूट धय का परिचय देने लगी थी। एक दिन बिठूर के बाहर नाना साहब और राव साहब के साथ मनू घोडे पर सवार होकर जा रही थी तभी घुडदौड म नाना साहब घोडे से गिर कर घायल हो गए। मनू नाना साहब को अपने घोडे पर बठा कर द्रुत गति से किले मे ले आयी और अपनी अश्वारोहण कला का प्रभूत परिचय दिया। घायल नानासाहब को देखकर मनू ने करुणा विगलित भाव प्रदशन के स्थान पर उदबोधनात्मक स्वर म कहा कि—

'नाना साहब! क्या सोते हो बलहीन बने हो मर्दाने।
क्या इसी भुजा का बल लेकर, थे चल गगन पर भू लाने॥

× × ×

जागो-जागो हे मौनव्रती! अभिमान शान की रक्षा कर।
नर के मुण्डो की रक्षा कर गौ के भुण्डों की रक्षा कर॥"

(दूसरी हुँकार, पृ० ५४ ५५)

घायल नानासाहब को देखकर सभी लोग बहुत घबराए हुए थे किन्तु मनू अपने पिता मोरोपन्त स कह रही थी कि जरा सी चोट लगने स ही लोग इतने व्यग्र और चिन्तातीन क्या हैं? शोणित देखकर घबरा जाना क्षत्रिय धम नही है। क्षत्रिय का तो अंग अंग भी कट जाय तो भी उसे आगे ही बढ़ना चाहिए—

यह है क्षत्रिय का धर्म नहीं, शोणित का लख घबरा जाना।
उसका तो यह बाना ही है निभय अतक स लड जाना॥

अवयव अवयव भी कट जाए, पर गरज गरज आगे बढ़ना ।
शस्त्रों से रिपु को मार मार, जयमंत्र सतत पढ़ते रहना ॥'
(दूसरी हुँकार, पृ० ५७)

प्रत्युत्तर में मोरोपन्त ने कहा, बेटी ! नाना का घाव दो अंगुल बड़ा था, न जाने कितना रक्त स्राव हुआ होगा ? यह सुनकर छबीली ने कहा, तात ! मुझे तो सागर को शोणित से भर लड़ने वाले वीरों का इतिहास सुनाते थे। आपने ही शोणित से पिचकारी भर कर फाग खेलने वालों और शरीर पर अस्सी घाव लगने वाले पौरव नरेश का आख्यान सुनाया था तो नाना साहब के लिए इतनी चिन्ता क्यों ? मोरोपन्त ने कहा—नाना साहब सोलह वर्ष का बालक है, वह इतना घातक घाव नहीं सह सकता। यह सुनकर छबीली ने आवेश पूरित स्वर में कहा कि सोलह वर्ष के वीर बालक अभिमन्यु ने चक्रव्यूह को खण्ड-खण्ड किया था। मोरोपन्त ने पुनः कहा कि बेटी ! अब वह समय नहीं है। ये कथा आख्यान वीत युग के आदर्श थे। आज तो स्थिति यह है कि—

'अब अंग्रेजों के वैभव का, है सूर्य गगन में चमक रहा ।
जिससे हत होकर देश-तेज, भूतल में सोया दमक रहा ॥'
(दूसरी हुँकार पृ० ६१)

यह सुनकर मनू उत्तेजित हो गई और बोली कि आपने कायर उर की बात कही है। मैं अपने जीवन में पद्मिनी, ताराबाई, हाड़ारानी और जीजा बाई के आदर्शों का अनुकरण करूँगी। मैं कभी भी विघ्न बाधाओं से डर कर शत्रु के आगे नतमस्तक नहीं होऊँगी—

मैं डरने वाली नहीं तात !
विघ्नों के तप्त अंगारों से।
यह सिर न कभी झुक सकता है,
बैरी के तीखे वारों से ॥
(दूसरी हुँकार पृ० ६२)

पिता पुत्री के उद्धृत परिसंवाद से स्पष्ट है कि महारानी लक्ष्मीबाई बाल्यावस्था में ही वीरता के जीवन्त आदर्शों को अपने व्यक्तित्व और चिन्तन में आत्मसात कर चुकी थी। झांसी नरेश गंगाधर राव से विवाह हो जाने के पश्चात मनू महारानी लक्ष्मीबाई बन गई। वैवाहिक जीवन की साज-सज्जा और हास विलास ने सुख समृद्धि के स्थान पर महारानी के मन में एक विचित्र द्वन्द्व को जन्म दिया। वह सोचने लगी कि इस भव्य भवन में बैठ कर मैं भारत के उद्धार का कोई ठोस प्रयत्न नहीं कर सकती। भोगमय जीवन की साज

मज्जा मेरे गौरव का परित्याग करा रही है। मेरी रानी हाथ चपल तुरग की वल्गा पकड़ो ॥ वर्जित कर रहे हैं। आज भारत के नभ पर काले मेघ घहरा रहे हैं। भारत वसुन्धरा पर भूचाल आया हुआ है। देश में जन-जीवन में पतझड़ का निवास है और मैं दासियों के बीच बैठी सुगन्धपूर्ण शृंगार प्रसाधना द्वारा रूप सज्जा में व्यस्त हूँ। जब बहिनों का अरुण सुहाग धुल रहा हो तो मैं फाग और बहार का आनन्द कैसे लूट सकती हूँ—

घुले बहनों का अरुण सुहाग मचा हो भूतल पर चीत्कार।
नित्य मैं खेलूँ हँस हँस फाग और लूटूँ व्यजन बहार।।'
(पाँचवीं हुँकार पृ० ६०)

यह सोचते सोचते रानी अधीर हो गई। उसकी बाँहें असि धारण की उत्कट आकांक्षा से फड़कने लगी। किन्तु वह विवश थी। पति-आज्ञा का निर्वाह और विवाह का धर्ममय बंधन उसे इस ओर बढ़ने से रोक रहे थे। महारानी अनुभव कर रही थी कि मानो महल का कण कण नित्य उसका उपहास कर रहा है। इसी अवसर पर तीन दासियों ने प्रवेश किया। रानी ने दासियों से उनकी दिनचर्या एवं जीवन लक्ष्य के सम्बन्ध में अनेक प्रश्न किए, जिनके उत्तर में दासियों ने सीधे साधे शब्दों में कहा कि उनका स्वर्ग अपवर्ग सेवा कर्म में निहित है। यह सुनकर महारानी लक्ष्मीबाई ने दासियों को उद्बोधन करते हुए नारी की गौरव गरिमा एवं शक्तिमत्ता से अवगत कराके उन्हें देश प्रेम की भावना से ओत प्रोत किया। महारानी ने कहा कि क्या तुमने कभी समर देखा है? कभी स्वदेश अनुराग के लिए कोमल तन को तपाया है? क्या तुमने वीरों की जयकार की है? घोड़ों पर आरूढ़ होकर कभी तीरों से लक्ष्य भेद किया है? आदि। महारानी की प्रश्नावली सुनकर दासियों में हर्ष छा गया। उनकी प्रसुप्त चेतना नव्य उत्कर्ष भाव से भर गई। तभी महारानी लक्ष्मीबाई ने नारी सेना संगठित करने का उदात्त संकल्प किया—

जगाऊँगी फिर नारी जाति करूँगी सेना का तयार।
चढाकर मुण्डों का नवहार, करूँगी माता का शृंगार।।
भले ही हो दुखों का घात, किन्तु नस नस में फहरे केतु।
चढाऊँगी अरि उर का रक्त बना नारी सेना का सेतु।।

× × ×

जगाया जा सकता है आज, पुन सतिया का पावन त्याग।
लगाई जा सकती है आज, पुन पतिता के उर म आग॥
बनाकर मातृ भूमि को मुक्त किया जा सकता है उत्थान।
उडाया जा सकता है दिव्य अय दशा म अरुण निशान॥'

(पाँचवीं हुँकार, पृ० ६४ ६५)

महारानी ने निश्चय किया कि मैं किंकरियो को तलवार सिखाकर कुशल घुडसवार बनाऊगी। जिस तन को य फूलो स सजाती हैं उसे निषग, कटार और भाले से सज्जित कराऊँगी। रनिवासा को शस्त्रागार मे बदल दूँगी। रानी ने दासियो से यह शपथ ग्रहण करने को कहा कि—

'शपथ खाओ छोडोगी राग,
शपथ खाओ कर दोगी त्याग।
शपथ लो अर्पित कर निज प्राण,
जगाओगी इस भू का भाग॥'

(पाचवी हुँकार, प० ६६)

महारानी की इच्छानुसार दासिया कृत-सकल्प हो गइ। रनिवास के रग ढग मे इस आपातिक परिवतन को परिलक्षित कर महाराज गगाधर राव ने महारानी लक्ष्मीबाई स कहा, प्रिय ! तुम प्रतिपल युद्ध विद्या का ध्यान सखियो को व्यथ ही कराती हो। इनका कत्तव्य तो गृहिणी धम का पालन करना है। यह सुनकर महारानी ने रूपनगढ की राजसुता, कणवती हाडारानी आदि कुल-ललनाओ की वीरगाथाओ को उदधृत करत हुए स्पष्ट शब्दो म कहा—

दश भक्ति का मानदण्ड है,
ललनाओ की जीवित शक्ति।
ललनाओ की सुदृढ भक्ति ही
विमल देश की है शुभ भक्ति॥'

(छठी हुँकार पृ० १०६)

पिता मोरोपन्त और पति गगाधर राव से हुए परिसवादो क उपयुक्त उदधृत अशों से स्पष्ट है कि कन्या और कुल-ललना दोनो ही रूपो म हम महारानी लक्ष्मीबाई की वाणी म वीरत्व भाव की आग्नेय हुँकृतियों का उद्‌घोष पाते हैं। काव्य की सातवीं हुँकार (सप्तम सग) म महारानी का मातृ रूप द्रष्टव्य है। माता लक्ष्मीबाई अपने नन्हे शिशु का लोरी सुनाते हुए वीर भावनाओ की ही अभिव्यक्ति करती है। वह कहती है—

चुटकी बजा बजा कर कहती लाल ! बड़े हो जाओ तुम।
वीर शिवा राणा प्रताप सा कर्म क्षेत्र अपनाओ तुम ॥
पाथ पुत्र से होकर प्यारे ! नित्य अनीति मिटाओ तुम।
माता का श्रृंगार पुत्र हे लाल ! प्रसन्न सजाओ तुम ॥
बरछी भाल, तीर कटारी फिर से विहँस जगाओ तुम।
लाल धरा पर पूर्व काल सा, गौरव गान सुनाओ तुम ॥

(सातवी हुँकार, पृ० १४४)

अपने पुत्र के भावी जीवन के सम्बन्ध में महारानी कल्पना करती थी कि इसे गीता पढ़ाऊँगी और बाल्यावस्था से ही घोड़े पर चढ़ना सिखाऊँगी। छोटी सी तलवार थमा कर इसे लड़ना और समरांगण में शत्रु दल पर प्रहार करने की कला में पारंगत करूँगी। कुरुक्षेत्र के वीरों की गौरव गाथा सुनाकर इसे सत्य स्वत्व और स्वदेश रक्षण हेतु बलिदान होने के लिए प्रेरित करूँगी। किन्तु दुर्भाग्यवश महारानी की आशाएं धूल धूसरित हो गयी। महारानी की आँखों का तारा तीन मास की आयु में ही चल बसा। कवि के शब्दों में—

'हाय ! लाल तीन मास में
शून्य गोद करके जाना।
वंश दीप पूजा से पहले
झिल मिल करके बुझ जाना ॥

(सातवी हुँकार पृ० ११७)

आठवी हुँकार में हम रानी को शोक सन्तप्त पाते हैं। किन्तु शोकातुर महारानी भी भारत के गौरवमय अतीत का ही पुण्य स्मरण कर रही थी। महल के भीत चित्रों को देखकर वह सोच रही थी कि यह कैसा विधि का विधान है ? जिस भारत भूमि का यश फारस ईरान तक फैला हुआ था वही आज हताश पड़ी है। रास का आगार ब्रजधाम काशी चित्रकूट और वीर भूमि मेवाड़ सभी में सन्त्रस्त नीरवता का साम्राज्य है। महारानी पदमिनी देवल देवी, कर्णवती ताराबाई दुर्गावती, हाडारानी और सारंधा की दिव्य मूर्तियों ने महारानी को देशोद्धार के लिए प्रेरित किया। उसने डलहौजी की राज्य हड़पने की नीति को असफल बनाने के लिए दामोदर को गोद ले लिया। दूरदर्शी महारानी ने दामोदर के यज्ञोपवीत के मिस सभी नरेशों को निमन्त्रित कर उनसे देश की राजनीतिक स्थिति पर परामर्श करने का अवसर ढूँढ निकाला। कवि के शब्दों में—

"यज्ञोपवीत का उत्सव तो केवल अतिव्याप्त बहाना था।
अरि की आँखो में धूल झोंक भारत को पुन जगाना था ॥

× × ×

रिपु दल की कड़ियाँ तोड़ तोड़, माता को मुक्त कराना था।
अपना प्रसिद्ध वह गौरव ध्वज, फिर से जग मे फहराना था ॥"

(नवीं हुँकार, पृ० १३३ १३४)

दामोदर के यज्ञोपवीत के अवसर पर दिए गए वक्तव्य मे महारानी लक्ष्मीबाई की हुँकार पुन सुनाई देती है। महारानी ने ओजपूर्ण शैली में कहा कि वीरो। अब सोने का समय नही है। यह समय हृदय के रक्त से मातृभूमि के पाद प्रक्षालन का है। भीष्म पितामह की भाँति दृढ प्रतिज्ञ हो जाओ। कुम्भज ऋषि के समान अञ्जलि पर रखकर हँसते हुए समर सिन्धु का पान करो। सघन-वन सदृश्य अरि दल को दावानल बनकर ध्वस्त कर दो। हिमालय के सिर पर स्वतन्त्रता का राज्यकेतु फहरा दो। यह समय रनिवासो म केलि क्रीडाओ का नही अपितु स्वाधीनता समर म जूझने का है। अपनी वक्तृता को समाप्त करते हुए रानी न कहा --

अब समय आ गया है रिपु को समर का पाठ पढाने का।
माता के मन्दिर म हस कर अब प्राण प्रसून चढ़ाने का ॥
भूलें न कभी यह वीर वेष, वीरो में भरी जवानी है।
कण कण म गूँज रही प्रतिपल राणा की गाथा मानी है ॥'

(नवी हुँकार, प० १३६)

महारानी की ओजस्वी वक्तृता सुनकर समस्त राज समाज तमतमा उठा। दीवान जवाहरसिंह रघुनाथसिंह आदि नरेशो ने अरि दल के अत्याचारो से लोहा लेने की प्रतिज्ञा की। महारानी लक्ष्मीबाई न इस अवसर पर गगाजल लेकर वीरो की तलवारो का जय मन्त्रोच्चार करते हुए अभिषेक किया और जय निनाद स सारा गढ गूँज गया।

दसवी हुँकार में कवि न अँग्रेजी शासन की नृशसताओं का निरूपण किया है। बीबीगढ मे मृत गोरो का बदला लेने के लिए अँग्रेजो ने द्विजों को पकड पकड कर उनसे मृतो का शोणित चटवाया। अजनाले म छ्यासठ बच्चो को एक गुम्बद म बद करके तड़पा-तड़पा के मार डाला। फरुखाबाद के नवाब को शूली पर लटका दिया। अवध मे माँ बहनो की लाज से फाग खेला गया। रगून भी रक्त रजित हो गया। कवि के अनुसार—

'जाति धर्म पर ऐसा सकट, मा बहनो का हा हा कार।
जलते हुए घरो के भीतर बूढे बच्चो का चीत्कार॥
जलती हुई लाज की होली, जलता मिटता अपना देश।
अपने बच्चो के शोणित से, रगा हुआ माता का वेश॥
× × ×
भूल जायें सब मन्त्र ऋचाएँ भूलें कलमा और कुरान।
भूलें सांख्य योग का पढना भूलें पोथी और पुरान॥
भूले हिंदू जप, तप, व्रत को मुस्लिम रोजा और नमाज।
मसजिद मे सूखे पगम्बर, मंदिर मे रोएँ सुरराज॥'

(दसवी हुँकार पृ० १४६ १४७)

महारानी आए दिन अँग्रेजो के अत्याचारो के विवरण सुन रही थी। उसका खून खौलता था। उसने नागिन सी तलवार लेकर प्रतिज्ञा की कि मातृ भूमि का सम्मान बचाने के लिए मैं अरि मुण्डो का अपूर्व दान करूँगी। जन-कष्ट निवारण हेतु महारानी ने सागरसिंह डाकू से लोहा लेकर उसे हराया और फिर उसका हृदय परिवर्तन कर देश सेवा के लिए वचनबद्ध किया। (ग्यारहवीं हुँकार पृ० १६५) अन्तत महारानी ने निश्चय कर लिया कि अँग्रेजो से लोहा लेना ही होगा। अत उसने युद्ध सज्जा के हेतु दुर्ग की व्यवस्था और जन गण सगठन का गुरुतरकार्य अहर्निश जुटकर प्रारम्भ कर दिया। छत्रपति शिवाजी और महाराणा प्रताप की दुहाई देकर रानी ने जन जीवन म नव चेतना प्रादुर्भूत की। महारानी ने अपने सदेश मे कहा—

'हे भारत के नव गौरव! मेरा सदेश यही है।
तृण से लेकर भूधर को मेरा आदेश यही है॥
यह धरणी है धीरो की वीरो की यह जननी है।
इसलिए आज तन मन से इसकी रक्षा करनी है।"

(बारहवी हुँकार, पृ० १७५ १७६)

महारानी की गतिविधियो पर अँग्रेजी शासन की कडी नजर थी। अन्तत महारानी की योजनाओं को ध्वस्त करने के लिए गोरी सेना ने झांसी के दुर्ग पर धावा बोल दिया। महारानी के लिए यह आक्रमण अप्रत्याशित या अनाहूत नही था। अरिदल को देखकर महारानी के लोहित ललाट पर रौद्र रूप साकार हो उठा। वह मन ही मन खिल उठी कि आज जन्म भूमि को

प्राण प्रसून चढाने रणचण्डिका को जी भरकर रक्त पिलाने तथा खप्पर वाली को अरि मुंडमाल पहनाने का अपूर्व अवसर मिला है। महारानी ने शपथ ली कि—

"झाँसी मेरी है मैं न कभी,
अरि को यह गढ लेने दूंगी।
है मातृ भूमि की शपथ आज,
अरि को न कभी सोने दूंगी॥"

(तेरहवीं हुँकार, पृ० १८१)

महारानी के कुशल नेतृत्व, दूरदर्शी युद्ध सज्जा, सुसंगठित सैन्य संचालन और जनता के उच्च मनोबल के कारण अंग्रेजी सेना त्राहि त्राहि कर उठी। कवि के अनुसार—

'गोरी पल्टन शोणित से तर कहती यह कैसी रानी है?
हो गया आज से दुर्लभ अब वह टेम्स नदी का पानी है॥
अब लौट न पायेंगे घर का यह रानी बनी भवानी है।
इसके आगे हम लोगों की अबला सम बनी जवानी है॥
ये नहीं जानते भारत की नारी में अभी रवानी है।
अब भी यमुना की धारा से सुन पड़ती वीर कहानी है॥
तो कभी नहीं हम पद रखते यह वीर देश अभिमानी है।
नारी में जब यह शक्ति भरी, तो नर की कौन कहानी है॥"

(तेरहवीं हुँकार, पृ० १८८)

और इस प्रकार महारानी विजय श्री को वरण करने ही वाली थी कि दो गावों की जागीर प्राप्ति के लोभ में देशद्रोही दूल्हाजी और पीर अली ने मध्यरात्रि के समय अंग्रेज सेनापति रोज को गढ का सम्पूर्ण रहस्य बता दिया तथा दुर्ग द्वार खोलने का जघन्य कृत्य करना भी स्वीकार कर लिया। इसी बीच स्टुअर्ट नयी सेना लेकर आ धमका। शत्रु दल ने षडयन्त्रकारी योजना के अनुसार दुर्गद्वार से ही गढ पर भयंकर आक्रमण किया और फाटक को चूर करती हुई सेना अन्दर प्रविष्ट हो गई। अंग्रेजों की भयंकर गोलाबारी से गढ के भवन अस्तबल, पुस्तकालय, मुहल्ले दूकानें धू धू कर जलने लगे। महारानी के वीर सैनिक अरिदल को गाजर मूलों की तरह काट रहे थे। रक्त के परनाले बह रहे थे। महारानी रौद्र रूप धारण किए शत्रु वाहिनी का संहार कर रही थी। कवि के शब्दों में—

"रानी अरि गदन काट काट,
उड़ रही पवन म फर फर, फर।
लप लप करती असि जिह्वा से,
शोणित बहता था तर तर, तर॥"

(पन्द्रहवीं हुँकार, पृ० २११)

शत्रु सेना समुद्र की भांति उमड़ रही थी। एक के बाद एक गढ के मोर्चे टूटते जा रहे थे। कुशल तोपची गौस खाँ के निधन से महारानी को भयंकर आघात लगा। शत्रु ने सब ओर से गढ म प्रवेश पा लिया, तो भी रानी अधीर नही हुई। उसने कहा कि विधाता हमसे वाम है और जयलक्ष्मी दूर है। बचे हुए वीर सैनिको को गढ के गुप्त पथ से बचकर निकल जाना चाहिए और शत्रु को परास्त करने की नयी योजना बनानी चाहिए। मेरे तन को शत्रु स्पर्श भी नही कर सकता। मैं स्वयं किले के बारूद भण्डार को आग लगा कर भस्म हो जाऊगी—

है भरा हुआ बारूद से इस वीर किले का वक्षस्थल।
जिससे रिपुदल की छाती म धडकन होती रहती प्रतिपल॥
अब जाकर उसम आग लगा, मैं स्वयं भस्म हो जाऊँगी।
युग के बिछुड़े निज पितरो के पद-पंकज म मिल जाऊँगी॥

(पन्द्रहवीं हुंकार, पृ० २२२)

यह सुनकर झांसी दुर्ग की रुद्राणी को धम पुरोहित ने कहा कि जिस महारानी ने स्वराज्य की वेदी पर मर मिटने का सकल्प लिया है उसे इस प्रकार कायरो की भांति प्राण बलि नही देनी चाहिए। यद्यपि दिल्ली विजित हो गई है कानपुर का भी पतन हो गया है किन्तु विन्ध्य अवध और महाराष्ट्र अभी स्वतन्त्र हैं। इन प्रदेशो म शक्ति सगठन करके शत्रु से फिर लोहा लेना चाहिए। पुरोहित ने परामश दिया कि गढ के गुप्त माग से नही अपितु शत्रु सेना को चीरते हुए महारानी यहाँ से बचे हुए सनिको के साथ प्रस्थान करे और कालपी म पेशवा की सेना को जूझने के लिए सन्नद्ध किया जाय। महारानी ने धम पुरोहित और सेनापतियो के परामश के अनुसार गढ को कुशलता से पार किया और पथ के सकटो को झेलती हुई कालपी पहुँची। महारानी के कालपी म पदापण करते ही मातृभूमि की स्वतन्त्रता की कल्पना वहाँ के जन-जीवन म जाग उठी। जन जन म देश प्रेम और जातीय स्वाभिमान जाग उठा। कवि के शब्दों म—

'जग उठी प्रजा नवीन भाव मुस्करा उठे।
एक साथ ही सहस्र ओठ फरफरा उठे॥
जग उठे स्वजाति के दबे व्रती जवान भी।
जग उठे स्वतन्त्र आर्य धाम के निशान भी॥

× × ×

जग पड़ा स्वदेश प्रेम, तरु पवन, पहाड़ में।
जग उठी नवीन शक्ति आर्य हाड़ हाड़ में॥
जग पड़ी स्वतन्त्र शब्द सिंह की दहाड़ से।
जग पड़ा त्रिपुण्ड स्वस्ति मन्त्र की पुकार से॥"

(उन्नीसवीं हुँकार, पृ० २५३)

कालपी नगर के जन-जन और कण-कण में महारानी ने स्वदेश प्रेम का महान् मन्त्र फूँक दिया। महारानी ने कहा कि स्वदेश प्रेमियो सिंहनाद करते हुए बढ़ो। मर्त्य देह का मोह त्याग कर सत्य साधना में जुट जाओ। सामने खड़े पहाड़ शृंग को धूल कण समझ कर रौंद दो। काल के कराल वक्ष पर सदर्प चढ़ जाओ। सप्त सिन्धु गर्जना को अपना गान मानकर प्रचण्ड वायु और प्रलयंकर रुद्र के समान शत्रु पर टूट पड़ो। स्वधर्म के प्रकाश और स्वदेश की ध्वजा को उड़ाने के लिए निरन्तर बढ़ते रहो। महारानी ने हुँकार किया कि—

"रोक दे समुद्र तो अगस्त्य सा बनो बढ़ो।
टोक दे नगेन्द्र तो प्रचण्ड वज्र सा बढ़ो॥
सामने अनीति हो कड़ी कड़ी मरोड़ दो।
सामने कुरीति को तृणालि तुल्य तोड़ दो॥

× × ×

कर्मवीर हो प्रसन्न कर्म क्षेत्र में बढ़ो।
धर्मवीर हो प्रसन्न धर्म क्षेत्र में बढ़ो॥'

(उन्नीसवीं हुँकार, पृ० २५४)

महारानी ने पुनः कहा कि यदि देश के जवान झुक गए तो देश ही झुक जायगा। यदि जवान रुक गए तो स्वदेश रुक जायगा। जवानों के शस्त्र रुकते ही देश का गौरव और स्वाभिमान धूल में मिल जायगा। इसलिए—

"इसलिए महान धर्म है विलास त्याग दो।
नाशवान है सुरम मोहपाश त्याग दो॥
एक हो बढो जयी! सुकीर्ति ही महान है।
आज देश बन्धुओ! स्वधर्म ही महान है॥"

(वही पृ० २५५)

महारानी के अमर सदेश ने कालपी के जन-मन मे स्वदेश प्रेम का मधुर गान गुजा दिया। नौजवानो ने कृपाण लेकर मातृ भूमि रक्षण की शपथ ली। उधर लुहारीगढ को जीतने के पश्चात् सेनापति रोज के नेतृत्व मे अंग्रेजी सेना ने बुन्देलखण्ड पर आक्रमण कर दिया। कालपी म लोमहर्षक युद्ध हुआ। बुन्देलखण्ड के नौजवानो ने अद्भुत शौर्य और पराक्रम का परिचय दिया। महारानी समर भवानी बनी हुई कालपी युद्ध का कुशल सचालन कर रही थी। वह दातो मे घोडे की लगाम दबाकर दोनो करो मे कृपाण धारण किए हुए रण मतवाली चण्डिका की भाति अरि मर्दन कर रही थी। बीच-बीच म अरि व्यूह को चीरती हुई महारानी वीरो के मध्य उपस्थित होकर उनमे प्राणोत्सर्ग का महामन्त्र फूक रही थी। रानी कहती थी—

"क्या देख रहे हो हे वीरो! रणभूमि नही सोने की है।
भारत जननी का पद पकज, अरि शोणित से धोने की है॥
इसलिए बढो चिन्ता न करो रचक इन नश्वर प्राणो की।
बैरी की छाती पर गरजो कुछ भीति न हो अरि बाणो की॥
अरि की तोपो के मुँह म ही विकराल बाहु दो अभी डाल।
अपनी सेना के सम्मुख अब रुक जाये आकर महाकाल॥

(क्कीसवी हुँकार पृ० २६४)

महारानी की आग्नेय हुँकृति से अनुप्रेरित वीर कालो क दूतो के समान प्राणो का मोह त्याग कर दुगम गोलो को मार म भी आगे बढकर प्रहार कर रहे थे। बुन्देलखण्ड की मन्दिनी लाशो से पट गई आकाश प्राणो से भर गया और गोलो के गर्जन से पवन जर्जरित हो उठा। रणधीरो की भीषण ललकारो से दिशाए भी कम्पित हो गइ। युद्ध क्षेत्र का यह नाटकीय परिवर्तन देखकर अंग्रेज सेनापति रोज भी घबडा गया। इसी बीच स्टुअर्ट नयी विशाल वाहिनी लेकर आ पहुँचा। रानी को यद्यपि विजय की आशा थी किन्तु विशाल वाहिनी के समक्ष वह विवश थी। रानी का तन घावों से जर्जरित हो रहा था। घोडे के शरीर से भी शोणित झर रहा था। रानी फिर भी

निराश नहीं हुई। वह अमराई में बैठकर अपने पाँचो सरदारों के साथ आगामी युद्ध की योजना बना रही थी कि सूचना मिली, पुन शत्रु ने भयकर आक्रमण कर दिया है। रानी ने कहा कि आज अतिम सग्राम होगा। अत अपने पुत्र को वीर कुवर रघुनाथ सिंह को सौंपकर उसने कहा कि—

"यदि जयलक्ष्मी ही रूठ जायें,
तो सुत का प्राण बचा लेना।
अरि से छिप दक्षिण भारत मे,
रक्षित इसको पहुँचा देना।।"

(बाईसवीं हुँकार प० २६०)

यह कह कर राजभवानी ने जननी का जय जयकार किया। इसी बीच महारानी की सखी सुन्दर अस्तबल से नया चचल घोडा ले आयी जो रूप, रग और फुर्ती मे बेजोड था। घोडे को देखते ही रानी ने कहा कि यह तो अडियल घोडा है। इतना समय नही था कि घोडा बदलकर लाया जाता अत रानी उसी घोडे पर सवार होकर आजादी के दीवाने सरदारो को साथ लिए शत्रुओ पर टूट पडी। भीषण तोप के गोली की अनदेखी करके रानी दोनो हाथो से तलवार चलाती हुई अरि-मुण्डों को काट-काट कर धरती पाट रही थी। रानी के केवल चार ही साथी शेष बचे थे किन्तु फिर भी वह निर्भीकता से लोहा लेती हुई आगे बढ रही थी। इतने मे रानी के वक्षस्थल के नीचे सगीन का प्रहार हुआ। इसी बीच घोडा अडकर खडा हो गया और रानी की बायी जघा पर गोली लगी। रानी फिर भी जूझ रही थी। इसी बीच रानी पर पीछे से असि प्रहार हुआ जिसमे उसके सिर का बायाँ भाग नेत्र समेत कट कर गिर गया। अब तो विकराल कालिका के समान रानी ने दो प्रहार कर रहे गोरों को काट दिया और जसे ही लडखडा कर घोडे से गिर रही थी कि रघुनाथसिंह ने रानी को बीच मे ही थाम कर अपने घोडे पर उठा लिया। रघुनाथसिंह महारानी को उसी दशा म लेकर बाबा गगादास की कुटिया पर छिपते छिपाते पहुँचा। रानी की सास धीरे धीरे चल रही थी उसके होंठ हिल रहे थे। रानी के उर मे मर्माघात था और जीवन-दीप का प्रकाश मन्द होता जा रहा था। कवि के शब्दो मे महारानी मानो सोच रही थी कि—

अमर शौर्य का अम्बर म फहरेगा अरुण निशान ?
क्या स्वातन्त्र्य भवन का फिर से होगा प्रभु ! उत्थान ?

× × ×

गूँज उठेगा कण कण में है विश्व पूज्य यह देश ?
चमकेगा स्वातन्त्र्य भवन के आँगन म चर वेश ?

(महाप्रयाण सर्ग पृ० ३०७)

इसी अवसर पर बाबा गंगादास ने महारानी के मुख में गंगाजल डाला जिसका पान करते ही रानी का जीवन-दीप अनन्त-तम में लीन हो गया और पार्थिव शरीर प्रचण्ड पावक की अर्चियों म समा गया। कवि के अनुसार चिता के स्फुलिंगो म मानों देश हित म तन-मन धन समर्पित करने वाली वीराङ्गना का यशस्वी स्वर्ण ज्योतिमय होकर आविर्भूत हो रहा था।

इस प्रकार झाँसी की रानी' महाकाव्य म भारतीय इतिहास की एक ऐसी नारी के चरित्र का महत्वाङ्कन हुआ है जिसका जीवन आद्यांत आग्नेय हुँकृतियो से परिपूर्ण था। कन्या, कुमारी, कुल ललना, माता, राजमाता आदि नाना रूपो मे महारानी लक्ष्मीबाई ने अनन्त शक्ति अप्रतिम शौर्य, अदम्य उत्साह और अपराजेय उत्सर्ग भाव का परिचय दिया। झाँसी की रानी की जीवन गाथा तत्कालीन जन चेतना की क्रान्तिमन्तता का सच्चा प्रतिनिधित्व करती है। झाँसी की रक्षा के लिए जन गण द्वारा किए गए अपूर्व बलिदान का शब्द चित्र इस दृष्टि से उद्धरणीय है—

'प्यारी झाँसी की रक्षा की वीरो ने सिर की माला से।
धनिको ने द्रव्य निधानो से दीनो ने उर की ज्वाला से॥
जननी ने वीर सपूतो से सतियो ने अचल सुहागो से।
ललनाओ ने गढ रक्षा की निज राग रग के त्यागो से॥

(पन्द्रहवी हुँकार पृ० २८८)

मरण को महोत्सव मानकर वरण करने की अदम्य आकांक्षा सैनिकों मे महारानी झाँसी ने ही भरी थी। महारानी ने अपने आत्मोत्सर्ग द्वारा भारतीय जन मानस म स्वातन्त्र्य प्रेम, स्वजातीय स्वाभिमान और राष्ट्रीय-सम्मान का ऐसा चिरन्तन कीर्तिमान सस्थापित किया जो भारतीय स्वाधीनता सग्राम मे जूझने वाली पीढियो के लिए प्रेरणा का अक्षय स्रोत बना। इस दृष्टि से कविवर श्री श्यामनारायण प्रसाद ने आलोच्य महाकाव्य की रचना करके न केवल महारानी लक्ष्मीबाई के गरिमापूर्ण चरित्र को चिरन्तन बनाया है अपितु आधुनिक हिन्दी महाकाव्य परम्परा म भी एक अनुपम काव्यकृति की अभिवृद्धि की है जो सर्वथा श्लाघनीय है।

'दमयन्ती' महाकाव्य

नलोपाख्यान के विकास-क्रम मे एक काव्योपलब्धि

६

'दमयन्ती' महाकाव्य

नलोपाख्यान के विकास-क्रम मे एक काव्योपलब्धि

महाभारत के सभी उपाख्यानो म नल-दमयन्ती का आख्यान सम्भवत सर्वाधिक लोकप्रिय एव सुप्रसिद्ध है। डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दो मे—'महाभारत की मूल कहानी कुरु पाण्डव युद्ध है जो सभवत प्राचीन कुरु पाञ्चाल युद्ध का किंचित परिवर्तित रूप था। परन्तु इस कहानी के इद गिद अनक प्राचीन उपाख्यान आ जुटे हैं, जिन्होने इस ग्रथ को सहिता (सग्रहीकृत) का रूप दिया है। इन कहानियो म स कई तो योरोपियन देशो म इतनी प्रिय हुई हैं कि एक ही कहानी के एक ही भाषा मे तीन-तीन चार-चार अनुवाद भी हुए हैं। नल दमयन्ती का उपाख्यान ऐसा ही मोहक कथानक है जो मूल-कथा स सम्बद्ध नही पर योरोप की भाषाओं मे कई बार अनूदित हो चुका है। और भारतीय साहित्य के कई काव्यो और नाटको को प्रेरणा दे चुका है। ऐस उपाख्यानो को योरोपियन पडितो ने महाकाव्य के भीतर महाकाव्य (Epic within Epic) नाम दिया है।'[1] अनक विद्वानो ने नलोपाख्यान की भूरि भूरि प्रशसा की है। श्री एफ० बप्प ने लिखा है कि— मैं सिफ इतना ही कहूँगा कि मेरी समझ मे करुणा तथा आवेगो की दृष्टि और भावो की कोमलता तथा विमोहक शक्ति के ख्याल से नल दमयन्ती का आख्यान अद्वितीय है।[2] राजा नल की कथा भारतीय समाज और साहित्य मे सनातन काल स प्रचलित रही है। भारतीय वाङ्मय के प्राचीन और अर्वाचीन ग्रथो म नलोपाख्यान के कथासूत्र सवत्र उपलब्ध हैं।

---

[1] डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी विचार के प्रवाह पृ० २

[2] वही, पृ० ३

नलोपाख्यान का सविस्तार निरूपण महाभारत वनपर्व में अध्याय ५३ से ७९ तक हुआ है। महाभारत के अतिरिक्त कथासरित्सागर,[1] और बृहत् कथामञ्जरी[2] आदि ग्रन्थों में भी नलोपाख्यान सूत्र उपलब्ध हैं। वाल्मीकि रामायण में सीता ने अशोक-वाटिका में राक्षसियों को सम्बोधित करते हुये जो कुछ कहा है उसमें नल की चर्चा आती है। वे कहती हैं— दीन हो या राज्यहीन हो जो मेरा पति है वही मेरा गुरु है। उसमें मैं उसी भाँति आसक्ति रखती हूँ जैसे सूर्य में सुवर्चला। दमयन्ती जिस प्रकार अपने पति नैषध (नल) में अनुरक्त थी वैसे ही मैं इक्ष्वाकुकुल के शिरोमणि श्रीराम में अनुरक्त हूँ।[3] मत्स्यपुराण में इक्ष्वाकुवंश वर्णन के प्रसंग में नल का उल्लेख है।[4] स्कन्दपुराण में भी एकाधिक बार नल का उल्लेख हुआ है। नल जब दमयन्ती को त्याग कर हाटकेश्वर क्षेत्र पहुँचे और वहाँ धर्मसुदाम्बी की स्थापना की और उसी के समीप जिस शिवलिंग को स्थापित किया वह नलेश्वर नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसी पुराण में बड़े संक्षेप में कहा गया है कि प्राचीनकाल में वीरसेन के पुत्र राजा नल हुए। वे सर्वगुण सम्पन्न तथा शत्रुओं का नाश करने वाले थे। उनकी प्राणप्रिय पत्नी दमयन्ती थी जो विदर्भ नरेश की कन्या थी।[6] लिंगपुराण में सूर्यवंशी राजा ऋतुपर्ण का वर्णन करते हुए उनके मित्र

---

[1] कथासरित्सागर, लम्बक ९, अलंकारवती तरंग ६, श्लोक २३७ से ४२४

[2] बृहत्कथामंजरी, लम्बक १५ श्लोक ३३१ से ३७१

[3] दीनो वा राज्यहीनो वा यो मे भर्ता स मे गुरु ।
स नित्यमनुरक्तास्मि यथा सूर्य सुवर्चला ॥
नैषधं दमयन्तीव भैमी पति मनुव्रता ।
तथा इमिक्ष्वाकु वरं रामं पति मनुव्रता ॥

—वाल्मीकि रामायण, सुन्दर काण्ड, २४ ९ ११

[4] 'नलो द्वावेव विख्यातौ वंशे कश्यपसम्भवे ।
वीरसेन सुतस्तद्वन्नैषधश्च नराधिप ॥'

—मत्स्य पुराण, अध्याय १२–५६

[5] स्कन्द पुराण खण्ड ६, अध्याय ५४, ३–४

[6] वीरसेन सुत पूर्व नलो नाम महीपति ।
आसीत सर्व गुणोपेत सर्व शत्रुक्षमावह ॥
भार्यातस्य भवत साध्वी प्राणेभ्योऽपि गरीयसी ।
दमयन्तीति विख्याता विदर्भाधिपते सुता ॥

—स्कन्द पुराण, खण्ड ६, अध्याय ५४–३ ४

वीरसेन के पुत्र निषधपति नल का भी उल्लेख हुआ है।[९] कूर्मपुराण में सूर्य वंशी नल का वर्णन है।[१०] अग्निपुराण में भी उल्लेख है।[११] भागवत पुराण में यदु के पुत्रों में एक 'नल' की भी गणना की गई है।[१२] शिवपुराण की ज्ञान संहिता में नल का उल्लेख है।[१३]

नलोपाख्यान को लेकर संस्कृत साहित्य में भी अनेक ग्रन्थों की रचना हुई है। दशम शताब्दी के प्रारम्भ में त्रिविक्रम भट्ट ने नल चरित्र को लेकर नलचम्पू की रचना की।[१४] नलचरित्र से सम्बन्धित संस्कृत के महाकाव्यों में श्री हर्ष प्रणीत नैषध चरित्र (१२वीं शताब्दी), वसुदेव कवि रचित 'नलोदय' (१४ शताब्दी) और वामभट्टकृत नलाभ्युदय (१५वीं शताब्दी) के नाम उल्लेखनीय हैं।[१५] हिन्दी में जयपुर निवासी पुरोहित प्रताप नारायण जी कविरत्न ने 'नल नरेश' नामक उन्नीस सर्गों के महाकाव्य की रचना संवत् १९९० में की जिसकी भूमिका कवि सम्राट श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔधजी ने लिखी।[१६] इस प्रकार नलोपाख्यान का महाभारत से लेकर अद्यावधि पुराणों एवं काव्यों के माध्यम से निरंतर विकास होता रहा है। वस्तुतः नलोपाख्यान प्रेम, कर्त्तव्य और त्याग की त्रिवेणी है। यह आख्यान

---

९ 'पुत्रोऽस्युतायुपो धीमान् ऋतुपर्णो महायशः।
दिव्याक्ष हृदयज्ञो वै राजा नल सखो बली॥
नलो द्वावव विख्यातौ पुराणषु दृढ व्रतौ।
वीरसेन सुतश्चान्यो यश्चेक्ष्वाकु कुलोद्भव॥
—लिंग पुराण, अध्याय ६६, श्लोक २३-२४

१० 'अतिथिस्तु कुशाज्जज्ञे निषधस्तत सुतोऽभवत्।
नलश्च निषधस्यासीत् नभास्तस्मादजायत॥
—कूर्म पुराण, अध्याय २१

११ अग्नि पुराण, अध्याय २७३ श्लोक ३६

१२ 'यदो सहस्रजित् श्रेष्टानलो रिपुरितिश्रुतः॥'
—भागवत पुराण, ९, २६-२०

१३ शिव पुराण, ज्ञान संहिता, अध्याय ६२

१४ डॉ० चण्डिप्रसाद शुक्ल, नैषधपरिशीलन पृ० ५८

१५ वाचस्पति गैरोला, संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० ८९८

१६ नलनरेश, गंगा ग्रन्थागार, लखनऊ से प्रकाशित

हमारे जातीय जीवन का गौरव और सास्कृतिक चेतना का अनन्त स्रोत होने के कारण भारतीय जनमानस को प्रेरित करता रहा है और इसलिए विंशति शताब्दी में भी नलोपाख्यान काव्य रचना के लिए वरेण्य हुआ है। श्री ताराचन्द्र हारीत कृत दमयन्ती महाकाव्य की रचना इसका ज्वलन्त प्रमाण है।[१७]

_नलोपाख्यान के विकासक्रम में 'दमयन्ती' महाकाव्य के प्रणयन का अनेकविध विशेष महत्व है। दमयन्ती महाकाव्य की रचना में नलोपाख्यान की ऐतिहासिकता की रक्षा करते हुए अनेक मौलिक प्रसंगोद्भावनाएँ की गई हैं। दमयन्ती महाकाव्य में कथा विधान में परम्परा की शास्त्रीय रूढ़ियों का सफल निर्वाह करते हुए कथा में युगीन परिवेश का प्रतिफलित किया है। प्रस्तुत संदर्भ में दमयन्ती महाकाव्य के कथा विधान की इन्हीं विशेषताओं को सप्रमाण उद्घाटित किया जा रहा है।

सर्गक्रमानुसार 'दमयन्ती' महाकाव्य का कथासार

'दमयन्ती' महाकाव्य का सम्पूर्ण कथानक चौदह सर्गों में विभाजित है प्रथम सर्ग का आरम्भ भारत मां और महाकवि व्यास की वंदना से होता है। तत्पश्चात धर्मराज युधिष्ठिर की मनोव्यथा का वर्णन है। उन्हें पुरोहित नलोपाख्यान सुनाकर धैर्य धारण करने को कहता है। कथारम्भ राजा भीम (दमयन्ती के पिता) के उद्यान वर्णन से होता है जहां दमयन्ती सखियों सहित सरोवर में स्नान करके शृंगार करती है। तभी कंकिनी राजा नल के यशोबल की चर्चा करती है जिसे सुनकर दमयन्ती के हृदय में प्रेम भाव का उद्वलन प्रारम्भ होता है। द्वितीय सर्ग में नैषध राज्य के अपार वैभव का वर्णन है। इसी सर्ग में नारदजी दमयन्ती के सौन्दर्य और गुणों का वर्णन कर राजा नल के हृदय में प्रेमांकुर पल्लवित कर देते हैं। तृतीय सर्ग में राजा नल मृगया के समय एक घायल हंस को प्राणदान कर मैत्री स्थापित कर लेते हैं। हंस राजा नल का प्रेम संदेश लेकर दमयन्ती के पास कुन्दनपुर जाता है। चतुर्थ सर्ग में राजहंस नल के पौरुष शील सौन्दर्य आदि गुणों की प्रशंसा दमयन्ती से करता है जिसे सुनकर दमयन्ती प्रेम विह्वल हो नल के पास प्रेम संदेश प्रेषित करती है। पंचम सर्ग में नल ससैन्य दमयन्ती

---

[१] दमयन्ती आत्माराम एण्ड संस दिल्ली से सन १९५७ में प्रकाशित।

स्वयम्वर के लिये प्रस्थान करते हैं। मार्ग मे इन्द्रादि देवता छद्म पूर्वक नल से वचन लेते हैं कि वह देवदूत बनकर दमयती के पास जाय और उसे देवो के साथ परिणय करने के लिये तयार करे। नल खिन्न मन चल देते हैं। षष्ठ सर्ग मे नल कुन्दनपुर पहुँचकर दमयती को देवों से परिणय करने के लिये कहते हैं, किन्तु दमयती नल से ही परिणय के लिये दृढ सकल्प रहती है। देवता नल पर प्रसन्न होकर उसका सहायक होने का वरदान देते हैं। सप्तम सर्ग मे दमयती स्वयम्वर और उसके नल से परिणय का वर्णन है। यहा कलि नल दमयती के विरुद्ध देवताओ को भडकाता भी है। नवम सर्ग मे नल द्यूत क्रीडा म अपने अनुज से सब कुछ हार कर पुत्र-पुत्री को विदर्भ भेजकर स्वय भी वर्षों के लिये वनगमन करते हैं। दशम सर्ग मे नल दमयती की वन गमन की यातनाओ का वर्णन है। विदर्भ नगर के समीप दमयती को एकान्त सोती छोडकर चल देता है। एकादश सर्ग मे दमयती के सतीत्व के प्रभाव से व्याध भस्म हो जाता है। अन्तत अनेक आपदाएँ सहती हुई दमयती चेदि जनपद मे अपनी मौसी के पास पहुँच जाती है। द्वादश सर्ग मे नागराज कर्कोटक को दवाग्नि से बचाता है। कर्कोटक राजा नल का काया परिवर्तन की जडी बताता है। नल रूप बदलकर अयोध्यानरेश के यहा हय शाला के अध्यक्ष बनकर रहने लगते हैं। त्रयोदश सर्ग मे दमयती कुन्दनपुर आकर अपने परिवार मे मिल जाती है। अतत नलानुज भी आकर क्षमा याचना करता है। चतुर्दश सर्ग मे दमयती नल का पता लगाने के उद्देश्य से स्वयम्वर आयोजित करती है। साकेतराज ऋतुपर्ण को दमयती के स्वयम्वर की सूचना एक दिन पूर्व ही प्राप्त होती है। बाहुक (नल) ऋतुपर्ण को समय से पूर्व ही कुन्दनपुर रथ मे पहुँचा देता है। वहाँ स्वयम्वर की कोई व्यवस्था न देख ऋतुपर्ण को निराशा होती है किन्तु नल को सदेह हो जाता है कि दमयती ने कही अश्वपरीक्षा के निमित्त से मुझे पहचानने के लिये नही बुलवाया। अन्तत रहस्योद्घाटन हो जाता है। दमयती भाव विह्वल होकर पुत्रो सहित नल से मिलती है। नलानुज भी क्षमा याचना करता है। साकेतराज और भीम भी आते हैं। नलनरेश देव कृपा के लिये उनका गुणानुवाद करते हैं।

'दमयती' महाकाव्य के कथा विधान मे मौलिक प्रसगोद्भावनाएँ

'दमयन्ती' महाकाव्य के उपयुक्त कथासार को देखने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि दमयती महाकाव्य के रचयिता ने कथाचयन की दृष्टि से महाभारत और हर्ष प्रणीत नैषधीय चरित्रम को आधार रूप मे ग्रहण किया है। काव्यारम्भ

मे ही महाभारत के प्रणेता व्यासजी की वदना करके कवि ने उनके प्रति आभार प्रकट किया है—

> 'धन्य महाकवि व्यास ! प्रणति तुमको शत शत है ।
> धन्य लेखनी मुने, तुम्हारी विश्वाहत है ।।

आपग्रथो को आधारभूत सामग्री के रूप म ग्रहणकरते हुए भी हारीतजी ने मौलिक प्रसगोद्भावनाओ तथा नवीन कथाप्रसगो मे यथोचित युगीन परिवर्तनो द्वारा अपनी कल्पना शक्ति एव सृजन सामर्थ्य का अपेक्षित परिचय दिया है। इस दृष्टि से दमयती महाकाव्य के निम्नोद्धत स्थल उल्लखनीय हैं —

१ काव्यारम्भ म मगलाचरण महाकाव्य रचना की शास्त्रीय रूढ़ि है जिसे वतमान युग के महाकाव्यो मे किसी न किसी रूप म स्थान दिया जाता है। दमयती के कवि ने काव्यारम्भ भारत भू की वदना से करके राष्ट्रीय भावना का परिचय दिया है। कवि के शब्दो म—

> धन्य धन्य ह अम्ब ! भारत भू तुम हो धन्या
> है मा ! तुमसी नही विश्व म कोई अन्या ।
> मुकुट तुम्हारा हिम गिरि से शोभित होता है
> पाद तुम्हारे स्वय अम्बु अबुधि धोता है। (पृष्ठ १)

२ चतुथ सग म हस द्वारा नल का दमयती को परिचय दिय जाने वाले प्रसग म भी मौलिकता का परिचय कवि ने दिया है। महाभारत म हस सीधे सीधे शब्दो मे बिना किसी भूमिका के इतिवृत्तात्मक शली म नल का परिचय देता है। यथा—

> 'मानुषागिर कृत्वा दमयती मथाब्रवीत ।
> दमर्मा त नलो नाम निषधेषु महीपति ।। (वनपव ५३/२६)

'दमयन्ती' महाकाव्य म दमयती ज्योही हस को पकडने आती है कि हस व्यजनापूण शली म कहता है —

> हाँ मुझे पकडना व्यथ बताता हूँ मैं
> जो तुम्ह पकडना उचित जताता हूँ मैं।
> सुन्दरि ! नल नृप का हाथ पकडलो जाकर
> हो जाओ सुमुखि ! कृताथ उन्ह तुम पाकर ।
> अगणित हैं उनके भत्य हस मुझ जस,
> रहते हैं उनके पास विहग वर जसे। (सग ४ पृ० ५)

३ षष्ठ सग म राजा नल के दमयती के पास देवदूत बनकर जाने वाले कथा प्रसग मे पुन मौलिक उद्भावना दृष्टिगत होती है । महाभारत मे नल के अ त पुर पहुँचने पर दमय ती प्रश्न करती है कि हे सु दर ! मेरे मदन को दीप्त करने वाले तुम कौन हो ? हे निष्पाप ! तुम देवता की तरह यहाँ आये हो, मैं तुम्हारा परिचय पाना चाहती हूँ—

"कस्त्व सर्वानवद्याऽग मम हृच्छ यवर्द्धन ।
प्राप्तोऽस्य मरदवीर ज्ञातु मिच्छा मितेऽनघ ॥"

(वनपव, ५५/२०)

प्रत्युत्तर मे नल एक भोले भाले व्यक्ति की भाँति कह देते हैं कि मैं नल हूँ और यहाँ देवदूत बनकर आया हूँ । इन्द्र, अग्नि, वरुण और यम ने तुम्हें प्राप्त करने की इच्छा से मुझे तुम्हारे पास भेजा है । यथा—

"नल मा विद्धि कल्याणि देवदूत मिहागतम् ।
देवास्त्वा प्राप्तुमिच्छन्ति शक्रोऽग्निवरुणोयम ।"

(वही, ५५/२२)

महाभारत का यह सवादस्थल बडा हास्यास्पद है । एक प्रेमी अपनी ही प्रेमिका को दूसरे को वरण करने की बात कहे, मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह बात बडी असगत लगती है ।

इसी प्रसग को 'दमय ती' महाका य के रचयिता ने बडे सु दर ढग से प्रस्तुत किया है । यहा नल अपने को देवदूत ही कहते हैं और अ त तक देवदूत धम का निवाह भी करते हैं । वे एक ओर इन्द्रादि देवो का विस्तार से वैभवपूण परिचय देते हुए जहाँ कत्त यपालन करते हैं वही गुप्त भेष मे अपने प्रति दम यती की निष्ठा का भी परिचय पा लेते हैं । दमय ती के निम्नोदधृत शब्द नल को निश्चय ही प्रभावित करते हैं—

"आर्याओ का यह कम नहीं, सकल्प छोडना धम नही ।
वर चुकी जिसे वे एक बार, जीवन भर उसको करें प्यार ।
× × ×
सुख स्वग न मुझको लुभा सकें आवें देखें वे सभी थकें ।
मैं मोद मान मर सकती हूँ प्रण भग न पर कर सकती हूँ ।
दे कर तन मन धन रूप मूल्य, पूजा देवो को पिता तुल्य ।
वे वर न मुझे क्यो त्यों देते, सब पिता सुताहित ज्यो देते ।"

(सग ६, पृ० १०८ १०९)

इस दृढ सकल्प भाव को देखकर नल अपने आप को छदमवेश से मुक्त कर देते हैं । यहाँ हम नल को कत्त य पथ से च्युत नहीं कह सकते । वस्तुत

नल के चरित्र का यह मानवीय पक्ष है। जहाँ मनुष्य प्रेम और करुणा से विग लित हो जाता है। यहाँ यदि नल प्रकट न होते तो उनका चरित्र मानवीय न होकर दवीय कोटि म परिगणित होता। जो वतमान युग की भावना और प्रवृत्ति के अनुरूप न होता।

४ आलोच्य महाकाव्य के सातवें सग मे दमयती के स्वयम्वर का भी योजना पर्याप्त मौलिकतापूण है। महाभारत म कहा गया है कि दमयती को नल के समान आकृति वाले पाँच पुरुष दिखाई देते हैं—

दहश भमी पुरुषान पञ्चतुल्याकृतीनिह (वही, ५७/१०)

दमयती जिसे भी देखती है नल ही समझती है—

य य हि ददृशे तेषा तेत मे ने नल नृपम्।' (वही ५७/११)

ऐसी परिस्थिति मे दमयती देवो से अपना रूप प्रकट करने की प्राथना करती है जिससे वह नल को पहचान सके।[१४] श्री हष प्रणीत नषध चरित्र' मे देवता दमयती की प्राथना पर उस सरस्वती के श्लोक का श्लषमय अथ समझने की बुद्धि प्रदान करते हैं और वह पाचवें नल को निषधेश्वर समझ लेती है।[१५]

दमयती महाकाव्य मे स्वयम्वर म राजाओ का परिचय दमयती की सहेली केशिनी देती है। जो महाभारत और नषधचरित दोनो से भिन्न है। दूसरे नल तुल्य पाच आकृतियो को देखकर दमयती उनकी चाल समझ जाती है। वह प्रथम तो देवो की ममस्पर्शी शब्दो म प्राथना करती है—

मैं सवदा सद्भाव से प्रभु पूजती तुम को रही
हे देव! फिर क्या विघ्न करना, था तुम्हे समुचित कहीं।

× × ×

जग याद करता है तुम्हे जब विघ्न पडते हैं कहीं
अब याद मैं किस को करू जब विघ्न हो तुम स्वय ही।'
(सग ६ पृ० १३३)

किन्तु जब देवताओ ने दमयती की आतवाणी न सुनी तो कारुण्य क स्थान पर क्रोध क आवेश म भर कर वह कहने लगी—

---

[१४] महाभारत वनपव ५७ १६ २१
[१५] नैषधप्रकाश टीका सहित १४/६ (निणयसागर प्रेस बम्बई सन १६४२)

"रे पातकी ! देवी अहिल्या सी तुम्हीं ने भ्रष्ट की,
कितनी न जाने, साध्वियों की साधुता है नष्ट की।
कब देख कर सौन्दय तुम निज पर नियंत्रण रख सके,
मैं प्राण तजती हूँ अभी पर वचन तज सकती नहीं।
पीछे मरूँगी किन्तु पहले शाप मैं दूँगी तुम्हें,
काली मसी से जो तुम्हारे, मुख पुते दीखें हमें।'
(वही पृ० १३६)

दमयंती ने यहां तक कहा कि तुम अपनी सुता से विवाह करना चाहते हो। कपट रूप धारण करके मेरा अपहरण करना चाहते हो। यह विश्व जल जायगा, तुम्हारी श्वास से ही तुम्हारा अमरत्व गल जायगा। जब पिता ही पति बनना चाहे तो यह धरा कसे सहेगी जल कर राख हो जायगी।[1] यह कह कर भूखी सिंहनी की भाँति दमयंती वरमाला लिये जसे बढ़ी तो देखा कि निषधराज (नल) अकेले ही बठे हैं। इस कथा प्रसग की आयोजना में कवि ने न केवल मौलिकता का परिचय दिया है वरन दमयंती की महानता किंवा भारतीय नारी के विराट गौरव का भी मूल्यांकन किया है।

५ चतुर्दश सग में बाहुक के वेश में नल के राजा ऋतुपर्ण के साथ कुन्दनपुर आने पर केशिनी द्वारा रहस्योद्घाटन के प्रसग को भी यथेष्ट परिमार्जित करके सयोजित किया है। महाभारत म (वनपर्व अध्याय ७५ ७६) केशिनी तीन बार जाकर सीधे शब्दों में कहती है कि आप अयोध्या से चलकर यहां कितने समय में पहुँचे। दमयंती महाकाव्य में केशिनी प्रथम बार में ही नल को चतुर प्रश्नावली करके पहचान लेती है। केशिनी नल के परिवार आदि के विषय में पूछती है। (सग १४, पृ० २६७)

इसी प्रकार के अन्य अनेक स्थलों पर भी 'दमयंती' महाकाव्य के प्रणेता ने कथाविधान में नवीन प्रसगोद्भावनाएँ की हैं। धार्मिक स्थलों की कवि को पूरी पहचान है और उनकी योजना में वह पूर्ण सफल भी रहा है।

शास्त्रीय विधान

जहाँ तक कथानक के शास्त्रीय विधान का प्रश्न है, दमयंती महाकाव्य के कथानक का मूल्यांकन काव्यशास्त्रीय लक्षणों के आधार पर भी सुविधापूर्वक किया जा सकता है। इस महाकाव्य की कथावस्तु इतिहासपुराण प्रसिद्ध नलोपाख्यान है। अस्तु, अनुत्पाद्य है। कथानक में यत्र तत्र नवीनप्रसगोद-

[1] दमयन्ती सप्तम सग, पृ० १३७

भावनाएँ भरते भी कवि ने कथानक की ऐतिहासिकता को कहीं भी खंडित नहीं किया है। कथानक के फल का अधिकारी राजा नल है, इसलिये आधिकारिक वस्तु नल दमयती की कथा है। नारद आगमन, हंस का प्रेम दूतत्व देवताओ एव कर्कोटक का मिलन कलि आदि के कथानक प्रासंगिक वस्तु के अन्तर्गत आते हैं जो मूल कथा के विकास मे सवथा सहायक रहे हैं। कथानक में सधियो और कार्यावस्थाओ की स्थितियाँ स्पष्टत परिलक्षित होती हैं। पाश्चात्य परम्परा की दृष्टि से दमयन्ती महाकाव्य मे कथा विकास क्रम मे प्रथम दो सर्गों मे नल दमयन्ती का प्रेमारूपण 'प्रारम्भ' तृतीय से सप्तम सग तक हसदूत के द्वारा दोनो के प्रणय सम्बन्धो की पुष्टि विकास अष्टम सग म विवाह एव पुत्र प्राप्ति 'चरमसीमा' नवम से चतुर्दश सग तक दवी प्रकोप एव विछोह आदि घटनाए 'निगति' तथा पन्द्रहवें सग मे पुनर्मिलन 'अन्त' नामक स्थितियाँ द्रष्टव्य हैं। कथानक का सगक्रम घटनान्विति की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। काव्य का नामकरण एव सग सख्या शास्त्रीय दृष्टि से सवथा उपयुक्त है। कथानक मे घटनाक्रम का विकास स्वाभाविक है। राजा नल के जीवन का वहदाश समाविष्ट होने के कारण कथावस्तु का रूप व्यापक एव महाकाव्योचित गरिमा के अनुरूप है। कथानक मे प्रकृति पुर राज्य आदि के विविध वणन भी हैं।

इस प्रकार नलोपाख्यान के विकास क्रम मे हारीत कृत 'दमयती महाकाव्य' का प्रणयन निश्चयत महत्वपूर्ण है। दमयन्ती की रचना द्वारा जहाँ एक ओर प्रेम कत्तव्य और त्याग के आदर्शों से पूरित एव जीवन प्रेरक कथा के क्रम मे एक नवीन अध्याय जुड़ता है वहीं कथा विधान मे मौलिक एव नवीन प्रसगोद भावनाओ ने नलोपाख्यान की सृजन सभावनाओ एव युगवरेण्यता को भी सिद्ध किया है। इस दृष्टि से 'दमयन्ती महाकाव्य' की रचना एक अभिनन्दनीय प्रयास कहा जायगा। प्रस्तुत काव्य की कथावस्तु के अभाव के रूप मे जिस बिन्दु की ओर मैं सकेत करना चाहूँगा वह यह है कि दमयन्ती के रचयिता ने अति प्राकृत एव अलौकिक कथाप्रसगो को युगीन सन्दर्भों के अनुरूप सशोधित किंवा बुद्धिग्राह्य नहीं बनाया है। इस प्रकार के कथाप्रसगो म देवो के वरदान अभिशाप एव कर्कोटक मिलन आदि उल्लेखनीय हैं। इस दृष्टि से हरिऔध प्रणीत 'प्रियप्रवास' के कृष्ण द्वारा गोवद्धन धारण एव कलियनाग दमन जसे प्रसग स्मरणीय हैं जिन्हें बुद्धिग्राह्य रूप म हरिऔध जी ने सयोजित किया है। दमयन्ती के कवि ने कथाप्रसगो की पौराणिकता के प्रक्षालन को उपयुक्त

नहीं समझा है। सम्भवत इसके मूल में कवि की पौराणिक कथाओं के प्रति अनन्य आस्था विद्यमान रही है।

महाकाव्यत्व

'दमयन्ती' महाकाव्य म रूढ काव्यशास्त्रीय लक्षणो का सामान्यत निर्वाह हुआ है किन्तु साग्रह या प्रयत्नज नहीं, स्वाभाविक रूप मे। सम्पूर्ण काव्य १४ सर्गों मे विभाजित है। कथानक पुराणसम्मत है। नाटकीय सन्धियो की सफल योजना हैं। बीच बीच मे अवान्तर कथा प्रसग भी प्राप्य हैं। महाकाव्य का नायक राजकुलीन नलनरेश है। यद्यपि दमयन्ती के चरित्र विश्लेषण की दृष्टि प्रमुख होने से नायिका का व्यक्तित्व ही अधिक मुखरित हुआ है। प्राकृतिक सौन्दर्य और जीवन के विभिन्न व्यापारो और परिस्थितियो का भी सुन्दर चित्रण हुआ है। पौराणिक इतिवृत्त होने के कारण अतिप्राकृत कथानकों की भी अधिकता है। अलकार विधान भाव सौष्ठव रूप सगठन और शिल्प प्रयोग परम्परित और नवीन दोनो ही हैं। मगलाचरण, छन्द विधान (सर्गान्त छन्द परिवर्तन) चतुर्वर्ग फल प्राप्ति, सज्जन-स्तुति दुर्जन निन्दा आदि महाकाव्य रूढियों का भी विधिवत पालन किया गया है। रस परिपाक और भाव चित्रण कौशल भी सुन्दर बन पडा है। करुण रस के कतिपय प्रसग बडे हृदयग्राहक हैं। साराशत 'दमयन्ती' महाकाव्य काव्यशास्त्रीय लक्षणो की दृष्टि से सफल रचना है। किन्तु किसी भी महाकाव्य का उपयुक्त मूल्याकन परिवर्तित काव्यशास्त्रीय मानदण्डो और युगीन काव्यादर्शों की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण नहीं, अपूर्ण है। आज के महाकाव्यकार का दायित्व युग जीवन की चेतना को आत्मसात कर जीवन्त कथानक महत्त्वपूर्ण नायक गरिमामयी उदात्त शैली और गम्भीर रचना शिल्प के माध्यम से महदुद्देश्य की सिद्धि है। हमारे युग-जीवन की समस्याओ का सास्कृतिक समाधान और युगीन प्रश्नो का निदान आज के महाकाव्यकार की चेतना के मूल स्वर होने चाहिए। विज्ञान-युग के आणविक वैभव म काव्य रचना एक सास्कृतिक प्रयास बनकर ही अपना अस्तित्व रक्षण कर सकती है। अन्यथा प्राचीन आख्यानो की पुनरावृत्ति आत्म प्रवचना के अतिरिक्त कुछ नहीं है। काव्य को सस्कृति की उच्च भूमिका पर प्रतिष्ठित करने के लिए महती काव्य प्रतिभा बलवती सृजन प्रेरणा, समाज चेतना और जीवन साधना की आवश्यकता होती है जैसी कि कविवर जयशकर के व्यक्तित्व में थी। इसीलिए वन्त्र-युग की त्रस्त और परमाणु-युद्ध के भय से आक्रान्त मानवता को कामायनी महाकाव्य के माध्यम से समरसता

और आदर्शवाद का अमर सन्देश प्रदान कर गए। हम इन्हीं प्रतिमानों के आधार पर 'दमयन्ती' के महाकाव्यत्व का परीक्षण करेंगे। मूल्यांकन के लिए हमारे पास तीन प्रमुख रचना उपकरण हैं— कथानक, चित्रविधि और कलात्मकता। प्रश्न यह है कि इन उपकरणों के गठन में हारीतजी ने किस सीमा तक पूर्ववर्ती सर्जकों का अनुगमन किया, कहाँ तक वह अनन्यतुल्य रहे और किस कोटि की मौलिक सूझ बूझ का उपयोग कर उन्होंने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया।

ऊपर उल्लेख किया जा चुका है कि 'दमयन्ती' महाकाव्य का कथात्मक आधार प्रसिद्ध पौराणिक वृत्त (नलोपाख्यान) है। इस वस्तु [illegible] है। किन्तु वस्तु के संयोजन एवं गठन में कवि की कल्पनाशीलता सर्वथा प्रशंसनीय है। घटना-व्यापार और सर्ग विधान में परस्पर अन्विति और पूर्वापर प्रसंग सम्बद्धता है। कथारम्भ युधिष्ठिर और बृहदश्व के संवाद से होता है। धर्मराज अपनी व्यथा की चर्चा कर स्वयं को संसार का सबसे अभागा और दुर्विपन्न व्यक्ति कहते हैं। तभी बृहदश्व नलराज की कथा का आरम्भ करते हैं। काव्य के आरम्भ की शैली पौराणिक है। काव्य का मंगलाचरण मातृभूमि की वन्दना से हुआ है जिसमें कवि की राष्ट्रीय भावना प्रदर्शित होती है

'धन्य धन्य हे अम्ब भरत भू तुम हो धन्या।
हे माँ! तुम सी नहीं विश्व में अन्या॥
मुकुट तुम्हारा हिमगिरि से शोभित होता है।
पाद तुम्हारे अम्ब स्वयं अम्बुधि धोता है॥

(प्रथम सर्ग पृ० १)

तदनन्तर कवि विश्व जीवन की परिस्थितियों का उल्लेख करता हुआ निर्माण की प्रतिज्ञा करता है।

मानसकार तुलसी की भाँति कवि ने आप्त कवि वन्दना, दैन्य प्रदर्शन, रचना उद्देश्य आदि रूढ़ियों का निर्वाह भी किया है।

धन्य! महाकवि व्यास! प्रणति तुमको शत शत है
धन्य लेखनी मुने! तुम्हारी विश्वादृत है।
× × ×
किन्तु हुए जो मनुज विपद में पड़ ऊबे से
पढ़कर यह आख्यान अभाव भरे यदि उनका।
हूँगा मैं कृतकृत्य दुर्बोध हरे यदि उनका॥

(प्रथम सर्ग पृ० ३, ६)

कथानक मे वास्तविक गति पचम सग के उपरान्त आती है। सुरपति और अन्य देवगण नल को ससैन्य दमयन्ती के स्वयवर के लिए जाते देखकर माग मे उससे इस बात का वचन ले लेते हैं कि वह उनका दूत बनकर दमयन्ती के पास जाय और उसे देवताओ को वरण करने के लिए प्रेरित करे। सत्यव्रती और धमनिष्ठ नरेश धम सकट म पड जाता है। मन सघष करता, परिस्थिति-द्वन्द्व से जूझता वह दमयन्ती के पास जाकर सभी देवताओ के वभव का विराट वणन कर दमयन्ती को देवो को वरण करने का आग्रह करता है। किन्तु दमयन्ती दृढप्रतिज्ञ रहती है। तदोपरान्त स्वयवर हो जाता है। नल ही दमयन्ती को पाते हैं। कलि इसे देवापमान समझकर नरेश के सवनाश पर तुल जाता है। फिर द्यूत क्रीडा म छद्म से नल का राज्य से निर्वासित होना पडता है। आगे का सारी कथा गतानुगतिक है। कथानक म पौराणिक मान्यताओ को ज्यो का त्यो ग्रहण किया गया है। जसे कठिन स कठिन विपत्ति मे भी नरेश को धमनिष्ठ तथा दमयन्ती को कत्तव्यपरायण चित्रित किया गया है। सत्य, धम और कत्तव्य की त्रिवेणी का समस्त काव्य के कलेवर मे अपूव प्रवाह है। नल का व्यक्तित्व भी महान् है—

'देव सम उसका कान्त शरीर, सकल गुण युक्त धीर, वर-वीर
बहद युग लोचन विस्तृत भाल, युगल भुज हैं आजानु विशाल।
बने व बल के अनुपम कोप, वक्ष हिम गिरि सा है निर्दोष,
हृदय है अतुल धय का स्थान और ग्रीवा है सिंह समान।

(द्वितीय सग, पृ० २३)

दमयन्ती के नख शिख-वणन म उपमाएँ परम्परित ही हैं—

"नाक शुक सी, वदन मध्य रदावली,
भर रही ज्यो शुक्ति मे मुक्तावली।
चिबुक परम मनोज्ञ विस्तत भाल है,
अक्षियों पर पक्ष्म का घट जाल है।
पूण मुख, पूर्णेन्दु सा लगता अहा,
है सुधा सौन्दय, जो वरसा रहा।'

(प्रथम सग पृ० ९, १०)

नख शिख-वणन की अपेक्षा प्रकृति वणन मे कवि अधिक सफल रहा है। प्रकृति को मानवीय, उपदेशात्मक, उद्दीपन आलम्बन आदि सभी रूपों मे चित्रित किया गया है। एक उदाहरण देखिए—

"चल पड़ी रात नम वदन हुआ पीला सा,
पृथ्वी अचल पर हरित हुआ गीला सा।
वह सुअभिसारिका गई, चिह्न ये छोड़े,
हतप्रभ से तारे उसे पकड़ने दौड़े।
मूर्च्छित सा विधु हो गया न वह सह पाया,
आ पहुँचा मन्द समीर देख मुसकाया।
वह व्यजन डुलाने लगा मन्द से सीधा,
हो विवश तिमिर ने हाय धरा से सींचा।
उदयाचल पर रवि चढ़े दृष्टि दौड़ायी
तब गीली आँखें उन्हें धरा की पायी।
मुख पोंछ दिया कर बढ़ा धरा मुसकायी,
खोयी सी अपनी शक्ति शीघ्र ही पायी।"

(चतुर्थ सर्ग, पृ० ५८)

प्रकृति के ऐसे ही सुन्दर और सुरम्य दृश्य काव्य के कलेवर में आद्योपान्त उपलब्ध हैं। निषध देश एवं कुण्डिनपुर आदि के वर्णन में कवि ने विशेष कौशल का परिचय दिया है।

भाषा के सम्बन्ध में प्रस्तुत काव्य के प्रस्तावना लेखक सुप्रसिद्ध कवि श्री गोपालदास नीरज का यह कथन सत्य है— भाषा पर तो कवि का ऐसा पूर्णाधिकार है कि वह उसे जब जिस रूप में चाहे मोड़ लेता है। प्रकृति चित्रण में उसकी भाषा संगीतात्मक और कोमल हो जाती है संवादों में तिक्त एवं प्रभावपूर्ण दिखाई देने लगती है और तथ्य-वर्णन में सहज, मन्थर गज गामिनी। हाँ कुछ प्रयोगों में पुनरुक्ति दोष अवश्य आ गया है। नरी शब्द का प्रयोग अनेक बार हुआ है। अकेले तरणि के रूपक की योजना कवि ने दस पन्द्रह बार से भी अधिक की है जिससे इस प्रयोग में नीरसता आ गयी है। छन्द विधान विविधता लिए हुए हैं। संस्कृत शब्दों का प्रयोग भी खूब हुआ है। काव्य में अनेक स्थानों पर नाटकीय शैली के सफल प्रयोग अलंकार विधान एवं वाग्वदग्ध्य के कारण मर्मस्पर्शी स्थलों की योजना हो सकी है। अन्य रसों के प्रासंगिक संयोजन के साथ-साथ करुण रस की अपूर्व धारा काव्य के उत्तरार्द्ध में प्रवहमान है। द्यूत क्रीड़ा प्रसंग के पश्चात् यद्यपि सभी प्रसंग कारुणीक हैं किन्तु दशम सर्ग में दमयन्ती को बीहड़ वन में सोते छोड़कर चले जाने पर उसका विलाप हृदयविदारक बन जाता है। पतिपरायण दमयन्ती के चरित्र की यह स्थिति सीता, सावित्री, राधा, यशोधरा, किसी भी

नारी की सकटापन्न अवस्था से अधिक गम्भीर एव दु सह है। कवि ने बड़े धैर्य से इस प्रसग का मनोवैज्ञानिक एव परिस्थितिजन्य समाहार किया है। यहा दमयन्ती के चरित्र की महानता स्पष्ट हुई है।

काव्य में भाग्यवाद एव दैववाद का स्वर बडा प्रबल रहा है। नल की द्यूत क्रीडा, नलानुज पुष्कर का दुर्व्यवहार, विरह-व्यथा एव तथावत अन्य घटनाओं को कवि ने भाग्य की तुला पर तोलने का प्रयास किया है। पौराणिक इतिवृत्तात्मक प्रसगों में यह भले ही अनुकूल हो, किन्तु विज्ञान-युग के प्रबुद्ध पाठक को द्यूत क्रीडा नल का व्यसन ही लगेगा, न कि भाग्य की विडम्बना। काव्य मे पात्रो की प्रवृत्तियों का युगानुरूप बौद्धिक समाधान प्रस्तुत नही किया गया है। गाधीवादी विचारधारा के अहिसा प्रेम, अस्पृश्यता निवारण, समानता आदि सिद्धान्तो का सफलता के साथ निवाह हुआ है। 'साकेत' की भाति यहा भी राजकुलीन पात्रो ने प्रजातन्त्र के महत्त्व को समझा है। नल के ये शब्द

'है प्रजा धराहर मात्र राज्यसिंहासन,
सग्रह से अत्युच्च, त्याग का आसन।'

युग के अन्य नायिका प्रधान महाकाव्यो ('प्रियप्रवास', 'साकेत', 'कामायनी', 'ऊर्मिला, 'वैदेही-वनवास, 'पार्वती', 'नूरजहां', मीरा झासी की रानी उर्वशी' आदि) की भाति प्रस्तुत महाकाव्य (दमयन्ती) म नारी चेतना एव जागरण के महान् स्वरो का उद्घोष भी हुआ है। जसे

"शक्ति का नारी है अवतार,
उससे ही चेतन है ससार।

(द्वितीय सर्ग, पृ० ३६)

अथवा

"विधि की सर्वोत्कृष्ट सृष्टि पुरुषत्व यहाँ है
उसी शक्ति पर पूर्ण विजय नारीत्व रहा है।
अबला हो तुम किन्तु विपद मे बल हो तुम ही,
विश्व मरु-स्थल है इसम जल हो तुम ही।'

(दशम सर्ग, पृ० २२०)

अथवा

उपभोग्य वस्तु है नारि केवल नर की ?
वह कल्याणी है प्रथम मातृ भर जग की।'

(चतुदश सर्ग २८५)

दमयन्ती के चरित्र विश्लेपण द्वारा लखक न वलमान युग की नारी चेतना का मुखरित कर एक आदश स्थापना का स्तुत्य प्रयास किया है । युग के विरोधी प्रश्नो के सम्यक समाधान, नारी चेतना की अभि यक्ति सत्य एव सतीत्व के धर्मादर्शों की स्थापना, सामयिक विचारधाराओ की सफल व्यजना उदात्त शली महत्त का यादश एव जीवन दशन की बलवती प्रेरणा निश्चय ही 'दमय ती काव्य की वह विशिष्ट उपलब्धियाँ हैं जो उसे महाकाव्य का पद प्रदान करती हैं ।

'रश्मिरथी' महाकाव्य
युग-चेतना का शाश्वत उद्घोष

१०

'रश्मिरथी' महाकाव्य
युग-चेतना का शाश्वत उद्घोष

'रश्मिरथी' की रचना का उद्देश्य जैसा कि काव्य के रचयिता ने 'भूमिका' में स्वीकार किया है—'कर्ण चरित्र का उद्धार है।' कवि के शब्दों में—'कर्ण चरित्र का उद्धार एक तरह से नयी मानवता की स्थापना का ही प्रयास है।'[1] इस संकेत के आलोक में यदि 'रश्मिरथी' काव्य के जीवन दर्शन सम्बन्धी मन्तव्यों पर विचार किया जाय तो हम पायेंगे कि इस काव्य का जीवन दर्शन मानवतावादी है। मानवतावादी जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा का प्रयास यों तो दिनकरजी ने 'कुरुक्षेत्र काव्य' में भी किया है किन्तु उसके एतद्विषयक चिन्तन की चरम परिणति और विचार दर्शन का प्रौढ़तम स्वरूप 'रश्मिरथी' में ही प्राप्त होता है। डा० सत्यकाम वर्मा के शब्दों में—'कुरुक्षेत्र के बाद आने वाला यह महाकाव्य सच्चे अर्थों में केवल महाकाव्य ही नहीं बल्कि कवि की दार्शनिक सांस्कृतिक, कवित्वमय, धर्म सम्बन्धी और रचनात्मक चेतना का सबल और सतर्क प्रमाण भी है। यह अकेला काव्य ही कवि की सम्पूर्ण चेतना और शक्ति का प्रतीक कहा जा सकता है। कवि का जो जीवन-दर्शन 'हुँकार' से जागा और जिसकी पूर्णता 'परशुराम की प्रतीक्षा' में हुई, उसी का केन्द्र यह रश्मिरथी है। इसमें मानवतावाद का एक ऐसा ज्वलन्त सत्य केन्द्र बिन्दु के रूप में प्रमुख होकर चला है जिसने उसे विचारक कवि और दार्शनिक से ऊपर उठाकर महानतम मानवतावादी सिद्ध किया है।'[2] सच तो यह है कि रश्मिरथी के कवि ने अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिए एक ओर परम्परा

---

[1] रश्मिरथी भूमिका पृ० घ

[2] डा० सत्यकाम वर्मा जनकवि दिनकर पृ० ६३

पोषित एव जर्जरित रूढिवादी मान्यताओं का खण्डन किया है तो दूसरी ओर युग सापेक्ष प्रगतिशील जीवन मूल्यों की प्रस्थापना पर बल दिया है। उसने सामाजिक अन्याय के कारण उच्च कुल की झूठी मान मर्यादा और जातिवाद के दम्भ की भर्त्सना की है, किन्तु श्रम पुरुषार्थ तपस्या दान मैत्री सत्त्व शील आदि मानवीय गुणों (जीवन मूल्यों) की महत्ता को सराहा और स्वीकारा है। काव्यारम्भ मे ही कृपाचार्य के जाति विषयक प्रश्न पूछने पर कर्ण ने जो उत्तर दिया है। उसमे तथाकथित उच्चकुलीन मान मर्यादा एव जातिवाद का विखण्डन किया गया है

जाति जाति रटते, जिनकी पूँजी केवल पाषण्ड
मैं क्या जानू जाति ? जाति हैं ये मेरे भुजदण्ड।
× × ×
पाते हैं सम्मान तपोबल से भूतल पर शूर
जाति जाति का शोर मचाते केवल कायर क्रूर।
× × ×
बड़े वश से क्या होता है खोटे हो यदि काम ?
नर का गुण उज्ज्वल चरित्र है नही वश धन धाम।[३]

काव्य के चतुर्थ सर्ग मे देवराज इन्द्र से वार्तालाप करते हुए कर्ण ने कहा है कि— एक नया सन्देश विश्व के हित वह भी लाया है। और वह सन्देश है कर्त्तव्यपरायण एव पुरुषार्थी बनकर सत्यपथ पर बढते रहना। जीवन की जय इसी कर्त्तव्यपालन मे निहित है। पुरुषार्थ के बल पर पुरुष नियति के भाल पर पाँव रखकर चल सकता है। चाहे विश्व रिपु हो जाय धर्म दगा दे और पुण्य ज्वाला बरसाय किन्तु मनुष्य को सत्यपथ से विचलित न होना चाहिए। कर्त्तव्यपरायणता की यह शक्ति किसी वश या कुल की धरोहर नही वरन वह वीर पुरुषो के पृथुल वक्षस्थल मे रहती है।[४] वशगत उच्चता और कुलीनता के नाम पर शताब्दियो से मानवता का जो तिरस्कार किया जाता रहा है रश्मिरथी के कवि ने उसका प्रखर शब्दो मे प्रतिकार किया है। इसीलिए काव्य का नायक कर्ण उनका आदर्श बनकर अवतरित हुआ है जिन्हें

---

३ रश्मिरथी प्रथम सर्ग पृ० ४, ५ ७

४ वही चतुर्थ सर्ग पृ० ७२

५ वही पृ० ७

कुल गौरव की प्रताड़ना सहनी पड़ी है नीचवशज मा कहकर जग ने जिन्हें धिक्कृत किया है और समाज की विषमता वह्नि से जो विदग्ध हैं। कर्ण के शब्दों म

'मैं उनका आदर्श, जिन्हे कुल का गौरव तारेगा,
नीचवशजन्मा कहकर जिनको जग धिक्कारेगा।
× × ×
मैं उनका आदर्श कहीं जो व्यथा न खोल सकेंगे,
पूछेगा जग किन्तु पिता का नाम न बोल सकेंगे।
× × ×
मैं उनका आदर्श, किन्तु जो तनिक न घबरायेंगे,
निज चरित्र बल से समाज म पद विशिष्ट पायेंगे।
सिंहासन ही नहीं, स्वर्ग भी जिन्हे देख नत होगा,
धर्म हेतु, धन, धाम लुटा देना जिनका व्रत होगा।'[1]

अस्तु प्रकट है कि 'रश्मिरथी काव्य का उद्देश्य और सन्देश मानवतावादी दृष्टिकोण से प्रेरित है।

रश्मिरथी' काव्य के जीवन दर्शन की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता उसका युगीन स्वरूप है। काव्य मे जिन व्यापक मानवीय विश्वासो और आदर्शों, आध्यात्मिक निष्ठाओ और मान्यताओ तथा चिन्तनीय समस्याओ और धारणाओ का प्रतिपादन किया गया है, उन सबका आधार हमारे युग का उन्नत विचार दर्शन है। इस विचार दर्शन को एक शब्द म मानवतावाद अभिधान दिया जा सकता है।

आध्यात्मिक मान्यताएँ

आध्यात्मिक मान्यताओ के प्रतिपादन म कवि का दृष्टिकोण नितान्त युगीन और प्रगतिशील रहा है। नियति भाग्य धर्म आदि आध्यात्मिक विषयो की विवेचना कवि ने युग जीवन के सन्दर्भ म की है। केवल श्रीकृष्ण के सम्बन्ध (उन्हें ईश्वर मानने म) में उसके विचार मूल, चिन्तनधारा का अपवाद कहे जा सकते हैं।

ईश विषयक धारणा और श्रीकृष्ण

दिनकर का कवि आस्तिक है। ससार की सचालिका अनन्त शक्ति मे

---

[1] रश्मिरथी, चतुर्थ सर्ग पृ० ७३ ७४

उसे पूर्ण विश्वास है। इस अनन्त शक्ति को ईश, जगदीश, भगवान विधाता आदि कहकर उसने सम्बोधित किया है तथा अदृश्य और सर्वज्ञ माना है

"पर हँसते कहीं अदृश्य जगत के स्वामी,
देखते सभी कुछ को तब भी अन्तर्यामी।"[*]

श्रीकृष्ण को 'रश्मिरथी' में ईश्वरत्व से सम्पन्न चित्रित किया गया है। वे ईश्वरीय शक्ति से सम्पन्न होने के कारण विलक्षण एवं गरिमापूर्ण व्यक्तित्व वाले हैं। कौरवों और पाण्डवों में सद्भाव स्थापित कराने के उद्देश्य से वे हस्तिनापुर से पाण्डवों का मन्त्री सन्देश लेकर दुर्योधन के पास आते हैं। दुर्योधन उनके सत्परामर्श को न मानकर उलटा उन्हें बाँधने का उपक्रम करता है। तभी कृष्ण कुपित होकर भीषण हुँकार करते हुए अपना विराट रूप दिग्दर्शित करते हैं। श्रीकृष्ण का यह रूप ब्रह्माण्डव्यापी था। उस स्वरूप में उदयाचल भाल भूमण्डल वक्षस्थल और मनाक मेरु चरण थे। सम्पूर्ण चराचर सृष्टि कोटि कोटि सूर्य, चन्द्र, ब्रह्मा विष्णु महेश दिनेश रुद्र, लोकपाल आदि उसमें व्याप्त थे। उनकी जिह्वा से भयंकर ज्वालाएँ निकल रही थीं। त्रिकाल को मुट्ठी में बाँधे सृष्टि के आदि और अन्त का कारण वह विकराल रूप था

"उदयाचल मेरा दीप्त भाल भूमण्डल वक्षस्थल विशाल।
× × ×
शत कोटि रुद्र शत कोटि काल, शत कोटि दण्डधर लोकपाल।
भूलोक अतल पाताल देख गत और अनागत काल देख।
अम्बर में कुन्तल जाल देख, पद के नीचे पाताल देख।
मुट्ठी में तीनों काल देख मेरा स्वरूप विकराल देख।"[ⁿ]

श्रीकृष्ण के इस स्वरूप को देखकर सभा सन्न थी, लोग डर के मारे चुप थे या बेहोश पड़े थे। 'रश्मिरथी' कृष्ण का यह रूप गीता के श्रीकृष्ण के उस विराट रूप से तुलनीय है, जो उन्होंने अर्जुन को दिखाया था।[¹] यहाँ यह उल्लेखनीय है कि श्रीकृष्ण को कवि ने ईश्वरीय रूप में अंकित किया है। कृष्ण के इस पौराणिक रूप का चित्रण विंशति शताब्दी के बुद्धिजीवी पाठक को कितना ग्राह्य और वरेण्य होगा यह चिन्तनीय है। प्रस्तुत काव्य से ७ वर्ष

---

[*] रश्मिरथी, पंचम सर्ग पृ० ६४
[ⁿ] वही तृतीय सर्ग, पृ० ३२ ३३
[¹] गीता अध्याय ११ श्लोक १० से ३० तक

पूर्व लिखित 'कुरुक्षेत्र' काव्य में दिनकरजी ने कृष्ण को महापुरुष के रूप में ही अंकित किया है। 'कुरुक्षेत्र' में अनेक स्थानों पर भीष्म पितामह, युधिष्ठिर और स्वयं कवि ने कृष्ण को भगवान कहकर सम्बोधित किया है। किन्तु "कृष्ण को भगवान कहने में उसकी सगुणोपासना नहीं झलकती, अपितु वह उन्हें महापुरुष (अतिमानव) मात्र मानकर उनके प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त करता है। कवि अवतारवाद में विश्वास नहीं रखता अपितु ईश्वर सम्बन्धी उसकी कल्पना अधिक व्यापक एवं आध्यात्मिक है आधिदैविक नहीं।"[१] 'कुरुक्षेत्र' के कवि दिनकर के लिए अन्य महापुरुषों की भाँति श्रीकृष्ण भी श्रद्धेय हैं, ईश्वर नहीं

'भीष्म हो अथवा युधिष्ठिर या कि हो भगवान
बुद्ध हो कि अशोक गाँधी हो कि ईसु महान।
सिर झुका सबको सभी को श्रेष्ठ निज से मान,
मात्र वाचिक ही उन्हें देता हुआ सम्मान।"[२]

इस प्रकार कृष्ण के सम्बन्ध में एक दशाब्दी में लिखे गये दो काव्यों में दिनकरजी का दृष्टिकोण भिन्न है। 'रश्मिरथी' में कृष्ण के विकराल रूप दर्शन द्वारा ही नहीं वरन् अन्य अलौकिक घटनाओं के आयोजन द्वारा भी उनके ईश्वरीय रूप की प्रतिष्ठा की गयी है। उदाहरणार्थ, अर्जुन की प्रतिभा पूर्ति अर्थात् जयद्रथ वध के लिए

'माया की सहसा शाम हुई, असमय दिनेश हो गये अस्त।"[३]

इसी प्रकार दानव घटोत्कच की सृष्टि तथा कर्ण के रथ चक्र के रक्त कीच में धँस जाने और सम्पूर्ण शक्ति लगाने पर भी न निकलने में ईश्वरीय शक्ति का चमत्कार-दर्शन ही है।

दिनकरजी के विचार दर्शन का यदि उपर्युक्त विवेचन के आलोक में विश्लेषण किया जाय तो प्रतीत होगा कि कवि की ब्रह्म विषयक धारणा का मूल स्वरूप तो वही है जो 'कुरुक्षेत्र' में प्रतिपादित है किन्तु 'रश्मिरथी' में पौराणिक ऐतिहासिक कथानक में आमूल चूल परिवर्तन को अवांछनीय मानकर कवि ने इस काव्य के घटनाक्रम को ज्यों-का त्यों प्रस्तुत किया है जिसके कारण कृष्ण इस काव्य में ईशावतारी हो गये हैं। रश्मिरथी है भी कथाकाव्य, जबकि

---

[१] कुरुक्षेत्र मीमांसा पृ० ११८

[२] कुरुक्षेत्र षष्ठ सर्ग, पृ० ६५ (संस्करण संवत २००३ का)

[३] रश्मिरथी, षष्ठ सर्ग पृ० १३६

कुरुक्षेत्र विचार प्रधान काव्य है। कथाकाव्य में कथानक और विचार प्रधान काव्य में वैचारिकता (चिन्तन) का महत्त्व विशेष होता है। कथाकाव्य की महत्ता के सम्बन्ध में कवि के विचार रश्मिरथी की भूमिका में द्रष्टव्य हैं। फिर भी इतना तो कहा ही जायेगा कि अपने मूल चिन्तनक्रम (जिसके अनुसार यज्ञ अपौरुषेय है और कृष्ण महापुरुष हैं, ईशावतार नहीं) की रक्षा के लिए अलौकिक घटनाओं को किंचित् परिवर्तनों द्वारा बुद्धिग्राह्य बनाया जा सकता था, उदाहरणार्थ कुरुजन सभा में कृष्ण के विराट रूप दर्शन के स्थान पर उनके तेजस्वितापूर्ण रूप की झाँकी भी अंकित की जा सकती थी जिसे देखकर दुर्योधन चकित रह जाता लोग बेहोश तो न होते आदि।

नियति—नियति को एक क्रूर अदृश्य शक्ति के रूप में चित्रित किया गया है। नियति ही बार बार पुरुषार्थी कर्ण से छल करके उसे जीवन संग्राम में पराजित और निराश करती है। इस सन्दर्भ में कर्ण के कुछ कथन द्रष्टव्य हैं

सबको मिली स्नेह की छाया नयी-नयी सुविधाएँ
नियति भेजती रही सदा पर मेरे हित विपदाएँ।[१३]

× × ×

प्रवंचित हूँ नियति की दृष्टि में दोषी बड़ा हूँ।[१४]

× × ×

विलक्षण बात मेरे ही लिये है
नियति का घात मेरे ही लिये है।[१५]

स्वयं कवि ने कहा है

किया नियति ने वार कर्ण पर
छिपकर पुण्य विवर से।[१६]

कवि ने महाभारत युद्ध की आयोजिका भी नियति को ही माना है

हो चुकी पूर्ण योजना नियति की सारी
कल ही होगा आरम्भ समर अति भारी।[१७]

---

[१३] रश्मिरथी चतुर्थ सर्ग पृ० ७२
[१४] वही, सप्तम सर्ग, पृ० १५६
[१५] वही पृ० १८८
[१६] वही, चतुर्थ सर्ग पृ० ६३
[१७] वही पंचम सर्ग पृ० ८१

इतना होने पर भी 'रश्मिरथी' के नायक कर्ण ने नियति की क्रूरता को नत-मस्तक होकर स्वीकार नहीं किया है वरन पुरुषार्थ के बल पर उसका पूर्ण प्रतिरोध किया है। कर्ण कहता है

'चरण का भार लो सिर पर सँभाला,
नियति की दूतिया ! मस्तक झुका लो।
चलो जिस भाँति चलने को कहूँ मैं,
ढलो जिस भाँति ढलने को कहूँ मैं।"
न कर छल उम्र से आघात फूलो,
पुरुष हूँ मैं नहीं यह बात भूलो।
कुचल दूँगा, निशानी मेट दूँगा
चढ़ा दुर्दम भुजा की मेंट दूँगा।"[१८]

कर्ण के उपर्युक्त कथन में कर्ण का पौरुष ही नहीं, वरन सम्पूर्ण मानवता के पुरुषार्थ का महान उद्घोष है। इसी कथन के परिप्रेक्ष्य में कवि दिनकर के दृष्टिकोण की प्रगतिशीलता भी द्रष्टव्य है जिसके अनुसार वह मानव की शक्ति और सामर्थ्य को ही सर्वोपरि मानता है। मानव नियति की क्रूरता के प्रतिरोध में अंत तक संग्राम करने को कृतसंकल्प है। कर्ण के शब्दों में

'करो संघर्ष आठो याम तुम से,
करूँगा अंत तक संग्राम तुम से।"[१९]

कवि ने यहाँ तक कह दिया है कि कर्ण की गौरवपूर्ण जीवनगाथा के समक्ष नियति और भाग्य के संकेत व्यर्थ हैं

मगर यह कर्ण की जीवन कथा है,
नियति का भाग्य का इंगित वृथा है।'[२०]

यही नहीं, पुरुषार्थ के बल पर पुरुष नियति के भाल पर भी पैर रख सकता है
'नियति भाल पर पुरुष पाँव निज बल से धर सकता है।'[२१]

---

[१८] रश्मिरथी सप्तम सर्ग, पृ० १४६
[१९] वही, पृ० १६७
[२०] वही षष्ठ सर्ग पृ० १५१
[२१] वही, चतुर्थ सर्ग पृ० ७३

भाग्य—भाग्यवाद की धारणा का खण्डन कवि ने 'कुरुक्षेत्र काव्य म'[११] इसे पाप का आवरण और शोषण का शस्त्र कहकर किया था । इसी मान्यता की पुष्टि 'रश्मिरथी' मे कर्ण के निम्नांकित कथन द्वारा हुई है

> 'कहा कण ने, वृथा भाग्य से आप डरे जाते हैं,
> जो है सम्मुख खड़ा उसे पहचान नहीं पाते हैं ।
> विधि ने था क्या लिखा भाग्य मे खूब जानता हूँ मैं
> बाँहो को पर बली भाग्य से कहीं मानता हूँ मैं ।
>
> महाराज उद्यम से विधि का अंक पलट जाता है
> किस्मत का पासा पौरुष से हार पलट जाता है ।'[१२]

धम—पौराणिकों ने कुरुक्षेत्र को धमक्षेत्र और महाभारत' को धमयुद्ध कहा है ।[१३] किन्तु कवि ने इस मान्यता का विरोध किया है । उसके मतानुसार धम का विग्रह, हिंसा युद्ध या सहार से सम्बन्ध स्थापित नहीं किया जा सकता । धम तो करुणा से उद्भूत होता है

> करुणा से बढ़ता धम विमल ।[१४]

धम का वास्तविक स्वरूप कममय साधना एव जीवन पथ को त्याग की ज्योति से आलोकित करने म है । धम ध्येय म नहीं साधना म ही निहित है

> 'है धम पहुँचना नहीं धम तो जीवन भर चलने म
> फैला कर पथ पर स्निग्ध ज्योति, दीपक समान जलने म ।
>
> × × ×
>
> इसीलिए ध्येय मे नहीं धम तो सदा निहित साधना म ।'[१५]

अर्जुन द्वारा जयद्रथ के लोमहषक एव अन्यायपूर्ण वध को कवि ने धममय काय नहीं माना है । मरना और मारना कभी भी धममय काय नहीं हो सकते

---

[११] 'भाग्यवाद आवरण पाप का और शस्त्र शोषण का,
जिससे रखता दबा एक जन भाग दूसरे जन का ।
—कुरुक्षेत्र, सप्तम सग, पृ० ११५

[१२] रश्मिरथी, चतुथ सग पृ० ६६

[१३] धमक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सव । —गीता अ० १ श्लोक १

[१४] रश्मिरथी षष्ठ सग पृ० १३०

[१५] वही, पृ० १३०-३८

'हो जिसे धर्म से प्रेम कभी वह कुत्सित कर्म करेगा क्या ?
बर्बर, कराल, दंष्ट्री बनकर, मारेगा और मरेगा क्या ?'[१३]

चिरन्तन जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा

आध्यात्मिक निष्ठाओं के प्रति युगीन किंवा प्रगतिशील दृष्टिकोण अपनाते हुए भी चिरन्तन जीवन मूल्यों की स्थापना के लिए 'रश्मिरथी' का कवि प्रयत्नशील रहा है। दानशीलता, मैत्री, समानता, उदारता आदि मूल्यों को प्राचीन कहकर उपेक्षित नहीं किया गया, वरन उनकी महत्ता का बखान काव्य में आद्यान्त दिखायी देता है।

दान की महिमा—भारतीय संस्कृति मे दान की महिमा अनादि काल से स्वीकृत रही है। दान-कर्म को पुराणपन्थी कहकर तिरस्कृत नहीं किया जा सकता। दिनकरजी ने दान की महिमा का सम्पूर्ण आख्यान करते हुए इस कार्य का जीवन धर्म कहा है

जीवन का अभियान दानबल से अजस्र चलता है।

× × ×

दान जगत का प्रकृति धर्म है मनुज व्यर्थ डरता है।'[१४]

दान स्वत्व का त्याग भी नहीं है क्योंकि जो जितना देता है उतना ही पाता भी लेता है। उदाहरण के लिए, वृक्ष फल इसलिए देते हैं कि उनके रेशों में कीड़े न समायें, डालियां स्वस्थ रहें और नये फल आयें। इसी प्रकार नदियां जल देती हैं कि बादल भरपूर बरसें और फिर जलपूरित होकर नया जीवन पायें। इसी सन्दर्भ में कवि ने राम दधीचि, शिवि, हरिश्चन्द्र ईसा, गांधी जैसे आत्मदानियों का यशोगान किया है। दानवीरों में 'रश्मिरथी' के नायक कर्ण का चरित्र अनुपमेय है। उसने दानव्रत के पालनहेतु अपना सर्वस्व बलिदान कर दिया। जन्मजात कवच और कुण्डल तक देवराज इन्द्र को दे दिये। तभी तो कवि ने कहा है कि

कर्ण नाम पड़ गया दान का अतुलनीय महिमा का।'[१५]

दान मनुष्य का वह आभूषण है जो उसके चरित्र को अलंकृत नहीं करता, वरन सम्पूर्ण मानव जाति की गौरव वृद्धि करता है। कर्ण से इन्द्र की याचना स्वर्ग की पृथ्वी से याचना है

---

[१३] रश्मिरथी पृ० १३८
[१४] वही चतुर्थ सर्ग, पृ० ६० ६१
[१५] वही पृ० ६३

"स्वर्ग भीख माँगने आज, सच ही, मिट्टी पर आया।"[1]

दान की भाँति ही अन्य जीवन मूल्यों के आदर्श का प्रतिपादन काव्य में यत्र-तत्र हुआ है। जैसे

तपस्या

नरता का आदर्श तपस्या के भीतर पलता है
देता वही प्रकाश आग में जो अभीत जलता है।'[11]

सत्य

'हार जीत क्या चीज? वीरता की पहचान समर है,
सच्चाई पर कभी हार कर भी न हारता नर है।'[111]

अथवा

नहीं राधेय सत्यपथ छोड़कर अथ ओक लेगा,
विजय पाय न पाये रश्मियों का लोक लेगा।[111]

मैत्री—तृतीय सर्ग में कृष्ण जब कर्ण को युधिष्ठिर से मिल जाने का परामर्श देते हैं तो प्रत्युत्तर में कर्ण ने जो कहा है उससे मैत्री की महत्ता स्पष्ट झलकती है

मैत्री की बड़ी सुखद छाया शीतल हो जाती है काया।
× × ×
मित्रता बड़ा अनमोल रतन, कब इसे तोल सकता है धन।
धरती की तो है क्या बिसात, आ जाय अगर बैकुण्ठ हाथ।
उसको भी न्यौछावर कर दूँ कुरुपति के चरणों पर धर दूँ।[11]

श्रम—परिश्रम की महत्ता को कवि ने मुक्त कण्ठ से स्वीकार किया है। काव्य के तृतीय सर्ग में कहा गया है कि वसुधा का नेता भूखण्ड विजेता अतुलित यश क्रेता तथा नवधर्म प्रणेता वही व्यक्ति हुआ है, जिसने विघ्नों को सहकर भी श्रम साधना की है।[11]

---

[1] रश्मिरथी, पृ० ६६
[11] वही पृ० ५६
[111] वही पृ० ७०
[111] वही सप्तम सर्ग पृ० १६१
[11] वही तृतीय सर्ग पृ० ५१
[11] वही तृतीय सर्ग पृ० २८

युगीन समस्याएँ

'रश्मिरथी' मे जातिवाद, उच्चकुलीनता, सामाजिक असमानता आदि अनेक समस्याओ की यथाप्रसग विवेचना हुई है। युद्ध की समस्या पर विश्लेषणात्मक ढग से कवि ने विचार किया है। उसने समस्याए ही नही, वरन उनका समाधान भी प्रस्तुत किया है।

युद्ध की समस्या और समाधान

युद्धवादी विचार दर्शन की विस्तृत भूमिका यद्यपि दिनकरजी के 'कुरुक्षेत्र' नामक काव्य मे मिलती है, क्योकि उस काव्य की रचना ही द्वितीय विश्वयुद्ध की पृष्ठभूमि पर हुई थी, तथापि युद्ध की समस्या पर 'रश्मिरथी' म भी अपेक्षित प्रकाश डाला गया है।

काव्यारम्भ मे ही कुलीन एव वर्ण व्यवस्था आधृत समाज की आलोचना करते हुए कवि ने कहा है कि युद्धो का आयोजन ससार से दुख दैन्य भगाने या पर शोषक पथभ्रान्त लोगो को धर्ममार्ग पर लाने के लिए नही होता है। युद्ध तो इसलिए होत हैं कि राजे महाराजे विजय का कल्पित सम्मान पाकर मानी हो अथवा राज्यों का सीमा विस्तार करें और लूटमार हो। युद्धो की विजय राजाओ की अहं वृद्धि करती है। राजा स्वेच्छाचारी होकर समाज को पददलित करते हैं।[१] अस्तु कवि ने इस समस्या का निदान दो रूपो मे प्रस्तुत किया है। प्रथमत समाज का नेतृत्व, भोगी विलासी भूपो के हाथ म न रहे। समाज म श्रेष्ठता का पद कवि, कलाविद, कलाकार, ज्ञान विज्ञान विशारदो को प्राप्त हो क्योकि समाज का शुभचिन्तक वर्ग यही है। यह वर्ग अशन वसन विहीन एव दीन रहकर भी मानवोभ्युदय का ही बात करता है। इस वर्ग के लोगों को कनक नही ज्ञान, कल्पना और चरित्र की उज्ज्वलता पर अभिमान है। अस्तु—

'इन विभूतियो को जब तक ससार नहीं पहचानेगा,
राजाओं से अधिक पूज्य जब तक न इन्हें मानेगा।
तब तक पडी आग मे धरती इसी तरह अकुलायेगी,
चाहे जो भी करे, दुखों से छूट नही पायेगी।'[२]

युद्ध के निवारण का दूसरा समाधान क्रान्तिकारी है। कवि का अभिमत

---

[१] रश्मिरथी द्वितीय सर्ग, पृ० १४
[२] वही पृ० १५

है कि राजाओं को समझा बुझाकर ज्ञानी और कवि थक गये किन्तु प्रशासक वर्ग खड्ग के अतिरिक्त किसी भी भाषा को नहीं समझता। अतः ज्ञानियों को भी खड्ग धारण करके अविचारी एवं मदान्ध नृप के आतंक से भू को मुक्त करना चाहिए

'रोक-टोक से नहीं सुनेगा, नृप समाज अविचारी है,
ग्रीवाहर निष्ठुर कुठार का यह मदान्ध अधिकारी है।
इसीलिए मैं कहता हूँ, अरे ज्ञानियो! खड्ग धरो,
हर न सका जिसको कोई भी, भू का वह तुम त्रास हरो।'[18]

दूसरे शब्दों में जनक्रान्ति द्वारा राजतन्त्र से मुक्ति के उपाय की ओर संकेत किया है। कुरुक्षेत्र काव्य की भाँति युद्ध को एक चिरन्तन और अनिवार्य समस्या के रूप में इस काव्य में भी कवि ने स्वीकार किया है। महाभारत युद्ध की समाप्ति के बाद मनुष्य यद्यपि विभ्राट ज्ञानी और मनस्वी हो गया है किन्तु मनुज मनुज में युद्ध आज भी चल रहा है

महाभारत मही पर चल रहा है
भुवन का भाग्य रण में जल रहा है।
मनुज ललकारता फिरता मनुज को
मनुज ही मारता फिरता मनुज को।[19]

इस विडम्बनापूर्ण स्थिति का मूल कारण अतिशय भौतिकवादी मूल्यों की मानव जीवन में स्वीकृति है। सुख समृद्धि के अधीन एवं सत्तालोलुप होने के कारण मनुष्य पतनशील हो रहा है

'होकर समृद्धि सुख के अधीन,
मानव होता नित तपःक्षीण।
सत्ता, किरीट मणिमय आसन
करते मनुष्य का तेज हरण।
नर विभव हेतु ललचाता है
पर वही मनुज को खाता है।'[20]

---

[18] रश्मिरथी पृ० १६
[19] वही सप्तम सर्ग पृ० १५३
[20] वही तृतीय सर्ग पृ० ५४

इस प्रकार 'रश्मिरथी' काव्य मे जीवन-दर्शन सम्बन्धी विचारणा का स्वरूप महाकाव्योचित गरिमा से पूर्ण है। उसमे एक ओर पुरातन आदर्शों की नवीन और युगीन व्याख्या प्रस्तुत की गयी है तथा दूसरी ओर चिरन्तन मानवीय मूल्यों की पुनप्रतिष्ठा का प्रबल आग्रह है। जिस 'कर्णधर्म' के प्रसार का सन्देश प्रस्तुत काव्य के माध्यम से प्रसारित किया गया है वह हमारे युग जीवन एवं समाज की वर्तमान परिस्थितियों मे सर्वथा वाछनीय है। वह 'कर्णधर्म' है

'श्रम से नही विमुख होंगे जो, दु ख से नही डरेंगे,
सुख के लिए पाप से जो नर सधि न कभी करेंगे।
कर्णधर्म होगा धरती पर बलि से नहीं मुकरना,
जीना जिस अप्रतिम तेज से उसी शान से मरना।''

'' रश्मिरथी, चतुर्थ सर्ग, पृ० ७४

'ऊर्म्मिला' महाकाव्य
आर्य संस्कृति के उदात्त जीवनादर्शों की अभिव्यजना

११

'ऊर्म्मिला' महाकाव्य

आर्य संस्कृति के उदात्त जीवनादर्शों की अभिव्यंजना

'ऊर्म्मिला' महाकाव्य की सृजन प्रेरणा का मूल स्रोत जनकनन्दिनी ऊर्मिला का चरित्र है। कवि के शब्दों में— ऊर्मिला के स्तवन की लालसा और उस स्तवन को प्रकाश में लाने की इच्छा, चाहे वह थोथी ही क्यों न हो—मेरी जीवनसंगिनी रही है।'[1] भारतीय रामकाव्य परम्परा में 'वाल्मीकि रामायण' से लेकर 'साकेत' के पूर्व तक के ग्रन्थों में ऊर्मिला का चरित्र उपेक्षित प्राय रहा है। कविवर रवीन्द्रनाथ टगोर[2] और आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी[3] ने दो महत्वपूर्ण लेख लिखकर साहित्यकारों का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया। इन्हीं लेखों से प्रेरित होकर श्री मैथिलीशरण गुप्त ने 'साकेत' नामक महाकाव्य की रचना कर प्रथम बार ऊर्मिला के चरित्रोद्धार का विनम्र प्रयत्न किया। यद्यपि 'साकेत' की रचनात्मक प्रेरणा का मूल स्रोत और प्रतिपाद्य ऊर्मिला का ही चरित्र था तथापि कथानक के व्यामोह, आराध्यदेव श्रीराम की यशोगाथा के वर्णन का प्रलोभन आदि ऐसे तत्त्व थे, जिनके कारण 'साकेत' में ऊर्मिला का चरित्र अपेक्षित रूप में न उभर पाया। इस दृष्टि से श्री बालकृष्ण 'नवीन' कृत 'ऊर्म्मिला' महाकाव्य में उल्लेखनीय प्रयास हुआ है। 'साकेत' में ऊर्मिला का आविर्भाव नव-परिणीता वधू के रूप में होता है जबकि 'ऊर्म्मिला' महाकाव्य के प्रथम सर्ग के २४० छन्दों में ऊर्मिला

---

[1] ऊर्म्मिला श्रीनदमणचरणार्पणमस्तु प्रथम पृष्ठ

[2] प्राचीन साहित्य काव्येर उपेक्षिता पृ० ६६

[3] कवियों की ऊर्मिला विषयक उदासीनता, सरस्वती, जुलाई १९०८ भाग ९, संख्या ७ पृ० ३१२ १४।

की बाल्य एवं किशोरावस्था का सविस्तार विवेचन है। यह सम्पूर्ण वर्णन कवि-कल्पना प्रसूत है। अन्य सर्गों में भी मुख्यतः ऊर्मिला का ही चरित्र गान हुआ है। सच तो यह है कि 'ऊर्मिला' महाकाव्य में ही ऊर्मिला के चरित्र का पूर्ण प्रतिफलन हुआ है। इस काव्य में कवि का उद्देश्य रामायणी कथा की घटनाओं का वर्णन नहीं जैसा कि काव्य की भूमिका[४] में कवि ने स्वयं स्वीकार किया है। नवीनजी ने रामकथा के उन्हीं प्रसंगों और घटनाओं की संयोजना की है जिनका ऊर्मिला की चरित्र योजना से सीधा सम्बन्ध है। अस्तु, स्पष्ट है कि ऊर्मिला का चरित्र गान काव्य की सृजन प्रेरणा का मूल स्रोत है।

ऊर्मिला महाकाव्य की रचना का दूसरा प्रमुख प्रयोजन आर्य (भारतीय) संस्कृति के समुन्नत जीवनादर्शों को प्रतिष्ठित करना है। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए नवीनजी ने एक ओर आर्य संस्कृति के आधारभूत सिद्धान्तों की काव्य में प्रस्थापना की है और दूसरी ओर रामकथा के घटना प्रसंगों को सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य (Perspective) में अंकित किया है। उदाहरणार्थ राम के वन गमन को कवि ने महान् अर्थपूर्ण आर्य संस्कृति प्रसार यात्रा कहा है।[५] वन गमन के लिए विदा माँगते हुए लक्ष्मण ऊर्मिला से कहते भी हैं कि कैकेयी का वरदान माँगना और राम का पितृाज्ञा पालन तो औपचारिकता मात्र है। वास्तव में विपिन गमन तो जन दुःख भंजन एवं सांस्कृतिक विजय के उद्देश्य से हो रहा है।[६] कवि के मतानुसार वनवासी लोगों का जीवन अज्ञान की तमिस्रा विलास और भौतिकता से पूर्ण है। राम का वन गमन भौतिकता को विजित करने के ही निमित्त है

> आज विजित करने उस भौतिक दैहिक, शारीरिक बल को
> राम लखन वन गमन कर रहे संग ले आत्मज्ञान दल को।[७]

वन गमन के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए लक्ष्मण ऊर्मिला से कहते हैं

> हम संन्यासी विपिन प्रवासी,
> नव सन्देश प्रचारक हम।

---

[४] ऊर्मिला श्री लक्ष्मणचरणार्पणमस्तु पृ० च
[५] वही पृ० छ
[६] वही, तृतीय सर्ग पृ० २६३
[७] वही पृ० १६६

मन भय हारी मगल कारी
सब जन गण उद्धारक हम।'[८]

इसी प्रकार राम रावण के सघष म राम की विजय का कवि न आय सस्कृति की विजय कहा है

"हुई सास्कृतिक विजय पूण थी,
आय राम की मति धृति की।
नही शास्त्र विजिता यह लका,
यहा विजय है शास्त्रा की।
यहा जय है तापस आर्यों के,
शुद्ध शब्द ब्रह्मास्त्रो की।"[९]

इसी सन्दभ मे 'नवीन साहित्य' के अनुसन्धाता डा० लक्ष्मीनारायण दुबे का मत है कि—' आय धम, सभ्यता तथा सस्कृति की महत उपलब्धियो तथा गरिमा की इसम ('ऊर्म्मिला' महाकाव्य म) ऋचाएँ लिखी गयी हैं। इस कृति म भारत समग्र वसुन्धरा को अपने अक म समेट रहा है। भौतिकता यान्त्रिक सभ्यता, विनान आदि के असद पक्ष का उदघाटन कर कवि ने कामायनी के समान श्रद्धा भक्ति और विश्वास के तीन चिरन्तन प्रेरणामय गोलक हमारे युग को प्रदान किय हैं।'[१] वस्तुत 'ऊर्म्मिला' जिस युग की रचना है, उसके अनुरूप ही भारतीय सस्कृति का महान उदघोष उसम सुनायी देता है। 'ऊर्म्मिला' महाकाव्य का प्रणयन राष्ट्रीय स्वातन्त्र्य सग्राम की वला म लखनऊ जेल म हुआ था। उस समय देश भर म क्रान्ति, सत्याग्रह और आन्दोलन हो रह थे। 'ऊर्म्मिला' महाकाव्य का रचयिता समर के अमर सेनानी की भाति अपनी ओजमयी वाणी से भारतीयता की भावना का जन जन म प्रसार कर रहा था। कहा जाता है कि महाकाव्यो म जातीय जीवन सस्कृति और चेतना का महान उदघोष होता है जो 'ऊर्म्मिला' महाकाव्य म स्पष्ट सुनायी देता है। एक आलोचक के शब्दो म 'हिन्दी साहित्य म आज जितने भी महाकाव्य हिन्दी प्रेमियो के हाथ म सुशोभित हैं उन महाकाव्यो के कवियो मे राष्ट्रीयता की

---

[८] ऊर्म्मिला, पृ० २२३
[९] वही षष्ठ सग पृ० ५३
[१] गवेषणा, अद्धवार्षिक पत्रिका, जुलाई १९६३, पृ० ८७ पर 'ऊर्म्मिला का महाकाव्यत्व' शीषक लेख।

आग देशभक्ति का मादक यौवन, विप्लव का गाढ़ा उन्माद विद्रोह का सबल स्वर और जिन्दादिली की उछलती कूदती वेगवती धारा नवीन जसी नही थी और न आज ही है। जिन पवित्र भावनाओ के मादक वातावरण में इस महाकाव्य का प्रणयन हुआ वसा सौभाग्य किसी भी महाकाव्य को नही प्राप्त है। 'ऊर्म्मिला' महाकाव्य के लिए यह गौरव और गव का विषय है।"[11]

इस प्रकार स्पष्ट है कि ऊर्मिला के चरित्र की विशद योजना आय संस्कृति के जीवनादर्शों की प्रतिष्ठा, युग चेतना की विराट व्यजना के महान् उद्देश्य से प्रेरित होकर ऊर्म्मिला महाकाव्य की रचना हुई है।

आय सस्कृति के आदर्शों की प्रतिष्ठा

आय सस्कृति शब्द तत्त्वत भारतीय सस्कृति का ही द्योतक है। ऊर्म्मिला' महाकाव्य म दोनो का प्रयोग एक दूसरे के पर्याय के रूप मे हुआ है। सत्य तप, त्याग, यज्ञ, विश्वबन्धुत्व, आत्मवाद, नारी की महत्ता आदि आय सस्कृति के आधारभूत सिद्धान्त हैं। इन सबकी 'ऊर्म्मिला' महाकाव्य मे प्रतिष्ठा हुई है।

सत्य—काव्य के अन्तिम सग म लका विजय के अनन्तर विभीषण के लकाधिपति बनने पर एक लम्बी वक्तृता द्वारा राम सत्य की महिमा का बखान करते हैं। वे कहते हैं कि सत्य ही आचरणीय धम है। उनका विश्वास है कि सत्य का पक्षधर होने क कारण ही विभीषण राम के समथक बने। सत्य की ही जय होती है—सत्यमेवजयते। ससार म सत्य ही पूज्य है

सदा एक ही वस्तु पूज्य है,
वह है सत्य असत्य नही।[12]

राम की आकाक्षा है कि

'असद्विचार पराजित कुठित भूलुठित उन्मूलित हो
सत्यमेव विजयी हो राजन, प्रेम विटप फल फूलित हो।
आगे आगे ध्वजा सत्य की पीछे पीछे जन सेना,
श्रेता का यह धम सनातन, जग को विमल ज्ञान देना।[13]

---

[11] वीणा मई १९६४ प० २०६
[12] ऊर्म्मिला षष्ठ सग पृ० ५५६
[13] वही प० ५६५

तप—तप की महिमा का आख्यान करते हुए कवि ने कहा है कि 'तपोबल से ही ब्रह्माण्ड गतिमय । तप के अभाव से सृष्टि का अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है

"यह ब्रह्माण्ड तपस्या के बल, गतिमय सतिमय चलित हुआ,
अणु अणु मे कण-कण मे सन्तत, प्रथम तपोबल ज्वलित हुआ ।
× × ×
क्षण क्षण आठो याम न हो यदि तप, तो यह जग कहाँ रहे,
निमिष मात्र मे महाप्रलय हो, सृष्टि कथा फिर कौन कहे।"[१४]

यज्ञ — यज्ञ शब्द को कवि ने व्यापक अर्थों मे व्याख्यायित किया है । कवि का मत है कि यज्ञाहुति की पुण्य भस्म से ही ईश्वर ने सष्टि रचना की है । यज्ञ से ही जग मे जन गणहिताय वष्टि होती है । उसका मत है कि तिलघृत की इधन मे आहुतिया देना तो प्रवचनापूर्ण परिपाटी है, यज्ञ नहीं ।[१५] यज्ञ तो ससार का अनन्त गतिमय कर्म है । यह कर्म सष्टि के अणु अणु और कण-कण म प्रत्यक्ष क्षण घटित हो रहा है । सष्टि के महायज्ञ म सूय रश्मियो द्वारा और मेघ धाराए बरसाकर आहुतियाँ देते हैं । कवि के शब्दों म यज्ञ की परिभाषा इस प्रकार है

शुद्ध यज्ञ है सब भूत हित रत होकर जीवन देना,
शुद्ध यज्ञ है जग हिताय सब अपना तन मन धन देना । [१६]

ऊर्मिला तो यहा तक मानती है कि लक्ष्मण का वन गमन मानवता के कल्याणयज्ञ की प्रथम आहुति है ।[१]

नारी की महत्ता — आय सस्कृति में नारी को देवी कहकर पूज्यनीय माना गया है । 'ऊर्मिला के कवि ने इस दृष्टिकोण का विशदता से सम्पादन किया है । काव्य के अन्तिम सग म सीता और लक्ष्मण मे इस विषय पर सुन्दर सम्वाद की योजना नवीनजी ने की है । कवि का मत है कि नर और नारी मे केवल बाह्य रूप भेद ही है, अव्यक्त रूप मे दोनो का अस्तित्व एक ही है ।

---

[१४] ऊर्मिला पृ० ५४६ ५०
[१५] वही, तृतीय सग, पृ० २९९
[१६] वही, षष्ठ सग, पृ० ३००
[१] वही, तृतीय सग, पृ० ३०१

जीवन की सुगति इसमें है कि नर नारी हो और नारी नर हो। किन्तु पुरुष में नारी का प्रतिबिम्ब अनिवार्यतः होता है। नारी के सरस हृदय से ही पुरुष जगहित में लगता है

देवि परात्तम है वह जिसमें हो नर नारी का मिश्रण,
ऐसे ही नर वर करते हैं—जग का सचिन्तन वेदना व्रण।
× × ×
प्रति विकसित नर में रहती है कुछ नारीपन की झाईं,
उसी तरह ज्यों विधु बिम्बित प्रकृति नदी की परछाईं।[१८]

कवि ने स्पष्ट शब्दों में कहा है— जिस नर में नारीपन का अंश नहीं, वह नर नहीं, वानर है।[१९] नारीत्व की गरिमा का प्रतीक ऊर्मिला है जिसे लक्ष्मण चिर प्रेरिका प्रकृति रूपिणी देवी और शक्ति की प्रतिमा मानते हैं

तुम हो प्रकृति रूपिणी देवी तुम हो आदि शक्ति प्रतिमा
त्वमसि मदीया चिर प्रेरणा त्वमहि मदीय शक्ति प्रतिमा।
तुम मेरा साहस बल वमन तुम मम हास विलास प्रिये
तुम मम नेह सरणि तुम मेरा नव सन्देशोल्लास प्रिये।[१]

लक्ष्मण के उपर्युक्त कथन में आर्य संस्कृति द्वारा नारी को प्रदत्त गौरव की भावना स्पष्ट दिखायी देती है।

विश्वबन्धुत्व—सर्वेवसुधैवकुटुम्बकम् के आदर्श को काव्य में चरितार्थ किया गया है। इस आदर्श की प्रतिष्ठा के लिए कवि ने उत्कट राष्ट्रवाद का भी खण्डन किया है। नवीनजी का मत है कि— कभी कभी साम्राज्यवादी मनोवृत्ति एवं अर्थलिप्सा के वशीभूत होकर समूचा राष्ट्र भी दुष्टतामय हो सकता है। ऐसी परिस्थिति में हमें राष्ट्रविमुख भी चलना पड़ सकता है। अन्यथा शताब्दियों से सचित सत्य, ज्ञान और संस्कृति का वैभव भस्मसात हो जायेगा।[११] जन समूह के हृदय में आसुरी भाव जगने लगें तो हमें सामूहिकता के भी प्रतिकूल हो जाना चाहिए क्योंकि मनीषियों के लिए तो सारा संसार ही अपना है

---

[१८] ऊर्मिला, षष्ठ सर्ग पृ० ६१३ १४
[१९] वही, षष्ठ सर्ग पृ० ६१४
[१] वही, तृतीय सर्ग पृ० २२५
[११] वही षष्ठ सर्ग पृ० ५५६ ५७

"देश विदेश संकुचित जन का है अनुचित संकुचित विचार,
है मनीषियों का स्वदेश वह जहां सत्य शिव का विस्तार।
हैं जग के नागरिक सभी हम सब जगभर यह अपना है,
सीमित देश विदेश कल्पना मिथ्या भ्रम का सपना है।"[११]

संस्कारों का महत्त्व—काव्य में स्थान स्थान पर भारतीय संस्कारों का वर्णन करते हुए उनका महत्त्व प्रतिपादित किया गया है। ये संस्कृति के वाह्य आधार हैं। उदाहरणार्थ, 'विवाह' नामक संस्कार को ही लें। विवाह को कवि ने दो आत्माओं का मिलन और अभिन्नत्व की जय कहकर अपनी संस्कारगत आस्था प्रकट की है

"आर्य धर्म में यह वैवाहिक बंधन परम धर्ममय है
दो आत्माओं का मिश्रण है, अभिन्नत्व की जय है।"[१२]

वर्णाश्रम व्यवस्था—वर्णाश्रम व्यवस्था भारतीय आर्य संस्कृति की अभूतपूर्व विशेषता रही है। काव्यारम्भ में ही नवीनजी ने इस व्यवस्था के आदर्श रूप का चित्रण किया है। जनकपुरी का ब्राह्मण वर्ग दृढव्रती, धर्मधारी, तपस्वी, योगाभ्यासी, तत्त्वदर्शी एवं मनस्वी है।[१३] देश की स्वतन्त्रता के रक्षक क्षत्री बलिष्ठ भुजाओं वाले तथा पराक्रमी हैं।[१४] वैश्य लक्ष्मीसेवी और व्यवसायी हैं।[१५] शूद्र सेवाभावी है और वे इस सिद्धान्त के पोषक हैं कि

सेवाधर्म परम गहनो योगिनामप्यगम्य।"[१६]

अर्थवाद का खण्डन—आर्य संस्कृति की एक उल्लेखनीय विशेषता यह रही है कि उसमें अर्थ की प्रधानता कहीं भी स्वीकार नहीं की गयी है। जबकि पाश्चात्य संस्कृति और सभ्यता में विकास और प्रगति का आधारस्तम्भ अर्थ को ही कहा गया है। हमारे यहां भोग संग्रह भौतिकतावादिता, आडम्बरप्रियता के स्थान पर त्याग, तपश्चर्या संयम अपरिग्रह आध्यात्मिकता एवं सादगी को स्वीकार किया गया है। 'ऊर्म्मिला' के रचयिता ने इन्हीं तत्त्वों को भारतीय संस्कृति का आधार माना है

---

[११] ऊर्म्मिला पृ० ५५८
[१२] वही द्वितीय सर्ग पृ० ८०
[१३] वही प्रथम सर्ग छन्द २८, पृ० १८
[१४] वही, पृ० १८
[१५] वही, छन्द ३१, पृ० १८
[१६] वही, छन्द ३२, पृ० १६

जीवन की सुगति इसमें है कि नर नारी हो और नारी नर हो। किन्तु पुरुष में नारी का प्रतिबिम्ब अनिवार्यत होता है। नारी के सान्निध्य हृदय से ही पुरुष जगहित में लगता है

"देवि नरोत्तम है वह जिसमें हो नर नारी का मिश्रण,
ऐसे ही नर वर भरते हैं—जग का सचित वेदना व्रण।
× × ×
प्रति विकसित नर में रहती है कुछ नारीपन की झाई
उसी तरह ज्यों विधु विम्बित, प्रकृति नटी की परछाई।"[१८]

कवि ने स्पष्ट शब्दों में कहा है—'जिस नर में नारीपन का अंश नहीं वह नर नहीं बानर है।'[१९] नारीत्व की गरिमा का प्रतीक ऊर्मिला है, जिसे लक्ष्मण चिर प्रेरिका प्रकृति रूपिणी देवी और शक्ति की प्रतिमा मानते हैं

'तुम हो प्रकृति रूपिणी देवी तुम हो आदि शक्ति प्रतिमा
त्वमसि मदीया चिर प्रेरणा त्वमहि मदीय शक्ति प्रतिमा।
तुम मेरा साहस बल वैभव तुम मम हास विलास प्रिये
तुम मम नेह सरणि तुम मेरा नव संदेशोल्लास प्रिये।'[२०]

लक्ष्मण के उपर्युक्त कथन में आर्य संस्कृति द्वारा नारी को प्रदत्त गौरव की भावना स्पष्ट दिखायी देती है।

विश्वबंधुत्व—सर्वेषामुधवकुटुम्बकम के आदर्श को काव्य में चरितार्थ किया गया है। इस आदर्श की प्रतिष्ठा के लिए कवि ने उत्कट राष्ट्रवाद का भी खण्डन किया है। नवीनजी का मत है कि—कभी कभी साम्राज्यवादी मनोवृत्ति एवं अर्थलिप्सा के वशीभूत होकर समूचा राष्ट्र भी दुष्टतामय हो सकता है। ऐसी परिस्थिति में हम राष्ट्रविमुख भी चलना पड सकता है। अन्यथा शताब्दियों से संचित सत्य ज्ञान और संस्कृति का वैभव भस्मसात हो जायेगा।"[२१] जन समूह के हृदय में आसुरी भाव जगने लगें तो हमें सामूहिकता के भी प्रतिकूल हो जाना चाहिए क्योंकि मनीषियों के लिए तो सारा संसार ही अपना है

---

[१८] ऊर्मिला, षष्ठ सर्ग पृ० ६१३ १४
[१९] वही, षष्ठ सर्ग पृ० ६१४
[२०] वही तृतीय सर्ग पृ० २२५
[२१] वही षष्ठ सर्ग पृ० ५५६ ५७

'देश विदेश सकुचित जन का, है अनुचित सकुचित विचार,
है मनीषियो का स्वदेश वह, जहा सत्य शिव का विस्तार।
हैं जग के नागरिक सभी हम, सब जगभर यह अपना है
सीमित देश विदेश कल्पना, मिथ्या भ्रम का सपना है।'[११]

संस्कारों का महत्त्व—काव्य मे स्थान स्थान पर भारतीय संस्कारों का वर्णन करते हुए उनका महत्त्व प्रतिपादित किया गया है। ये संस्कृति के बाह्य आधार हैं। उदाहरणार्थ, 'विवाह' नामक संस्कार को ही लें। विवाह को कवि ने दो आत्माओं का मिलन और अभिन्नत्व की जय कहकर अपनी संस्कारगत आस्था प्रकट की है

'आर्य धर्म मे यह वैवाहिक बन्धन परम धर्ममय है
दो आत्माओं का मिथुन है, अभिन्नत्व की जय है।'[१२]

वर्णाश्रम व्यवस्था—वर्णाश्रम व्यवस्था भारतीय आर्य संस्कृति की अभूतपूर्व विशेषता रही है। काव्यारम्भ मे ही नवीनजी ने इस व्यवस्था के आदर्श रूप का चित्रण किया है। जनकपुरी का ब्राह्मण वर्ग दृढव्रती, धर्मधारी, तपस्वी, योगाभ्यासी, तत्त्वदर्शी एवं मनस्वी है।[१३] देश की स्वतन्त्रता के रक्षक क्षत्री बलिष्ठ भुजाओं वाले तथा पराक्रमी हैं।[१४] वैश्य लक्ष्मीसेवी और व्यवसायी हैं।[१५] शूद्र सेवाभावी हैं और वे इस सिद्धान्त के पोषक हैं कि

'सेवाधर्म परम गहनो योगिनामप्यगम्य।'[१६]

अर्थवाद का खण्डन—आर्य संस्कृति की एक उल्लेखनीय विशेषता यह रही है कि उसमें अर्थ को प्रधानता कहीं भी स्वीकार नहीं की गया है। जबकि पाश्चात्य संस्कृति और सभ्यता मे विकास और प्रगति का आधारस्तम्भ अर्थ को ही कहा गया है। हमारे यहाँ भोग संग्रह, भौतिकवादिता आडम्बरप्रियता के स्थान पर त्याग, तपश्चर्या संयम, अपरिग्रह आध्यात्मिकता एवं सादगी का स्वीकार किया गया है। 'ऊर्म्मिला' के रचयिता ने इन्ही तत्त्वों को भारतीय संस्कृति का आधार माना है

---

[११] ऊर्म्मिला पृ० ५५८
[१२] वही, द्वितीय सर्ग, पृ० ८०
[१३] वही प्रथम सर्ग छन्द २८, पृ० १८
[१४] वही पृ० १८
[१५] वही छन्द ३१ पृ० १८
[१६] वही, छन्द ३२, पृ० १६

"शुद्ध विचार प्रौढ़ता ही है
भित्ति सभ्यता संस्कृति की।
सदाचरण शीलता मात्र है,
द्योतक संस्कृति मति, धृति की।"[18]

नवीनजी का मत है कि जो लोग अर्थोपार्जन को जन संस्कृति का मापदण्ड मान लेते हैं, वे सत् असत् का विचार छोड़कर अर्थ-संचय को जीवन का लक्ष्य बना लेते हैं। अर्थ संचय की वृत्ति मानव मन को चिन्तन मननशून्य और जड़वादी बना देती है। वैदिक ऋषियों ने कभी भी अर्थ संचय नहीं किया। वे लोकोत्तर आध्यात्मिक साधना को ही सबसे बड़ा धन मानते थे।[19] आज संसार में जो प्रगति हुई है वह अर्थवाद का परिणाम नहीं है, क्योंकि

'यदि संस्कृति गति लौकिक आर्थिक,
संचय के संग संग चलती।
तो वल्कल वसनों के युग में
कैसे ज्ञान ज्योति जलती।'[20]

अस्तु मानवता के विकास एवं प्रगति का मापदण्ड अर्थ नहीं हो सकता

मानवेतिहास की प्रगति का मापदण्ड धन धान्य नहीं
यह समाज संस्कृति जा सकती नापी धन से कभी नहीं।[21]

आत्मवाद में आस्था—भारतीय धर्म साधना के अनुसार कवि नवीन ने आत्मा के अस्तित्व और आत्मवाद की विचारधारा को स्वीकार किया है। उसने भौतिकतावादी जड़वादी पदार्थवादी जीवन-दर्शनों से तुलना करते हुए आत्मवाद की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया है। कवि का मत है कि किस जड़ पदार्थ या अर्थशक्ति से चेतन भाव जगा इस प्रश्न का उत्तर भौतिकवादी दार्शनिकों के पास नहीं है।[22] भौतिकतावादी विवेचन शुष्क तर्कों पर आधारित है, इसलिए

---

[18] *ऊर्मिला, षष्ठ सर्ग पृ० ५५४*

[19] वही षष्ठ सर्ग पृ० ५५३

[20] वही पृ० ५५४

[21] वही पृ० ५५४

[22] वही पृ० ५४७

"भौतिकवाद चेतना विरहित,
है वह निपट निराशावाद।
राजस-तामस गुणमय वह है
मानव मन का मत्त प्रमाद।"[१३]

जबकि आत्मवाद म अनन्तता है। उसमें रुचिर ज्ञान का वैभव है। उसम सचय वत्ति का अभाव है।[१४]

इस प्रकार आय संस्कृति के सैद्धान्तिक एव व्यावहारिक दोनो ही रूपो का विवेचन कवि ने प्रस्तुत किया है। 'ऊर्म्मिला महाकाव्य मे आय संस्कृति का महान् और समृद्ध स्वरूप अंकित हुआ है। जहाँ तक सांस्कृतिक चेतना के निरूपण का प्रश्न है यह कहा जा सकता है कि-- 'साकेत' की अपेक्षा 'ऊर्म्मिला' मे आय संस्कृति और धम की शखध्वनि अधिक प्रखर और प्रभविष्णु प्रतीत होती है।[१५]

युग चेतना के स्वर--आय संस्कृति के महत आदर्शों की प्रतिष्ठा के साथ साथ 'ऊर्म्मिला महाकाव्य म युग चेतना के स्वर भी मुखरित हुये हैं। समसामयिक जीवन की चेतना को आत्मसात करके कवि नवीन ने अपनी जीवन दृष्टि का निर्माण किया हैं। भारत के अतीत गौरव का गायक कवि नवयुग के स्वागताथ भी सन्नद्ध है

"आओ नवयुग उन्नत मस्तक
हो हम स्वागत करते हैं।
तेरे नव आदर्शों को हम
सिर आँखो पर धरते हैं।"[१६]

नवयुग की नव चेतना से प्रेरित होकर ही कवि जागरूकता को जीवन का धन सत्याचरण को आत्मचिन्तन और जन सेवा को ईश्वर भक्ति कहता है

'जागरूकता जीवन धन है
सत्याचरण आत्मचिन्तन है।

---

[१३] ऊर्म्मिला पृ० ५४८
[१४] वही पृ० ५४८
[१५] डा० लक्ष्मीनारायण दुबे, बालकृष्ण नवीन व्यक्तित्व एव काव्य, पृ० ३७१
[१६] ऊर्म्मिला, सग, पृ० ५८६

निश्चल होकर जगज्जनों की,
सेवा ही प्रभु का यजन है।"[illegible]

कवि ने मानव और जीवन की व्याख्या भी इसी प्रगतिशील जीवन दृष्टि से प्रेरित होकर की है। उसके मतानुसार, मनुष्य अग्निपुंज विभु के मन की आग्नेय कल्पना है। मानव की मानवता इसमें है कि वह आग सा रहे, अर्थात् संघर्षरत रहे।[18] जीवन सचेतन शक्ति का प्रचण्ड गति संक्रमण है जिसका उद्देश्य जड़ता का भेदन कर समता संस्थापित करना है।[illegible] जीवन धीर गम्भीर नीर का प्रवाह है जिसका कार्य जगत की प्यास बुझाना है। जीवन सतत् युद्ध है जिसमें गति और संघर्ष है। नवीनजी ने जीवन की तुलना उस विप्लव गान से की है जिसके स्वरों में क्रान्ति और परिवर्तन का सन्देश है

"जीवन है चिर विप्लव गायन,
स्वर जिसके हैं सतत क्रान्ति।
मोह भार है नित परिवर्तन
गायन लय है चिर अशांति।"[illegible]

कवि की कामना है कि हम विप्लव गान गाते गाते जीवन-पथ पर बढ़ना चाहिए। विप्लव के स्वरों का जगत में अधिक प्रसार होना चाहिए जिससे रूढ़ियों का उच्छेदन हो। तिमिर कालिमा प्रकाश में परिवर्तित हो।[illegible]

वादात्मक प्रभाव

'ऊर्मिला' महाकाव्य की रचना पर अनेक वादात्मक विचारधाराओं का प्रभाव स्पष्ट दिखायी देता है। इनमें उल्लेखनीय हैं—गांधीवाद, स्वच्छन्दतावाद, रोमांसवाद, हालावाद, मानवतावाद आदि।

ऊर्मिला महाकाव्य की रचना जिस युग में हुई थी, उस युग का जीवन गांधीजी से प्रभावित था। सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक आदि सभी जीवन क्षेत्रों में गांधीवादी विचारों और सिद्धान्तों को स्वीकृत किया जा चुका था। ऊर्मिला महाकाव्य में अहिंसा, सत्याग्रह, साम्राज्यवा[illegible] का विरोध

[illegible] ऊर्मिला, द्वितीय सर्ग, पृ० ७६

[18] वही, षष्ठ सर्ग, पृ० ५६७

[illegible] वही, पृ० ५६८

वही, पृ० ५६६

[21] वही, षष्ठ सर्ग, पृ० ५७०

[22] वही, पृ० ५७१

आदि गांधीवादी विचारधारा के मूलभूत सिद्धान्तो को स्वीकृत किया गया है। गांधीजी अंग्रेजी साम्राज्यवाद के विरोधी थे। 'ऊर्म्मिला' के राम भी इसी मनोवृत्ति के समर्थक हैं

'है साम्राज्यवाद का नाशक
दशरथ नन्दन राम सदा।
है भौतिकवाद विनाशक,
जनमन रजन राम सदा।"[१]

नवीनजी ने राम और रावण को क्रमश आत्मवाद और साम्राज्यवाद का प्रतीक माना है। राम और रावण का संघर्ष वस्तुत आत्मवादी और साम्राज्यवादी प्रवृत्तियो का ही संघर्ष कहा गया है। एक स्थल पर राम कहते हैं

"महामहिम रावण का मेरा, नहीं व्यक्तिगत था झगडा
आत्मवाद साम्राज्यवाद का वह था अनमिल भेद बडा।'[२]

'ऊर्म्मिला' की रचना पर रोमासवाद, स्वच्छदतावाद, हालावाद आदि का भी प्रभाव स्पष्ट दिखायी देता है। पाश्चात्य शिक्षा, सभ्यता और संस्कृति का तब तक भारतीय जन जीवन पर प्रभूत प्रभाव पड चुका था। कवि हरिवशराय 'बच्चन' की हालावाद सम्बन्धी कविताएँ तत्कालीन साहित्य जगत मे बहुचर्चित थीं। उमर खय्याम की रुबाइयों का अनुवाद लोग बडे चाव से पढते थे। स्वय नवीनजी हिन्दी साहित्य मे हालावाद के उन्नायक हैं और स्वय ऐसी कुछ कविताएँ लिख चुके थे। ऊर्म्मिला उस प्रभाव से अछूती न रह सकी।"[३] कवि ने ऊर्मिला और लक्ष्मण के प्रेम का निरूपण करते समय लक्ष्मण से कहलाया है

"तुम रसदात्री, मैं मधुपायी,
तुम प्याली, मैं मतवाला।
मैं मदिरा, तुम पात्र मनोहर,
मैं गाहक, तुम मधुशाला।
× × ×

---

[१] ऊर्म्मिला, पृ० ५५८
[२] वही, ५४१
[३] जगदीशप्रसाद श्रीवास्तव, नवीन और उनका काव्य, पृ० १४०

गरलमयी तुम, सुधामयी तुम
तुम मेरी मदिरा बाला।
अभयदान देती मदमाती
मुझको करने दो मतवाला। [४६]

लक्ष्मण उर्मिला के प्रमालाप वर्णन में कवि ने रोमांसवादी मनोवृत्तियों का परिचय दिया है। लक्ष्मण का निम्नांकित कथन द्रष्टव्य है

"अरी रानी क्यों ललचा रही?
लाज से क्यों ठानी है रार?
तनिक मुख तो कुछ ऊंचा करो,
रच कर लूं नैनों से प्यार।
× × ×
अये गड़ जाओ हिय में हंसी,
भाँति लज्जा नौं की पतवार। [४७]

दोनों के प्रेम मिलन का चित्र भी इसी सन्दर्भ में द्रष्टव्य है

ऊर्मिला के उरोज पर झुके, सुलक्ष्मण को निद्रा आ गई।
एक की मृदु गोदी में एक गुथे से वे ऐसे सो रहे
द्विवेणी का मानो आवेश उदधि में मिलते ही सो रहे।
× × ×
उर्मिला की चादर पर आज चढ़ा लक्ष्मण का चोखा रंग
बिंध गया वे अनंग नाराच तड़प उठता मन का मृदुरंग। [४८]

दाम्पत्य जीवन के मधुर विनोद एवं प्रेम क्रीडाओं के अतिरिक्त देवर भाभी (लक्ष्मण सीता) के मुक्त परिहास का चित्रण भी कवि ने किया है, जिसमें स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ दिखायी देती हैं। लंका से लौटते हुए विमान में देवर भाभी के एक लम्बे परिहासपूर्ण संवाद का आयोजन की गयी है, जिसके दो अंश द्रष्टव्य हैं

सीता का कथन

'धन्य भाग्य उर्मिला बहन के
ऐसा ढोंगी पति पाया।

---

[४६] उर्मिला तृतीय सर्ग पृ० २१६ २०
[४७] वही द्वितीय सर्ग पृ० १४४ ४५
[४८] वही, द्वितीय सर्ग पृ० १४६-४७

भीतर भीतर रस ऊपर से
फलाई यह यति माया।
सच बोलो क्या करते हो तुम,
सदा ऊर्मिला का हो ध्यान।[४९]

लक्ष्मण का प्रति उत्तर

'भाभी तनिक राम से पूछो
क्या हो जाता है मन में।
कैसे सीत सीत करते
विचरे ये व वन वन में।
मैं तो फिर भी छोटा हूँ,
मेरी कौन बिसात अहो।'[५०]

मानवतावाद हमारे युग का सबसे उन्नत विचार दर्शन है। कवि नवीन ने ऊर्म्मिला' में इस विचारधारा के मूलभूत सिद्धान्तों की प्रस्थापना आद्यान्त की है। यथा

हैं जग के नागरिक सभी हम,
सब जगभर यह अपना है।
सीमित देश विदेश कल्पना,
मिथ्या भ्रम का सपना है।'[५१]

'ऊर्म्मिला महाकाव्य की रचना पर विभिन्न युगीन विचारधाराओं (वादों) का प्रभाव काव्य के रचनाफलक को व्यापक परिवेश प्रदान करता है। काव्य मे समकालीन चिन्तन प्रक्रिया का समाहार कवि की युग जीवन के प्रति सजग आस्था का परिचायक है। सत्य तो यह है कि— नवीन का कवि सदा से मानवता के प्रति ईमानदार रहा है तथा उसकी कुशल अन्तर्दृष्टि ने सदा ही युग के सत्य को परखा है।'[५२] प्रस्तुत काव्य के जीवन दर्शन की सबसे महत्त्वपूर्ण उपलब्धि यह है कि जिस सांस्कृतिक चेतना के समाहार की चेष्टा की गयी है वह पौर्वात्य और पाश्चात्य, प्राचीन और अर्वाचीन आध्यात्मिक

---

[४९] ऊर्म्मिला षष्ठ सर्ग, पृ० ५६८

[५०] वही पृ० ५६६

[५१] वही, षष्ठ सर्ग पृ० ५५८

[५२] केशवदेव उपाध्याय नवीन दर्शन—अपनी बात

और भौतिक जीवनादर्शों से एक साथ प्रभावित है। उसका आधार विश्व मगल की कामना है

'आत्मसमपण की अनहद ध्वनि,
उठे विश्व के अम्बर म,
परम मुक्ति की जगे लालसा
जग म, सकल चराचर म।'[५३]

---

[५३] ऊर्मिला पष्ठ सग पृ० ८८७

'एकलव्य' महाकाव्य

गुरुभक्ति का चिरन्तन कीर्तिमान

१२

'एकलव्य' महाकाव्य
गुरुभक्ति का चिरन्तन कीर्तिमान

प्रत्येक महाकाव्य की रचना के मूल में कोई बलवती सृजन प्रेरणा और महत् उद्देश्य की सिद्धि निहित रहती है। महाकाव्य की महत्ता शिल्पगत वैशिष्ट्य एवं जीवन-दर्शन सम्बन्धी उपलब्धियों के साथ साथ उद्देश्य की महत्ता पर भी निर्भर करती है। डॉ० राम कुमार वर्मा प्रणीत एकलव्य' महाकाव्य भी बलवती सृजन प्रेरणा का ही प्रतिफलन है। यह सृजन प्रेरणा थी—एकलव्य के चरित्र का महत्वांकन और इस चारित्रिक माध्यम से गुरु भक्ति के उच्चतम उदात्त आदर्श की अभिव्यंजना। एकलव्य की चारित्रिक गरिमा से सम्बन्धित समाख्यान महाभारत के १३२वें अध्याय में ३१वें श्लोक से लेकर ६०वें श्लोक तक केवल तीस श्लोकों में वर्णित है। 'महाभारत के इसी अत्यल्प और विरल कथासूत्र को अधिगृहीत कर डॉ० रामकुमार वर्मा ने अपनी अद्भुत कल्पना शक्ति और सर्जनात्मक मेधा के बल पर 'एकलव्य' शीर्षक महाकाव्योचित गरिमा से मण्डित प्रबन्धकाव्य कृति की सर्जना की है। वस्तुतः एकलव्य का प्रणयन समकालीन युग बोध और मानवतावादी जीवन दृष्टि से अनुप्रेरित होकर हुआ है। संस्कृत काव्य शास्त्र की परम्परा और काव्याचार्यों द्वारा निर्दिष्ट लक्षणों के अनुसार महाकाव्य का नायक सुर, सद्वंशीय या क्षत्रिय ही हो सकता है। किन्तु डा० वर्मा ने निषाद पुत्र को 'एकलव्य' महाकाव्य के नायकत्व पद पर आसीन करके अपनी मानवतावादी जीवन दृष्टि का ज्वलन्त प्रमाण प्रस्तुत किया है। इस सम्बन्ध में एकलव्य' के रचयिता का यह कथन उल्लेखनीय है कि—'एकलव्य ने जिस आचरण का परिचय दिया है वह किसी उच्च कुल के व्यक्ति के आचरण के लिये भी आदर्श है। वह 'अनार्य नहीं आर्य है, क्योंकि उसमें शील' का प्राधान्य है। यही उसमें महाकाव्य का नायक बनने की क्षमता है, भले ही वह

'सुर अथवा सद्वंश' में उत्पन्न क्षत्रिय नहीं है। [१] एकलव्यकार की एतद् विषयक अवधारणा में मानवतावादी जीवन-दृष्टि के परिनिर्माण में महाभारत के सूत्र वाक्य — नहि मानुषाच्छ्रेष्ठतरं हि किंचित् तथा राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के तत्कालीन अछूतोद्धार आन्दोलन का भी उल्लेखनीय योगदान रहा है। कवि ने स्वयं आमुख में स्वीकार किया है कि— मेरे शैशव के संस्कारों में अंकुरित और बापू के अछूतोद्धार में पल्लवित यह कथा दस वर्षों की साधना से आज की युगवाणी में प्रस्फुटित हो रही है। डॉ० वर्मा के उद्धृत मन्तव्यों से स्पष्ट है कि एकलव्य की रचनात्मक सादृश्यता युग बोध की व्यापक विवृत्ति और महाकाव्यादर्शों की नायक विषयक परिकल्पना के क्रान्तिकारी परिवर्तन की अवधारणा में निहित है। अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए एकलव्यकार को कथानक में अपेक्षित परिवर्तन भी करने पड़े हैं। इन परिवर्तनों को मूलकथा से विलग अवान्तर प्रसंगों, नवीन उद्भावनाओं एवं काल्पनिक घटना क्रम की आयोजना के परिपार्श्व में देखा जा सकता है। इतिवृत्त विधान में महाकाव्यकार का कौशल इस दृष्टि से प्रशंसनीय है कि उसने मूलकथा के प्रचलित और प्रख्यात स्वरूप को क्षत किए बिना नवीन उद्भावनाएँ की हैं। डा० गोविन्द राम शर्मा का मत है कि— वर्मा जी ने इस कथा में नवीन उद्भावनाओं द्वारा यत्र-तत्र परिवर्तन करके इसे अधिक व्यापक प्रभावशाली और बुद्धिग्राह्य बनाया है। मूल कथा के पौराणिक रूप की यथेष्ट रक्षा करते हुए कवि ने उसे आज के युग की माँग के अनुरूप नव दृष्टि से देखा है।' [२] 'एकलव्य के कथानक की दूसरी विशेषता यह है कि कवि ने— महाभारत के इतने संक्षिप्त प्रसंगों में भी राजनीतिक और सामाजिक स्थिति की सूक्ष्म परख की है और मनोवैज्ञानिक जिज्ञासा बिन्दु देखा है। एकलव्य की कथा की क्षीणता मौलिक उद्भावनाओं से पुष्ट है। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण, मर्मस्पर्शी हृदय और चिन्तन ने कथा शिल्प के स्तर को बहुत ऊँचा उठा दिया है।' [३] इसके अतिरिक्त एकलव्य का सर्ग-संयोजन क्रम भी नितान्त नाटकीय एवं अर्थवत्तापूर्ण है। दर्शन परिचय, अभ्यास, प्रेरणा, प्रदर्शन, आत्म निवेदन धारणा, ममता, संकल्प साधना स्वप्न लाघव द्वन्द्व और दक्षिणा शीर्षक चौदह सर्गों में विभाजित और विकसित कथाक्रम

---

१ एकलव्य आमुख पृ० ६

२ हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य पृ० ४२८

३ आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों का शिल्प विधान, पृ० १७७

एकलव्य की एकनिष्ठ धनुर्वेद साधना और दक्षिणागुष्ठ समर्पण रूपी महान् गुरुभक्ति भाव की नाटकीय अभिव्यक्ति देने मे सर्वथा सफल है। प्रासगिक वृत्त के अन्तर्गत द्रोण और कौरव राजकुमारो तथा एकलव्य-जननी के अवान्तर प्रसग हैं जो प्रधान कथा के अङ्गभूत ही हैं। 'एकलव्य' के कथात्मक विनियोजन की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता उसके कल्पना प्रसूत अशों का चारित्रिक मनोविज्ञान से सम्बन्ध है। एकलव्य' के इतिवृत्त से सम्बन्धित कुछ प्रश्न और सम्भावनाएँ भी काव्य मे उभरती हैं। उदाहरणार्थ—यह प्रश्न उठता है कि गुरु द्रोण से तिरस्कृत होने पर भी एकलव्य ने द्रोणाचार्य को ही गुरु रूप मे क्यों वरण किया? द्रोणाचार्य प्रभृति मेधावी और स्वाभिमानी आचार्य ने एकलव्य के व्यक्तित्व की गरिमा और चरित्र की महनीयता से अभिभूत होते हुए भी प्रथम तो तिरस्कृत क्यो किया? और फिर बिना दीक्षा दिए ही उससे दक्षिणा क्यो मांगी? इन दोनो प्रश्नवाचक सन्दर्भों के पार्श्व मे अनेक युगीन समस्याएँ प्रतिफलित होती हैं। जैसे—आर्य संस्कृति के उच्चादर्शों की असगतियाँ सामन्ती शासन व्यवस्था का जातीय आधार और उसकी विपाक्त परिणतियाँ, गुरु शिष्य परम्परा के नैतिक परिसन्दर्भों मे मानवीय जीवन-मूल्यो की उपेक्षा आदि। 'एकलव्य' महाकाव्य के इतिवृत्त मे इन सभी सम्भावनाओं को उजागर नही किया गया अपितु इनके औचित्य-अनौचित्य पर भी विचार किया गया है।

'एकलव्य' वस्तुत चरित्रमूलक महाकाव्य है और उसके रचनात्मक वैभव और सर्जनात्मक गौरव का वास्तविक मूल्याकन चरित्र विश्लेषणात्मक आयामो के परिसन्दर्भों मे ही किया जा सकता है। गुरुभक्ति के चिरन्तन कीर्तिमान की प्रतिष्ठा भी एकलव्य की चरित्र योजना मे ही विन्यस्त है। सामन्ती संस्कृति के अभिशापो तत्कालीन शिक्षा व्यवस्था की विडम्बनाओ जातिमूलक जीवन पद्धति की विसगतियो तथा वर्ण और वर्गभेद की वैषम्यमूलक स्थितियो का निरूपण भी एकलव्यकार ने चरित्र सृष्टि के माध्यम से ही किया है। यह कहना अत्युक्ति न होगा कि 'एकलव्य' के रचयिता की रचनाधर्मी आस्थाएँ और निष्ठाएँ आलोच्य महाकाव्य के कतिपय पात्रो के माध्यम से ही अभिव्यजित हुई हैं।

गुरुभक्ति के चिरन्तन कीर्तिमान का सस्थापक यद्यपि एकलव्य है किन्तु उसकी गुरुभक्ति के आलम्बन द्रोणाचार्य तथा प्रतिद्वन्द्वी पार्थ हैं। अस्तु प्रस्तुत सन्दर्भ मे एकलव्य द्रोणाचार्य और अर्जुन के चारित्रिक त्रिकोण मे उभरने वाली सघर्ष और सामञ्जस्य की धुँधली उजली रेखाओ की आधारभूमि पर

संस्थापित गुरुभक्ति के आदर्श की व्याख्या अभीप्सित है। यह व्याख्या चरित्र चित्रण की परम्परित शैली में नहीं अपितु इतिवृत्त चरित्र और उद्देश्य की समग्रम आधृत संश्लिष्ट विश्लेषण-पद्धति पर की जा रही है।

काव्यारम्भ से पूर्व स्तव शीर्षक मंगलाचरण प्रकरण में डा० वर्मा ने एकलव्य के चरित्र की जिस महनीयता का बखान किया है उसी का काव्य के कलेवर में प्रतिपादन हुआ है। एकलव्य की प्रशस्ति में वे कहते हैं—

'प्रभु! एकलव्य ऐसा बीज है कि जिसने,
साधना शिला के बीच अग्नि रस पाया है।
और शुष्कता में भी हरीतिमा को जन्म दे
जीवन का सत्य, शून्य नभ में सजाया है॥

(स्तव, पृ० ६)

एकलव्य महाकाव्य का समारम्भ दर्शन' शीर्षक प्रथम सर्ग से नाटकीय शैली में एकलव्य और उसके मित्र नागदत्त के परस्पर वार्तालाप से होता है। एकलव्य ने कहा कि वह नाराच के लिए लोहखण्ड लेने राजधानी गया था किन्तु वहाँ सब लोह भण्डार राजकुमारों के विशिष्ट अस्त्रों के लिए रक्षित थे, अतः उसे विद्रोह और निराशा लिए हुए लौटना पड़ा। मार्ग में देखा कि वीटिका के कुएँ में गिर जाने के कारण राजपुत्र निराशा और निरुपाय खड़े हैं। तभी देव द्रोणाचार्य उनसे कहते हैं कि तुम कुरुवंशी वीर हो, राज्यश्री तुम्हारे बाहुबल की स्वामिनी है और तुम एक क्षुद्र वीटिका नहीं निकाल सकते हो? तुम अपने स्वजनों को दुःख कूप से कैसे निकालोगे? इसी अवसर पर कवि ने द्रोणाचार्य के व्यक्तित्व का प्रभावशाली शब्द चित्र अंकित किया है—

श्वेत जटा विस्तृत ललाट कसी भौंह हैं
नेत्र हैं विशाल रक्तवर्ण उठी नासिका।
श्वेत श्मश्रु बीच ओठ, जैसे शुभ्र अभ्रों की
ओट सध्याकाल मध्य दुग्ध का कलश है।'

(दर्शन सर्ग, पृ० १२)

द्रोणाचार्य ने अभिमन्त्रित सींक डालकर कुएँ से वीटिका निकाल दी तथा राजपुत्रों को प्रबोधन के स्वर में कहा कि वीटिका की भाँति यदि राजदण्ड ही कुएँ में गिर गया तो उसे कौन निकालेगा? तुम क्षत्रिय हो! राजधर्म की

रक्षा के गुरुतर दायित्व का सवहन तुम शक्तिहीन बन कर नही अपितु वीर बन कर करो—

"क्षत्रिय हो राजधम चाहता है तुम से
जीवन धनुष पर तीर रखो प्राण का।
धम वीटिका पडी हो यदि छद्म कूप मे
तो निकालो उसे शीघ्र लक्ष्य वेध करके।
× × ×
श्लाघ्य है तुम्हारी मातृ भूमि पावे तुमसे
शब्द वीरता न, किन्तु शब्द वेध वीरता।

(दशन सग, पृ० २०)

द्रोणाचाय की ओजस्वी वाणी से अभिभूत होकर राजपुत्रो ने उनसे प्राथना की कि वे भीष्म पितामह के पास चलें जहा उन्हे वे राज गुरु के रूप मे प्रतिष्ठा दिलायेंगे। द्रोणाचाय राजकुमारो के साथ चले गए। किन्तु एकलव्य द्रोणाचाय के व्यक्तित्व की गरिमा धनुर्वेद ज्ञान और वाणी की ओजस्विता से इतना अभिभूत हुआ कि उसने मन ही मन उनसे दीक्षा लेने का सकल्प कर लिया—

' तेजोमय रूप हे!
चाहता मैं शिक्षा धनुर्वेद की हूँ तुमसे,
प्रभु! मुझे दिव्य मन्त्र द दो गुरु मेरे हो।'

(दशन, सग १, पृ० २४)

'परिचय' शीषक द्वितीय सग के समारम्भ म हस्तिनापुर की राजसभा के कलात्मक सौन्दय का वणन है। राजसभा मे नृप धृतराष्ट्र एव सभासदो की उपस्थिति म भीष्मपितामह न द्रोणाचाय का स्वागत करके उन्हें अपना परिचय देने को कहा। गुरु द्रोण ने स्वपरिचय मे बताया कि व अगिराकुल के ऋषि भारद्वाज के अयोनिज पुत्र हैं। महर्षि अग्निवेश से उन्होने वेद वेदागो की शिक्षा प्राप्त की है। उनका विवाह महात्मा शरद्वान की कन्या कृपि से हुआ और अश्वत्थामा पुत्र भी हुआ। द्रोण ने धनाभाव के कारण होने वाली यातना और तिरस्कार का भी वणन किया। अपने सहपाठी द्रुपदराज यज्ञसेन द्वारा किए गए अपमान का वणन करते समय द्रोणाचाय की मुख मुद्रा अत्यन्त भयावह हो रही थी। कवि के शब्दो म—

"दात वज्र जस सधिहीन बसे मुख म
ओंठ भूमिकम्प से फटे हुए शिखर थे,

क्षोभ जसे सर्पिणी सी ऐंठी निज बाँबी म,
स्वेद जसे आग की नदी बही हो सिर से।
शन्द विष की प्रचण्ड ज्वाला म बुझे हुए,
तीर जसे निकले—'

(परिचय, सग २ पृ० ५०)

अपने अभावग्रस्त जीवन की कटुताओ का उल्लेख करते हुए आचाय द्रोण अत्यन्त उद्विग्न थे। उनकी मनोव्यथा का सशक्त चित्रण कवि ने चार ही पक्तियो मे बडे प्रभावपूण ढग से किया है। द्रोणाचाय कहते हैं—

"क्षोभ और ग्लानि से हृदय अगार जैसा
धक धक जलता था! मेरा रोम रोम ही
सूची के समान खिच लगा मुझे छेदने!
पल पल का कष्ट, युग युग की पीडा थी।'

द्रोणाचाय ने बताया कि वे पत्नी कृपी के भाई कृपाचाय के यहाँ हस्तिना पुर मे आए हैं। अनन्त द्रोणाचाय के वेद वैराग्य तथा धनुर्वेद ज्ञान एव चारि त्रिक गौरव से प्रभावित होकर भीष्मपितामह ने उन्हें ससम्मान राजपुत्रो को शस्त्रास्त्र की शिक्षा प्रदान करने के लिए राजगुरु नियुक्त किया।

'अभ्यास शीषक तृतीय सग मे गुरु द्रोण द्वारा सभी राजकुमारो को शस्त्रास्त्र अभ्यास कराने का वणन है। सभी राजपुत्रो को द्रोणाचाय ने धनुर्वेद का ज्ञानदान कर निपुण बनाया। किन्तु अजुन के प्रति उनका विशेष स्नेह था, अत उसे लक्ष्यभेद के साथ साथ तमभेद भी सिखाया तथा वायव्य पाजन्य आदि दिव्यास्त्रो की सचालन विधि का भी पूण परिज्ञान कराया। द्रोणाचाय ने शस्त्रास्त्र ज्ञान के साथ साथ राजकुमारो को अहकार और द्वेष आदि दुष्ट त्तियो को भी विजित करने की भी शिक्षा दी। उन्होने राजकुमारो से कहा—

'एक अहकार है जो छल छद्म रूप ले
वामन सा आता है विराट बन जाता है।

× × ×

द्वेष एक ज्वालामुखी रूप लिए बठा है।
क्षण क्षण आग की लपट फेंकता है जो
जलता स्वय है और अन्य को जलाता है।

× × ×

नाग गिरि चढ़ना सहज है, किन्तु वीर !
अहंकार-द्वेष जीतना महा कठिन है ।
जीतो इसको हे वीर ! युद्ध में प्रवीण हो,
अग्र शत्रु ये हैं फिर अन्य कोई शत्रु है।"
(अभ्यास, तृतीय सर्ग पृ० ६० ६१)

द्रोणाचार्य की दिव्य शिक्षा की ख्याति दूर दूर तक फैल गई। राजवंशी एवं अन्य अनेक कुमार भिन्न भिन्न वंशों से गुरु द्रोण के पास शिक्षा प्राप्त करने आने लगे।

'प्रेरणा' शीर्षक चतुर्थ सर्ग में हम श्रद्धाभिभूत एकलव्य को बाणों की नोक से पत्थर पर रेखाएँ खींचकर द्रोणाचार्य का चित्र बनाकर उनका गुणगान करते हुए पाते हैं, उसे खान पान की भी सुध नहीं। अपने मित्र नागदत्त से वह एक दिवा—स्वप्न का भी वर्णन करता है, जिसके अनुसार वह स्वयं गुरु द्रोण के सामने खड़ा है। वाटिका उसे प्रेरित करती है तभी गुरु बादलों में छिप जाते हैं। वे पुन मिट्टी के ढेर में खिले पुष्पों में दिखाई देते हैं। वह अपना दाहिना हाथ बढ़ाता है कि सर्प उसका अंगूठा काट लेता है। एकलव्य ने नागदत्त को बताया कि प्रस्तर चित्र ने मुझे इतना अनुप्रेरित किया है कि सम्पूर्ण सृष्टि में दृष्टि गुरु को ही खोजती है और उन्हीं की छवि प्रकृति के कण-कण पर अंकित पाती है—

"नागदत्त ! इतना प्रकाश दिया गुरु ने
मेरी दृष्टि उनको ही खोजती है सृष्टि में,
तारकों में चन्द्र में लता में पुष्प-पुष्प में।
× × ×
मुझे द्रोणाचार्य-श्री संकेत से बुलाते हैं।
खींचता हूँ चित्र, पेड़, पत्र पाषाण पर,
कँपती सी उंगलियों से, काँपते से शर से।
सूँगा मन्त्र उनसे मैं, मेरे गुरु होंगे वे।'
(प्रेरणा, सर्ग ४, पृ० ७४ ७५)

गुरु द्रोण से दीक्षा प्राप्त करने का दृढ़ निश्चय और हठ वह अपनी माता के समक्ष भी प्रकट करता है। वह भोजन भी नहीं करता। उसके पिता हिरण्य-धनु समझाते हैं कि निषादपुत्र की शस्त्र शिक्षा राजकुल के लोग पसंद नहीं करेंगे। अन्तत वे पुत्र के आग्रह की रक्षा-हेतु उसे राजकुमारों के शस्त्रास्त्र

प्रदर्शन के उत्सव पर हस्तिनापुर ले जाने का आश्वासन देते हैं। एकलव्य जननी इस कल्पनामात्र से चिंतित है कि कहीं गुरु द्रोण ने दीक्षा देना अस्वीकार कर दिया तो उसका पुत्र किसी संकटापन्न स्थिति में न फँस जाय।

प्रदर्शन शीर्षक पंचम सर्ग में नगर के बाहर एक विशाल प्रेक्षागार में राजकुमारों के शस्त्रास्त्र ज्ञान के प्रदर्शन का विवरण है। इस अवसर पर अर्जुन दिव्य अस्त्रों के विलक्षण प्रयोगों द्वारा उपस्थित जनसमूह को आश्चर्य चकित कर देता है। प्रदर्शनोपरान्त जब नाना वेशों में नाना देशों से आए हुए राजकुमार गुरु द्रोण के प्रति कृतज्ञताज्ञापन कर रहे थे तभी एकलव्य श्रद्धावनत भाव से गुरुचरणों में दृष्टि केन्द्रित किए बैठा था। आत्मनिवेदन शीर्षक षष्ठ सर्ग में एकलव्य द्रोणाचार्य के समक्ष जाकर अपने वंश पितादि का परिचय देकर उनका शिष्य बनने की जिज्ञासा प्रगट करता है। किन्तु द्रोणाचार्य ने धनुर्वेद की कठोरता का प्रतिपादन करते एकलव्य से कहा—

वत्स ! शिष्य बनने की योग्यता है तुम में
किन्तु धनुर्वेद की कठोर साधनाएं हैं।
तीक्ष्ण बाण जैसी दिन रात की तपस्या है।
अग्नि शिखा सी अशान्त जीवन की गति है।
आचरण मार्ग सधा है कृपाण धार सा,
और भाग्य के समान लक्ष्य भी अदृष्ट है।

(आत्म निवेदन सर्ग ६ पृ० ११६)

प्रत्युत्तर में एकलव्य ने अत्यन्त शिष्टाचार पूर्वक निवेदन किया कि दास कैसे उत्तर दे ? एक पल्लव वसन्त को कैसे अर्पित हो सकता है ? कृश कृशानु के अनुरूप कैसे हो सकता है ? किन्तु मैं धनुर्वेद के कृच्छ साधना-यज्ञ के लिए अस्थि की समिधा और ब्रह्मचर्य को स्तम्भ बना दूँगा। यदि मैं लक्ष्य भेद में सफल न हुआ तो करांगुष्ठ ही काट कर समर्पित कर दूँगा। एकलव्य के कथन में उसका दृढ़ निश्चय महान संकल्प आत्म विश्वास और विनम्रता एक साथ परिलक्षित होते हैं—

रात बने लक्ष्य और दिन मेरा बाण हो।
जीवन के पथ पर अग्नि का मुकुट हो।
प्राण के कृपाण पर आचरण पानी हो।
देव ! धनुर्वेद को मैं दूंगा अर्घ्य स्वेद का
दृष्टि एक मात्र लक्ष्य को ही पहचानेगी।

× × ×

सेवा म समिध लाया हूँ मैं निज अस्थि की,
ब्रह्मचय साधना का स्तभ बना लूगा मैं
घ्यान क समान देव ! पद मे झुका हूँ मैं
ग्रंथि-हीन धारणा ही खिचेगी प्रत्यचा सी।
यदि लक्ष्य-वेध म न सफल बनूँ मैं तो
काट के समर्पित करूँगा करागुष्ठ मैं।"

(वही, सग ६ पृ० १२०)

एकलव्य की अनन्य निष्ठा ने गुरु द्रोण को निरुत्तर कर दिया। उन्होंने दूसरी युक्ति सोचकर कहा—वत्स ! एकलव्य तुममे मैं प्रसन्न हूँ किन्तु यह बताओ कि निपादवश म धनुर्वेद की क्या उपयोगिता है ? मत्स्यवेध के लिए लक्ष्यभेद नहीं चाहिए। निपाद वश म तो वशी ही पर्याप्त है जिससे मछली फँस जाती है। धनुर्वेद का ज्ञान तो ब्राह्मण और क्षत्रियो को चाहिए। वैश्य और शूद्रों के लिए इसकी क्या उपयोगिता ? द्रोणाचाय ने एकलव्य को समझाया कि धनुर्वेद एक सिन्धु है उसकी गहराई म मणिरत्न डूबे हुए हैं किन्तु तुम अबोध हो अत उसकी थाह नहीं पा सकते। फिर भूतल मे दिग्विजय तो क्षत्रिय करता है उसके चड भुजदड म अस्थियो का खड-खड कर देने वाला नाराच चाहिए और उन्ही के लिए धनुर्वेद का विधान है। निपादपुत्र का शरसचालन तो शर क्रीडा है और यह श्री धनुर्वेद की साधना से सर्वथा भिन्न है। प्रत्युत्तर म एकलव्य न कहा कि देव ! मरी शिक्षा का समारम्भ हो गया। मैं आपके श्रीमुख से धनुर्वेद शब्द सुनकर कृतार्थ हो गया। एकलव्य ने पुन अपने एतद्विषयक निश्चय को दृढतापूर्वक व्यक्त करते हुए कहा—

देव ! शर क्रीडा जानता हूँ शिशुपन से
किन्तु धनुर्वेद मेरे यौवन का व्रत है।
वृद्ध भी बनूगा तो तपस्या धनुर्वेद की,
करता रहूगा मृत्यु होगी शर-साथ में।
देव ! धनुर्वेद स मैं सेवा भाव सीखूगा,
आप गुरु होगे शिष्य मैं हूँ चिरकाल से।
वाणी आपकी है शभु डमरू निनाद-सी
और मैं हूँ अन्त्य वर्ण सूत्र प्रत्याहार का।

(वही, पृ० १२४)

एकलव्य की अनन्य निष्ठा संकल्प शक्ति और गुरुभक्ति से इतने प्रभावित हुए कि वे उसकी महानता पर मन ही मन मुग्ध होकर कह उठे कि—

'है तो शूद्र, किन्तु जैसे निष्कलंक द्विज है।
बालक निषाद का है किन्तु तेजोमय है
जैसे मणि रत्न है विशाल विषधर का।
अन्य राजपुत्रों से विशेष श्रद्धावान् है,
जैसे यह अंकुर है प्रस्तर के पार्श्व में।
जो कि अश्म से भी रस खींचता है शक्ति से
भासित है जैसे वह सीप में रजत हो।
(वही सर्ग ६, पृ० १२५)

एकलव्य के निष्ठाभाव और धनुर्वेद के प्रति अनन्य आस्था से प्रभावित होते हुए भी द्रोणाचार्य ने उसे शिष्यत्व प्रदान करना अस्वीकार कर दिया, क्योंकि राजगुरु होने के कारण वे एक विशेष मर्यादा का अनुपालन कर रहे थे। उन्होंने अत्यन्त कठोर बनकर एकलव्य से कह ही दिया कि—

किन्तु मेरे शिक्षण के वे ही अधिकारी हैं,
जो कि भूमिपुत्र नहीं किन्तु भूमि पति हैं।
× × ×
राजगुरु हूं विशेष पद की मर्यादा है।
शिक्षानीति राजनीति के पदों है चलती।
शारदा की वाणी यहाँ बोलती है स्वर्ण में।
गुरुकुल' है कहाँ! यहाँ तो 'राजकुल' है।
× × ×
जाओ हे निषादपुत्र! तुम हो अस्वीकृत।
(वही पृ० १२६ १२७)

किन्तु धन्य है एकलव्य। वह तनिक भी आवेश में नहीं आया। गुरु द्रोण द्वारा अस्वीकृत होने पर भी उसने मन ही मन उन्हीं को गुरु रूप में वरण कर लिया। *एकलव्य के चरित्र की भूमिका पर गुरुभक्ति के उन्मेष का प्रथम स्फुरण हमें उसके निम्नांकित कथन में परिलक्षित होता है—*

जैसी गुरु आज्ञा! एक क्षण के लिए न मैं,
इस राजकुल में रहूँगा भूमि पुत्र हो।

आप गुरु मेरे हैं, रहेंगे सब काल में,
हानि क्या प्रत्यक्ष ! नहीं, मेरे मन में तो है !
नाम 'धनुर्वेद' सुना श्री मुख से आपके,
और मुझे चाहिए क्या ! साधना तो मेरी है ।'
(वही पृ० १२७)

साधना के प्रति एकलव्य का आत्मविश्वास और अनन्य आस्था 'धारणा' शीर्षक सप्तम सर्ग में भी अभिव्यंजित हुई है। हस्तिनापुरी से लौट आने पर एकलव्य के मित्रों ने व्यंग्योक्तियों से उसका अभिनन्दन किया। उन्होंने व्यंग्य प्रहार करते हुए कहा कि गुरु द्रोण पार्थ से भी अधिक पराक्रमी शिष्य को देख कर कृतार्थ हो गए होंगे, उन्होंने एकलव्य को समोद गोद में बैठाकर धनुर्वेद दीक्षा दी होगी आदि। एकलव्य ने प्रशान्त भाव से अपने मित्रों को कहा कि मेरे पूज्य गुरु और धनुर्वेद शक्ति का परिहास कोई न करे। मेरे उर में साधना का जो राग उठा है वह तुम्हारे विषादी स्वगतालाप से विकृत नहीं हो सकता। एकलव्य ने गुरु द्रोण के प्रति पूज्यभाव और धनुर्वेद साधना के लिए अपना आत्म संकल्प इन शब्दों में व्यक्त किया—

दर्शन किए हैं मैंने आज पुण्य पर्व में,
उस महामानव के जो कि शक्ति स्नात हैं।
मेरी देह की शिराएं हो गई सशक्त हैं,
जिनमें उमंग और ओज ओत प्रोत है।
धारणा से, ध्यान से, शरीर बना धनु है,
और रोम रोम ही सधान हुए बाण हैं।
× × ×
हस्तिनापुरी में नहीं मानसपुरी में ही,
अनुभव हो रहा कि एक गुरुकुल है।
मृण्मय शरीर के कणों में एक मूर्ति है,
गुरु द्रोण की, स्वरूप सूक्ष्म है स्थूल है।"
(धारणा, सप्तम सर्ग पृ० १३४ १३५)

धनुर्वेद के प्रति एकलव्य की अनन्य निष्ठा देखकर उसके साथी स्तब्ध रह गए। अनन्तर एकलव्य ने अपने अन्तरंग बन्धु नागदत्त को अपने इस निश्चय से अवगत कराया कि वह धनुर्विद्या सीखकर ही आयेगा। नागदत्त ने साथ जाने का प्रस्ताव किया, किन्तु एकलव्य उस पर माता को सान्त्वना देने का दायित्व

सौंप कर एकान्त अज्ञात स्थान के लिए प्रस्थान कर गया। एकलव्य के निजन वन मे चले जाने पर एकलव्य जननी के हृदय की पुत्र वियोग जन्य वेदना की मार्मिक व्यजना काव्य के ममता नामक अष्टम सग मे हुई है। अपने लाल की बालसुलभ क्रीडाओ की स्मृतियाँ सजोये एकलव्य-जननी अपनी सवेदनाओ को भावपूण गीतो के माध्यम से अभिव्यक्त करती है। ममत्व और वात्सल्य की घनीभूत किन्तु ऋजु अभिव्यजना इन गीतों की उल्लेखनीय विशेषता है। इस दृष्टि से कतिपय गीताश उद्धृत हैं—

(क) मेरा लाल न अब तक आया ?
माग देखकर थकी न कोई उसका कुशल सदेशा लाया।
कुछ दिन मे ही आवेगा ऐसा सबने मुझको समझाया।
पर सूने दिन कहते हैं, मेरे कुमार ने मुझे भुलाया॥'
(ममता सग ८, पृ० १४७)

(ख) मैं भी साथ तुम्हारे जाती।
उषा-काल मे तुम्हे उठाने मधुर प्रभाती गाती।
तुम उठते करते प्रणाम मैं उर से तुम्ह लगाती।
ऐसी आशिस् देती जा कहते ही सच हो जाती॥'
(वही पृ० १४९)

ग्रीष्म वर्षा शरद हेमन्त शिशिर और बसन्त नामक षटऋतुओ के प्रत्यागमन की माता के मन पर प्रतिक्रियाओ का वणन भी कवि ने गीतो के माध्यम से ही किया है। एकलव्य जननी के चारित्रिक उत्कष की व्यजना वियोग जन्य व्यथा की असहनीयता मे नही, अपितु उस उदात्त भावबोध म निहित है जिसम वह अपने लाल की साधना पर गौरव और गव का अनुभव करती है। एकलव्य जननी का यह कथन इस दृष्टि से कितना सटीक है कि—

"गुणकथन ही तो मेरा गान है।
माता का उपमेय हृदय बन रहा आज उपमान है।
लाल तुम्हारी कठिन तपस्या ही मेरा अभिमान है।
(वही सग ८ प० १६३)

एकलव्य की अपराजेय सकल्प शक्ति का प्रतिमान काव्य के सकल्प शीर्षक नवम सग म द्रष्टव्य है। एकलव्य निजन अरण्य म वाराणत पवत पर धनुर्वेद साधना आरम्भ कर देता है। इसी मध्य उसके मन म यह विचार उठता है कि मेरे आय गुरु द्रोण न यह क्यो कहा कि 'मेरे शिक्षण के वे ही अधिकारी

हैं, जोकि भूमि-पुत्र नहीं, किन्तु भूमि पति हैं। वस्तुत भूमिपति तो भूमि के प्रशासक हैं, वे सरस्वती पर शासन नही कर सकते। क्योकि भूमि प्रशासन तो उन्हें सुयोग से प्राप्त हो गया किन्तु सरस्वती की कृपा तो साधना से ही प्राप्त हो सकती है—

"भूमि पति वे सही प्रशासक हों भूमि के,
किन्तु क्या सरस्वती का शासन करेंगे वे ?
राज-दण्ड तो विधान करता है राज्य का,
किन्तु है सरस्वती निवासिनी हृदय की।
कैसे एक मात्र वे लहेंगे वेद विज्ञता ?
वेद विज्ञता तो शुद्ध साधना से आती है।
भूमिपति जो हैं, उन्हें साधना की साध क्या ?
वे तो विना साधना के पूर्ण सिद्धि-कामी हैं।"

(सकल्प, सर्ग ६, पृ० १७६)

एकलव्य के चरित्र का वैभव उसके भूमिपुत्र होने में ही है। उसे भूमिपुत्र होने मे गर्व है। भूमिपतियों के अकर्मण्य और साधना शून्य जीवन को वह हेय दृष्टि से देखता है। इस सम्बन्ध में एकलव्य की यह आत्म स्वीकृति उद्धरणीय है कि—

'भूमिपुत्र होना, मेरे भाग्य का सुयोग है
भूमिपति में तो मुक्त मानव विकृत है
मूल्य नहीं जानते वे जीवन की गति का,
सुख है निमेष-जैसा, दुःख लम्बी दृष्टि है।
अरे, यह जीवन विभूति ही है भूमा की
सुख तो छिपा है यहाँ सृष्टि के विविर में।'

(वही, पृ० १७७)

भूमिपुत्र होने के कारण गुरु द्रोण द्वारा तिरस्कृत किए जाने पर एकलव्य का रोष गुरु के प्रति नहीं अपितु भूमिपतियों की उस शासन व्यवस्था के प्रति है जो भूमिपुत्रो को राजनीतिक उद्देश्यो की सिद्धि के लिए शिक्षा के समान अधिकार से वंचित करती है और परिस्थितिवश गुरु द्रोण भी इस कुचक्रपूर्ण व्यवस्था के चंगुल में फँस गए हैं। एकलव्य ने कहा कि ऐसी व्यवस्था का शीघ्र पतन हो जायेगा जो मन्त्रियों को राजनीति से और गुरुकुलों को राजकुलों के रूप में सचालित करती है। इसी व्यवस्था की विडम्बना ने मानव पुत्रों में

भूमिपति नामक दो वर्गो को जन्म दिया है । एकलव्य का पौरुष और स्वाभि मान भूमिपतियो का चेतावनी देता है कि उनका पशुबल कौशल तो सीमित है किन्तु भूमिपुत्रो का आत्मबल अपरिमित है और व उसी के बल पर अन्तत सिद्धि रूपी विजय का वरण करेंगे । कवि न एकलव्य के एतदविषयक मानसिक उद्गारो को इन शब्दो म प्रकट किया है—

सावधान भूमिपति ! हमम भी शक्ति है
भूमिपुत्र सवदा हैं भूमि बल जानते ।
पशुबल कौशल तो सीमित तुम्हारा है,
आत्मबल की हमारे पास सीमा है नही ।
एक असि झेलन को है अयुत अस्थियाँ
अग हमारे पास कितना प्रहार है ।
दर्शे नवनीत सम इन भुजदण्डो म,
जो कि सत्य की न राजनीति की ध्वजाएँ हैं ।
(सकल्प सग ९, पृ० १७७ १७८)

एकलव्य मानसिक रूप से गुरु द्रोण की विवशता क प्रति आश्वस्त होगया और उसन द्रोणाचाय की मृण्मयी प्रतिमा बनाकर उसके समक्ष धनुर्विद्या का अभ्यास प्रारम्भ कर दिया । द्रोणाचाय की प्रतिमा सरचना के सम्बन्ध म कवि का कथन है कि—

मूर्ति गुरु द्रोण की है शिष्य एकलव्य न
स्निग्ध चन्द्र ज्योत्स्ना और तीव्र रवि रश्मि से
सोप-कण मिश्रित मृदुल रज कण म
भरवपूण हुँकार पूण नद जल डाल क
अथक करो स तथा अनिमिप दृष्टि से
पूण मनोयोग स सुयोग म बनाई है ।'
(साधना दशम सग पृ० १९३)

गुरु द्रोण की प्रतिमा इतनी सजीव सी थी कि ज्ञात होता था गुरु द्रोण शिक्षा दान क लिए मानक रूप बने हैं । एकलव्य ने श्रद्धा वश म सुमन माल गूँथ कर प्रणत भाव स आचाय का पूजन किया । वीरवश धारण किए धनु विधान नानारत कटिबद्ध सन्नद्ध और शुभाशीष प्राप्ति क लिए द्रोणाचाय की मृण्मयी प्रतिमा क समक्ष समाधिस्थ एकलव्य क आकषक व्यक्तित्व का शब्द चित्र महाकाव्यकार की कुशल लखनी न इस प्रकार अकित किया है—

'पारावत पक्ष शीश मे विचित्र हैं कसे,
लम्बा जटाजूट श्याम मस्तक की शोभा है।
जसे श्याम मेघ मे खचित इन्द्र चाप है,
खण्ड खण्ड हो के कही ऊपर है, नीचे है।
है प्रशस्त भाल घने वक्र उठे भौंहों मे,
बीच मे मिले हैं जसे वर्जित धनुष है।
नासा रेख उन्नत कपोल सौम्य, कर्ण मे,
विलुलित है कुण्डल सुरम्य स्फटिक के।
× × ×
हृष्ट पुष्ट विग्रह है, ब्रह्मचर्य-तेज से,
कसा पीत वल्कल है, वल्लरी के रज्जु से।'

(वही, दशम सर्ग, पृ० १९४)

इस वीरवेश मे एकलव्य ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मानो श्याम मेघ पर बाल रवि का रश्मि हो। एकलव्य ने श्रद्धासिक्त भाव से गुरु प्रतिमा के समक्ष नमन करके प्रार्थना की कि देव ! क्षमा करना, मैंने अपने हाथों से मृत्तिका की मूर्ति मे आपका रूप खींचा है। आप महत्तम हैं किन्तु प्रतीक (मूर्ति) अत्यन्त लघु है, किन्तु आप तो कण कण मे परिव्याप्त हैं। आपके रूपाकन शिल्प मे कुछ न्यूनता हो सकती है किन्तु मेरे प्रयास की निगूढ़ता और पवित्रता ही पूज्य भाव की साक्षी है। एकलव्य ने वन्य पशुओं के अस्थिखण्ड और सींगो का धनुष तथा द्रुम-काण्ड काटकर विशिख बनाए और अपनी धनुर्वेद साधना का समारम्भ किया। गुरु प्रतिमा के समक्ष एकलव्य ने पुन अपना सकल्प व्यक्त किया कि गुरुदेव ! मुझे आपका सकेत मात्र चाहिये। लक्ष लक्ष तरुशाल और लताकुज मेरी लक्ष्य-बेध दृष्टि का लक्ष्य होंगे परन्तु शब्दो से उठी ध्वनि गुरु दीक्षा होगी। मेरी साधना नद प्रवाह के समान सदव गतिशील रहेगी, मेरा शर-क्षेप लहरों की भाँति चक्राकार होगा और बीच मे यदि भवर भी पडे तो वे मेरे लक्ष्य वेध चिह्न होंगे। मेरा हरक्षण अब साधना निरत रहेगा—

'आज से लिया है यह व्रत इस शिष्य ने,
आपके समक्ष वह साधना मे लीन हो।
× × ×
निशदिन कोई भी समय मेरी साधना
अगाबार हो, हे देव ! आपके प्रताप से।

मेरा धनुर्वेद सिद्ध होकर रहेगा ही,
अग्नि-जन्म के लिए संघर्ष ही तो चाहिए।'

(वही, दशम सर्ग, पृ० १९६)

अग्नि जन्म के लिए संघर्ष ही तो चाहिए—वाक्य कहते ही संघर्ष की व्यापक भूमिका एकलव्य के मन मस्तिष्क में उभर आई। उसने कहा कि मेरे मन की कसक यही है कि गुरुदेव आपने उस दिन यह किस अर्थ में कहा था कि—जाओ हे निषादपुत्र! तुम हो अस्वीकृत। यह आप का कथन नहीं हो सकता। यह आर्य भीष्म की भेदभाव पूर्ण राजनीति की विडम्बना है। क्योंकि आर्य भीष्म जानते हैं कि यदि शूद्र धनुर्वेद के अधिकारी हो गए तो क्षत्रियों को रण में पराजित कर देंगे। शूद्र कौन हैं? वे श्यामवर्ण तथा वन्य-वेश धारी हैं और अत्याचार सहकर भी शांतिपूर्ण ढंग से रहते हैं। शूद्रों को किस अधिकार से सेवक बनाया गया है? एकलव्य ने वर्ग संघर्ष के धरातल पर उभरने वाली क्रांतिमन्त चेतना को इन शब्दों में व्यक्त किया—

किन्तु शक्ति मानव की देव! दानवी नहीं,
मानव की शक्ति तो महान तब होती है
जब वह दानव को मानव बना सके
और सब मानवों में साम्य की हो स्थापना।
× × +
इसमें सहन की है वर्ग की विडम्बना,
शूद्र कहलाते रहे सेवा भाव मान के।
किन्तु जब मानव को विद्या का निषेध हो
बात क्या नहीं है क्रान्तिकारी बन जाने की?

(वही सर्ग १० पृ० १९८)

एकलव्य विचार करते करते इस निष्कर्ष पर पहुँच गया कि राजनीति की विडम्बना ही शूद्रों को विद्या प्राप्त करने से निषिद्ध करती है। एकलव्य ने आशा की कि मेरी इस साधना से वर्तमान की राजनीति नष्ट होगी। एकलव्य के सचेतन मानस ने कहा—

मेरी इस साधना से राजनीति नष्ट हो,
आज यदि गुरु मुझे भी शिष्य मान लें।
× × ×

आप सब काल, सब भाँति गुरुदेव हैं,
एकलव्य शिष्य के, जो सब काल शिष्य है।'
(वही, दशम सर्ग, पृ० १९९)

'साधना सर्ग' के दोपाश्व में कवि ने एकलव्य की धनुर्विद्या साधना का विशद विवेचन किया है। एकलव्य ने असख्य विधियों से शर सधान किया। एकलव्य ने यौगिक, क्रिया, शलाका, ज्याघाती, श्रमिक साम्रामिक, दूरपातदाम, दृढवेध, विक्षप और दीपक नामक नाना प्रकार के धनुष बनाकर उनके द्वारा आक्षपण, विक्षपण, पर्याक्षपण, अनुक्षपण, मुक्त मडलीकरण, पूरण, स्थारण, आसन्नपात दूरपात पृष्ठपात आदि सभी धनुष गतियो का पूर्णाभ्यास कर सिद्धि प्राप्त की। लक्ष्य साधन के आलीढ प्रत्यालीढ, विशाख समपाद, असम, गरुड क्रम दर्दुर क्रम, पदमासन स्थानक नामक आसनों का भी अभ्यास किया। प्रत्यचा के प्रयोग की सिंहकर्ण वज्रमुष्टि, मत्सरी पताका, काकतुडी आदि विधियों और अध सधान, ऊर्ध्व सधान समसधान नामक धनुर्मुष्टि प्रभेदो में एकलव्य पूर्ण पारगत हो गया। एकलव्य की साधना शुक्ल पक्ष की चन्द्रिका के समान निरन्तर विकास वृद्ध होती गई और अन्तत उसने सभी प्रकार के लक्ष्य साधन में नैपुण्य प्राप्त कर लिया—

'धनु खीचने में एकलव्य की निपुणता,
धीरे धीरे बढी क्याय पूर्ण सिद्ध हो गया।
× × ×
स्थिर लक्ष्य लेके स्थिर-वशी एकलव्य है
वेधी चल लक्ष्य में चलायमान वस्तुएँ।
चलाचल लक्ष्य में स्वय चल अचल को,
वधा! द्वय चल में चलित को सु चल का।'
(वही, दशम सर्ग, पृ० २११)

स्वप्न' शीर्षक एकादश सर्ग का समारम्भ प्रकृति के कराल रूप के चित्रण से होता है। यह कराल प्रकृति चित्र द्रोणाचार्य का ब्राह्ममुहूर्त में एक स्वप्न में दृष्टिगत होता है। यह प्रकृति चित्र डॉ० रामकुमार वर्मा की प्रकृति चित्रण शैली का जीवन्त प्रमाण है—

'प्रकृति में भ्रान्ति है। अशान्त आधीरात है।
ध्वान्त झूमते हैं। तरुपत्र हाहाकार में,
× × ×

अन्धकार की असीम कालिमा के क्रोड़ में
क्रूरता का कोप लिए घन घिर आए हैं।
× × ×
नभ में प्रचण्ड ध्वनि जैसे चूर-चूर हो
छिटक गई है दूर दूर का दिशाओं में।
जैसे नभ खड़खड़ हो टूटता सा है
विद्युत-खड्ग में दरार दीख जाती है।

(स्वप्न एकादश सर्ग, पृ० २१५)

बाह्य जगत में प्रकृति के अशान्त रूप को देखकर द्रोणाचार्य विभ्रमित हो जाते हैं। उन्होंने स्वप्न में देखा कि एक घने जंगल में बैठे हुए एक श्यामवर्ण कुमार को अद्वितीय धनुर्विद होने का वरदान दे रहे हैं। एकलव्य की एकनिष्ठ साधना का सम्पूर्ण परिदृश्य उन्हें आश्चर्य निमग्न कर देता है। उन्होंने तो अद्वितीय धनुर्धर होने का वरदान पार्थ को दिया था फिर यह कौन अनन्य साधक है। यहीं आचार्य द्रोण के मनस जगत में एक विचित्र अन्तर्द्वन्द्व जन्म लेता है। यह द्वन्द्व उन्हें शिक्षक के दायित्व और सरस्वती साधना की महिमा का यथार्थ बोध कराता है। वे स्वयं का धिक्कृत करते हुए कहते हैं—

किन्तु यह कैसा अनाचार हुआ मुझ से
आज भीष्म से हूँ नियोजित इस पुर में।
शिक्षा दूँ सदन इन कौरवकुमारों को
वेतन का भोगी हूँ निवास राजगृह में।
अन्य को मैं कैसे शिक्षा दे सकूँगा इच्छा से
गुरुकुल स्वामी नहीं, राजकुल सेवी हूँ।

(वही एकादश सर्ग, पृ० २२२)

शिक्षा और शिक्षण नीति के सम्बन्ध में गुरु द्रोण की स्वकीय अवधारणा निम्नोद्धृत शब्दों में प्रगट हुई है—

'शिक्षा तो सरस्वती की धारा है प्रशान्त है,
है अनन्त जो बही है सृष्टि के आरम्भ से।
× × ×
जाति भेद नहीं वर्ग वंश भेद भी नहीं
शिक्षा प्राप्त करने में सभी अधिकारी हैं।

× × ×

शिक्षा की त्रिवेणी का पवित्र तीर्थराज तो,
सृष्टि में समस्त मानवों की कर्म भूमि है।"
(वही, पृ० २२२ २२३)

द्रोणाचार्य को ब्राह्म वेला का स्वप्न आत्म बोध कराता है कि इस पुर में रहकर वे कठोर राजनीति से शासित हैं। वे सोचते हैं कि—मैं कितना विवश और अभागा हूँ कि पिता भारद्वाज के आदेश को अग्रसर न कर सका। किसी गुरुकुल की स्थापना कर शिक्षा दान का पवित्र धर्म कार्य कर मैं कृतार्थ हो सकता था। गुरु अग्निवेश की तपस्या व्यर्थ हुई। भार्गव परशुराम जब यह सुनेंगे कि मैंने ज्ञान क्षेत्र की पवित्र भूमि को मात्र राजवंश तक परिसीमित कर दिया है, तो वे अत्यन्त खिन्न होंगे। गुरु द्रोण ने अपने को इतना अपमानित अनुभव किया कि कह उठे—

"धिक द्रोण! तेरी सब साधनाएँ मिथ्या हैं,
तेरा धनुर्वेद सूम की सम्पत्ति—जैसा है।"
(वही, ११, पृ० २२३)

फिर उन्हें अपनी प्रतिज्ञा का स्मरण हो आया जिसमें उन्होंने अर्जुन को अजेयता प्रदान की थी। स्वप्न के आलोक में वे यह सोचने को विवश हो गए कि क्या जागरण द्रोण और स्वप्न द्रोण भिन्न हैं। इसी अवसर पर पार्थ का आगमन होता है जिसे वे स्वप्न के घटनाक्रम से अवगत कराते हैं। स्वप्न के 'श्यामल कुमार' का पता लगाने के लिए वारणावत वन में मृगया के मिस जाने का पार्थ निश्चय करता है।

'साधना' शीर्षक द्वादश सर्ग में राजकुमारों का मृगया हेतु वन में आगमन तथा उनके श्वान का एकलव्य के साधनास्थल पर जाकर भौंकना। एकलव्य सात बाणों से चोट पहुँचाये बिना श्वान का मुँह बन्द कर भौंकना रोक देता है। अर्जुन एकलव्य के आश्रम में पहुँचकर उसकी धनुर्विद्या के चमत्कारपूर्ण कौशल और अद्भुत प्रदर्शन को देखकर हतप्रभ हो जाता है। अर्जुन के पूछने पर एकलव्य बताता है कि गुरु द्रोण की मृण्मयी से ही उसने धनुर्वेद दीक्षा प्राप्त की है। अर्जुन ने आश्चर्य प्रगट करते हुए कहा कि इस प्रकार की विलक्षण धनुर्वेद शिक्षा हमें तो गुरु द्रोण ने प्रदान नहीं की। इस कथन में गुरु निन्दा की गंध पाकर एकलव्य ने निर्भीकतापूर्वक पार्थ को फटकारते हुए कहा—

'सावधान आर्य ! गुरु निंदा एक क्षण भी
सुन न सकूँगा आपके वाचाल मुख से।
गुरु ज्ञान दान निष्पक्ष करते हैं सदा,
शिष्य है जो प्राप्त करने में असफल है।
छेड़ें न प्रसंग ! कन्दमूल स्वीकार करें
निज गुरु भाई का सहज प्रेम मान के।

(साधन, द्वादश सर्ग, पृ० २५४)

एकलव्य का असाधारण धनुर्विद्या कौशल पार्थ के मन में हीन भावना को जन्म देता है। उसके अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण कवि ने 'द्वन्द्व' शीर्षक त्रयोदश सर्ग में किया है। पार्थ को नींद नहीं आती। वह दीपाधारों पर रखे मृत्तिका दीपों की लौ को वायु तरंगों से हिलते हुए देखकर सिहर जाता है कि कहीं बुझ न जाय। उसके मन में विचार उठता है कि जब मृत्तिका दीपों को स्नेह का आधार ज्योतित कर रहा है तो हो सकता है कि एकलव्य के विश्वास स्नेह से गुरु मूर्ति ज्योतिमय हो उठे। इस विचार ने पार्थ को एकलव्य की प्रशंसा करने को भी बाध्य किया। पार्थ के द्वन्द्व को एकलव्यकार ने इन शब्दों में व्यंजित किया है—

पार्थ सोचता है—दीप भी बने मृत्तिका से,
इनमें भी ज्योति उठी स्नेह के आधार से।
क्या आश्चर्य एकलव्य के विश्वास स्नेह से
मृत्तिका की गुरु मूर्ति ज्योतिमय हो उठे।
कितना विश्वास होगा एकलव्य वीर में।
जोकि गुरु मूर्ति को ही गुरु मान बैठा है।
लक्ष्य भेद अभ्यास वह गुरु को ही देता है
कितना अहंकार शून्य निस्पृह वीर है।'

(द्वन्द्व त्रयोदश सर्ग पृ० २६४)

अनन्तर अर्जुन गुरु द्रोण के पास जाकर उन्हें उस वचन की याद दिलाता है जिसके अनुसार उसे अद्वितीय धनुर्धर होने का वरदान दिया गया था। गुरु द्रोण एकलव्य के आश्रम में जाने का निश्चय करते हैं।

एकलव्य महाकाव्य के अंतिम अर्थात चतुर्दश सर्ग का शीर्षक 'दक्षिणा' है। आलोच्य काव्य के सर्वाधिक ममस्पर्शी और प्रेरणाप्रद इस सर्ग का समारम्भ कवि के इस महत्वपूर्ण कथन से होता है कि—

'जीवन नराश्य की है भूमि नहीं, मानवो !
सुख-दुख बादलों की भाँति उडे आते हैं।
शक्ति मिटती नहीं है अवतार लेती है,
तुममें सदैव, तुम योग्य तो बने सही।"
(दक्षिणा चतुदश सग, पृ० २७६)

उदधृत का शाश 'एकलव्य' के रचयिता के जीवन-दशन सम्बन्धी दृष्टिकोण का परिचायक है। जीवन को कर्मनिष्ठा का जो महत सदेश कवि देना चाहता है उपयुक्त पद्यांश के माध्यम से ध्वनित हुआ है। एकलव्य का जीवन एकलव्यकार के जीवन दशन का जीवन्त प्रतिमान है।

पाथ सहित द्रोणाचाय एकलव्य के आश्रम पहुँचे। गुरु के दशन कर शिष्य अभिभूत हो गया। उसने पाथ के प्रति कृतज्ञता ज्ञाप्ति करते हुए कहा—

'धन्य भाग्य मेरे ! पाथ ! कितने कृपालु हो !
मेरी छोटी प्राथना को इतने महत्त्व दे,
दूसरे ही दिन लेके आए गुरुदेव को !
धन्य पाथ ! उऋण न जीवन मे होऊगा।"
(वही पृ० २८०)

एकलव्य ने गुरु के आगमन की तुलना तीक्ष्ण रात्रियों में एक पूर्णिमा, जन भाषा के मध्य मजु अलकार निर्वेद भाव में प्रकट शान्त रस और आश्रय विहीन लता में खिले प्रसून से की। एकलव्य ने श्रद्धास्पद भाव से कहा कि मैं गुरुदेव का स्वागत कैसे करूँ ? मैं कितना अकिंचन हूँ कि गुरु स्वागत सत्कार-हेतु कोई साधन भी मेरे पास नहीं। एकलव्य ने गुरु का परिक्रमा कर उनके चरणों में सप्त बाण सधान कर स्वागत किया। बाणों के इस नवीन स्वागत विधान से गुरु द्रोण प्रमुदित थे। गुरु ने वरद हस्त मुद्रा से 'स्वस्ति' कहकर शिष्य को आशीर्वाद दिया और मृण्मयी प्रतिमा के आगे वेदिका पर समासीन हो गए। गुरुदेव के पूछने पर एकलव्य ने विस्तारपूर्वक अपनी साधना क्रिया से अवगत कराया और कहा कि उन्हीं के मौन शुभाशीष से वह धनुर्वेद का परिज्ञान प्राप्त कर सका। गुरु के प्रति सश्रद्ध भाव से आभार प्रगट करते हुए एकलव्य ने कहा कि—

'बस यह जानता हूँ गुरु अनुग्रह से,
लक्ष्य देखा मैं न, वेध उसका अटल है।

और मुझे चाहिए क्या, इतना सतोष है,
जग में प्रसिद्ध आय द्रोण गुरु मेरे हैं।
× × ×
मेरा रोम रोम आज बना शब्द शब्द है।
मेरी साँस-साँस बनी गुरु की है साधना। (वही, पृ० २८७)

द्रोणाचाय ने कहा कि—साधु एकलव्य! तुम साधना के स्वामी हो! तुम वस्तुत अद्वितीय कुशल धन्वी हो गए हो। गुरु द्रोण ने कहा कि—

'किन्तु जानता हूँ धनुर्वेद कहता हूँ मैं—
तुम सा कुशल धन्वी दूसरा हुआ नही।
× × ×
अर्जित किया जो धनुर्वेद वह सिद्ध है
और तुम आज से अजेय धनुर्धारी हो।" (वही पृ० २८७)

गुरु के समीप खड़े अप्रतिम पाथ ने कहा कि गुरुदेव! आपका कथन सत्य है किन्तु आप की उस प्रतिज्ञा का क्या होगा? जिसके अनुसार मुझ अप्रतिम धनुधर होने का वर प्राप्त है। प्रत्युत्तर में एकलव्य ने कहा कि गुरु प्रण अवश्य पूर्ण होगा। मैं स्वय तुम्हें अद्वितीय मान लेता हूँ। किन्तु ईर्ष्यालु अर्जुन ने अशान्त भाव से कहा कि मैं तुम्हारे समक्ष तो हीन ही रहूँगा क्योंकि गुरुदेव ने मुझे तुम्हारे जैसा लक्ष्यभेद नही सिखाया। इस पर उत्तेजित होकर एकलव्य ने पाथ को गुरुनिन्दा के शब्द न कहने को कहा। पाथ ने आवेश म एकलव्य को द्वन्द्व के लिए ललकारा और एकलव्य यह कहकर सन्नद्ध हो गया कि—

'प्रस्तुत हूँ, पाथ! लो धनुष बाण हाथ म
द्वन्द्व युद्ध शिष्यों का हो गुरु के सम्मान म।
(वही पृ० २८९)

तभी द्रोणाचाय ने मध्यस्थ होके कहा कि मेरी शिक्षा खड-खड होकर नष्ट हो जायेगी यदि मेरे शिष्य आवेश मे आकर अराति भाव से द्वन्द्व युद्ध म प्रवत्त हो। एकलव्य ने गुरुदेव की वेदना को अनुभूत कर चाप को फेंक दिया बाण तोड दिए और प्रण किया कि वह कभी भी शर सरासन हाथ मे नही लेगा। जब तक जीवित रहेगा पाथ ही सदा के लिए अद्वितीय धन्वी होंगे। इसी अवसर पर व्यग्य स्मिति से पाथ ने कहा कि वह क्षत्रिय और विराट व्रतधारी है, वह निषाद की कृपा की भीख माँगकर अद्वितीय धन्वी की पताका

नहीं फहरायेगा। और तुम भी दम्भ प्रण से गुरु की प्रतिना पूर्ण नहीं कर सकोगे। यह सुनकर द्रोणाचार्य ने अश्रु विगलित नेत्रों से कहा कि वत्स, एकलव्य। तुम धन्य हो जो गुरु की प्रण-पूर्ति के लिए प्रयत्नशील हो। मैं आज विवश हूं। मैं अपनी अयोग्यता देखकर दुखी हूँ। तुम जैसे शिष्य की महानता में गुरु छोटा है। अब तुम्हारी दक्षिणा से ही मैं कृतार्थ होऊँगा। एकलव्य ने गुरुदेव के हृदय को खड खड होते हुए देखकर कहा—

'गुरु का हृदय खड-खड हो, असभव।
दक्षिणागुष्ठ ही हो खड मेरा जो कि,
पार्थ को बना दे अद्वितीय धन्वी विश्व मे।
गुरु प्रण-पूर्ति करे सब काल के लिए
जय गुरुदेव! यह रही मेरी दक्षिणा।"

(वही, पृ० २६६)

इतना कहकर एकलव्य ने बड़े वेग से गुरु मूर्ति के समीप अपना दाहिना हाथ रखकर एक ही आघात मे अगूठा काट डाला। गुरु के हृदय में एक विद्युत तरंग सी कौंध गयी, वे कराह कर कहने लगे एकलव्य तुमने यह क्या किया? मेरी प्रण पूर्ति मे अपनी साधना ही नष्ट कर दी। द्रोणाचार्य ने एकलव्य को कसकर अपनी बाँहों मे जकड लिया और रक्तखिन्न होकर बोल उठे—

'एकलव्य हे!
तुम विप्र हो, हे शिष्य! गुरु द्रोण शूद्र है!
हा, तुम्हारी गुरुता मे गुरु हुआ लघु है!"

(वही, पृ० २६७)

वीर एकलव्य ने जिस साधना-तरु को सूर्य-चन्द्र की किरणों से दिन रात सींचा, उसको क्षण मात्र मे उखाड दिया। एकलव्य के दक्षिणागुष्ठ खडन से प्रवाहित रक्तधार ने सारा वर्ण भेद धो दिया है। वीर एकलव्य की गुरु भक्ति भविष्य के भाल का तिलक बनेगी, उसका रक्त राजवशों से भी नहीं धुल सकेगा—

सारा वर्ण भेद धुल गया रक्तधार मे,
× × ×
गुरु भक्ति ऐसी जो भविष्य के भाल पर,
तिलक बनेगी रवि रश्मि को समेट के।

पार्थ ! रक्त देखो इस एकलव्य वीर का
जोकि राजवशो से भी धोया नहीं जायगा।"

(वही, पृ० २६७)

एकलव्य की गुरु भक्ति के अप्रतिम आदर्श और उत्सर्ग भाव को देखकर पार्थ का सिर भुक गया। वह सलज्ज स्वर म एकलव्य से क्षमा याचना करते हुए बोला—

क्षमा करो, एकलव्य ! मेरी धृष्टता !
काटा है अगुष्ठ किन्तु बाण ऐसा छोडा है
जो न चढा पाऊँगा कभी धनुष पर मैं।
क्षमा करो गुरु भक्ति सीखी आज तुमसे।
मैं ने राजवश की अहम भावनाओ से।
गुरु को था हीन माना। तुमने निषाद हो,
गुरु का महत्व सिखलाया इस विश्व को।

(वही, पृ० २६७)

गुरु-दक्षिणा म दक्षिणागुष्ठ समपण के पश्चात एकलव्य ने द्रोणाचाय से कहा—गुरुदेव ! दक्षिणा म देर हो गई, किन्तु इसे स्वीकार कीजिए। एकलव्य ने अपने रक्तिमागुष्ठ को गुरु पद के समीप रखकर रक्त रजित कर से गुरु चरणो का स्पश किया। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मानों रक्तधारा के रूप म धनुर्वेद साधना द्रव रूप होकर भूमि मे लीन हो रही थी। इस रक्त धारा ने भूमिपतियो के उग्र बण भेद को समवत जोडने का ही प्रयत्न किया। यह दारुण दृश्य था। गुरु द्रोण हतप्रभ थे। पाथ लज्जित और मलीन था। तभी एकलव्य ने भरे हुए कठ स कहा—

देव ! इस दक्षिणा का मूल्य इतना ही है,
मेरी साधना को आप देख लेंगे पाथ म।'

(वही, पृ० २६६)

एकलव्य की गुरु दक्षिणा इतनी असाधारण और अप्रतिम थी कि सम्पूण वातावरण म 'गुरु दक्षिणा' की ही अनुगूज सुनाई देती थी। कवि के शब्दों मे—

'वायु की तरग वहती थी, गुरु दक्षिणा
उष्ण रक्त धार कहती थी, गुरु दक्षिणा
सध्याकाश म ज्या रहती थी, गुरु दक्षिणा,
पद-नत दृष्टि कहती थी, गुरु दक्षिणा।

इसी अवसर पर एकलव्य के माता पिता और नागदन्त का आगमन होता है। द्रोणाचार्य एकलव्य की साधना की गरिमा और गुरु-दक्षिणा के रूप में दक्षिणांगुष्ठ समर्पण का वृत्त सुनाते हुए कहते हैं—

"आज वह धनुर्वेद का महा आचार्य है।
विश्व का समस्त इतिहास चिर साक्षी है।"

(वही, पृ० ३०२)

एकलव्य के पिता हिरण्यधनु राज मर्यादा के कारण संयमशील थे। किन्तु एकलव्य जननी ने खिन्न मन से कहा कि क्या शिष्य ही गुरु दक्षिणा का दानी है? यदि आपके विधान में शिष्य की माता से भी दक्षिणा लेने का विधान हो तो मेरे नेत्र ले लीजिए, जिससे मैं अपने लाल के सलोने हाथ का खण्डित अंगुष्ठ न देख सकूँ"। एकलव्य जननी का यह कथन सुनकर सभी स्तब्ध हो गए, नभ श्याम हो गया और दिशाएँ धूमिल हो गईं। गुरु द्रोण एकलव्य जननी से क्षमा-याचना कर पार्थ सहित एकलव्य को शुभाशीष देकर चले गए। एकलव्य गुरुदेव को प्रणाम कर उन्हें वन खण्ड की सीमा तक सादर पहुँचाने गया। एकलव्य के भूमि पर पड़े अंगुष्ठ को अश्रुपूरित नेत्रों से देखते हुए एकलव्य जननी ने करुण स्वर में कहा कि—

"रक्त रागमयी दक्षिणा—
जन जन मानस का एकलव्य कर दे।"

(वही, पृ० ३०५)

इस प्रकार एकलव्य का सर्ग क्रमानुसार कथा विन्यास, चरित्र विनियोजन, शिल्प संरचना और जीवन-दर्शन नामक रूपविधायक तत्वों के परिप्रेक्ष्य में अध्ययन अनुशीलन करने के पश्चात हम सहज ही इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि 'एकलव्य' सच्चे अर्थों में एक महाकाव्य कृति है। महाभारत के विरल कथा सूत्रों का अधिग्रहण कर डॉ० वर्मा ने महाकाव्योचित गरिमा से मंडित इतिवृत्त विधान द्वारा जहाँ एक ओर कथा-कौशल का परिचय दिया है वहीं एकलव्य, द्रोणाचार्य अर्जुन एकलव्य जननी आदि पात्रों के मौलिक चरित्र निरूपण में प्रगत दृष्टि का भी परिचय है। एकलव्य न केवल निषाद संस्कृति का उज्ज्वल प्रतीक है अपितु वह आर्य-संस्कृति के वर्ग भेद पर आधृत विगर्हणीय जीवनादर्शों से अपराजेय संघर्ष करने वाला नरपुंगव भी है। आचार्य द्रोण के चरित्र में अन्तर्बाह्य द्वन्द्व की योजना डा० वर्मा की चरित्र विश्लेषण पद्धति की एक उपलब्धि ही है। डा० मोहन अवस्थी के शब्दों में— द्रोण इस काव्य का सबसे अधिक गतिशील पात्र है। यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय, तो वास्तव में आचार्य द्रोण के

मनोविज्ञान की कक्षा मे ही एकलव्य रूपी उपग्रह भ्रमण करता है। द्रोण के अन्तद्व ■ की उष्ण रश्मियो मे एकलव्य का चरित्र-कमल विकसित होकर अपनी सुगन्धी समस्त दिशाओ मे व्याप्त कर रहा है। अन्तसघष मे अन्तराल मे बहिद्वन्द्व की योजना महाकाव्यकार की अनोखी सूझ है।[1] एकलव्य के चरित्र विधान की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि महाकाव्यकार ने चरित्र विश्लेषण म मनोवैज्ञानिक आधार को ग्रहण करते हुए भी पात्रो की भावगत मान्यताओ को महाभारत के सास्कृतिक दृष्टिकोण से समर्थित रखा है। जहाँ तक आलोच्य महाकाव्य की जीवन दशन सम्बन्धी उपलब्धियो का प्रश्न है, डा० वर्मा ने सम्पूण काव्य म सकल्पशक्ति, साधना त्याग, समानता, आत्मविश्वास, पुरुषाथ जसे चिरन्तन मानवीय मूल्यो की प्रतिष्ठा पर बल दिया है। एकलव्य कार ने युगीन स दर्भो जसे—वगसघष, जातिवाद भेद भावपूर्ण शिक्षा नीति आदि का भी यथाप्रसग रूपायित किया है। वस्तुत 'एकलव्य' का मूल प्रतिपाद्य गुरु भक्ति के उच्चादश की प्रतिष्ठा करना ही है। गुरु की महिमा का समाख्यान हमारे देश मे अनन्त काल से होता रहा है। गुरु ब्रह्मा, गुरु विष्णु गुरु देव महेश्वर सदृश्य आप्त वाक्यो अथवा कबीर, तुलसी आदि मध्यकालीन सन्तो ने अपनी वाणियो के माध्यम से गुरु की गरिमा को अभिमडित करने के सराहनीय प्रयास किए हैं। किन्तु असाधारण कोटि की साधना और अप्रतिम उत्सग का जीवन्त प्रतिमान बनकर गुरु की गरिमा को प्रतिष्ठित करने वाला एकलव्य का ही चरित्र है। एकलव्य की गुरुभक्ति निश्चयत दुलभ विरल और असाधारण है। एकलव्य ने जिस प्रकार कठोर साधना से अर्जित विरल ज्ञान-गरिमा, महत्वाकाक्षाओ की समृद्धि, धनुर्वेद की सिद्धि और स्वाभिमान को गुरु चरणो मे दक्षिणागुष्ठ के उच्छेदन द्वारा समर्पित कर दिया वह भारत तो क्या ? विश्व इतिहास म दुलभ है। गुरुभक्ति के इसी चिरन्तन आदश को एक कीर्तिमान के रूप म एकलव्य महाकाव्य के माध्यम से सस्थापित करके डा० रामकुमार वर्मा ने निश्चयत श्लाघनीय काय किया है और इस दृष्टि से एकलव्य' हिन्दी महाकाव्य परम्परा की गौरवान्वित का यकृति कही जायगी।

---

[1] वीणा—फरवरी १९६१—जीवन्त महाकाव्य एकलव्य—नामक लेख से उद्धृत।

'सारथी' महाकाव्य

त्रिपुर-कल्पना का युग-सापेक्ष काव्यरूपक

१३

'सारथी' महाकाव्य

त्रिपुर-कल्पना का युग-सापेक्ष काव्यरूपक

हमारे युग का सबसे बड़ी समस्या जीवन-मूल्यों का संघर्ष है। इस संघर्ष का मूल कारण विघटनकारी शक्तियों का उदय तथा वैज्ञानिक साधनों के परिणामस्वरूप ध्वंस के उपकरणों का द्रुत गति से प्रसार है। विज्ञान युग की सभ्यता ने भौतिकतावादी मूल्यों को सर्वोपरि मान लिया है। इसके कारण स्वार्थ-परायणता, अर्थ-लोलुपता शोषण व्यष्टिवादिता आदि प्रवृत्तियाँ विकसित हुई हैं। प्रेम, करुणा अहिंसा, सत्य शील आदि शाश्वत जीवन मूल्यों का प्रायः लोप हो गया है। स्थिति यह है कि समस्त भौतिक उपलब्धियों के उपरान्त भी आज के मानव का अहम् परितृप्त या तुष्ट नहीं है। उसमें अधिक से अत्यधिक और अत्यधिक से सर्वाधिक की कामना बढ़ रही है। इस घोर स्वार्थपरता ने चिन्तन और चेतना के स्तरों को सीमित, संकुचित और अहंवादी बना दिया है। मानव का यह अहम अतीत के प्रति अनास्थावान, अनागत के प्रति अनिश्चित और वर्तमान से असंतुष्ट है। विचित्र विडम्बना है। मानव की अन्तश्चेतना युगीन वातावरण में घुटन का अनुभव कर रही हैं। इस सबका कारण क्या है? निवारण का उपाय क्या है? अनुकरणीय मार्ग क्या है? ये आज युग जीवन के प्रश्न और समस्याएँ हैं। इन प्रश्नों का उत्तरदाता काव्य ही हमारे युग का महाकाव्य है। इन समस्याओं के सन्धान और समाधान में रत रचनाकार ही महाकवि कहलाने का अधिकारी है। अस्तु—

हमें महाकाव्यों की परख उपयुक्त मानदण्डों पर करनी चाहिए। प्राचीन

साहित्याचार्यों द्वारा निर्दिष्ट लक्षण और बहुचर्चित मान्यताएँ आज महाकाव्या लोचन के लिए अनपेक्षित प्राय हो चुकी हैं।

हिन्दी के वर्तमान युग मे महाकाव्य सृजन द्रुत गति से हो रहा है। हरिऔध जी के प्रियप्रवास से लेकर दिनेशजी के सारथी तक लगभग ६० महाकाव्य लिखे जा चुके हैं। ऐसे महाकाव्य कम हैं जिनमे हमारे युग जीवन के सघर्ष की व्यजना हो जिनमे मानव के अन्तश्चेतन विकासी स्तरो को रूपायित करने का विराट प्रयत्न हो जिनमे शाश्वत जीवन मूल्यो की प्रतिष्ठा का आग्रह हो जिनमे वचारिक विद्रोह और आत्म क्रान्ति के द्वारा मानव मे आस्था विश्वास और सौहार्द्र भाव के नव जागरण की शक्ति और सामर्थ्य हो। जयशकरप्रसाद के कामायनी काव्य म निश्चय ही जीवन सत्यो की स्थापना हुई है। कामायनी म हमारे युग का उन्नत बोध अपने व्यापकतम परिवेश म प्रतिफलित हुआ है। उसम मानव के अन्तरबाह्य द्वन्द्व हृदय बुद्धि के सघर्ष, प्रकृति के प्रेम और प्रकोप वृत्तियो की स्वार्थ-कामना और अध प्रवचना, रूप आकर्षण और काम वासना शोषण और नारी दौर्बल्य आदि युगीन समस्याओ का चित्रण और व्यावहारिक निदान प्रस्तुत किया गया है। इसी प्रकार की दूसरी रचना डा० रामगोपाल शर्मा दिनेश कृत सारथी' महाकाव्य है जो राजस्थान साहित्य अकादमी के अकादमी पुरस्कार से सम्मानित हो चुका है।

'कामायनी मे मानवता के जनक मनु की कथा है। 'सारथी' म स्वय मानव का इतिवृत्त है। कामायनी मे श्रद्धा और मनु के द्वारा नव सृष्टि विधान हुआ—दोनो के मिलन से मानव उत्पन्न हुआ। मानव ने बुद्धि का साथ दिया। इसके पश्चात सृष्टि के विकास के साथ साथ मानव मे बुद्धि का अपूर्व विकास किस प्रकार हुआ ? मानवता किस ओर गयी ? उसका भविष्य क्या है ? आदि प्रश्न शेष थे। इन शेष प्रश्नो का उत्तर सारथी' महाकाव्य है। दूसरे शब्दो म इतिवृत्तात्मक दृष्टि से सारथी' महा काव्य मे कामायनी ने पूर्णत्व प्राप्त किया है। कामायनी के कथात्मक पूर्वार्द्ध का सारथी उत्तरार्द्ध है। सारथी महाकाव्य मे मानवता विकास के यथार्थ और वास्तविक पक्ष पर विचार हुआ है। इसमे परम्पराओ का अनुमोदन भी है और प्रगति का सम्भावनाओ के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण भी। विज्ञान-युग की अध प्रगति से त्रस्त और भयाक्रान्त मानवता के भविष्य पर बडे गम्भीर एव मननशील ढग से सोचा गया है। सारथी महाकाव्य म भावात्मक पक्ष की अपेक्षा बौद्धिक पक्ष प्रबल है। उसम कलात्मक सौन्दर्य की अपेक्षा वचारिक

श्रद्धा ने आगे कहा कि सदोपगान्त शक्ति सहित शिव ने सृष्टि का भ्रमण किया। देव, दानव और मानव सृष्टियों का अवलोकन किया। इसी अवसर पर शिव ने मानव के अहम के विषय में शक्ति से यह कहा कि

"मनुज कितना जड़ अभी तक,
अहम की सीमा नहीं पहचानता है।' (पृष्ठ ४८)

फिर समर की भयंकरता का वर्णन है जो सृष्टि और मानव के विनाश का कारण है

'युद्ध वह दानव धरा पर
लोह के पुर में सजाकर।
आ भयंकर रूप अपना,
नाश की होली रचाता। (पृ० ५१)

जिसका परिणाम

'नाश के ज्वालामुखी पर
बैठकर फिर मृत्यु रोता।
सभ्यता के शिखर गिरते
धूल में मिलती कलाएं।
और संस्कृतियाँ मनुज की
आग में जल राख होंगी।
किन्तु वह दानव
न फिर भी हारता है। (पृ० ५१)

यहीं श्रद्धा ने कहा कि देव वासना में रत हैं। मानव में कर्म का अहम है। यही विनाश का कारण है जिसका उपाय दोनों का समन्वय है

मानव धरा पर सुर गगन में
वासना का कर समन्वय
कर्म मार्ग—ज्ञान का अमृत बहाएँ। (पृष्ठ ५४)

चतुर्थ सर्ग में मानव के कर्म राज्य का वर्णन है जिसमें श्रम की महत्ता की व्यंजना सुन्दर हुई है

कर्मशील बन कर संसृति का
मैं शृंगार किया करता हूँ।
अपने पौरुष से निर्मम हो
मैं भोग्य अर्जित करता हूँ।

धरती मेरे श्रम अकुर ले
खेतों मे सोना बरसाती।
हरी बौलियो के वभव से
झूम झूम मधु स्वर मे गाती। (पृ० ५५ ५६)

मानव के सजन गौरव की स्थापना इस सग की अ यनम विशेषता है

'ज म दिया मैंने सस्कृति को,
काव्य कला सगीन बनाये।
पाषाणो मे प्राण डालकर
मैंने नभ का गीत सुनाये।
गिन गिन कर मर चरणो का
इतिहासो ने जीवन पाया।
मरा चिन्तन मनन विवेचन
कितने ही दशन बन आया।' (पृ० ५७)

मानव न सोचा कि वह परम्पराओ का निर्माता है अमाध शक्ति का अनन्त भण्डार है मोहनगर और रजतपुर का ध्वस कर सकता है धरा को धूलि मे मिला सकता है असुरो का शासन स्वण लोक से हटा सकता है वासना के अञ्चल म चिर प्रकाश भी भर सकता है किन्तु

"फिर क्यों मरा पौरुष मुझ स
छाया सा छिपता फिरता है?
आज अनागत के भय से मा
बोला क्यो अ तर डरता है?" (पृ० ५६)

तब श्रद्धा न मानव को परिस्थिति बोध कराया। श्रद्धा न कहा—मानव जीवन का स य अथ और काम नही उस एका त भी तृप्ति नहीं द सकता। जीव जगत की नश्वर वस्तु है, फिर उसे मृत्यु से भय क्यो? जीवन क साधना का अस्त्र शस्त्रो से सरक्षण क्या? अपार वभव पाकर भी हृदय से दीन क्या? जीवन प्रमाकाक्षा है, समरसता ही जीवन की शीतलता है

जीवन तुमसे स्नेह मागता
तू उसको देता है ज्वाला।
चिता के सोपानो से चढ़
पीता विकृत बुद्धि की हाला।
भूल गया तू तृष्णा म जल

जीवन की शीतल समरसता।
दौड रहा जडता के पीछे
गुप्त हुई जाती चेतनता।
पूत्र न भय से मुक्ति मिलेगी
जब तक त्रिपुरी के अधीन तू।
कर्म वासना ज्ञान समन्वय
कर न रखेगा इन्हें लीन तू।' (पृ० ६५)

तभी बुद्धि आ गयी। बुद्धि का संग पाकर मानव ने साधना प्रारम्भ किया—

"बुद्धि प्रिया मेरी परिणीता
मेरे जीवन का सबल है।
इसका त्याग करूँ मैं कैसे
यह मेरे मन की हलचल है।' (पृ० ६६)

आगे सारथी के कतिपय प्रेमगीत हैं। विस्तारभय के कारण उनकी प्रथम पंक्तियाँ ही उद्धृत हैं

१ तुम्हारे राग में अपना प्रिय! मैं स्वर मिलाऊँगा। (पृ० ७६)
२ प्रिये चलो जीवन के मधुवन में दो वासन्ती फूल खिलादें।' (पृ० ८०)
३ स्वर लहरों के साथ ढले जो वह मधुपान मधुर होता है। (पृ० ८२)
४ हमें पतझड से क्या मतलब सरस मधुमास साथ हैं। (पृ० ८४)

इस प्रकार गीत गाते बुद्धि के साथ मानव भ्रमण करता रहा। फिर थक कर जब उसने बुद्धि से उसके वक्षस्थल की सरस छाया की याचना की तो बुद्धि ने कहा

हे मनुज! मुझको कभी
तुम किसी भी बिन्दु पर यों रोक कर
पा नहीं सकते अटल विश्राम वह।
तर्क के पथ पर सदा मैं घूमती
वृत्त में मेरे खड़े तुम बिन्दु से
केन्द्र बनकर देख सकते हो मुझे
किन्तु मेरी परिधि तो निस्सीम वह
है जहाँ पर बिन्दु का स्थल न कोई भी कहीं।
चाहते हो साथ रहना
त्याग दो तो केन्द्र को

और आ मुझमें समाओ
नष्ट कर अस्तित्व निज। (पृष्ठ ८८)

मानव यह सुनकर चकित हो गया। बोला

"बुद्धि ! अब समझा तुम्हारा मद सब
तुम मुझे अनुचित दिशा दिखला रहीं
कर्म मेरा ध्येय
सुर का मान है
वासना है भोग्य असुरों का प्रिये।' (पृष्ठ ८९)

मानव ने दृढ़ता से कहा--मेरा ध्येय कर्म है। तुम मुझे तीनों पर अधिकार दिलाना चाहती हो, जो मेरे लिए असम्भव है। मैं अपने अस्तित्व का विलय त्रिपुरा में नहीं कर सकता। मानव ने यहाँ तक कह दिया

मैं तुम्हें भी साथ रखना चाहता
किन्तु श्रद्धा के बिना मुझको प्रिय
तुम अकेली तो नहीं स्वीकार हो। (पृष्ठ ९०)

किन्तु बुद्धि ने यह स्वीकार न किया

'किन्तु मैं हूँ बुद्धि
मैंने तो समन्वय का कभी
मार्ग अपनाया नहीं है आज तक।
पास श्रद्धा के पहुँच कर भी मुझे
बिन्दु पर रखना नहीं अच्छा लगा।
तुम मुझे एकान्त में आये बिना
पा नहीं सकते।
मनुज ! भ्रम त्याग दो।" (पृष्ठ ९०)

बुद्धि के उत्तर से मानव काँप गया। उसने चीखकर कहा कि मुझे भूमि पर ही पहुँचा दो, मैं यहाँ कितना दीन और असहाय हूँ। किन्तु बुद्धि ने कहा

'पर असम्भव हो गया
लौटकर जाना यहाँ से भूमि पर
एक क्षण में देवता दानव यहाँ
छेड़ने वाले महा संग्राम हैं।

लौह के जो अस्त्र मैंने दे तुम्हें
अग्नि का आश्रय दिया था भूमि पर
आज लौहपुर के न्याय से
छीन उनको हो चुके असहाय तुम।
और मुझको भी उन्हीं का साथ है
रजतपुर तक युद्ध में
लड़ना पड़ेगा विवश हो। (पृष्ठ ९१)

बुद्धि ने कहा—मैं अपनी उपेक्षा का दवा से प्रतिशोध लूँगी। अतः तुम भी दानवों का साथ दो। और यदि मेरी आज्ञा न मानोगे तो तुम्हें असहाय छोड़कर मैं चली जाऊँगी तथा मनु द्वारा निर्मित समस्त सृष्टि का संहार होगा। मानव विषम परिस्थिति-द्वन्द्व में फँसा था

मौन मानव सोचता था
दौड़ता उद्भ्रान्त होकर —
बुद्धि ? मेरी बुद्धि ? ओ मेरी प्रिय।
तुम मुझे असहाय छोड़ो मत यहाँ।।
मैं करूँगा अब वही, जो चाहती
रास में मिलना पड़े चाहे मुझे मेरी प्रिय।' (पृष्ठ ९३)

इस प्रकार मनुज बुद्धि पर आसुरी तमस छा गया। वह विलासी हो गया। उसमें दानव संस्कृति की सभी विशेषताएँ आ गयीं। फिर युद्ध हुआ। देव और दानव का कुछ नहीं बिगड़ा। मानव सृष्टि का विध्वंस हो गया

'किन्तु हुआ परिणाम नहीं कुछ क्योंकि वासना सरि में।
असुर वहाँ जीवित हो उठते, बार बार लड़ते थे।
देव नहीं मर सके क्योंकि वे अमर जीव समृति के।
अप्सरियों को छुड़ा भाग वे आये स्वर्ग नगर में।
किन्तु मनुज की सृष्टि ध्वंस पर बैठ बुद्धि को रोई।
निर्माणों की गम राख पर अविरल अश्रु बहाती।
(पृष्ठ १०५)

तब बुद्धि को छोड़ मानव शिशु के समान सिसक रहा था और श्रद्धा को पुकार रहा था

दूर बुद्धि को छोड़ आज जो
शिशु सा सिसक रहा था

श्रद्धा ! श्रद्धा ! की पुकार थी
गूँज चतुर्दिक भरती।" (पृ० १०६)

तभी मानव की प्रार्थना पर ज्योतिवसना श्रद्धा कैलास शिखर से आयी। उसने मानव को जीवन का रहस्य समझाया। वह रहस्य था आत्मानन्द की उपलब्धि का। वह भोग और तन का नहीं वरन सूक्ष्म भाव विषय है जिसके समझने पर कुछ भी पाना शेष नहीं रहता। उसे समझने के लिए दर्शन और विज्ञान की भी आवश्यकता नहीं रहती। उस आनन्द का विश्लेषण ब्रह्मा भी नहीं कर सकते। उसके अनुगमन में बुद्धि सहायक नहीं बन सकती। श्रद्धा ने कहा 'सत्यम् शिवम् सुन्दरम्' ही जीवन के शाश्वत मूल्य हैं। बुद्धि ने तो तुम्हें विचलित किया है

'या आतंक अथ आडम्बर
तुम्हें बुद्धि ने देकर
शून्य अहम का दास बनाया
सत् शिव, सुन्दर खोकर। (पृष्ठ ११६)

और—

'महानाश के पहले मैंने तुम्हें सचेत किया था।
शिव और उसकी महाशक्ति का तुमको ज्ञान दिया था।
समझाती हूँ आज तुम्हें फिर तुम उसको पहचानो!
आस्तिक बनो आस्था लेकर भेद सृष्टि का जानो।'
(पृष्ठ ११७)

श्रद्धा ने कहा कि देव-दानव के संग्राम में भी त्रिपुर बल नहीं पाया। क्योंकि देवों ने ज्ञान बल ही लगाया था। मानव ! तुम हतचेतन मन हो। देव भी त्रिपुर ध्वंस के लिए प्रयत्नशील हैं। मानव श्रद्धा की वाणी से सजग हो उठा। उसकी क्लान्त मुद्रा शान्त हो गयी

"थका हमारा ज्ञान पराजित
साहस और पराक्रम।
हे शिव अमरलोक की सुषमा,
तम में डूब रही है।
नाश करो या तो त्रिपुरों का
या फिर सृष्टि प्रलय हो।

महाकाव्य में 'कामायनी' और 'साकेत' से आगे है। उसमें परम्पराओं के अनुमोदन व प्रगति का पथ प्रशस्त किया गया है। 'सारथी' महाकाव्य की विचारणा नितान्त ही महत्त्वपूर्ण है। उसमें मानव जीवन के लिए सन्देश है। आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों की सृजन परम्परा में सारथी एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है।

'उर्वशी' महाकाव्य

नारी के नाना रूपो की युगीन सन्दर्भो मे अवतारणा

१४

'उर्वशी' महाकाव्य

नारी के नाना रूपों की युगीन सन्दर्भों में अवतारणा

हिन्दी महाकाव्य सजन की सुदीर्घ परम्परा मे 'उवशी' का प्रकाशन अभूतपूर्व घटना है। 'कामायनी' के अनन्तर प्रकाशित होने वाली काव्यकृतियो मे 'उवशी' श्रेष्ठतम है। 'उवशी' की श्रेष्ठता का आधार उसकी कलात्मक योजना और जीवन दशन सम्बन्धी उपलब्धियाँ हैं। 'उवशी' की सबसे महत्त्वपूर्ण उपलब्धि यह है कि उसकी रचना का इतिवृत्तात्मक आधार वदिक पुराख्यान होते हुए भी उसमे वतमान युग जीवन की चेतना का महाघोष है। इस दृष्टि से 'उवशी' का नारी निरूपण द्रष्टव्य है।

'उवशी' मूलत नारी और नर के रागात्मक सम्बन्धो का विवेचक काव्य है। इन्हीं सम्बन्धो का विवेचन करते हुए कवि ने नारी के नाना रूपों का निरूपण भी किया है। 'उवशी' में मुख्यत नारी के तीन रूप उद्घाटित हुए हैं वे हैं—प्रेयसी, पत्नी और माता। इनमें प्रेयसी नारी के पुन दो वग किये जा सकते हैं—उच्छृखला और सयमशीला। इन आधारो पर 'उवशी' के नारी पात्रों को निम्नांकित प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है

१ प्रेयसी—	(अ) उच्छृखला—अप्सराएँ	
	(ब) सयमशीला—उवशी	
२ पत्नी—		औशीनरी
३ माता—		उवशी, सुकन्या और औशीनरी

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि उवशी मुख्यत सयमशीला प्रेयसी होते हुए भी काव्य में दो अन्य रूपों में भी अंकित की गयी है। अप्सरा उवशी जहाँ प्रेयसी है

वही पुरुरवा को वरण करने और पुरुरवा के ससग से आयु को जन्म देने के कारण पत्नी और माँ भी है।

प्रेयसी नारी—(अ) उच्छृखला—नारी के इस रूप का प्रतिनिधित्व काव्य म अप्सराएं करती हैं। अप्सराए सौदय की अपार निधि हैं। वे अम्बर की सुषमा मनमोहिनी, अमुक्त प्रेम की जीवित प्रतिमाएँ मदिर नयनो से देवों की रण क्लान्ति का हरण करने वाली और काम के मन की कामना हैं।[1] उन्ह किसी भी प्रकार का बन्धन स्वीकाय नही। प्रेम उनके लिए क्रीडा और स्वाद है। वे किसी एक की होकर नही रह सकती हैं। उनके जन्म का साथक्य सबका मनोविनोद है। रम्भा के शब्दो म

> जन्मी हम किसलिए ? मोद सबके मन मे भरने को,
> किसी एक को नही मुग्ध जीवन अर्पित करने को।
> सष्टि हमारी नही सकुचित किसी एक आनन म,
> किसी एक के लिए सुरभि हम नही सजोती तन मे।'[2]

अप्सराएँ कभी देवता और कभी मनुज का आलिंगन करती हैं। वे उन्मुक्त और उच्छृखला हैं। उनमे सिन्धु की लहरियो के समान कामनाएँ तरगित रहती हैं

> 'रचना की वेदना जगातीं पर, न स्वय रचती हम,
> बन्ध कर कही विविध पीडाओ मे न कभी पचती हम।
> हम सागर आत्मजा सिन्धु सी हीअसीम उच्छृखल हैं
> इच्छाओ की अमित तरगों से झकृत, चचल हैं।'[3]

अप्सराओ का काय मनुष्य को वासना की वेदना से पीडित करना है। वे 'प्रेम की पीर' से अपरिचित हैं। उनमे पुरुष के प्रति समपण भाव नही। इसीलिए वे किसी एक पुरुष की होकर नहीं रह सकती हैं। सहजन्या और रम्भा क सम्वाद से विदित होता है कि उन्हे नारी का माता रूप कुत्सित लगता है। *भूगोल की परिणीता नारी का पुरुष से आजीवन प्रममय मिलन घृणित लगता है।*[4] इस प्रकार दिनकरजी ने अप्सराओ क माध्यम से नारी के उस

---

[1] उवशी प्रथम अक पृ० ६ ७
[2] वही, प्रथम अक पृ० १२
[3] वही पृ० १२
वही पृ० १६ १७

रूप को व्यंजित किया है जो भौतिकता, विलासिता और स्वार्थपरता की प्रवंचनाओं से पूर्ण है। वस्तुतः ऐसी नारियाँ सामाजिक जीवन का अभिशाप हैं।

(ब) सयमशीला—नारी के इस रूप का प्रतिनिधित्व उर्वशी करती है। उर्वशी अपरिमित सौंदर्यशालिनी है। कवि दिनकर की सम्पूर्ण सौंदर्य-कल्पना मे उर्वशी की देह यष्टि का निर्माण हुआ है। सहजन्या के शब्दों मे, "उर्वशी नन्दनवन की ऊषा, सुरपुर की कौमुदी, इन्द्र के मन की कलित कामना, रति की मूर्ति, रमा की प्रतिमा, विश्वमय नर की तृषा विधु की प्राणेश्वरी और काम के कर की आरती शिखा है। वह सिद्धों और वैरागियों की समाधि मे राग जगाकर देवों के शोणित मे मधुमय आग लगाने वाली है। उसके चरणों पर चढ़ने के लिए जन जन व्यग्र है। उर्वशी की सुषमा के मदिर ध्यान म त्रिभुवन मग्न मुग्ध है।'[1] काव्य के तृतीय अंक म अपना परिचय स्वयं देते हुए उर्वशी ने कहा है

"मैं नाम गोत्र से रहित पुष्प,
अम्बर में उड़ती हुई मुक्त आनन्द शिखा
इतिवृत्तहीन,
सौन्दर्य चेतना की तरग,
सुर नर किन्नर गन्धर्व नहीं,
प्रिय! मैं केवल अप्सरा
विश्वनर के अतृप्त इच्छा सागर से समुद्भूत।[2]

उर्वशी अपने परिचयक्रम मे पुरुरवा को बताती है कि मत्त गजराज मेरे समक्ष नत होकर रहते हैं। केसरी शरभ और शार्दूल अपना हिंस्र भाव छोड़ कर गृह मृग समान अहिंस्र बन जाते हैं। मेरी भ्रू स्मिति को देखकर शूरमा चकित, विस्मित और विभोर हो जाते हैं। मैं अनवरुद्ध और मुक्त काम वह्नि शिखा के समान अप्रतिहत और दुर्निवार भाव से सदैव घूमती हूँ। उर्वशी को कवि ने नारी की चरम कल्पना कहते हुए उसका व्यापक परिचय निम्नाकित प्रकार से दिया है

'जन जन के मन की मधुर वह्नि, प्रत्येक हृदय की उजियाली
नारी की कल्पना चरम नर के मन मे बसने वाली।

---

[1] उर्वशी, प्रथम अंक, पृ० १३
[2] वही, तृतीय अंक पृ० ६५

× ×

विस्तीर्ण सिन्धु के बीच शून्य, एकान्त द्वीप
यह मेरा उर।
देवालय मे देवता नहीं केवल मैं हूँ।

× ×

मैं कला चेतना का मधुमय प्रच्छन्न स्रोत।

× ×

भू नभ का सब सगीत नाद मेरे निस्सीम प्रणय का है
सारी कविता, जयगान एक मेरी त्रयलोक विजय का है।

× ×

मैं देशकाल से परे चिरन्तन नारी हू।
मैं आत्मतन्त्र यौवन की नित्य नवीन प्रभा
रूपसी अमर मैं चिर युवती सुकुमारी हूँ।

× ×

मैं भूत, भविष्यत, वतमान की कृत्रिम बाधा से विमुक्त,
मैं विश्वप्रिया।'

उवशी आदि नारी है। उसका अस्तित्व सदव रहा है—

'कौन पुरुष जिसकी समाधि मे मेरी झनक नहीं है ?
कौन प्रिया, मैं नहीं राजती हूँ जिसके यौवन म ?

× × ×

मरा तो इतिहास प्रकृति की पूरी प्राण कथा है
उसी भांति निस्सीम, असीमित जसे स्वय प्रकृति है। [८]

ऐसी त्रिकाल बाधा से विमुक्त अपार वैभवशालिनी विश्वप्रिया उवशी भी एक अप्सरा है। किन्तु पुरुरवा के प्रति उसका प्रेमभाव अनन्य है। प्रेम भाव से प्रेरित होकर वह तन मन सहित पुरुरवा के प्रति समर्पित होती है। इसी समपण भाव के कारण पुरुरवा के मिलन से उसे जहाँ सुखानुभूति होती है वहीं उसका वियोग उवशी की व्यथा का कारण बनता है। उवशी के मन मे प्रिय मिलन की तीव्र उत्कण्ठा है वह चित्रलेखा से कहती है

---

* उवशी तृतीय अक, पृ० ९६ १००
[८] वही, पृ० ९३

"यदि आज कान्त का अक नही पाऊँगी,
तो शरीर को छोड पवन म निश्चय मिल जाऊँगी।
× × ×
तृप्ति नही अब मुझे सास भर भर सौरभ पीन से
ऊब गयी हू दवा कण्ठ, नीरव रह कर जीन से।
× × ×
कहती हूँ इसलिए, चित्रलेखे ! मत दर लगाओ,
जस भी हो मुझे आज प्रिय क समीप पहुँचाओ।"[1]

अन्तत उर्वशी और पुरुरवा का मिलन होता है। वे दोनो एक वर्ष तक गन्धमादन पर्वत पर आमोदपूर्वक अभिसार क्रीडाएँ करत हैं, किन्तु उर्वशी म अतृप्ति बनी रहती है। उसे समय चक्र की गति का भी ध्यान नही रहता। वह कहती है कि

"जब से हम तुम मिल, न जान, क्या हो गया समय का,
लय होता जा रहा मरुद्गति से अतीत गह्वर म।
× × ×
कट गया वर्ष ऐसे जसे दो निमिष गये।"[2]

उर्वशी मे कामेच्छा है। वह चाहती है

'वक्षस्थल पर, इसी भाँति, मेरा कपोल रहने दो।
कसे रहो, बस इसी भाँति, उर पीडक आलिंगन म,
और जलाते रहो अधरपुट को कठोर चुम्बन से।'[3]

ऐसी उद्दाम कामनामयी उर्वशी से शारीरिक मिलन की वेला मे ही महाराज पुरुरवा कहते हैं कि देह प्रेम की जन्मभूमि अवश्य है किन्तु प्रेम के विचरण की सारी लीलाभूमि रुधिर या त्वचा तक ही सीमित नहा है। प्रेम का प्रसार मन के गहन गुह्य लोको तक है, जहाँ रूप की छवि अरूप का अर्चन करती है। और पुरुष प्रत्यक्ष विभासित नारी के मुखमण्डल म किसी दिव्य, अव्यक्त कमल को नमस्कार करता है। प्रेम के उस निरभ्र आकाश म ऐसी निर्विकल्प सुषमा है, जहाँ पुरुष और स्त्री का भेद मिट जाता है। वहा पुरुष न

---

[1] उर्वशी, प्रथम अक, पृ० २० २१
[2] वही, तृतीय अक पृ० ४३ और १०२
[3] वही, पृ० ६५

केवल पुरुष और नारी न केवल नारी रहती है, वरन् वे मूलसत्ता के प्रतिमान दिखाई देते हैं। उस स्थिति का परिनान मांसल आवरण हटाकर और उनका अतिक्रमण करके प्राप्त किया जा सकता है।" इसी तथ्य की ओर दिनकरजी ने काव्य की भूमिका म भी सकेत किया है कि—'नारी के भीतर एक और नारी है जो अगोचर और इन्द्रियातीत है। इस नारी का सन्धान पुरुष तब पाता है, जब शरीर की धारा उछालते उछालते, उस मन के समुद्र म फेंक देती है जब दैहिक चेतना से परे वह प्रेम की दुगम समाधि म पहुँचकर निस्पन्द हो जाता है।" किन्तु पुरुरवा की यह अनासक्तिपूर्ण विचारणा उवशी के मन म भय उत्पन्न कर देती है। वह वह उठती है कि

"अनासक्ति तुम कहो किन्तु इस क्रिया ग्रस्त मानव की
झाकी तुमम देख मुझे, जाने क्या, भय लगता है।
तन स मुझको कसे हुए अपने दृढ आलिंगन म,
मुझे देखते हुए कहाँ तुम जाकर खो जाते हो?"

उवशी नही चाहती कि पुरुरवा अनासक्ति की चिन्तधारा म डूब कर अनादि सत्य की खोज म लग जाय और उसे भूल जाय। महाराज पुरुरवा को अपने आकर्षणपाश म निबद्ध करने के लिए वह समपण कर देती है

'आ मेरे प्यारे तृषित! श्रान्त! अन्त सर म मज्जित करके,
हर लूँगी मन की तपन चाँदनी, फूलो से सज्जित करके।
रसमयी मेघशाला बनकर मैं तुझे घेर छा जाऊँगी
फूलों की छाँह तले अपने अधरों की सुधा पिलाऊँगी।"

उवशी का यह यह रूप है जिसमे वह वासनाप्रिय नारी दिखायी देती है। उवशी का एक और रूप भी है जिसम वह एक उदात्त प्रेममयी नारी दिखायी देती है। उवशी के इस रूप का परिचय हम उसकी दस पृष्ठो की लम्बी वक्तता मे मिलता है जिसम वह पुरुरवा को तकसम्मत समाधान प्रस्तुत करती है।" *उवशी की दृष्टि मे पुरुष परमेश्वर का और नारी प्रकृति का प्रतीक है।*

" उवशी पृ० ६३
" वही भूमिका, पृ० ग
' वही ततीय अक पृ० ४७
" वही पृ० ५७
" वही, पृ० ७७ ८६

पुरुरवा की इस धारणा का वह प्रतिवाद करती है कि प्रकृति मायाविनी है और परमेश्वर की प्राप्ति के लिए प्रकृति से सम्बन्ध विच्छेद करना पड़ता है

"जिसने कहा तुम्हें, जो नारी नर को जान चुकी है,
उसके लिए अलभ्य ध्यान हो गया परम सत्ता का।
और पुरुष जो आलिंगन में बाँध चुका रमणी को,
देश काल को भेद गगन में उठने योग्य नहीं है ?"[१७]

उर्वशी का मानना है कि प्रकृति को माया कहकर उसके अस्तित्व का निषेध नहीं किया जा सकता

"माया कह क्या गया मिटा हो अस्तित्व प्रकृति का।"[१८]

क्योंकि—

'हम निमग्न के स्वयं कर्म हैं कर्म स्वभाव हमारा,
कर्म स्वयं आनन्द, कर्म ही फल समस्त कर्मों का।"[१९]

इसलिए प्रकृति और ईश्वर में कहीं भी द्वन्द्व या संघर्ष नहीं है। द्वन्द्व तो दुविधाग्रस्त मानस की रचना है। कोई भी धर्म साधना प्रकृति से भिन्न होकर नहीं चल सकती

"द्वन्द्व रच कर नहीं कहीं भी प्रकृति और ईश्वर में,
द्वन्द्वों का अभ्यास द्वैतमय मानस की रचना है।
× × ×
धर्म साधना कहीं प्रकृति से भिन्न नहीं चलती है।"[१]

कवि के अनुसार काम के दो रूप हैं

'काम धर्म, काम ही पाप है, काम किसी मानव को,
उच्च लोक से गिरा हीन पशु जन्तु बना देता है।
और किसी मन में असीम सुषमा की तृषा जगा कर,
पहुँचा देता उसे किरण सेवित अति उच्च शिखर पर।'[२]

---

[१७] उर्वशी, पृ० ७७
[१८] वही पृ० ७८
[१९] वही, तृतीय अंक पृ० ८०
[१] वही, पृ० ८३ ८४
[२] वही, पृ० ८४

जिस काम कृत्य के सम्पादन मे मन आत्माएँ नही, वरन् दो वपुस ही मिलते हैं, जो काम क्रिया स्नेहाकृष्ट होकर नही, वरन छल बलपूर्वक की जाती है वह बलात्कार के पाप को जन्म देती है। दूसरी ओर फलासक्ति से शून्य निष्काम काम-सुख स्वर्गीय पुलक के समान है। अस्तु, काम का यही रूप वरेण्य है।

इस प्रकार उर्वशी के जिस प्रेमिका रूप का कवि ने चित्रण किया है उसके दो पक्ष हैं—एक वह, जिसमे वह अपना सर्वस्व अर्पण करके शरीर सुख की प्राप्ति के लिए व्यग्र है। दूसरे जिसमे वह फलासक्तिपूर्ण कामुकता को त्याग, काम भावना के उदात्त रूप को ग्रहण करना चाहती है। वस्तुत उर्वशी की चरित्र सृष्टि द्वारा कवि ने अपने उस मन्तव्य की पुष्टि कर दी है जो उसने नारी के सम्बन्ध म भूमिका मे प्रतिपादित किया है।

पत्नी—नारी के पत्नी रूप का प्रतिनिधित्व काव्य म पुरुरवा की परिणीता औशीनरी करती है। वैसे आदर्श पत्नीत्व की झाकी सुकन्या के चरित्र म भी उपलब्ध है। प्रेमिका के विपरीत पत्नी पूर्णत पति के प्रति समर्पित होती है। उसका सर्वस्व पति ही होता है। सुकन्या इसी भाव को व्यक्त करते हुए कहती है कि

'एकचारिणी मैं क्या जानूँ स्वाद विविध भोगो का ?
मेरे तो आनन्द धाम केवल महर्षि भर्ता है।
योग भोग का भेद अप्सरा की अबन्ध क्रीडा है,
गृहिणी के तो परम देव आराध्य एक होते हैं
जिससे मिलता भोग, योग भी वही हमे देता है।'[1]

सुकन्या की यह भी मान्यता है कि नारी को यौवन रहते ही किसी एक पुरुष के साथ निखिल जीवन का तार बाध लेना चाहिए अन्यथा सौन्दय से विगलित म्लान अगो वाली नारी पुरुष को आकर्षित करने मे समर्थ न होगी। अप्सराए अपने यौवन पर उन्मत्त रहती हैं किन्तु पतिव्रता नारी के जीवन का आनन्द उसका मधुपूर्ण हृदय होता है जो यौवन की क्षीणता पर क्षीण नही होता। इसीलिए पति पत्नी एक दूसरे के हृदय म ऐसे बसे रहते हैं जैसे एक वृन्त के दो प्रसून हो। वे साथ साथ युवा और वृद्ध होते हैं। पति पत्नी एक नौका पर चढकर जीवनोदधि को पार करते हैं। अस्तु सुकन्या के शब्दो म

---

[1] उर्वशी, चतुर्थ अक पृ० १०८

'अप्सरियाँ उद्विग्न भोगती रस जिस चिर यौवन का,
उससे कहीं महत सुख है जो हमें प्राप्त होता है,
निश्छल, शान्त, विनम्र, प्रेम भर उर के उत्सर्जन से।"[११]

परिणीता नारी के जीवन के अपने अभाव हैं जिनकी व्यंजना औशीनरी के चरित्र में हुई है। वह पतिपरायणा नारी है। उसके पति (पुरुरवा) का उर्वशी से मिलन उसके जीवन का अभिशाप बन जाता है। पुरुरवा के उर्वशी के साथ गन्धमादन पर्वत पर चले जाने पर वह प्राणान्त करना चाहती है, तभी निपुणिका पुरुरवा का यह सन्देश देती है कि महाराज एक वर्ष पश्चात् लौटकर नमिषय यज्ञ करेंगे जिसकी पूर्ति के लिए कुलबामा औशीनरी का जीवित रहना आवश्यक है। औशीनरी विचित्र दुविधा में पड़ जाती है। वह अपनी व्यथा और उर्वशी के प्रति आक्रोश एक साथ व्यक्त करती है

"हाय मरण तक जीकर मुझको हलाहल पीना है।
जानें, इस गणिका का मैंने कब क्या अहित किया था,
कब किस पूर्व जन्म में उसका क्या सुख छीन लिया था।
× × ×
छीन ले गयी अधम पापिनी मुझसे मेरे पति को।
ये प्रवंचिकाएँ जानें, क्या तरस नहीं खाती हैं,
निज विनोद के हित कुलवामाओं को तड़पाती हैं।"[१२]

औशीनरी की असहायावस्था का कवि ने बड़ा मर्मस्पर्शी चित्र अंकित किया है। वह कहती है

'पति के सिवा योषिता का कोई आधार नहीं है।
जब तक है यह दशा, नारियाँ व्यथा कहाँ खोयेंगी,
आँसू छिपा हँसेंगी, फिर हँसते-हँसते रोयेंगी।"[१३]

अथवा

कितना विलक्षण न्याय है।
कोई न पास उपाय है।
अवलम्ब है सबको, मगर, नारी बहुत असहाय है।"[१४]

---

[११] उर्वशी, पृ० २१०
[१२] वही, द्वितीय अंक, पृ० ३३
[१३] वही पृ० ३६
[१४] वही, पृ० ४०

उर्वशी के पुत्र आयु के समक्ष अपनी मनोव्यथा व्यक्त करती हुई औशीनरी कहती है कि विधाता ने नारी के भाग्य में रुदन ही सिरजा है

"और हाय तब भी, मैं केवल प्रिया, मोह नारी हूँ,
रुदन छोड़ विधि ने सिरजा क्या और भाग्य नारी का।"[१४]

इस प्रकार परिणीता नारी का जो रूप उर्वशी महाकाव्य में अंकित हुआ है उसमें दो विशेषताएँ स्पष्ट दिखायी देती हैं। प्रथम पत्नी नारी का पति के प्रति पूर्ण समर्पण भाव दूसरे, परिणीता नारी के जीवन की मूक व्यथा, जिसे वह अन्तरतम में सहेजे हुए जीवनयापन करती है।

माता—आयु की जननी होने के कारण उर्वशी माता है किन्तु माता के दायित्व का सवहन सुकन्या ही करती है। नारी के मातृत्व की प्रशंसा काव्य के सभी पात्रों ने मुक्त कण्ठ से की है। उच्छृंखल स्वभाव वाली अप्सराएं भी मातृत्व के गौरव को स्वीकार करती हैं। मेनका के शब्दों में

'पर, रम्भे ! क्या कभी बात यह भी मन में आती है
मा बनते ही त्रिया कहाँ से कहाँ पहुँच जाती है ?
गलती है हिमशिला, सत्य है गठन देह की खोकर,
पर हो जाती वह असीम कितनी पयस्विनी होकर ?
युवा जननि को देख शांति कैसी मन में जगती है
रूपमती भी सखी ! मुझे तो वही त्रिया लगती है।
जो गोदी में लिए क्षीरमुख शिशु को सुला रही हो,
अथवा खड़ी प्रसन्न पुत्र का पालना झुला रही हो।"[१५]

मातृत्व पद की प्राप्ति से पति पत्नी का प्रणय दृढ़तर हो जाता है। दोनों के पारस्परिक सम्बन्ध रूपी मृदुल धागे रेशम की कड़ियों के समान मजबूत हो जाते हैं

'यह भी क्या वे नहीं जानते संतति के आने पर
पति पत्नी का प्रणय और भी दृढ़तर हो जाता है ?
बाला रहती बंधी मृदुल धागों से शिरिष सुमन के,
किन्तु अंक में तनय पयस के आते ही अंचल में
वही शिरिष के तार रेशमी कड़ियां बन जाते हैं।

---

[१४] उर्वशी, पंचम अंक, पृ० १५५

[१५] वही प्रथम अंक पृ० १६

और कौन है, जो तोड़े झटके से इस बंधन को ?
रेशम जितना ही कोमल, उतना ही दृढ होता है।'[१५]

मातृत्व की महिमा से मण्डित गर्भिणी नारी को महर्षि च्यवन सत्वशीला और लोकोत्तर कहते हैं। उनका मत है कि नारी का प्रजनन कर्म किसी तपश्चरण से कम नहीं है

"और नारियों में भी स्नय, गर्भिणी, सत्व शीला को,
देख मुझे सम्मानपूर्ण करुणा सी हो आती है।
कितनी विवश, किन्तु कितनी लोकोत्तर वह लगती है।
× × ×
कितनी सह यातना पालती निया भविष्य जगत का ?
कह सकता है कौन पूर्ण महिमा इस तपश्चरण की ?"[१]

महर्षि च्यवन के अनुसार प्रजा सृष्टि यज्ञ में नारी का महत्वपूर्ण अनुदान है। नारी रूपी महासेतु पर चलकर ही नये मनुज अदृश्य जगत से आते हैं

"नारी ही वह महासेतु जिस पर अदृश्य से चल कर,
नये मनुज नव प्राण दृश्य जग में आते रहते हैं।
नारी ही वह कोष्ठ देव, दानव, मनुष्य से छिपकर,
महाशून्य, चुपचाप, जहां आकार ग्रहण करता है।
× × ×
सच पूछो तो प्रजा सृष्टि में क्या है भाग पुरुष का ?
यह तो नारी ही है जो सब यज्ञ पूर्ण करती है।"[११]

मातृत्व भाव का प्रदर्शन कवि ने उर्वशी सुकन्या और औशीनरी तीनों के चरित्र में किया है। आयु के प्रति तीनों नारियों में अतुल्य वात्सल्य भाव है। उर्वशी अप्सरा है किन्तु आयु को जन्म देने के कारण उसमें मातृत्व का गौरव आ जाता है। चित्रलेखा से वह कहती है कि यदि मैं मानवी नहीं हूँ तो क्या मैं ने मानव रत्न लाल को तो जन्म दिया है।[१२] वात्सल्य भाव से भरकर आयु को चुप कराते हुए वह अलौकिक आनन्द की अनुभूति करती है—

---

[१५] उर्वशी, चतुर्थ अंक, पृ० १२१
[१] वही पृ० ११६
[११] वही, चतुर्थ अंक, पृ० ११७
[१२] वही, पृ० ११८

'कितनी मृदुल ऊर्मि प्राणों मे अक्षय अपार सुखों की!
दुग्ध धवल यह दृष्टि मनोरम कितनी अमृत सरस है!
और स्पर्श म यह तरग सी क्या है सोम-सुधा की,
अक लगाते ही आंखो की पलकें झुक जाती हैं।'[११]

उर्वशी से लालन पालन के लिए आयु को लेकर सुकन्या भी वात्सल्य भाव से भर जाती है। आयु के सम्बन्ध में वह नाना कल्पनाएं करती है। आयु को गोद म लेकर पुचकारते हुए वह कहती है कि मेरा मुन्ना घुटनों के बल दौड दौडकर कर कभी हिरनो के कान पकडेगा, कभी कपोत पेरी के डैनों को पकडेगा, और जब खडा होकर चलने लगेगा तो शशकों गिलहरियों, कुरग छौनों से रार रोपेगा।[१२] तनिक और बडा होकर गोचारण के लिए बन जाया करेगा। सायकाल गायें चराकर सिर पर कुशा दभ और समिधा का बोझ लेकर लौटा करेगा। फिर पवित्र होकर महर्षि के साथ यज्ञ वेदिका पर बैठकर मन्त्रोच्चार सहित हवन करेगा। हवन धूम से जब उसकी आंखों म बाष्प उमड आयेंगे तो मैं अपने आचल से उसकी आंखें पोछ दूँगी—

'हवन धूम से आंखो म जब बाष्प उमड आयेंगे
तब मैं दोनो नयन पोछ दूँगी अपने अचल से।'[१३]

आयु को पाकर औशीनरी राजमहिषी से राजमाता हो जाती है। आयु को देखकर औशीनरी भी मातृत्व भाव से भर जाती है। उसके मन को तो यही वेदना सालती है कि आयु यदि अपनी बाल्यावस्था म ही मिल जाता तो उसका पालन पोषण करके अनन्त सुख की अनुभूति करती —

आ बेटा! लूँ जुडा प्राण छाती से तुझे लगाकर।

[आयु को हृदय से लगाती है]

कितना भव्य स्वरूप! नयन नासिका ललाट, चिबुक मे,
महाराज की आकृतियो का पूरा बिम्ब पडा है।
हाय पालती कितने सुख कितनी उमग, आशा से
मिला मुझे होता यदि मेरा तनय कहीं बचपन म।।'[१४]

---

[११] उर्वशी, पृ० १२०
[१२] वही, पृ १२६
[१३] वही, पृ० १३०
[१४] वही, पचम सग, पृ० १५३

प्रत्युत्तर मे आयु से कवि ने जो कहलाया है उसमे मातत्व पद की महिमा झलकती है। आयु कहता है—माँ! हताश मत हो। मैं माताओ के स्वर्णिम भविष्य का अग्रदूत बनकर आया हूँ। मैं ने माँ का केवल दूध ही नहीं पिया वरन् करुणामयी त्रिया के क्षीरोज्ज्वल कल्पना लोक मे पल कर बडा हुआ हूँ। आयु कहता है कि उसके जीवन मे माता की ममता ही मूल्यवान रही है—

> "जो कुछ मिला, मात-ममता से, माँ के सजल हृदय से,
> पिता नही, मैं ने जीवन मे माताएँ देखी हैं।
> दिया एक ने जन्म, दूसरी माँ ने लगा हृदय से,
> पाल पोस कर बडा किया आखो का अमृत पिलाकर,
> अब मैं होकर युवा खोजते हुए यहाँ आया हूँ,
> राजमुकुट को नही, तीसरी माँ के ही चरणो को।
> मा, मैं पीछे नप किशोर, पहले तेरा बेटा हूँ।"[१४]

इस प्रकार मातत्व की व्यंजना उर्वशी, सुकन्या और औशीनरी तीनो के चरित्र म हुई है।

यहाँ तक 'उर्वशी' महाकाव्य मे उल्लिखित सारा पात्रो की चरित्रगत विशेषताओ और नाना रूपो (प्रेयसी, पत्नी, माता आदि) का विवेचन किया गया। अब हम काव्य मे नारी के प्रति कवि के सामान्य दृष्टिकोण का मूल्यांकन प्रस्तुत करेंगे।

पुरुरवा उर्वशी का आख्यान (जो प्रस्तुत महाकाव्य का कथात्मक आधार है) मूलत ऋग्वेद मे उपलब्ध है। इस दृष्टि से यदि हम वैदिक कालीन नारी की सामाजिक स्थिति का ऐतिहासिक स्रोतो से पता लगायें तो ज्ञात होता है कि आदिम सामाजिक सगठन का रूप गण सगठन द्वारा होता था, जिसका आधार मातृ सत्ता थी।[१५] इस मातृ-सत्तात्मक समाज मे नारी बलवती, गृह की स्वामिनी और सम्पत्ति की प्रभु थी।[१६] इतिहासकारो का मत है कि वैदिक समाज म स्त्रियो की स्थिति जितनी ऊची थी, उतनी बाद

---

[१४] वही पृ० १६५

[१५] श्री अमृतपाद डागे भारत, पृ० ४९ (अनु० आदित्य मिश्र)

[१६] डा० भगवतशरण उपाध्याय, भारतीय समाज का ऐतिहासिक विश्लेषण, पृ० २४७

मे कमी नही रही।[१] "समाज के मानसिक एवं धार्मिक नेतृत्व मे भी स्त्रियो का हाथ था।"[२] आर्यों के समाज मे स्त्रियों को पुरुषों के समान सभी अधिकार रहते थे इसी से उनको पुरुषो की अर्धांगिनी भी कहा गया है। स्त्री के बिना घर को घर नही माना जाता था। अतिथि सत्कार तथा धार्मिक कार्य स्त्रियो द्वारा सम्पादित होते थे और बिना उनके कोई यज्ञ या उपासना तथा अर्चना सांगोपांग नही थी। इनको वेद पढ़ने पढ़ाने का पूर्ण अधिकार था। घोषा लोपामुद्रा अपाला, विश्ववारा इत्यादि ऋषि पत्नियाँ वेदों की टीकाकार थी। शास्त्रार्थों मे या समाजों मे उनको भाग लेने की पूरी स्वतन्त्रता थी। सम्पत्ति अधिकार मे उनका भी हाथ था।[३] संक्षेप मे "नारी के विकास एवं अधिकार की दृष्टि से वैदिक युग का इतिहास नारी का स्वर्ण काल है।"[४] अस्तु—

वैदिक कालीन नारी के सम्बन्ध मे उपयुक्त ऐतिहासिक सन्दर्भों मे 'उर्वशी' महाकाव्य मे रचयिता की नारी सम्बन्धी धारणाओं का अध्ययन किया जाय तो हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि दिनकर जी ने प्रस्तुत काव्य मे नारीपात्रा को एक ओर तो वैदिक कालीन नारी की गरिमा से मण्डित चित्रित किया है तो दूसरी ओर वेदोत्तर काल से अद्यावधि नारी के प्रति पुरुष के स्वेच्छाचारी व्यवहार, सामाजिक असमानता और उसकी विवशतापूर्ण स्थितियो का भी मार्मिक अंकन किया है।

दिनकर जी की धारणा है कि मानवता के इतिहास मे नारी और पुरुष के योगदान का समान रूप से महत्वांकन नही किया गया है। इतिहासो की दृष्टि केवल पुरुषो के पौरुष संघर्ष और यशोगान तक केन्द्रित रही है। नारी की मूक वेदना को इतिहास ने मुखरित नही किया है—

'इतिहासो की सकल दृष्टि केन्द्रित बस एक क्रिया पर।
किन्तु नारियाँ क्रिया नही प्रेरणा, प्रीति करुणा हैं
उद्गम स्थली अदृश्य जहाँ से सभी कर्म उठते हैं।
×   ×   ×

---

[१] हरिदत्त वेदालंकार भारत का सांस्कृतिक इतिहास, पृ० ९१
[२] डा० बेनी प्रसाद हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता, पृ० ३७
[३] डॉ० गोपीनाथ शर्मा भारत का सम्पूर्ण इतिहास पृ० २६
[४] डॉ० श्याम सुन्दर व्यास, हिन्दी महाकाव्यों में नारी चित्रण पृ० २२

अन्वेषी इतिहास शूरता का, साहस सुयश का,
किन्तु हाय शूरता नारियों की गौरव होती है,
वह सशब्द आघात नहीं, ममता है कष्ट सहन है।"४४

'उर्वशी' की सुकन्या कहती है कि नारियाँ इतिहास की धारा से भिन्न नहीं हैं। समरांगण के थके पुरुष को प्रेरणा नारी ही होती है। नयी ऊर्मि और नूतन उमंग से सजाकर प्रति प्रात काल नारी ही पुरुष को जीवन रण में भेजती है और समरक्षेत्र से लौटे हुए पुरुष से सायंकाल नारी ही दिनभर का इतिहास कभी आँसू बहाकर और कभी मन्द स्मिति सहित सुनती है। अन्तत इतिहास नारी के आदान के प्रति मौन क्यों है ? इस प्रश्न का निदान कवि ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है —

"नारी क्रिया नहीं वह केवल क्षमा, शान्ति, करुणा है।
इसीलिए इतिहास पहुँचता जभी निकट नारी के,
हो रहता वह अचल या फिर कविता बन जाता है।"४५

नारी को 'वासना का प्रतीक' या 'मायावनि' कहा जाता रहा है। कवि ने ऐसे मन्तव्यों को अस्वीकार किया है। उसकी मान्यता है कि —

'नारी जब देखती पुरुष को इच्छा भरे नयन से,
नहीं जगाती केवल उद्वेलन, अनल रुधिर में,
मन में किसी कान्त को भी जन्म दिया करती है,
नर समेट रखता बाहों में स्थूल देह नारी की,
शोभा की आभा तरंग से कवि क्रीडा करता है।"४६

कवि के मतानुसार दिव्य मानवीय गुणों के निकट भी पुरुष की अपेक्षा नारी ही है —

'और देवि! जिन दिव्य गुणों को मानवता कहते हैं,
उसके भी अत्यधिक निकट नर नहीं मात्र नारी है।
जितना अधिक प्रभुत्व तृषा से पीडित पुरुष हृदय है,
उतने पीडित कभी नहीं रहते हैं प्राण त्रिया के।"४७

---

४४ उर्वशी, पंचम अंक पृ० १६३
४५ वही पृ० १६४
४६ वही, तृतीय अंक पृ० ६१
४७ वही पंचम अंक, पृ० १६४

इस प्रकार 'उवशी' महाका-य म आद्यात कवि ने नारी की गौरव गरिमा को प्रतिष्ठित करने का अभिन दनीय प्रयास किया है। वास्तव म 'उवशी' महाका-य नारी की महिमा का का य है। उसमे परम्परित और प्रगतिशील स दर्भों मे एक साथ नारी का स्वरूप विश्लेषण हुआ है। नारी जाति क भविष्य के प्रति भी कवि मगलाकाक्षी है। औशीनरी के शब्दो म —

'नारी का स्वर्णिम भविष्य, जानें, वह अभी कहाँ है!
हम तो चलीं भोग उसको जो सुख-दुख हमे बदा था,
मिले अधिक उज्ज्वल, उदार युग आगे की ललना को।'[४८]

[४८] उवशी, पचम अक पृ० १६२

'जननायक' महाकाव्य

स्वाधीनता-सगर में राष्ट्रपिता के आदान का
समाख्यान

१५

'जननायक' महाकाव्य

स्वाधीनता-सगर में राष्ट्रपिता के आदान का समाख्यान

आधुनिक युग की महान विभूतिया म गाधी जी का स्थान सर्वोपरि है। व्यक्तित्व की गरिमा और कृतित्व की महाघता क कारण भारतीय जन गण ने उन्हें राष्ट्रपिता राष्ट्रनायक, राष्ट्रनिर्माता अमरशहीद देवपुरुष, महात्मा, स्वाधीनता सेनानी युगपुरुष सदृश्य सज्ञाओ से सबोधित किया ता अन्तराष्ट्रीय जगत में वे महामानव, लोकनायक जगदालोक, विश्व ज्योति विश्ववन्द्य आदि अभिधानो से अलकृत हुए। आधुनिक भारतीय जीवन और चेतना के विकास में गाधी जी का योगदान इतना विलक्षण और अभूतपूर्व है कि वे 'अर्धनारी-पुरुष' के समान प्रतीत होते हैं। उनकी चिन्तनधारा ने भारतीय समाज, साहित्य सस्कृति अर्थनीति राजनीति, आचरण-पद्धति और व्यवहार दर्शन को इतना अधिक प्रेरित और प्रभावित किया है कि इन सभी क्षेत्रो म एक आपातिक परिवर्तन परिलक्षित होता है, जो मध्ययुगीन चिन्तन क्रम से स्पष्टत पार्थक्य का द्योतनकता है। सहस्राब्दियो से पराधीन भारत को सत्याग्रह का शस्त्र सौप कर क्रान्तिमन्त बनाने और सत्य अहिंसा क पाथेय पर अग्रसर करत हुए स्वाधीनता समर म जूझने का नतिक बल और राष्ट्रीयता रूपी भाव शक्ति आदोलित करने म गाधी जी का योग दान अद्वितीय है। भारत के स्वाधीनता सघष मे योग दान करने वालो की सूची बडी लम्बी है और उनके बलिदान के प्रतिमान भी अप्रतिम हैं, कि तु गाधी जी का एतद विषयक अनुदान तो अपरिमित विस्तार और अनन्त व्याप्ति ग्रहण किए हुए है। स्वा धीनता सगर म अमर सेनानी की भाँति वे स्वय जूझे, करोडा देशवासियो का

मर मिटने के लिए उत्साहित किया और सबसे बड़ी बात इस राष्ट्र के जर्जरित, रूढ़िग्रस्त और पतनशील जन जीवन को स्वाधीनता समानता और सहअस्तित्व का ऐसा शाश्वत संदेश दिया जिसने राष्ट्र निर्माण की महत् भूमिका प्रस्तुत की। इसके अतिरिक्त गांधी जी ने सत्य, अहिंसा करुणा, प्रेम, सहिष्णुता सौहार्द सदाचार जैसे चिरंतन जीवन मूल्यों का सामाजिक परिवेश और समकालीन परिस्थितियों के अनुरूप पुनरुत्थान भी किया साथ ही जातिवाद छुआछूत, साम्प्रदायिकता प्रांतीयता, भाषा विवाद दहेज अनमेल विवाह जमींदारी जागीरदारी शोषण जैसी कुप्रथाओं और कुसंस्कारों का निरोध किया। गांधी जी के चिन्तन के परिणामों और उदात्त जीवनादर्शों की प्रतिक्रियाओं को स्वाधीन भारत राष्ट्र के पुनर्निर्माण की योजनाओं, सामाजिक पुनरुत्थान के कार्यक्रमों और राजनीतिक व्यवहार पद्धतियों में स्पष्टतः देखा जा सकता है। इसीलिए वे राष्ट्रपिता कहे जाते हैं। उनकी दूरदर्शी नीतियों ने अफ्रीका और एशिया के भी असंख्य देशों में अन्याय और शोषण से संघर्षरत होने वाली जन जागृति को तीव्रतर किया इसीलिए वे 'विश्व ज्योति या जगन्नायक' कहे गये।

ऐसे महान् नरपुंगव का साहित्य मनीषियों द्वारा सारस्वत वन्दन और काव्याभिनन्दन सहज स्वाभाविक है। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में—"महात्मा गांधी आधुनिक युग के श्रेष्ठ जननायक थे। उनके प्रत्येक आचरण में सच्ची प्रेरणा और स्फूर्ति का स्वर भरा हुआ था। उनका जीवन कवियों को काव्य स्फूर्ति देने का अटूट और प्रेरणादायक मंत्र है।"[1] श्री बनारसी दास चतुर्वेदी के अनुसार—"महात्मा जी जैसे महापुरुष शत शताब्दियों के बाद इस भूमि पर अवतरित होते हैं और यह सर्वथा स्वाभाविक है कि अनेक लेखक और कवि उनका गुणगान करके अपनी कलम को पवित्र करें।"[2] इसीलिए गांधीजी के जीवन काल से ही भारतीय रचनाकारों द्वारा विभिन्न भाषाओं की काव्य-संरचना में उनके व्यक्तित्व और कृतित्व का महत्वांकन प्रारम्भ हो गया था। विशेष रूप से भारती के रचनाकारों ने गांधीजी के प्रशस्य चरित्र का आधार बनाकर काव्य के अतिरिक्त अन्य गद्य विधाओं में भी प्रचुर रचनाएं प्रस्तुत की हैं। काव्य के क्षेत्र में सोहनलाल द्विवेदी का जय गांधी खण्ड काव्य उल्लेखनीय है। सर्वश्री मैथिलीशरण गुप्त सुमित्रानन्दन पन्त, राम

---

[1] जननायक—बधाई, पृ० १६

[2] वही—विचार और विवेचन पृ० १०

धारीसिंह दिनकर, हरिवंशराय बच्चन, नरेन्द्र शर्मा, निराला, सियारामशरण गुप्त प्रभृति समर्थ कवियों ने समय समय पर गांधीजी को काव्यांजलियाँ समर्पित की। किन्तु गांधीजी का गौरवान्वित चरित्र महाकाव्य निबद्ध होकर ही पूर्णत अभिव्यक्त हो सकता था और यह हर्ष का विषय है कि गांधी चरित पर अद्यावधि अनेक बृहत प्रबन्धकाव्य प्रकाशित हो चुके हैं। इनमें से उल्लेखनीय हैं—

महामानव (ठाकुरप्रसादसिंह), जगदालोक (गोपालशरणसिंह), गांधीचरित मानस (विद्याधर महाजन), देवपुरुष गांधी (रमेशचन्द्र शास्त्री), गांधी पारायण (अंबिकादत्त दिव्य), विश्वज्योति बापू (दिनेश), जननायक (रघुवीर शरण मित्र) और लोकायतन (सुमित्रानन्दन पन्त)।

उल्लिखित प्रबन्धकाव्यों में मुख्यत गांधी जी की जीवनी और कृतित्व को आधार बनाकर काव्य-सरचना की गई है। इन काव्यकृतियों में गांधीजी के जीवन की सभी प्रमुख घटनाओं का समायोजन है। विशेष रूप से श्री सुमित्रानन्दन पन्त कृत 'लोकायतन' महाकाव्य यद्यपि संक्रान्ति काल की युग गाथा' है और उसमें 'विकासकामी मानवता के जीवन सत्य की झाकी' प्रस्तुत की गयी है और कवि ने स्वयं इसे 'ग्रामधरा के अचल में, जनभावना के छन्द में बँधी, युग जीवन की भागवत कथा' कहा है तथापि इसमें गांधीजी के चरित्र की प्रमुखता है। वसे गांधीजी के क्रमिक चरित्र विकास का इस प्रबन्ध काव्य में भी अभाव ही है।

गांधी चरित्र मूलक प्रबन्धकाव्यों के रचनाक्रम में श्री रघुवीरशरण मित्र प्रणीत 'जननायक महाकाव्य का विशिष्ट स्थान है। इस काव्य में गांधीजी की सम्पूर्ण जीवनी को आद्योपांत कलात्मक पद्धति से चित्रित किया गया है। इतिवृत्तात्मक आधार के लिए मित्र जी ने मूलत गांधीकृत "सत्य के प्रयोग" (आत्मकथा) को अधिगृहीत किया है। स्वाधीनता-आन्दोलन के घटनात्मक तथ्यों की सरक्षा करते हुए कवि ने कल्पना शक्ति का समुचित प्रयोग किया है। वस्तुत गांधीजी के चरित्र को महाकाव्योचित गरिमा के अनुरूप विराट रचना फलक पर जननायक महाकाव्य के माध्यम से प्रथम बार ही प्रस्तुत किया है। इस काव्य के विराट कलेवर और व्यापक रचनात्मक आधार के सम्बन्ध में डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी का मत है कि— यह भारतवर्ष की जनता के सबसे महान् नेता का केवल जीवन काव्य ही नहीं बल्कि पिछले पचास साठ वर्षों का जीवन्त-इतिहास भी है। यह सरस और प्रेरणा दायक इतिहास है। इन पंक्तियों में भारतवर्ष के अतीत, वर्तमान और भविष्य

बोत रहे हैं।[1] अस्तु स्पष्ट है कि मिश्रजी कृत 'जननायक' एक महत काव्य सकल्प है और एक युगान्तरकारी लोकनायक के संघर्षपूर्ण जीवन तथा एक महान राष्ट्र के मुक्ति-आन्दोलन का जीवंत इतिहास होने के कारण सच्चे अर्थों में महाकाव्य है।

जननायक की सर्जन प्रेरणा किंवा रचनाधर्मी सोद्देश्यता भी चिन्तनीय है। इस सन्दर्भ में कवि का यह मत उद्धरणीय है कि— धरती चाहे अवतारों का अहसान न माने पर महात्मा गांधी के पुण्यों से उऋण नहीं हो सकती। यदि बापू न आते तो धरती कभी की मर चुकी होती। गांधीजी का जन्म उस नयी विचार धारा का जन्म है जिससे शान्ति और सुन्दर व्यवस्था सुरक्षित है। बापू के जन्म से तलवार को फूल का जन्म मिला, आग पानी बनकर प्रकट हुई मृत्यु में जिन्दगी मुस्कराई। इतिहास उनके चरणों में बदला है, पीड़ा को उनके प्राणों से शान्ति मिली है मृतकों को उनकी वाणी ने जीवन दिया है और दासता को उस मुक्त की महिमा से मुक्ति मिली है। गांधीजी देश को स्वाधीन कराने वाले एक क्रान्तिकारी महापुरुष ही नहीं थे, अपितु उन्होंने हर कुरूपता पर अपना सौन्दर्य उँडेला है। उन्होंने असुन्दर को सुन्दर किया है। न जाने कितने पाप उनके पुण्यों से दीपक राग बन गये। उनमें अद्भुत चमत्कार था। उनकी वाणी के स्पर्श से मृतक भी बोल उठे। जिसको उस महापुरुष की सहायता मिल गयी वह हार से जीत बन गया। बापू ने मिट्टी के खिलौनों को जीवन दिया है। उन्होंने राम से इन्सान बनाये हैं। ऐसे ज्योतिवन्त की श्रद्धांजलि के रूप में मैंने 'जननायक' काव्य रचा है।[2] इसी क्रम में श्री मिश्र जी ने बापू के आविर्भाव को राम कृष्ण और भगवान बुद्ध की आत्मशक्ति से अनुप्रेरित तथा भारतीय संस्कृति के प्राणभूत तत्वों से अनुस्यूत मानते हुए 'जननायक' काव्य के प्रणयन की प्रेरणा का बापू के बलिदान की सत्ता से सम्बद्ध बताया है। उनका कथन है कि— मैं गांधीजी के अमर तत्वों का पुजारी हूँ। बापू के चरण चिन्हों में चाँद और सूरज की अन्तर्मुखी ज्योति है। उनकी ध्वनि में शाश्वत सत्य है। पुरातन उनके प्रकाश से दमक उठा और नूतन उनकी कला से मुखर है। वे समन्वय की सुन्दर इकाई हैं। राम कृष्ण और बुद्ध उनके हृदय में आ बसे थे। उनमें उन ऐतिहासिक चेतनाओं का अमृत निखार आ रहा जो भारतीय संस्कृति के प्राण स्रोत हैं।

[1] जननायक—वर्षा पृ० १८२०
[2] वही (प्रथम संस्करण) कवि की प्रस्तावना पृ० २१

वह सच्चे सेवी आँखों में है, जब गांधी जी शहीद हुए थे। उस समय शून्य भी रो रहा था। सारी धरती मातम मना रही थी, किन्तु मैं रोया नहीं पीड़ा कलम में भर ली। मैं ने तभी से गांधी जी पर महाकाव्य लिखने के विचार को क्रियात्मक रूप दिया। उस दिन से जब तक काव्य पूरा नहीं हुआ मैं लिखने में लगा ही रहा।[१] काव्य के 'समर्पण' पृष्ठ की एक मात्र पंक्ति में भी कवि ने यही मनोभाव अंकित किया है—

"अमृत के क्षणों को अर्घ्य"

मंगल ज्योति' शीर्षक प्रथम सर्ग की भावाभिव्यक्ति में भी कवि का यही अभीष्ट अभिव्यंजित हुआ है—

'जिनकी चरण धूलि चंदन है, दीपक ! उनके चरणों में जल।
जिनकी पूजा में प्रसाद है, वाणी ! उनके मन्दिर में चल॥
जहाँ अनेक एक में मिलते, काव्यकला ! उस सङ्गम पर गा।
आँखें अर्घ्य चढ़ाने आईं, भक्ति ! रसामृत-गङ्गा भर ला॥
× × ×
पूजा उसकी जो विष पी ले, नर से नारायण बन जाये।
हलचल में सन्तरण वही जो तरणि बिना तट तक ले जाये॥"

(प्रथम सर्ग, पृ० २५)

'जननायक' महाकाव्य की रचनाधर्मी सोद्देश्यता और सृजन प्रेरणा के विवेचन के पश्चात आलोच्य काव्य के इतिवृत्त विधान, चरित्र योजना एवं प्रतिपाद्य पर विमर्श अभीप्सित है।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, 'जननायक' के इतिवृत्तात्मक संयोजन के लिए कवि ने बापू कृत आत्मकथा (सत्य के प्रयोग) को आधार बनाया है।

काव्य के कथा चयन में इतिवृत्तात्मक शैली को ही अधिकांशतः ग्रहण किया गया है। गांधी जी की जीवन कथा का विषय समकालीन होने के कारण काल्पनिक कथाप्रसंगों की संयोजना का अवसर कवि को बहुत कम मिला है। फिर भी काव्य के कुछ स्थल कथा विधान की दृष्टि से मर्मस्पर्शी बन पड़े हैं। और इन प्रसंगों के समायोजन में मौलिकता का परिचय भी मिलता है। उदाहरणार्थ-बापू और बा के दाम्पत्य जीवन के कतिपय प्रसंग अफ्रीका प्रवास के कटु अनुभव बा का देहावसान भारत के विभाजन की भूमिका तथा बापू के बलिदान से सम्बन्धित परिदृश्य विशेषतः द्रष्टव्य हैं। इनके अतिरिक्त

[१] जननायक—वही पृ० २२

'जननायक' के घटनात्मक विनियोजन में पूर्वापर प्रसंगान्विति आद्यंत विद्यमान है। कथानक में ऐतिहासिक तथ्य कहीं भी खंडित नहीं हुए हैं किन्तु इतिहास और कल्पना का अपेक्षित समवाय सर्वत्र दृष्टिगत होता है। इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय है कि गांधी जी ने अपनी आत्मकथा को मात्र तथ्यपरक जीवन वृत्तान्त के रूप में नहीं लिखा है वरन स्वकीय जीवन में किए गये सत्य के प्रयोगों और उनके निष्कर्षों के रूप में प्रस्तुत किया है और इस प्रस्तुति के मूल में जनहित की कामना मुख्यतः विद्यमान रही है। स्वयं गांधीजी के शब्दों में—"मुझे आत्मकथा कहां लिखनी है ? मुझे तो आत्मकथा के बहाने सत्य के जो अनेक प्रयोग मैंने किए हैं, उनकी कथा लिखनी है। यह सच है कि उनमें मेरा जीवन ओतप्रोत होने के कारण कथा एक जीवन वृत्तान्त जैसी बन जायेगी। लेकिन अगर उसके हर पन्ने पर प्रयोग ही प्रकट हों, तो मैं स्वयं उस कथा को निर्दोष मानूँगा। मैं मानता हूँ कि मेरे सब प्रयोगों का लेखा जनता के सामने रहे तो वह लाभदायक सिद्ध होगा, अथवा यों समझिये यह मेरा मोह है।"[१] और यह संतोष का विषय है कि 'जननायक' के रचयिता ने गांधी जी के उद्घाटन में तथ्य को लक्ष्यीभूत करते हुए आलोच्य काव्य का घटनात्मक चयन किया गया है। इसीलिए कथानक में शुष्क ऐतिहासिकता ही नहीं अपितु भावप्रवणता और रोचकता भी है। सम्पूर्ण काव्य इकतीस सर्गों में वर्गीकृत है और प्रत्येक सर्ग का क्रमांक के साथ साथ नामकरण भी किया गया है। यथा—मंगल ज्योति, क्रीडा, पथ का प्रसाद मुस्काते आँसू अमृतध्वनि, दीपांजलि, असहयोग, अन्तर्द्वन्द्व, आहूति, अरुणोदय, प्राणदान आदि।

'जननायक' मूलतः चरित्रप्रधान प्रबन्धकाव्य है। अस्तु कवि का कौशल चरित्र विन्यास के परिप्रेक्ष्य में मुख्यतः विवेचनीय है। आलोच्य महाकाव्य में काव्यनायक के रूप में गांधीजी का चरित्र सर्वप्रमुख है। किन्तु गांधीजी के चरित्र केन्द्र के परिधि विस्तार के अन्तर्गत आने वाले सैकड़ों पात्रों का भी कवि ने यथाप्रसंग समुचित मूल्यांकन किया है। इस सम्बन्ध में श्री बनारसी दास चतुर्वेदी का यह कथन उद्धरणीय है कि— एक बात से हमें आश्चर्य भी हुआ और हर्ष भी वह यह कि अहिंसा के पैगम्बर महात्माजी की पवित्र चरित्र गाथा लिखते समय भी मित्र जी सशस्त्र क्रांति के पुजारियों का नहीं भूले और उनके प्रति सिन्नजी ने न्याय ही किया है।"[२] और यह सत्य है कि

---

[१] आत्मकथा—प्रस्तावना पृ० ६ (नवजीवन ट्रस्ट का १९२७ का संस्करण)
[२] जननायक—विचार और विवेचन पृ० १३

'जननायक' के रचनाकार ने राष्ट्रीय स्वतन्त्रता सग्राम के असख्य सेनानियों और शहीदों को श्रद्धा सुमनाजलि आलोच्य काव्य के माध्यम से समर्पित की है। काव्यारम्भ के प्रथम छन्द में ही वह अपनी वाणी का साफल्य तथा काव्य कला का सार्थक्य उन नरपुगवों की अभिवन्दना में मानता है जो जग के पीड़ा-गरल का पान कर नर से नारायण बने हैं। गाधी जी धरती से आँसुओं और दीन हीनों के वेदना-गरल का पान कर नर से नारायण बने थे। इसीलिए कवि ने गाधीजी के प्रादुर्भाव को युग युग का वरदान कहा है—

''करमचन्द 'पुतलीबाइ' के, मन मोहन ने जन्म ले लिया।
ईश्वर ने सारी दुनिया को युग युग का वरदान दे दिया॥
खेले तीनों लोक गोद में दिया उजाला अन्धकार में।
सवत उन्नीस सौ पचीस में, रूप धरा उस निराकार ने॥'

(प्रथम सर्ग, पृ० २८)

प्रथम सर्ग में ही कवि ने गाधीजी के जन्म, बाल्यावस्था, शिक्षा दीक्षा और विवाह का वर्णन किया है। बालक गाधी के जीवनादर्श एवं आचरण पद्धति इतनी उदात्त थी कि कवि ने उसकी तुलना प्रह्लाद और हरिश्चन्द्र से की है—

'माना देश भक्ति ने उस दिन, पहिन लिया बालक का चोला।
माना फिर 'प्रह्लाद' जन्म ले बालक के चोले में बोला॥
मानो 'हरिश्चन्द्र' का सच फिर, प्रभु की देने लगा परीक्षा॥
सात वर्ष का मोहन बालक, गुरु से लेने पहुँचा दीक्षा॥''

(मगल ज्योति, प्रथम सर्ग, पृ० ३०)

गाधी जी की किशोरावस्था का वर्णन करते हुए कवि ने कहा है कि वे देववाणी के रसिक थे। कुरीतियों एवं कुसस्कारों से वे आरम्भ से ही जूझने लगे थे। हरे भरे खेतों मेघ मालाओं सागर तट की लहरों, चन्द्र ज्योत्स्ना आदि प्राकृतिक उपादानों के प्रति उनके मन में अपार आकर्षण था। नर्तित मयूर पश्चिम का पीत प्रकाश तथा इसी प्रकार के अन्य प्रकृति दृश्य उनके मन में स्वतन्त्रता के महत सकल्पों की उद्भावना करते थे। मिश्र जी के शब्दों में—

'कभी प्रकृति के दृश्य देखते, कभी नाचता मोर देखते।
पश्चिम के पीले प्रकाश में, स्वतन्त्रता का भोर देखते॥
सकल्पों के बीच तैरते, करते थे कल्पना करोड़ों।
कभी कहीं से यह ध्वनि सुनते, तोड़ो माँ के बन्धन तोड़ो॥

(क्रीड़ा, सर्ग २, पृ० ३९)

मोहनदास के मन में 'राम' नाम के प्रति अडिग आस्था रम्भाबाई नामक

सेविका के ससग तथा रामायण भागवत आदि सदग्र था के सतत पारायण से उत्पन्न हुई। इसी आस्था का सम्बल लेकर बापू ने कुवृत्तियो पर विजय पाई और जीवन-सघप म सफलता का वरण किया। समकालीन समाज कितना रूढिग्रस्त और अधविश्वासी था, इसका निरूपण कवि ने तृतीय सग मे गाधीजी की विलायत यात्रा के परिसदम से किया है। जब उनके भाई बरिस्टर बनाने के लिए बापू को विलायत भेजने के निणय पर अटल रहे तो पचो ने निणय कर उन्ह जाति से निष्कासित कर दिया—

नही मोढ बनिया म अब तक, गया विलायत पढने कोई।
मोहन का दुस्साहस है यह, उसने लाज जाति की खोई॥
वह जा सकता नही विलायत, पचो ने यह बात सुनाई।
मोद जाति के इस निणय पर, बढ मोहन ने लात लगाई॥
इस पर उन निमम पचा ने, उनका बहिष्कार कर डाला।
हुक्का पानी ब द कर दिया, मोढ जाति' से उन्ह निकाला॥'

(विलायत यात्रा, सग ३, पृ० ५०)

विदेश प्रवास मे मोहनदास के आत्मबल की कडी परीक्षा हुई। उन्होने माँ की शिक्षा को ध्यान म रखकर भूखा रहना स्वीकार किया किन्तु मांस मदिरा का सवन नही किया। विलायत के जीवन की रगीनिया से मोहन अप्रभावित रह। उन्हे विलायत का विलासितापूण जीवन देखकर अपने देश की दारुण और विपन्न परिस्थितियो म जीवन यापन करते हुए करोडों देशवासियो का स्मरण हो आता था—

मिले विलायत म मित्रा म, सभा म भी हुए उपस्थित।
लकिन उन सार सभा म मरे मोहन रहे यवस्थित॥
इन भोजा म गय किन्तु वे, पास नही फटक शराब के।
भोजो म फल-फूल चखे, पर किए नही दशन कवाब के॥

× × ×

दु ख और सुख क क्षण म मोहन अपना दश न भूल।
वे फूलों की तरह खिल हैं जो नर शूला पर भी झूल॥

(पथ का प्रसाद सग ४ पृ० ६३)

स्वदेश प्रम किंवा भारतीयता की भावना गाधी जी के मन-मस्तिष्क पर छाई हुई थी। व अपन प्रत्यक आचरण और कृत्य का मूल्याकन स्वदेशी' क परिप्रेक्ष्य म करत थे। इसलिए उन्हान जब बरिस्ट्री किसी तरह पास कर ली तो प्रश्न उभा कि यह ज्ञान तो मिला है इसम अपन देश धम का तो ज्ञान

है ही नही, अस्तु, इस ज्ञान का व्यावहारिक लाभ क्या होगा ? यह प्रश्न नितान्त चिन्तनीय था—

"जो कुछ वहा पढा था वह तो भारतीय अध्याय नही था।
अपने देश धर्म का उसमे, ज्ञान नही था, न्याय नही था ॥

× × ×

भारत की पवित्र संस्कृति का, पश्चिम मे सम्मान नही था।
हिन्दू शास्त्र तथा इस्लामी, कानूनो का ज्ञान नहीं था ॥

× × ×

बैरिस्टर तो हुए किन्तु मन मेरे मोहन का अशान्त था।
बैरिस्टरी किस तरह होगी, इस दुविधा से हृदय भ्रान्त था ॥'

(पथ का प्रसाद, सर्ग ४, पृ० ६४)

यही कारण था कि भारत लौटकर उन्होने बम्बई मे बैरिस्टरी प्रारम्भ की किन्तु असफल रहे। अन्तत वे बैरिस्टरी करने अफ्रीका गए। वहाँ डरबन न्यायालय मे जब पगडी पहने मजिस्ट्रेट के समक्ष उपस्थित हुए तो उन्हें पगडी उतारने को विवश किया गया, क्योकि गोरे काले भारतीयो को गुलाम मान कर उन्हें अपमानित करते थे। इस व्यवहार की गाधी जी पर तीव्र प्रतिक्रिया हुई। उन्होने कहा—

"भारत मा के स्वाभिमान से, तडप उठा गाधी का अन्तर।
मेरी पगडी नही यहा पर भारत की पगडी है सिर पर ॥
चाहे मर जाऊँगा लेकिन पगडी नही उतरवाऊँगा।
अगर उतार धरी पगडी तो, माँ को क्या मुँह दिखलाऊँगा ॥

(अफ्रीकागमन, सर्ग ६, पृ० ८७)

इस घटना का वहाँ के समाचार पत्रो मे खूब प्रचार हुआ। उनका विरोध भी हुआ और समर्थन भी, किन्तु गाधी जी दक्षिणी अफ्रीका मे विख्यात हो गए। कवि के शब्दो मे—

" वे 'दक्षिण अफ्रीका देश मे सूरज से प्रख्यात हो गए।
काली रजनी के आगन में, गाधी स्वर्ण प्रभात हो गए ॥'

(सर्ग ६, पृ० ८७)

अब अफ्रीका मे गाधी जी के परिचय का क्षेत्र बढा। बेकर, हैरिसबेग, कोट्स तथा हाजी खान मुहम्मद आदि से सम्पर्क स्थापित कर गाधी जी ने

रग भेद नीति के विरोध म देश-व्यापी आन्दोलन का समारम्भ किया । उन्होंने प्रवासी भारतीयो की सभा म उनकी दयनीय स्थिति का वणन करते हुए कहा कि भारतवासी फुटपाथ पर नही चल सकते, रेलो से उनके बिस्तर फेंक दिए जाते हैं, मतदान का अधिकार नहीं , आखिर क्यो ? तुम कुली और वेटर बने हुए जीवन यापन कर रहे हो । उन्होंने निर्भीक स्वर म उद्बोधन करते हुए कहा—

"यह हिन्दू यह मुसलमान क्या ! कौन पारसी ! क्या ईसाई ।
मानव मानव सभी एक हैं सब आपस में भाई भाई ॥
देख रहे हो यहाँ तुम्हारा, कौडी भर सम्मान नहीं है ।
गोरे तुम्हे कुली कहते हैं यह थोडा अपमान नहीं है ॥
भारत माँ के स्वाभिमान को, तुम गोरो से रौंदवाते हो ॥
अपनी दुबलता के कारण अपने पर उलझवाते हो ।
तुम क्या जानो इन गोरो ने, बाँध लिए हैं पर तुम्हारे ॥
गोरो की छाती के नीचे-दबे हुए अधिकार हमारे ।
× × ×
मत देने का या चलने का, कोई भी अधिकार नहीं है ।
गोरो का अधिकार यहाँ कालो का सत्कार नही है ॥"

(अमृतध्वनि सग ७, पृ० ९८)

इसी बीच श्री बेकर से गाधी जी की प्रगाढ मित्रता स्थापित हो गई । उनके साथ वे गिरजाघर भी गए । वहाँ बडे-बडे ईसाइयो ने उन्हें ईसाइयत स्वीकराने का आग्रह किया । गाधी जी की सभी धर्मों और धमगुरुओ के प्रति अपार श्रद्धा थी किन्तु पारिवारिक सस्कारशीलता ने उन्हे अपने धम के प्रति अडिग आस्था और अनन्य निष्ठा प्रदान की थी अत गाधी जी ने स्पष्ट शब्दो मे कहा कि मेरा धम वही है जो जननी ने सिखलाया है—

"ईसा, म श्रद्धा मेरी, ईसा' ईश्वर नही मानता ।
अद्वितीय दविक शिक्षक थे, मानवता की ज्योति जानता ॥
× × ×
लेकिन मैं ने तो मथ मथकर, हिन्दू धम पूण पाया है ।
मेरा सच्चा धम वही है, जो जननी ने सिखलाया है ॥"

(अमृत ध्वनि, सग ७, पृ० १०१)

इसी बीच फ्रेन्चाइज बिल सामने आया जिसके द्वारा भारतीयो को मताधिकार के प्रयोग से वचित किया गया था । गाधी जी ने इस बिल के

विरोध मे जनमत तयार किया। जब विरोध पत्रो, विरोध सभाओ और नारो से कुछ होता न दिखाई दिया तो उन्होने बिल के विरोध में पूर्ण आन्दोलन करने का निश्चय किया। कवि के शब्दो मे—

"तब उस कर्मवीर गाधी ने पूरे आन्दोलन की ठानी।
पीड़ा से बिजली सी तड़पी, उनकी जागी हुई जवानी॥
बादल बन कर गिरा आग पर, गाधी की वाणी का पानी।
शब्द शब्द में नया ग्रथ है शब्द शब्द में अमर कहानी॥"

(अमृतध्वनि, सर्ग ७, पृ० १०५)

इस आन्दोलन के लिए 'भारतीय नेटाल कांग्रेस' नामक सार्वजनिक सस्था की वहाँ स्थापना की गई। दादा अब्दुल्ला की ही बैठक को इस सभा का कार्यालय बनाया गया। गाधी जी स्वय एक पौंड प्रतिमास चन्दा देते थे। इस सभा की सदस्यता तेजी से बढ़ने लगी—

'ऐसे बढ़े सदस्य सभा के, जैसे बढी कीर्ति गाधी की।
ऐसे उठी भावना उनकी, जसे परछाइ आधी की॥"

(वही, सर्ग ७, पृ० १०६)

'फ्रेन्चाइज बिल' विरोधी आन्दोलन तीव्रतर होता गया, इसी के साथ-साथ गाधी जी का यश भी अफ्रीका भर मे फलने लगा। गोरी सरकार की भेद भावपूर्ण नीतियो का विरोध नृशस शासन का विरोध था। इसे पददलित, पीड़ित और शोषित जनता का अपूर्व समर्थन प्राप्त था। इसीलिए सम्पूर्ण अफ्रीकी जनमानस मे वर्ण भेद का प्रबल प्रतिरोध करने वाली नई चेतना आविर्भूत हुई, ऐसी चेतना जो अहिंसा और आत्मशक्ति पर आधृत थी—

'जन जन मे चेतना जगाई जीवन मे ज्वाला दहका दी।
बिजली सी दौड़ी रग रग मे, गाधी जी ने क्रान्ति मचा दी॥
बाह्य जगत के साथ हृदय मे, महाशक्ति ने शक्ति जगा दी।
जिस जीवन म जान नही थी, उस जीवन म क्रान्ति जगा दी॥
मानव की मानसिक गुलामी गाधी के मानस ने धोई।
दुनिया की पीड़ा आ आकर, गाधी की आँखो में रोई॥

× × ×

अफ्रीका मे छिड़ी लड़ाई गाधी जी ने शख बजाया।
सत्य, अहिंसा, आत्मशक्ति से, शाति पूर्ण सग्राम रचाया॥'

(वही, सर्ग ७, पृ० १०६)

अफ्रीका से लौटकर भारत में गांधी जी ने 'हरी पुस्तिका' का प्रकाशन किया जिसमें अंग्रेजी शासकों की नृशंसताओं तथा अफ्रीकी जन जीवन में व्याप्त असन्तोष का वर्णन था। इस पुस्तिका के वातायन से विश्व को, विशेष रूप से भारतवासियों को, अंग्रेजों के काले कारनामों की झलक दिखाई दी। कवि के अनुसार—

"अफ्रीका का दर्द पिघलकर आंखों में बादल बन छाया।
नगर-नगर में घूम घूम कर गांधी ने यह दर्द दिखाया॥"

(गीतांजलि, सर्ग ८ पृ० ११७)

गांधी जी को पुनः डरबन से तार मिला कि पार्लियामेन्ट की बैठक होने वाली है, तुरन्त आओ। गांधी जी, कस्तूरबा और दोनों बच्चों सहित 'कुरलैंड यान' से डरबन रवाना हो गए। डरबन पहुँचने पर गोरों ने गांधी जी को घेर कर पत्थर बरसाये और अपमानित किया—

"पगड़ी फेंकी, कपड़े फाड़े गले सड़े अंडों से मारा।
कंकड़ मार, पत्थर मारे गला भर गाली का गारा॥
थप्पड़, लात और घूंसा से, गांधी जी की कमर तोड़ दी।
गोरों ने अपने घूंसों से, अपनी ही तकदीर फोड़ दी॥
हड्डी चर्बी मांस फेंक कर गांधी का बेहाल कर दिया।
इतने ही में और किसी ने, उनके सिर पर बूट धर दिया॥"

(अंगारों की राह सर्ग ६, पृ० १२५)

इतनी दुर्दशा के पश्चात भी गांधी जी अपने उद्देश्य की सिद्धि के पथ पर अग्रसर होते रहे। उन्होंने हिंसा का प्रतिकार अहिंसात्मक सदाचरण एवं सेवा भाव से किया। वे वहां कोढ़ियों की सेवा सुश्रुषा में लग गये। जन में जनार्दन के द्रष्टा बापू ने विपन्नता से अपना पारिवारिक जीवन-यापन करते हुए जन सेवा का व्यापक अभियान चलाया। उनके सेवाभाव पर मुग्ध होकर 'जननायक' के प्रणेता ने लिखा है कि—

"महापुरुष गांधी की जय है जिसने मन मथ ब्रह्म निकाला।
उस मानव के ब्रह्म तेज ने, सारे जग में किया उजाला॥"

(वही, सर्ग ६, पृ० १३१)

मातृ भूमि की आह्वान पर गांधी जी अफ्रीका से भारत लौट आये और गोखले जी के नेतृत्व में उन्हें स्वाधीनता आन्दोलन और जन-सेवा के अभियान

को साथ साथ चलाया। वे देश यापी दौरा करते हुए कलकत्ते के काली मन्दिर में पहुँचे और वहाँ उन्होंने पशु बलि का सयक्र विरोध यह कह कर किया—

"बकरे के प्राणो की कीमत नरप्राणो से न्यून नहीं है।
जड चेतन में व्यापक ईश्वर, देता किस को घून नहीं है॥
फिर बकरो की हत्या करके पापी पेट पालना कसा ?
अगर कसाई ही बनना है, तो बन 'सदन कसाई जैसा॥'

(स्वदेश यात्रा, सग १०, पृ० १४२)

अफ्रीका से पुन तार मिला और गाधी जी स्वदेश के स्वाधीनता कायक्रमो को बीच म ही छोडकर वहा पहुँच गये। अफ्रीका जाकर उन्होंने 'तीन पौंड' कर का विरोध प्रारम्भ कर दिया। भारत मे उनके रुग्ण अनुज का निधन हो गया किन्तु वे विचलित हुए बिना कत्तव्यारूढ रहे। बापू का सेवाभाव अभूत पूव था। रोग और कोढ से पीडितो के मलमूत्र तक को भी वे सहष उठाते थे। उनके कार्यों मे कस्तूरबा का योगदान भी अविस्मरणीय है क्योकि—

"'बा बापू की हर पग ध्वनि पर विजय ज्योति बनकर चलती थी।
पथ म सूरज सी खिलती थी, घर म दीपक सी जलती थी॥"

(लपटें और लहरें, सग ११, पृ० १६२)

अन्तत अफ्रीका मे गाधी जी ने सत्याग्रह आरम्भ कर दिया। इस आदोलन का प्रभाव सम्पूण श्रमिक वग पर हुआ। ट्रान्सवाल और न्यूकेसल मे महिलाएँ भी आन्दोलन मे सम्मिलित हो गइ। स्वाधीनता की इन देवियो के सम्बन्ध म कवि का कथन उद्धरणीय है—

"घूँघट पलट दिये बहनों ने, पहन लिया केसरिया बाना।
इन फुन की मनहर लहरो पर, गूज उठा वीरो का गाना॥
आकषण था, लेकिन उसमे आवाहन था अमरलोक का।
रूप ज्योति थी, लेकिन उसमे जलता था दीपक अशोक का॥

× × ×

लाली थी अधरो पर लेकिन देशप्रेम के अभिमानो की।
रोली थी माथा पर लेकिन स्वतन्त्रता के बलिदानों की॥"

(लपटें और लहरें, सग ११ पृ० १६५)

सत्याग्रह ने इतना उग्र रूप ग्रहण किया कि मजदूरो से अफ्रीका की जेलें भर गयीं। इसी आन्दोलन म जोहन्स वग मे जन्मी कुमारी वलिअम्मा का भी प्राणोत्सग हुआ। वलिअम्मा का बलिदान असाधारण था। उसके बलिदान

का प्रभाव यह हुआ कि मजदूरों ने 'ट्रांसवाल' में काम करना छोड़ दिया, माँ-बहिनें सत्याग्रह करने के लिए घरों से निकल पड़ीं—

'गई' 'वालियामा' दुनिया से, छोड़ गयी यह अमर कहानी ।
स्वर्ण अक्षरों में अंकित है, देश प्रेम पर मिटी जवानी ॥

×　　　　×　　　　×

मह ने दिल पर रंग दे गयी, काम छोड़कर मजदूर चल दिये ।
गांधी जी की सेना बनकर, और छोड़ मजदूर चल दिये ॥
बहनों की गोदों में से सत्याग्रह के लिए चली थीं ।
चली पार्वती चली बेगम चली रुक्मिणी चली मरीमा ॥
अपनी आजादी हित कानूनन देवियों का दल निकला ।
सत्याग्रह का अमर शस्त्र ले, देश सेविका का दल निकला ॥

(वही सर्ग ११ पृ० १९७)

गोरी सरकार ने गांधी जी को गिरफ्तार कर लिया । गांधी जी की गिरफ्तारी से सत्याग्रहियों में नव चेतना का संचार हुआ । वे द्विगुणित उत्साह से आन्दोलन करने लगे । उधर जनरल स्मुटिस और पोमर ने सत्याग्रहियों पर अत्याचारों का दमन चक्र चला दिया—

"चमक उठी तलवार वहाँ की बीता मजदूरों पर पानी ।
बन्दूकों या तलवारों से रुकी न उठती हुई जवानी ॥
घोड़े दौड़े, चली गोलियाँ किन्तु न कहीं अहिंसा हारी ।
घायल हुए, मरे जो सैनिक विधवाएँ हो गयीं बिचारीं ॥

(वही, सर्ग ११, पृ० १९८)

किन्तु सरकारी दमन चक्र की गति के अनुरूप ही सत्याग्रह भी तीव्रतर होता गया । कवि के अनुसार—

बाढ़ कौन कब रोक सका है ! सत्याग्रहियों के दल आये ।
बूढ़े बालक, माँ-बेटे सब गांधी की जय-जय चिल्लाये ॥"

अन्ततः जनरल स्मटस सत्याग्रहियों की शक्ति के आगे झुक गये । कर नीति पर विचार के लिए कमीशन की नियुक्ति हुई और गांधी जी की न्याय संगत माँगों को मान लिया गया । यह गांधी जी के राजनीतिक जीवन की अपूर्व सफलता थी । वास्तव में यह हिंसा पर अहिंसा की विजय थी—

सत्य अहिंसा के चरणों में हिंसा की तलवार झुक गयी ।
गांधी जी की गति के आगे, चलती हुई कृपाण रुक गयी ॥

स्वतन्त्रता की अमरजोत मे, प्रसन्नता से मनी दिवाली।
जहा चरण पहुँचे गाधी के, वहा तभी खिल गयी उजाली॥
(वही, सग ११, पृ० १७०)

द्वादश सग में गाधी जी के अछूतोद्धार के लिए किये गये प्रयत्नों तथा चम्पारन के सत्याग्रह का वणन है। अफ्रीका से लौटकर भारत आगमन पर बम्बई मे गोखले जी ने बापू का हर्षोल्लास से स्वागत किया। उनके अभिनन्दन हेतु जनसभा समायोजित हुई जिसमे स्वागत-गीत और जिन्ना साहब का स्वागत भाषण अग्रेजी भाषा मे हुए। स्वदेशी प्रिय गाधी का मन रो पडा। उन्होंने निर्भीकतापूवक उस सभा मे स्वदेशी भाषा की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए कहा—

'बोले भारतीय भाषा मे, मातृभूमि के गुण-गण गायें।
अपनी भाषा, अपना भारत, मगलमय आचरण दिखायें॥
वह क्या राष्ट्र जहाँ के वासी, अपनी भाषा बोल न पायें।
भाषा की दासता पाप है अपनी ही भाषा मे गायें॥
वह स्वतन्त्र भी पराधीन है जिसके पास न अपनी भाषा।
भाषा मे ही बसी हुई है आत्मप्रभाता की अभिलाषा॥"
(अछूतोद्धार सग १२ पृ० १७३)

भारत आकर गाधी जी ने वकालत प्रारम्भ कर दी। किन्तु उन्होंने सदव सत्य का ही पक्ष लिया। इसी बीच बापू ने शान्ति निकेतन, राजकोट, पूना, रगून, हरिद्वार, आदि का भ्रमण कर सामाजिक समानता का प्रचार किया। चम्पारन पहुँचकर उन्होंने जमीन्दारों के कुचक्र म फसे कृषकों के लिए सत्याग्रह प्रारम्भ किया और लम्बे सघष के पश्चात उन्हे सफलता मिली—

सुलह हुई छूटा लगान वह गाधी जी ने मुक्ति दिलाई।
कृषकों की दुगम मजिल पर गाधी न पग धूलि बिछाई॥
(मृदुल विरोध-सग १३, पृ० १८७)

चतुदश सग का शीषक है—'असहयोग'। इस सग म असहयोग आन्दोलन में राष्ट्रपिता की भूमिका का समोलेख है। जन जीवन मे जागृति लाने के लिए बापू ने 'नवजीवन', 'यग इण्डिया', 'क्रानिकल' और 'हरिजन' नामक समाचार पत्रों का सम्पादन-सचालन किया। विदेशी के बहिष्कार की योजना के अतगत खादी अपनाने और चरखा कातन का देशव्यापी अभियान प्रारम्भ हुआ। नागपुर के काग्रेस अधिवेशन म उन्होंने स्पष्ट शब्दों म अछूतोद्धार, खादी एव हिन्दू मुस्लिम एकता पर बल दिया—

"करो अछूतोद्धार भाइयो ! कहा नागपुर कांग्रेस में।
एक रहो सब, एक रहो सब, बनी रहे एकता देश में॥
खादी के तारों को जोड़ो, धो लो छुआछूत की स्याही।
क्या हिन्दू मुसलमान क्या, हिन्दू मुस्लिम हैं हमराही॥"
(असहयोग, सर्ग १४ पृ० २१३)

पंचदश सर्ग में बापू द्वारा "बहिष्कार" आन्दोलन के संचालन तथा उसके देशव्यापी प्रभाव प्रसार का निरूपण है। 'बहिष्कार' आंदोलन उत्तरोत्तर शक्तिशाली होता गया। बापू को जवाहर, पटेल, सुभाष, मौलाना आजाद, जयप्रकाश नारायण, राजेन्द्र प्रसाद प्रभृति देश सेवियों का पूर्ण समर्थन प्राप्त हुआ। कांग्रेस संस्था स्वाधीनता रूपी महायज्ञ की वेदिका बन गई। स्वतंत्रता-देवी के स्तवन हेतु सभी ने गांधी जी के चरण चिन्हों पर चलते हुए सर्वस्व समर्पण करने का संकल्प किया। गांधीजी ने असंख्य श्रमिकों और कृषकों को अर्द्धनग्न देखकर स्वकीय वस्त्र त्याग दिया और लंगोटी बाँध ली। उन्होंने स्थान स्थान पर 'गांधी आश्रमों' की स्थापना की जिनमें खादी बिकने लगी। घर घर में विदेशी रेशमी वस्त्रों की होली जलने लगी—

गांधी आश्रम खुले खिला श्रम बिकने लगा देश में खद्दर।
फुकने लगे विदेशी कपड़े जली देश में होली घर घर॥
भारत के कोने कोने में जली विलायत की रंगीनी।
हँसी से सफेद खद्दर से, उड़ी सुगन्धें भीनी भीनी॥

× × ×

गली मुहल्ला बाजारों में निकली गांधी जी की टोली।
शहर शहर में, गाँव गाँव में जली विदेशी विष की होली॥
(बहिष्कार सर्ग १५, पृ० २१७-२१८)

बहिष्कार आन्दोलन से चिढ़कर अंग्रेजी प्रशासकों ने दमन चक्र और तेज कर दिया। इसी अवसर पर गांधी जी ने 'यंग इण्डिया' में जन क्रान्ति का उग्र रूप देने वाले उत्तेजक लेख लिखे जिन्हें अंग्रेजी प्रशासन ने 'राजद्रोह के अपराध' की संज्ञा देकर अभियोग लगाया और मुकद्मा चलाकर छह वर्ष का कारावास दिया। कारागृह में बापू ने 'आत्मकथा' लेखन का कार्य किया। षोडश सर्ग में साम्प्रदायिकता निवारण हेतु गांधी जी के इक्कीस दिवस के उपवास तथा साइमन कमीशन के विरोध का कवि ने वर्णन किया है। 'रणभेरी' शीर्षक सप्तदश सर्ग में लाला लाजपत राय, सरदार भगतसिंह, सुखदेव,

राजगुरु, चन्द्रशेखर, यतीन्द्रनाथ प्रभृति क्रान्तिकारियो के आत्मदान का काव्योल्लेख है। इन वीरो के अद्भुत बलिदान ने देश भर मे स्वाधीनता आन्दोलन की दशा दिशा को ही बदल दिया। लाहौर अधिवेशन म प० जवाहरलाल नेहरू ने 'पूर्ण स्वतन्त्रता' प्राप्ति के लिए नारा लगाया। स्वतन्त्रता की व्याख्या करते हुए कहा गया—

"स्वतन्त्रता का अर्थ यही है—ब्रिटिश राज्य से देश मुक्त हो।
बन्धन तोडे, पूर्ण मुक्त हो, मुक्त देश मित्रता मुक्त हो॥
× × ×
हर सभव उपाय से तय है, सत्ता हाथ हमारे आए।
ब्रिटिश राज्य अपने झण्डे को अब इङ्गलैंड साथ ले जाए॥
× × ×
जन जन ने यह करी प्रतिज्ञा, स्वतन्त्रता-अधिकार हमारा।
हम स्वतन्त्र हो जियें, अन्यथा जीना ही धिक्कार हमारा॥"

(रणभेरी, सर्ग १७, पृ० २४६)

इसके पश्चात 'नमक कानून' तोडने का आन्दोलन गाधी जी द्वारा सचालित किया गया। सत्याग्रह से पूर्व बापू ने इरविन को चेतावनी के रूप मे पत्र भी लिखा कि मैं सत्य और अहिंसा का समर्थक हूँ। अग्रेजो से भी मुझे प्रेम है किन्तु उनके अत्याचारो से घृणा है। ब्रिटिश राज्य ने भारत मा का बहुत शोषण किया है, हमारी सस्कृति की जडें खोखली कर दी हैं और पौरुष का अपहरण कर लिया है। भारत म सत्ता स्थापित रखने के लिए अब और कुचक्र नही चल पायेंगे क्योंकि—

सत्य अहिंसा का बल लेकर सोया भारत जाग उठा है।
यही अहिंसा विनय अवज्ञा, सत्याग्रह का फाग उठा है॥
सत्य अहिंसा के द्वारा मैं ब्रिटिश राज्य का मन बदलूगा।
पहले देश स्वतन्त्र करूँगा, पाछे अपना तन बदलूगा॥
इसीलिए यह सत्याग्रह है सावधान कर रहा आपको।
भारत सहन नही कर सकता पारतन्त्र्य के महापाप को॥

(रणभेरी, सर्ग १७ पृ० २५०)

आन्दोलन को उग्र रूप ग्रहण करते देखकर अग्रेजी शासका ने काँग्रेस को गैर कानूनी घोषित कर दिया। मोतीलाल नेहरू सहित अन्य चोटी के नेताओ

को बन्दी बना लिया। इससे जनता भड़क उठी तथा आन्दोलन और तीव्र हो गया। अन्ततः सरकार को झुकना पड़ा। 'गोलमेज कान्फ्रेंस' बुलाई गई। समझौते का मार्ग अपनाना पड़ा। इसी बीच रुग्णावस्था में मोतीलाल नेहरू का निधन हो गया। उनके निधन पर कवि की भाव भीनी श्रद्धांजलि कितनी मार्मिक बन पड़ी है—

"भारत माता की मुट्ठी से मोती काल कराल ले गया।
मोती गया, किन्तु जननी को ज्योति जवाहरलाल दे गया॥
सागर में और मोती हैं, लेकिन ऐसा एक न मोती।
टूट गया माला का मोती, पगली सी भारत माँ रोती॥
मोती अब न रहे सागर में, सागरिका सी जनता रोती।
मोती के बलिदान दीप पर, बरस पड़े आँखों से मोती॥"

(क्रान्ति की किरण, सर्ग १८, पृ० २६६)

गांधी इरविन समझौते से देश के जन मन में आशा की किरण दिखाई दी थी किन्तु लार्ड विलिंगडन के आते ही पुनः निरंकुश शासन का दमन चक्र चल पड़ा। उधर कांग्रेस के नेतृत्व में स्वाधीनता समर भी द्रुत गति से चला। इसी मध्य गांधी जी गोलमेज कान्फ्रेंस के लिए इङ्गलैंड गये और वहीं जार्ज पंचम से मिले। जार्ज पंचम और जननायक का मिलन अभूतपूर्व था। भारतीय जन जीवन की वास्तविकताओं से जार्ज को अवगत कराने के लिए बापू खद्दर की लंगोटी धारण किए हुए ही मिले—

"मिले 'जार्ज पंचम' से गांधी बांधे खद्दर की लंगोटी।
वह उस भारत का प्रतिनिधित्व था जिसकी छिनी हुई थी रोटी॥
मानो नंगा भूखा भारत, ब्रिटिश राज्य से मिलने आया।
खड़ा ब्रिटिश सम्राट हो गया, उन चरणों में हृदय झुकाया॥"

(रेत के बासर, सर्ग १६, पृ० २८२)

गोलमेज कान्फ्रेंस में जिस निर्भीकता और सच्चाई से गांधी जी ने भारतीय-पक्ष को प्रस्तुत किया वह उनके चरित्र की दृढ़ता का परिचायक है। उन्होंने कहा अस्पृश्यता निवारण मेरा जीवन-व्रत है। कांग्रेस भारत का शासन चलाने के सर्वथा योग्य है। वह विदेश और रक्षा विभागों का गुरुतर दायित्व भी सक्षमतापूर्वक सम्हाल कर सकती है। हम अंग्रेजों से मित्रता चाहते हैं किन्तु स्वशासन का अधिकार खोकर नहीं। हम पर गोलियाँ बरसें या बम गिरें, किन्तु स्वाधीनता प्राप्ति के लिए बढ़े कदम अब नहीं रुकेंगे—

"कहा जोर से गाधी जी ने-वसुधरा यह वीर योग्य है।
उत्तरदायी शासन के हित-काग्रेस सब तरह योग्य है॥
वैदेशिक विभाग, रक्षा तक, हम ले सकते हैं कधो पर।
भारत म अग्रेजी सना भारत को दिखलाती है डर॥
हम हैं योग्य सभाल सकेंगे, सब उत्तरदायित्व देश का।
हर विभाग पर लहरायगा, ऊँचा झडा काग्रेस का॥

× × ×

जब तक हम यह कर न सकेंगे वियावान म ही भटकेंगे।
उठें बवण्डर, गिरें बिजलिया, अग्नि परीक्षा भी देंगे॥
चलें गोलियाँ या बम बरसें कदम हमारे नहीं रुकेंगे।
स्वतन्त्रता का मोर न जब तक, तब तक तारे नही लुकेंगे॥'

(वही, सग १६, पृ० २८३ २८४)

स्वाधीनता सगर म जूझते हुए बापू यह समझ गये थे कि इसकी सफलता के लिए राष्ट्रीय-जीवन मे अस्पृश्यता निवारण और दृढ एकता परमावश्यक है। अस्तु, व इसके लिए प्राणपन से प्रयत्नशील हो गए। उन्होंने अस्पृश्यता को गरल बताते हुए अपने प्राणो को आहुत करके भी इससे देश को बचाने का सकल्प किया—

"जननायक ने वाणी खोली, अस्पृश्यता गरल बतलाया।
अलग अछूत नही हिन्दू से, हिन्दू को दीपक दिखलाया॥
छुआछूत का भेद मिटेगा, वर्ना मेरी लाश चलेगी।
या तो यहाँ एकता होगी, वर्ना मेरी चिता जलेगी॥"

(बहती धारा सग २०, पृ० २८६)

हरिजन-आन्दोलन के लिए बापू गाँव-गाव गए। उन पर बम भी फेंका गया किन्तु प्रयास असफल रहा। बार बार अनशन और उपवास करके उन्होंने राष्ट्रीय जीवन म जागृति का शखनाद किया। अन्तत बापू की विचारधारा काग्रेस का नारा बन गयी। कवि के शब्दों म—

"जागृति की वीणा बजत हो, अद्भुत हलचल हुई देश म।
पाचजन्य सुन जननायक का, आधी आई काग्रेस म॥
जीवन जागा, लहरें उमडी, एक नया परिवर्तन आया।
पुन सगठन हुआ देश मे, वीणा छोडी शख उठाया॥'

(वही, सग २० पृ० २६५)

ऐसे भी अवसर आए जब बापू की सत्य और अहिंसा की नीतियों के प्रति कांग्रेस के क्रांतिप्रिय और उग्रवादी सदस्यों द्वारा असहमति प्रगट की गई। यहाँ तक कि श्री सुभाषचन्द्र बोस ने कांग्रेस छोड़कर पृथक रूप से 'अग्रगामी दल' की स्थापना कर ली। रामगढ़ में सम्पन्न हुए कांग्रेस के ५३वें अधिवेशन में गांधी जी ने विशाल जनसमूह को सम्बोधित करते हुए पुनः एकता के लिए आह्वान किया। उन्होंने कहा कि सत्याग्रह की हार कभी नहीं होती। 'परवदा' चर्खों से जीवन के धागे कात रहा हूँ इन्हीं धागों से पराधीनता की जंजीरें कटेंगी। सत्याग्रह की महत्ता प्रतिपादित करते हुए उन्होंने कहा—

'सत्याग्रह की परिभाषा यह—सच्चे पथ पर खड़े रहो तुम।
भाला की नाकों के आगे, महावक्ष से अड़े रहो तुम॥
भाल टूटेंगे ढालों से, सत्याग्रह पूजा जायगा।
विश्व शांति की ज्योति यही है, सूरज कभी न बुझ पायेगा॥

(आजादी की आवाज सर्ग २३, पृ० ३३०)

बापू ने देश के जन जन को मातृभूमि पर उत्सर्ग होने के लिए आह्वान करते हुए ओजस्वी वाणी में कहा—

बार बार ये यज्ञ न होते कब कब आते हैं ये अवसर।
अपने दोनों लोक बना लो, भारतमाता की पूजा कर॥

× × ×

झूम झूम गा रहा तिरंगा आओ आओ वीरो आओ।
घूम घूम गा रहा तिरंगा, मातृभूमि पर शीश चढ़ाओ॥
दोनों हाथों में लड्डू है, यहाँ मुकुट है वहाँ मुक्ति है।
स्वतन्त्रता के लिए होड़ है दौड़ो, दौड़ो ! अमर उक्ति है॥'

(वही सर्ग २३, पृ० ३३०)

बापू की वाणी का जादू जैसा प्रभाव हुआ। कोटि कोटि कण्ठों ने जन्मभूमि का जय जयकार करते हुए बलिदान का संकल्प किया। स्वाधीनता संग्राम की इस वेला में अपार श्रद्धा और अनन्य निष्ठा भाव से भारतीय जन मानस बापू का अनुसरण कर रहा था। कवि के अनुसार—

जाते जहाँ चरण बापू के—जनता उमड़ उमड़ कर आती।
जहाँ कहीं भी पलभर को बैठे—बदली घुमड़ घुमड़ कर गाती॥

× × ×

मेरे विश्ववन्द्य बापू की—गाँव गाँव म लहरें लहरीं।
राष्ट्रपिता के पदचिह्नों से, चारों ओर ध्वजायें फहरीं ॥"
(आन्दोलन, सर्ग २४, पृ० ३४३)

अन्तत भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का वह ऐतिहासिक अभियान प्रारम्भ हुआ जिसे 'भारत छोडो' आन्दोलन की सज्ञा दी गयी थी। अंग्रेजी प्रशासन की अवसरवादी, आतकवादी और शोषण पर आधारित नीतियों से विक्षुब्ध होकर कांग्रेस के नेताओं ने अंग्रेजों को भारत छोडने के लिए विवश करने वाला साहसिक आन्दोलन शुरू किया। इस आन्दोलन को सभी वर्गों एव दलों का समर्थन प्राप्त हुआ। 'भारत छोडो' आन्दोलन भारतीय जन मानस के क्रोध की आग्नेय हुँकृति के रूप में उद्भूत हुआ—

दिल मे जलती होली वाली—भारत छोडो ! भारत छोडो।
छाती मे घुस गोली बोली—भारत छोडो ! भारत छोडो ॥
बोली मा बहनों की टोली—भारत छोडो ! भारत छोडो।
कह उठी शहीदों की टोली—भारत छोडो ! भारत छोडो ॥
फासी के तख्ते बोल उठे—भारत छोडो ! भारत छोडो।
भूकम्प भयानक डोल उठे—भारत छोडो ! भारत छोडो ॥
कवियों के शखनाद वाले—भारत छोडो ! भारत छोडो।
नवयुवकों के तेवर बोले—भारत छोडो ! भारत छोडो ॥
यह वीर जवाहर का नारा—भारत छोडो ! भारत छोडो।
हुँकार रहा झण्डा प्यारा—भारत छोडो ! भारत छोडो ॥
वीरों की आत्मा का नारा—भारत छोडो ! भारत छोडो।
सबके परमात्मा का नारा—भारत छोडो ! भारत छोडो ॥"
(आन्दोलन, सर्ग २४ पृ० ३६१ ३६२)

यह आन्दोलन सन् ५७ की क्रान्ति से अधिक व्यापक और रोमाचक था। आन्दोलन की उग्रता और व्यापकता का वर्णन करते हुए कवि ने कहा है कि—

ग्राम ग्राम म शहर शहर मे, गली गली मे था आन्दोलन।
लहरें लपकीं, ज्वाला बरसी अडड अडड कर आया हल्लन ॥
काटे तार, पटरियाँ तोडी, कुछ थाना मे आग लगाई।
धधक उठा प्रतिशोध हृदय म, वीरो ने तलवार उठाई ॥"
(वही, सर्ग २४, पृ० ३६५)

उधर प्रशासन ने योजनाबद्ध ढंग से आन्दोलन को प्रशमित करने के लिए निर्ममतापूर्वक दमन चक्र चलाया। अंग्रेजी प्रशासन की पशुता और बर्बरता का मर्मान्तक शब्द चित्र 'जननायक' के प्रणेता ने इस प्रकार अंकित किया है—

> 'थानेदार गवर्नर बनकर वह आन्दोलन लगे दबाने।
> सत्याग्रह पर, झोपड़िया पर-बम दुनालियाँ संग चलाने॥
> बच्चा को बूटों से रौंदा, वृद्धों को कीलों से भेदा।
> माँ बहनों के अङ्ग अङ्ग को दुष्टों ने भालों से छेदा॥
> कितनी ही जवान बहिनों पर गोरों की पशुता गुर्राई।
> याद हमें वे माँ बहिनें हैं, जिनकी बोटी-बोटी खाई॥
> सन् सत्तावन की बर्बरता, फिर से नाच रही थी।
> शोणित का सागर उमड़ा था, जिसमें इन्सानियत बही थी॥
> (वही, सर्ग २४, पृ० ३६६)

पचविंश सर्ग के प्रारम्भ में कवि ने बापू के जीवन में कस्तूरबा के योगदान का प्रशस्तिगान किया है। बापू जब आगाखाँ महल में बन्दी थे तब 'बा' भी वहीं उनकी सेवा में अहर्निश रत रहती थी। राष्ट्रपिता के जीवन की अर्द्धांगिनी 'बा' के सम्बन्ध में कवि का कथन है—

> 'बा थी काया प्रिया थे बापू वे रुई वह भावुक तकली।
> बापू सूत और बा लकड़ी बापू चपा बा थी बदली॥
> बा चर्खा, वे तार सूत के वह बाँसुरी और वे थे सुर।
> त्याग तपस्या के गीतों से दीप्ति बन्दीगृह था सुरपुर॥
> वह रचना, वे रचनात्मक थे वह भावुकता वे थे कविता।
> वह थी धार और वे लहरें वह थी रश्मि और वे सविता॥
> (आहुति, सर्ग २५ पृ० ३६६)

हिंसक नीतियों के विरोध में बापू ने बन्दीगृह में ही आमरण अनशन प्रारम्भ कर दिया। अनशन से बापू का जर्जरित तन प्रतिपल गिरने लगा किन्तु आत्मिक शक्ति के अलौकिक तेज से उनका मन दृढ़ संकल्प था। डाक्टर गिल्डर सुशीला नयर बी० सी० राय भण्डारी तथा माण्डलिक बापू की नाड़ी की परीक्षा कर रहे थे। बापू का वजन साढ़े चन्वन सेर से घटकर चालीस सेर रह गया। १२वें दिन उनकी हालत अत्यन्त चिंताजनक हो गयी। बापू के अनशन की विश्वव्यापी प्रतिक्रिया हुई—

"जगतपिता का व्रत करना था, देश विदेशों म हलचल थी।

× × ×

अनशन से 'एशिया' हिल गया, हिलता था 'यूरोप' पात सा ।।"

(वही, सग २५, प० ३७४)

ब्रिटिश सरकार को असख्य तार प्राप्त हो रहे थे कि गाधी को छोडो। जाज बर्नार्ड शॉ और विश्व कवि ने बिना शर्त बापू की रिहाई की माँग की। देश भर के नेताओं और जन जीवन ने बापू से उपवास तोडने की प्रार्थना की। अन्तत बापू ने एक गिलास रस पीकर उपवास समाप्त किया। बापू के तपश्चरण की ही विजय हुई—

'उपवास समाप्त हुआ उनका,
तप म जननायक जीत गये।
व्रत से सत से गति से यति से,
सब सकट के क्षण बीत गये।
सब ने प्रभु स विनती करके,
जग की वह ज्योति प्रभाकर।
जय भारत की, जननायक की
जिसने तप स दुनिया बदली ।।"

(वही, सग २५, पृ० ३७६)

'आगाखाँ महल' के बन्दीगृह म ही कस्तूरबा का लम्बी रुग्णावस्था के पश्चात् देहावसान हो गया। 'बा' का निधन प्रकारान्तर से स्वाधीनता यज्ञ म एक आहुति थी। जननायक' के रचयिता ने भाव भीनी काव्याजलि समर्पित की है—

'सती साधना जननायक से पल भर म ही विदा हो गयी।
भरी हुई ऐसी लगती थी मानो पलकर अभी सो गयी ।।
देश भक्ति की दिव्य मूर्ति मा, मानो लेट बन गयी प्रतिमा।
जगदम्बा बन गयी आज मा बनी विश्व की गौरव गरिमा ।।
सध्या मे शिव रात्रि दिवस को 'बा' माता निर्वाण हो गयी।
भारतमाता की पूजा कर, चिर निद्रा म शान्त सो गयी ।।

(वही, सग २५, प० ३८३)

बुभते शोले शीर्षक पर्डविंश सग मे बगाल के उस भयानक दुर्भिक्ष का वर्णन है जिसम सडकों और गलियों म पडे हुए लोग भूख से तडफ रह थे। भूखे ककालो को पागल कुत्ते नोच रहे थे। मृत माँ के स्तन अनाथ शिशु काट

रहे थे। भूखी माताएँ भूखे बच्चों को खाने लगी थीं। भूख बंगाली देहों की हाड़ों और आँतों तक पहुँच गई थी। नरकंकाल रह गए थे। बंगाल श्मशान बन गया। ... कंकाल का ढेर बन गई। दुर्भिक्ष का कारण और बंगाल दशा का चित्रण करते हुए कवि ने लिखा है कि—

कलकत्ता की गलियों में, लाशों की सड़न नालियों में।
ठठरी पत्थर मकानों पर कौन बांध चला जाते थे ॥
भूखे भूखों का खाना है जिन्दा का श्मशान बना रहे।
ना कोई रहा न कोई मुर्दों का श्मशान बना रहे ॥
पत्तों पर सजीव तब बचा, सजीवा बचा, बचा तब मर।
असंतोष अधर्मी फैला, दंगा व बहना का जीवन ॥

(युगे लोथे, सर्ग २६, पृ० २९२)

देश में एक अकाल का भयावह परिदृश्य उपस्थित था और दूसरी ओर जिन्ना के नेतृत्व में मुस्लिम लीग साम्प्रदायिकता की विष-वृष्टि कर रही थी। इस अवसर पर अन्नाभाव ने भूखे बंगाल को आन्दोलन के लिए आह्वान किया—

उठ जाओ जमगार! आग अब, परिवर्तन ललकार रहा है।
उठ भूखे बंगाल! तस्कर, अन्याय हुङ्कार रहा है ॥
अरे भूख से मरने वालो! उठो करो या मरो चला तुम।
अरे भूख से जलने वाला? परवाने या आज जलो तुम ॥
भूखों अब मरना ही है तो, स्वतंत्रता के लिए मरो तुम।
शांति, शांत बस नहीं क्रांति हो, अब शांत को शांति करो तुम ॥
× × ×
अपने पेटों की ज्वाला से अब तुम ज्वालामुखी जला दो।
अपनी आंखों के पानी से लोहे के हैवान गला दो ॥

(वही सर्ग २६ पृ० २९४)

इस विप्लवी-आह्वान की लोमहर्षक प्रतिक्रिया हुई। लिनलिथगो की निर्ममताओं से लोहा लेने के लिए भारतीय जनमानस सन्नद्ध हो गया। स्वातन्त्र्य-आन्दोलन तीव्रतर होता गया। प्रशासन को विवश होकर बापू को आगाखाँ पैलेस से मुक्त करना पड़ा। जवाहरलाल के साथी भी छूट गये। प्रान्तीय सरकारें बदलीं कांग्रेस का ध्वज लहराया। अन्तत नेहरूजी के नेतृत्व में आन्तरिक सरकार की स्थापना हुई। किन्तु जिन्ना के नेतृत्व में मुस्लिम लीग ने पाकिस्तान की माँग रखी। फलस्वरूप साम्प्रदायिक दंगे भड़क उठे।

'नोआखली' के साम्प्रदायिक दंगों से जननायक बहुत दुखी हुए। उन्होंने सूक्ष्म आहार लेना प्रारम्भ कर दिया और अपना निश्चय इन शब्दों में व्यक्त किया—

'और अकेला मैं जन जन में, जा जा कर सद्भाव भरूँगा।
या तो शांति यहाँ पर होगी वर्ना मैं बस यहीं मरूँगा।।
नोआखली के ग्रामों में, जब तक शांति नहीं पाऊँगा।
तब तक सेवा यहीं करूँगा वापिस लौट नहीं जाऊँगा।।"

(शांति के चरण, सर्ग २८, पृ० ४२८)

इसी प्रकार के दंगे बिहार में भड़क उठे। उन्हें भी बापू ने शान्ति प्रयत्नों से रोका। बापू ने भारत के विभाजन का भी प्राणपन से विरोध किया किन्तु राष्ट्रहित में उन्हें यह गरलपान करना पड़ा। अन्ततः गांधी जी की अथक साधना और त्याग से देश स्वतन्त्र हुआ। राष्ट्रध्वज का प्रस्ताव प्रस्तुत करते हुए नेहरू जी ने बापू के योगदान का बखान करते हुए कहा—

'हम जितने भी बढ़ अगाड़ी वह सब बापू का प्रसाद है।
इस झण्डे के तार तार में, गांधी जी की अमर याद है।।
पराधीनता में भी उसने भारत का सम्मान बढ़ाया।
उसी महामानव ने हमको अंतिम मंजिल पर पहुँचाया।।"

(अरुणोदय, सर्ग २९, पृ० ४६२)

संविधान सभा में डा० राजेन्द्रप्रसाद ने जननायक का पुण्य स्मरण करते हुए कहा—

'धन्यवाद बापू का जिसने, आज रात में दिन दिखलाया।
श्रद्धांजलि उस महापुरुष को, जिसने हमें स्वतन्त्र कराया।।
× × ×
बापू अमर प्रकाश स्तम्भ हैं शाश्वत मार्ग प्रदर्शक हैं वे।
वे जीवन हैं वे संस्कृति हैं दिग्दर्शक आकर्षक हैं वे।।
वे आचार्य अहिंसा के हैं जिससे हम आजाद आज हैं।
जो जो हैं जो जो भी होंगे बापू वे सम्पूर्ण साज हैं।।"

(वही, सर्ग २९, पृ० ४६४)

देश स्वतन्त्र हो गया। स्वतन्त्रता की चहल पहल ने भारतीय जनमानस को अभिभूत कर लिया। किन्तु जननायक का हृदय साम्प्रदायिक दंगों के कारण खिन्न था। वे गाँव गाँव और नगर नगर में भ्रमण करते हुए साम्प्रदायिकता के कलुष का प्रक्षालित करने का अथक प्रयास कर रहे थे—

'पूज्य महामानव पीडा के, पोछ रहा था आँसू खारे।
खून धो रहा था धरती का, सन्त एक लगोटी धारे॥'

(तपालोक सर्ग ३०, पृ० ४७१)

बापू ने कलकत्ता के उपद्रवो को रोकने के लिए उपवास किया और उन्हें सफलता भी मिली। वस्तुत बापू ने शिव की भाँति साम्प्रदायिक वमनस्य रूपी विष का पान किया—

जितना जहर फलता या सब युग के शिव पल म पी जाते।
आ आ कर भूचाल भयकर गाधीजी को हिला न पाते॥
बापू ने उपवास कर दिया काँप उठा कलकत्ता घर घर।
मानवता की नीव रोक ली नर नारायण ने अनशन कर॥"

(वही, सग ३०, पृ० ४७६)

दिल्ली म भी दगे भडक उठे। बापू को तार देकर दिल्ली बुलाया गया। बापू अपनी प्रायना-सभा मे हिन्दू मुस्लिम एकता पर बल देते थे। उनकी वाणी ईश्वर और अल्ला का एक साथ स्तवन करती थी। 'हिन्दुस्तान हिन्दुओ का है।'—इस भाव मे आस्था रखने वाले लोग बापू की प्रायना-सभा मे हुल्ला गुल्ला करते थ। प्रायना सभा म बम विस्फोट भी होने लगे। किन्तु अहिंसा के पुजारी निश्चिन्त भाव से साम्प्रदायिक एकता के प्रयत्नो म निरत रहे। किन्तु हिन्दुत्व के उन्मादी जल्लाद गोडस ने प्रायना सभा म ही पिस्तौल की गोलियो के अन्धकार से मानवता के मातण्ड को अस्त कर दिया। बापू के निधन पर शोक सतप्त स्वर मे जननायक के रचयिता ने उचित ही लिखा है कि—

'आज डसा भगवान भक्त ने आज धरा डगराई।
आज क्षितिज के पार स्वग म पूजा की तिथि आई॥
स्वग लोक को गया धरा से जग मन्दिर का ईश्वर।
मानवता को ढूँढ रहा है घोर रुदन धरती पर॥
पुछा स्वण सिन्दूर सृष्टि का रगा रक्त से आचल।
रोते रोते आज धरा के प्राण बन गए पागल॥'

(प्राणदान सग २१ पृ० ५०१)

इसके पश्चात कवि न बापू क निधन पर भारतीय जनगण के करुण विलाप का उल्लेख करते हुए लिखा है कि इस सूचना को जिसने सुना वही शोक सिन्धु म डूब गया। वसुन्धरा इस व्यथा म व्यथित प्रतीत हो रह थ। बालक वद्ध युवा सभी रो रहे थ। ऐसी प्रतीत हो रहा था कि मानों जनता

वाल विधवा हो गई है। सभी दौड दौडकर जननायक को श्रद्धांजलि समर्पित कर रहे थे—

"जिसने खबर सुनी मरने की, वही सुन सा खडा रह गया।
जिसने मरण सुना बापू का, शोक सिन्धु मे वही वह गया॥

× × ×

बच्चे रोये बूढे रोये, दुनिया का हर प्राणी रोया।
ऐसा लगता था दुनियाँ म, हर मनुष्य मरघट मे सोया॥
जनता का विलाप मत पूछो, मानों हुई बाल विधवा वह।
मानो जल सूखा सरिता का, मछली तडप रही थी रह रह॥

× × ×

हाहाकार हुआ सारे म, शोक सिन्धु पर घन मँडराये।
जहा सो रहे थे जननायक जनजन वहाँ दौडकर आये॥'

(वही, सर्ग ३१, पृ० ५०५ ५०६)

राजकीय सम्मान के साथ बापू का सस्कार किया गया। ससार भर के महान कवियो कलाकारों नेताओ, राजनीतिज्ञो राज्याध्यक्षो और सम्राटों ने बापू के निधन पर भारतीय जनता एव सरकार के नाम सवेदना सन्देश प्रेषित किए। विशेष रेलगाडी द्वारा बापू के पार्थिव अवशेष प्रयाग मे त्रिवेणी के सगम पर लाये गये और वहाँ स्वस्तिवाचन के वेद मन्त्रों की अनुगूज मे उन्हें प्रवाहित कर दिया गया। इस प्रकार उस महामानव का पार्थिव व्यक्तित्व सागर के महाप्रवाह म अन्तर्भूत हो गया, किन्तु बापू की तप साधना मेघ बन कर अनन्तकाल तक वसुन्धरा को अमरत्व दान करती रहेगी, क्योकि गाधीजी जनजीवन की असख्य धाराओ को मिलाने वाले सगम स्थल थे। वे धरती के समान सहिष्णु सागर के समान गम्भीर और गगा के समान पवित्र थे। कवि ने उचित ही कहा है कि—

'गाधी वह सगम है जिसमे, आकर मिली करोडो धारा।
गाधी वह धरती जिस पर चलना यह पीडित जग सारा॥
गाधी वह सागर है जिसमे रत्नो का भण्डार भरा है।
गाधी वह गगा है जिसमे, हर आसू मे प्यार भरा है॥"

(मृदुल विरोध सर्ग १३, पृ० १८८)

इस प्रकार 'जननायक महाकाव्य के माध्यम से मिश्र जी ने स्वाधीनता सगर मे राष्ट्रपिता के योगदान का कथात्मक समाख्यान करते हुए उनकी चारित्रिक विभूतियो को उदघाटित किया है। जहाँ तक जीवन दर्शन की व्यजना

का प्रश्न है कवि ने बापू की चरित्र-योजना के अन्तर्गत ही गांधीवादी विचार दर्शन की प्रमुख उपपत्तियों को व्यंजित किया है। सत्य अहिंसा, त्याग, करुणा प्रेम, सौहार्द सहिष्णुता सर्वोदय प्रभृति जीवन मूल्यों की प्रस्थापना के लिए कवि ने किसी विशिष्ट सैद्धान्तिक आधार विधि को अधिग्रहीत नहीं किया है, अपितु गांधीजी की उदात्त चरित्र भूमिका पर उन्हें स्थापित किया है। इसीलिए जननायक में जीवन-दर्शन एक स्वतन्त्र प्रत्यय के रूप में नहीं अपितु काव्य सरणियों में प्रवाहित होता हुआ व्यावहारिक रूप में चित्रित हुआ है। 'जननायक' के रचनापक्ष का यही वैशिष्ट्य है कि इसमें आख्यान तत्त्व चरित्र तत्त्व और जीवन दर्शन के तत्त्व की अद्भुत समाहृति परिलक्षित होती है, जो महाकाव्य सदृश बृहदाकार काव्य ग्रन्थ में सामान्यतः दुर्लभ होती है। वस्तुतः राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के चरित्र में राम, कृष्ण, बुद्ध प्रभृति युग पुरुषों की भाँति इतना आयाम विस्तार है कि अनेक काव्यों का प्रणयन करके भी उसे पूर्णतः निबद्ध नहीं किया जा सकता। बापू के चरित्र पर लगभग एक दर्जन प्रबन्ध काव्यों का प्रणयन हिन्दी में हो चुका है किन्तु उनके चरित्र में अभी भी असंख्य अनुद्घाटित सम्भावनाएं हैं जो महत्-सर्जन की अपेक्षा करती हैं। जननायक के प्रणेता ने उचित ही लिखा है—

बापू के जीवन का हर डग हम दे गया नया कथानक।
महाकाव्य कितने ही लिख लो इतने विस्तृत हैं जननायक।।"

(जननायक, अरुणोदय सर्ग २९ पृ० ४४३)

'मानवेन्द्र' महाकाव्य

लोकनायक नेहरू की भाव-सदीप्त कीर्तिकथा

१६

'मानवेन्द्र' महाकाव्य

लोकनायक नेहरू की माव-सदीप्त कीर्तिकथा

आधुनिक भारत के निर्माताओ मे नेहरू जी की भूमिका सर्वाधिक महत्व पूर्ण है। उन्होंने पराधीन भारत के मुक्ति आदोलन और स्वाधीन भारत के पुनर्निर्माण दोनो मे अद्वितीय योगदान किया है। स्वाधीनता सगर के सेनानियों मे उत्तम के कीर्तिमान स्थापित करने वालो मे नेहरू जी का स्थान महात्मा गाधी के तुरन्त पश्चात और स्वतन्त्र भारत के जननेताओ मे सर्वोपरि है। नेहरू जी स्वदेशी जीवन और अन्तर्राष्ट्रीय जगत में समान रूप से सुविख्यात हुए। नेहरू जी की प्रसिद्धि का मूल कारण उनका बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न व्यक्तित्व और राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय जीवन मे असाधारण कृतित्व है। कमठ कार्यकर्ता क्रान्तिकारी, राजनीतिज्ञ समाज सुधारक, प्रशासक विचारक लेखक इतिहासकार आदि के रूप मे उनके व्यक्तित्व के अनेक पक्ष हमारे सम्मुख हैं। नेहरू जी के व्यक्तित्व का विलक्षण बिन्दु बौद्धिकता और भावुकता वैज्ञानिकता और सस्कारशीलता, शान्तिप्रियता और क्रान्तिमत्तता तथा परम्परा और आधुनिकता का अद्भुत सामजस्य है। श्री मोरार जी देसाई के शब्दो मे— अपने दृष्टिकोण म एकदम आधुनिक और धर्म की परम्परागत रूढ़िवादिता से सर्वथा पराङमुख यह व्यक्ति देश की पुरातनवादी और रूढ़िवादी जनता म भी उतना ही लोकप्रिय रहा जितना कि विदेशो के बुद्धिजीवियों में। उनके देश प्रेम में अत्यन्त बौद्धिकता तो थी ही लेकिन इससे अधिक भावुकता थी। यही कारण है कि उन्होंने वसीयत मे अपनी भस्मी को भी देश की मिटटी में बिखेरने और प्रयाग के सगम मे प्रवाहित करने को

लिखा।"[1] इसी वैलक्षण्य के कारण वे लोकनायक के दुर्लभ अभिधान से अलंकृत हुए। हमारी इतिहास परम्परा में गौतम बुद्ध और गोस्वामी तुलसीदास को लोकनायकत्व प्रदान किया गया है, किन्तु कार्य-क्षेत्र की व्यापकता, लोकधर्मी आस्थाओं के संरक्षण, लोक-व्यवहार पद्धतियों के संस्कार लोक विश्वासों के परिशोधन लोक चिन्तन के अनुदार आदर्शों के परिष्कार तथा लोक जीवन के बहुमुखी विकास की दृष्टि से नेहरू जी का अनुदान कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। स्वाधीन भारत के विकासकामी जनजीवन को रूढ़िवादिता, अन्ध विश्वास, सम्प्रदायिक-संकीर्णता, जर्जरित-परम्परानुमोदन सामाजिक विषमता और प्रतिगामी प्रतिक्रियावादिता के दुर्निवार अन्तर्वाह्य संघर्ष से निकाल कर सर्वोन्मुखी प्रगतिशीलता का पाथेय प्रदान करने में पंडित जवाहरलाल नेहरू की अविस्मरणीय भूमिका है।

विश्व के पराधीन राष्ट्रों के मुक्ति आंदोलनों में भी नेहरू जी का उल्लेखनीय अंशदान रहा है। श्री आरिगपूडि के शब्दों में — सत्रह वर्षों के स्वतन्त्र अस्तित्व में यदि भारत कितने ही और देशों की स्वतन्त्रता प्राप्ति का साधन बना तो सचमुच इसका श्रेय श्री नेहरू को है—उनके देशभक्तिपूर्ण अन्तरराष्ट्रीय दृष्टिकोण को है।[2] इसी प्रकार के विचार प्रगट करते हुए डा० जाकिर हुसैन ने लिखा है कि— भारत के प्रधानमन्त्री के रूप में उन्होंने भारत को जिस तरह सँवारा, उसका नव निर्माण करके उसे जो उज्ज्वल रूप दिया उससे सम्पूर्ण विश्व के अर्ध विकसित और अविकसित देशों को एक नई चेतना मिली। वास्तव में विश्व नागरिकता की भावना तथा सह अस्तित्व के जन्मदाता होने के नाते वे केवल भारत के ही नहीं वरन् समस्त विश्व की विभूति थे।[3] पंचशील के सिद्धान्तों पर आधृत कूटनीतिक सम्बन्धों में तटस्थ वदेशिक नीतियों के समर्थन रंगभेद, राजनीतिक गुटवाद (Power Block Politics) शक्ति सतुलन सैनिक तानाशाही तथा विध्वंसक परमाणु शक्ति प्रसार के विरोध द्वारा नेहरू जी ने अन्तर्राष्ट्रीय जीवन में एक दूरदर्शी नेता के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त की। निष्कपट व्यक्तित्व और कृतित्व के इस गुणात्मक उत्कर्ष के कारण ही वे मानवों में मानवेन्द्र कहलाये। मानवेन्द्र महाकाव्य का प्रणयन निश्चयत श्लाघनीय रचनाधर्मी प्रयास है क्योंकि इस काव्य

[1] मानवेन्द्र—साधुवाद पृ० ६ (प्रथम संस्करण १९६५)

[2] साप्ताहिक हिन्दुस्तान—नेहरू स्मृति अंक, ३० मई १९६५ पृ० ७

[3] मानवेन्द्र—भूमिका, प० १ व २ से उद्धृत

के माध्यम से एक महामानव के महान व्यक्तित्व और गरिमापूर्ण कृतित्व को कालजयी चिरंतनत्व प्राप्त हुआ है।

श्री रघुवीरशरणमित्र एक समर्थ रचनाकार हैं। उन्होंने साहित्य की विभिन्न विधाओं में विपुल परिमाण में सृजन करके अपनी मृत्युंजयी रचनाधर्मिता की आयाम विस्तृति का प्रभूत परिचय दिया है।

प्रबन्धकाव्यकार के रूप में 'जननायक' और 'मानवेन्द्र' श्री मित्र की कीर्ति के अक्षय स्रोत हैं। इन दोनों प्रबन्ध काव्यों का प्रणयन भारत की दो महान विभूतियों की चरित्र गरिमा को साकार करने के लिए हुआ है। 'जननायक' के समान 'मानवेन्द्र' भी महती सृजन प्रेरणा का परिणाम है। कवि ने पंडित जवाहरलाल नेहरू को स्थितप्रज्ञ प्रबुद्ध मानव मानते हुए कहा है कि—"कभी-कभी ही धरती पर कोई ऐसा आलोक पुरुष आता है जिससे दुनियाँ बदल जाती है। जन मानस श्री जवाहरलाल नेहरू इस युग के अग्निज क्रांतिकारी, कुशल राजनीतिज्ञ, विचित्र दार्शनिक और अद्भुत शान्तिदूत हुए हैं। वे न जाने कितने युगों के सत्यों के तत्वों को मथ मथ कर हमें दे गये। वे एक महामानव ही नहीं मानवेन्द्र थे। व तप से परे थे, सिद्धियों से आगे थे और

---

* श्री रघुवीरशरणमित्र प्रणीत साहित्य—

(क) काव्य—जननायक, भूमिजा, ज्योतिपुरुष, जलते तारे प्रतिध्वनि, गीतिगीत भूमि के भगवान, बन्दी, प्रेरणा, फांसी, परतन्त्र।

(ख) उपन्यास—आग और पानी, ढाल तलवार, उजला कफन, राख की दुल्हन ओम के आँसू, दिन रोया रात हँसी, प्यास और शोले, तप का तेज रूप के जाले, रंगीन शीशे धुँधले चित्र, पहली हार सोने की राख काँपती आवाज, बलिदान।

(ग) नाटक—राष्ट्रध्वज, भारतमाता, धरती माता।

(घ) बाल किशोर साहित्य—अमर रहे यह देश सुनो बच्चो, कदम मिलाते बढ़े चलो, कहानियाँ अमर हैं भारत गौरव आओ खेलें आओ गायें, प्यारा देश हमारा देश भारत के लाल, महापुरुष परीक्षा बच्चो का देश वीर बालक बालवीर कृष्ण हरिजन झरने और फूल, कर भला हो भला, बुद्धि के हीरे, मेल के मोती बौनी बाबू।

(ङ) विविध—हमारे सन्त, कला की कलम आवश्यकता और लेख।

कीर्तियो के केतु थे। उनके निष्काम कर्म युग युग के अमृत फल हैं। *जवाहरलाल जी व्यक्ति न रह कर समष्टि हो चुके थे।* उनका श्वास श्वास विश्वकल्याण के लिए परिश्रमा करता रहा। उनकी रचनात्मक क्रान्तियाँ समस्त युगो की उज्ज्वल परम्पराओ सी पुनीत हैं।' इसी क्रम म मित्र जी आगे कहते हैं कि—''मानवेन्द्र' महाकाव्य मैंने तपस्वी जवाहर के जीवन-तत्वा की प्रेरणा से लिखा है। इसकी रचना म कुल मिलाकर ग्यारह वर्ष लगे हैं। इसम मैंने लोकनायक के जीवन-तत्वो के साथ युग चेतना की किरणें विकीर्ण की हैं शाश्वत सत्या का छन्दो म स्वर दिये हैं। मानवेन्द्र' मे मेरी अतीत के प्रति श्रद्धा वतमान के प्रति प्रसन्नता और भविष्य के प्रति मगल कामना है। इसकी रचना म मैं काव्य नायक की गति के साथ साथ चला हू मानव हृदय से आत्मसात कर सम्वेदना के गीत गाने की भावना रहा है युगो की वदिका पर कभी करोडा म कोई एक ऐसा धीरोदात्त युगपुरुष आता है जिस पुरुषो मे पुरुषोत्तम अथवा मानवो मे मानवेन्द्र कह सकते हैं। ऐसे महामानव प्रकृति म प्राकृत जन्म स भिन्न होते हैं। इस प्रकार के पुरुष पर ही कवि किसी महाकाव्य की रचना करने को उत्सुक होते हैं। मानवेन्द्र के व्यक्ति मे समष्टि के वे सभी गुण मुखरित हैं जिनसे सृष्टि का शिव होता है युगो को चेतना मिलती है सजन के दीप जगमगाते हैं।[४] 'मानवेन्द्र की प्रस्तावना के उद्धृत कवि मत य से स्पष्ट है कि श्री मित्र जी ने आलोच्य प्रबन्ध *काव्य मे नेहरू जी के महामानव रूप को विराट रचना फलक पर प्रस्तुत* किया है।

'मानवेन्द्र' महाकाव्य चार खण्डो म विभाजित है प्रत्येक खण्ड को पुन सर्गों म वर्गीकृत किया गया है। सर्गों का विषयानुरूप नामकरण भी किया गया है। प्रथम खण्ड म ६ द्वितीय सग म ११ तृतीय खण्ड म ६ और चतुर्थ खण्ड म ११ सग हैं। सग क्रमानुसार खण्डो का नामकरण इस प्रकार है—

(क) प्रथम खण्ड—सवभूतेपु बालारुण कमल सरोवर ज्ञान ज्योति, सिन्दूर सौरभ, चाह और राह परिधायक परिदाह और व्यथित छोह।

(ख) द्वितीय खण्ड—परित्राण पद्माग्नि ग्रामात्मा द्वन्द्व अश्रुदीप अग्निशिखा विरोधभरण रक्तस्नान कारातप आगमन और मरण थाह।

(ग) तृतीय खण्ड—सरकार सन्धि मन्थन शासन सूत्र अनुताप सघात प्रवरण सन्तापन आलान किरण और मुक्ति पूजा।

---

४ *मानवेन्द्र—कवि की प्रस्तावना,* पृ० ८ ८ से उद्धृत।

(घ) चतुर्थ खण्ड—मर्माचरण, जन मन, सृजन-सोपान, अन्तर्दाह, सूर्यास्त, भावलोक, गन्ध पवन मीमांसा, मृत्यु, अमृत्यु परिवर्तन और शेष पुरुष।

उपर्युक्त सर्ग क्रम में पूर्वापर अन्विति आद्यान्त परिलक्षित होती है। घटनाओं के संयोजन और प्रस्तुतीकरण में नाटकीयता और काव्यात्मक सरसता भी सर्वत्र प्रदर्शित हुई है। 'मानवेन्द्र' से पूर्व मिश्र जी द्वारा रचित 'जन नायक' महाकाव्य के कथा विधान के सम्बन्ध में नीरसता, आत्मकथात्मक पुनरावृत्ति और इतिवृत्तात्मकता के जो आक्षेप किए गए थे उनका कवि ने आलोच्य काव्य में यथासम्भव परिष्कार कर लिया है। 'मानवेन्द्र' के वस्तु नियोजन में कवि ने न केवल नेहरू जी की जीवनी, राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास और तत्कालीन परिस्थितियों के परिज्ञान का परिचय दिया है अपितु नेहरू की भावसंदीप्त कीर्तिकथा से तादात्म्य और संघर्षशील युग चेतना से सम्वेदन सम्पर्क का भी प्रमाण प्रस्तुत किया है। स्वाधीनता आन्दोलन-काल के युग सत्य और यथार्थ को कवि ने चिरंतन जीवन मूल्यों की संस्थापना के एक महाप्रयास के रूप में अंकित किया है। कल्पना और वास्तविकता तथा आदर्श और यथार्थ के समन्वय का पक्षधर होने के कारण कथानक में कवि ने जनचेतना के संवेदन सत्य और भावजगत के आदर्शों को मूर्त रूप दिया है। अपने समन्वयमूलक सर्जनात्मक दृष्टिकोण का प्रस्तावना-वक्तव्य में स्पष्ट करते हुए कवि ने कहा है कि—"काव्य युगों के इतिहास के एक सूक्ष्म दर्पण की तरह होता है जिसमें वर्तमान अतीत के साथ भविष्य के रूप का निहारता है। काव्य को स्थूल जगत का सूक्ष्म दर्शन भी कह सकते हैं। रविमण्डल की तरह वाणी का तेज अन्तर्जगत के जलजातों को खिलाता है। तपते हुए सूर्य की तरह काव्य के प्रकाश में मानव मन के कमल विकसित होते हैं अन्तश्चेतना का प्रसार होता है। यथार्थ को मैं काव्य का सत्य मानता हूँ और आदर्शों को छोड़ना नहीं चाहता। कवि की कल्पनाएँ शून्य से सम्बन्ध जोड़ती फिरती हैं किन्तु क्या कोई भी कल्पना वास्तविकता से पृथक होता है। कल्पना वही की जा सकती है जो सम्भव है। किसी विशेष अवस्था से न तो समस्त सत्यों को असत्य कह सकते हैं और न हम भगुर भौतिक चमत्कारों में अमरता का सत्य मान सकते हैं। जीवन के उज्ज्वल पक्ष स्तुत्य रहे हैं और रहेंगे।"[८] और यह प्रसन्नता का विषय है कि लोकनायक नेहरू का कीर्ति कथा की संरचना में कवि ने अपने दृष्टिकोण को मूर्तिमन्त किया है।

---

[८] मानवेन्द्र—कवि की प्रस्तावना, पृ० ८

'सवमूतेषु' शीषक प्रथम सग का समारम्भ यद्यपि शिव, गणनायक, सरस्वती धरित्री आदि की वदना स होता है कि-तु 'मगलाचरण' का वास्तविक स्वरूप भारत देश' के सारस्वत अभिवदन मे द्रष्ट-य है। कवि के अनुसार धरा पर अनेक देश हैं कि-तु अवुजाक्ष भारत ही अणुविभु की अभिलाषा है। त्याग, तपस्या और धम-कम की वाणी भारत वीणा ने ही मुखरित की है। यह स-तो और वीरो का देश है। परपीडा को प्राणा मे सजोये, सत्य का सबल लिए, प्रेम का पारावार भारत जगन्धार है। यही आदश भारत के चिर-तन अस्तित्व के मानक बि-दु हैं। कवि के श-दो म—

'भारत का शोभा सुग ध से आभावान धरा है।
लाख मरण ने किए आक्रमण, भारत नही मरा है ॥
स-तों का स देश देश यह सबके लिए सहारा।
मिटा नही है नही मिटेगा, भारत अमर हमारा ॥
ऋषियो का रावेश देश यह, शीतल शा-त कगारा।
स-तों का स-देश देश यह सबके लिए सहारा ॥'

(सव भूतषु सग १ पृ० १६ १७)

स्वदेश वदना के साथ साथ कवि ने धरती मा की अचना की है। का य के कथाक्रम का समारम्भ इसी सग मे का-यनायक श्री नेहरू के पूवजो की ज-मभूमि काश्मीर की सौदय सुषमा के वणन से होता है। कवि ने काश्मीर को धरती का स्वग, रूप दपण साकार रति समृति का यौवन केसर की क्यारियो से सुरभित अमरनाथ का पावन स्थल आदि कहकर भूरि भूरि प्रशसा की है। काश्मीर की प्राकृतिक सुषमा का वणन करत हुए कवि न कहा है कि—

'धरती पर काश्मीर किसी ने रचा रूप दपण पर।
मानो नप की सिद्धि हस पडी तन मन धन अपण कर ॥
शाल श्रेणिया, भरनो का जल वर्फीले सु दर पथ।
किरणा के आभरण प्रकृति की सजी नासिका म नथ ॥
× × ×
सबसे प्यारा सबसे-न्यारा शाश्वत स्वण लकीर।
गर्वोनत कश्मीर हमारा गर्वोन्नत कश्मीर ॥

(वही सग १ पृ० २२ २३)

इसी प्रदेश का 'राजकौल' नामक यात्री कभी राजा फुरुखसियर के समय दिल्ली मे आकर ठहरा जिसे बादशाह ने कुछ जागीर देकर नहर किनारे बसा दिया। इसी कौलवश मे गंगाधर हुए। इनके ही पुत्र मोतीलाल नेहरू और पौत्र जवाहरलाल हुए। गगा यमुना और सरस्वती के संगम पर स्थित प्रयाग म कश्मीरी-वश वृक्ष का पुष्प जवाहर जन्मा। कवि ने जवाहरलाल के जन्म की समता अवतार से की है—

> "कश्मीरी सौंदय खिला था प्रिय प्रयाग के तट पर।
> मगलमयी घड़ी आई थी दीप जलाने घर घर॥
> एक जन्म अवतार हो गया, मन मन का अधिनायक॥
> एक जन्म ससार बन गया, युग युग उसके गायक॥
> धन्य धन्य सन अट्ठारह सौ नवासी पूण निवासी।
> धन्य नवम्बर चौदह जिस दिन-आया अमर प्रवासी॥"
>
> (वही, सग १, पृ० २४)

श्री जवाहरलाल नेहरू के जन्म को कवि ने एक असाधारण घटना के रूप मे स्वीकारा है, जवाहरलाल के नर व्यक्तित्व मे नारायण की प्रतिछवि आभासित हुई थी—

> 'कभी कभी इस धरती पर होता जन्म अनोखा।
> कभी कभी होता नर तन मे-नारायण का धोखा॥
> कभी कभी ही दिव्य ज्योति की रश्मि यहाँ आती है।
> कभी कभी ही उस अनंत की आभा मुस्काती है॥
>
> × × ×
>
> कभी कभी ही तो सागर मे—कामधेनु पाते हैं।
> कभी कभी ही तो पुण्यों से—निराकार आते हैं॥
> धन्य धन्य वह पूजा जिसने, निगुण के गुण पाये।
> मोती मिले, जवाहर आये, धरती के धन आये॥'
>
> (वही, सग १, पृ० २५)

नेहरू के जन्मोत्सव पर प्रकृति भी प्रमुदित थी। प्रकृति का उल्लास पक्षियो के सुमधुर कलरव, रश्मियो की थिरकन, उर्मियो की कलकल, पत्तो की पी पी और बिजली की चमक मे प्रगट था। मोतीलाल और स्वरूप रानी

स्वय को अहोभाग्य मान रहे थे। पिता ने प्रेम से पुत्र को 'नन्हे' कहा और वही नाम परिवार में प्रचलित हो गया।

'बालारुण' शीर्षक द्वितीय सर्ग में कवि ने नेहरू जी के बाल जीवन की वात्सल्य भाव भीनी छवियाँ अंकित की हैं। नटखट नन्हे की केलि क्रीडाएं जहाँ पिता को प्रमुदित करती थी वहीं उनके असंगत कृत्यों पर वे उन्हें प्रताडित भी करते थे। बालक नेहरू को प्रारम्भ से ही पिता की प्रेरणाएँ प्राप्त थी। मोतीलाल नेहरू पुत्र को राम, भरत, दधीचि, ध्रुव और हरिश्चन्द्र के समान यशस्वी बनने के लिए प्रेरित करते थे। मोतीलाल की प्रेरणा के स्वर थे—

चन्दा से शीतलता ले लो, सूरज से लो ज्वाला।
नाम जवाहरलाल तुम्हारा, जग का दो उजियाला॥
बन जाओ ऐसे बन जाओ याद करे यह धरती।
देखो धरती सब कुछ सहकर सबकी पीडा हरती॥

× × ×

रामचन्द्र से वीर बनो तुम, बनो भरत से राजा।
दानी हो दधीचि सा तन मन जग ध्रुवलोक बना जा॥
हरिश्चन्द्र को कभी न भूलो दया धर्म मत छोडो।
मोडो मुँह अनीति से मोडो सब से नाता जोडो॥

(बालारुण द्वितीय सर्ग, पृ० ३२)

बालक नन्हें मेधावी और जिज्ञासु था। उसके मन में सूर्य धरा और भारत को जानने की जिज्ञासा थी। ज्यो ज्यो वह इतिहास के गौरव ग्रथो का अध्ययन करता उसके मन में कुतूहल बढता जाता था। अपने चतुर्दिक परिवेश के प्रति भी सजगता का भाव बालक जवाहर के मन में था। सामाजिक जीवन की विषमताएँ उन्हें यह सोचने को विवश करती थी कि हसी रुदन तपस्या और भोग तथा झोपडियाँ और गगनचुम्बी भवनो का एक साथ अस्तित्व किस वैषम्य के कारण है। पराधीन भारत का मूल्यहीन जीवन और सकटग्रस्त निम्नवर्ग की दयनीय दशा नन्हें को बहुत कुछ सोचने को विवश करते थे। गदर का इतिहास शहीदो की कथाएँ और अतीत का वैभव एक अन्य ही प्रकार की प्रतिक्रिया को नेहरू के मन में जन्म देते थे। माता के सद्भावनापूर्ण प्रेरक उपदेश बालक नेहरू के मानस में चिन्तन को परिपक्व बना रहे थे। माता की प्रेरणा थी—

'मा ने कहा, राम का जीवन काम धरा के आया।
माँ ने कहा, नान गीता का कृष्ण चन्द्र से पाया॥
भारत के आदर्श पुराने माँ ने खूब बखाने।
मानो सुत म राम कृष्ण को जननी लगी जगाने॥'
(वही, द्वितीय सर्ग पृ० ४४)

और माँ की प्रेरणा सचमुच रंग लाई। जवाहर धरा के ही काम आया। कर्म के प्रति निष्ठा भाव जगाने मे माता पिता के अतिरिक्त ऐतिहासिक महत्व के ग्रन्थों का अनुशीलन भी काम आया। नेहरू के मन मे यह धारणा घर कर गई कि—

'कर्म फल आनन्द उज्ज्वल अमित सुख।
वे नपुंसक, जो न करते कर्म हैं।
वे निरर्थक भोग जिनके धर्म हैं॥
भोग उसका धर्म जो है कर्म रत।
दे रहे हैं ज्योति कण रवि शशि सतत॥
(वही, द्वितीय सर्ग, पृ० ४६)

अध्ययन-काल म ही नेहरू की चिन्तन भूमा पर वन्दिनी भारत माँ की आकृति अंकित हो गई थी। झाँसी की रानी के समाख्यान ने उन्ह यह सोचने को विवश किया कि—

देश हमारा दास रहे क्यों कोटि कोटि हम जन हैं।
फूलों पर शूलों का पहरा, बन्धन में उपवन हैं॥
बन्दी भारत की मिट्टी है बन्दी हैं दीवारें।
बन्दी ताजमहल मन्दिर हैं, बन्दी हैं मीनारें॥
बन्दी गंगा जमुना का जल, बन्दी गगन हमारा।
बन्दी हवा हमारे घर की बन्दी भारत प्यारा॥
× × ×
लगा सोचने, बालक ही थी—झाँसी वाली रानी।
उसम कैसा पानी था जो—खूब लड़ी मर्दानी॥
(कमल सरोवर सर्ग ३, पृ० ५१)

बालक जवाहर के मन म राष्ट्र के प्रति ललक निरन्तर बढ़ने लगी। मिश्र जी ने नेहरू की तुलना विकासमान उत्पल से दी है। ऐसा उत्पल जो युगों के पश्चात धरा सरोवर में उत्पन्न होता है। वे शिव के समान जग का शिव करने के लिए प्रदाह दीप लेकर सन्नद्ध थे—

'किन्तु युगों के बाद ताल में—खिलता ऐसा उत्पल।
जग को ज्योतित कर रहा है—जिसका जीवन उज्ज्वल।।
बहुत युगों के बाद खिला है—न हो न हो कमल मनोहर।
जिसके लिए सूर्य तपता था, देता अर्घ्य सरोवर।।"

(वही सर्ग ३, पृ० ६०)

उच्च अध्ययन के लिए नेहरू जी लन्दन गए। श्री मोतीलाल नेहरू की विदेशों में पूर्ण प्रतिष्ठा थी और धन की कमी नहीं थी, अतः जवाहर को उच्च शिक्षा प्राप्ति के सभी साधन और सुविधाएँ विदेश में प्राप्य थीं। विद्योपार्जन के पश्चात् वे स्वदेश लौट कर वकालत करने लग गए। किन्तु अन्तश्चेतना की आवाज उन्हें सदैव सजग किए रहती थी कि पैसा ही सब कुछ नहीं है। जीवन का लक्ष्य धन पाना और खोना नहीं अपितु स्वयं को दुर्लभ धन के रूप में परिवर्तित करना है अर्थात् परहित करना और राष्ट्र को बन्धन मुक्त करना है—

'आत्मा का उत्थान यही क्या—मैं रोऊँ धन पाऊँ।
ऐसा कर्म नहीं क्या कोई—मैं ही धन बन जाऊँ।।
× × ×
सारहीन नीरस लगता है—पराधीन का हँसना।
मुझ को बहुत दुःख देता है—जग जालों में फँसना।।'

(भाल ज्योति—सर्ग ४, पृ० ८१)

सिन्दूर सौरभ शीर्षक पंचम सर्ग में कवि ने नेहरू और कमला के परिणय का सरस वर्णन किया है। दुल्हन के रूप में सजी कमला को माध्यम बनाकर कवि ने नारी के चिरन्तन गौरव का इस प्रकार व्यक्त किया है—

'यह संसृति की मूलाकृति है यही मूर्ति प्राणों की।
यही कीर्ति मानव महान की, यही पूर्ति प्राणों की।।
यही अमृत की धार, इसी में—सुख की सारी निधियाँ।
इसके श्वासों में अंकित हैं—संसृति की गतिविधियाँ।।
× × ×
ममतामयी यही कल्याणी यह तुलसी की वाणी।
इसके प्राणों से ज्योतित है—धरती का हर प्राणी।।
यह स्वर्गों की सिद्धि बुद्धि की, शक्ति इसी में हारी।
यही भाल की गौरव गरिमा यही शक्ति है प्यारी।।

(सिन्दूर सौरभ, सर्ग ५, पृ० ६४)

कमला सचमुच भारतीय जीवनादर्शों से ओत प्रोत आदर्श नारी थी। 'चाह और राह' शीर्षक षष्ठ सर्ग में कवि ने जवाहर और कमला के काश्मीर भ्रमण का वर्णन किया है। 'परिधायक' शीर्षक सप्तम सर्ग में मिश्र जी ने प्रत्याख्यान शैली के द्वारा अँग्रेजों के भारत पर छद्मपूर्ण आधिपत्य का निरूपण और परतन्त्र भारत की दयनीय-दशा का चित्रण किया है। कवि का मत है कि अँग्रेज व्यापारी बन कर आये थे किन्तु शाहों की गफलत के कारण यहाँ के शासक बन बठे। उसके पश्चात् सन् १८५७ के विप्लव में उन्हें निकालने के लिए देशव्यापी महाप्रयास हुआ, जिसमें झाँसी की रानी, तांतिया टोपे, जफर प्रभृति देशभक्तों ने प्राणपन से उत्सर्ग भी किया, किन्तु मीर जाफिर जैसे गद्दारों और देशद्रोहियों ने देश को साम्राज्यवादियों के शोषक चंगुल में फँसा दिया—

"देश द्रोहियों ने बिक बिक कर भारत को बन्दी बनवाया।
पैरों में बेड़ियाँ गले में—तौक विदेशी ने पहनाया॥
× × ×
शोषण करने लगे देश का—सामन्ती परदेशी।
झोपड़ियों पर महल बनाकर हँसने थे प्रतिवेशी॥
× × ×
आभूषण उतरे माता के भारत माता कर्ज हो गई।
गौरांगी के मधुर राग में, जन जन की तकदीर सो गई॥"

(परिधायक सर्ग ७, पृ० १२८ १३१)

बन्दी देश के प्रदग्ध मानस को अंग्रेजी प्रशासकों ने सब प्रकार की अनीतियाँ अपना कर शोषण किया। भेदभाव की कूटनीति, दमनचक्र, मारकाट, साम्प्रदायिक एवं जातीय फूट को उन्होंने अस्त्रों के रूप में अपनाया। कवि ने अँग्रेज प्रशासकों की दमन और शोषण की नीतियों को इन शब्दों में व्यजित किया है—

'दमन कि जिसमें दया न बिल्कुल, जैसे वधशाला में।
दमन कि जैसे रक्त तृषित को—होश न हो हाला में॥
× × ×
जो भी गाये गीत क्रान्ति का उसकी वाणी काटो।
जो स्वतन्त्रता लेने निकले, उसका शोणित चाटो॥
× × ×

बन्दी जिसे बनाओ उसके—मन को बन्दी कर लो।
जिसका शोषण करना चाहो—उसकी संस्कृति हर लो ॥
× × ×
दास भारत दीन भारत कर दिया।
हर तरह से हीन भारत कर दिया ॥"

(परिदाह, सर्ग ८, पृ० १३५ १३६)

देश मे परम्परित धर्म की विडम्बना से पीडित पददलित और शोषित वर्ग को अंग्रेजो ने गले से लगा लिया। जिन्हें 'अछूत' कह कर तिरस्कृत किया जाता था उन्हें गिरजाघरो मे सम्मान मिला। भारत की जन्म कर्म आधत वर्ण व्यवस्था की नीव हिल गई। हमारे जातीय, सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन की एकता को विदेशी शासको ने सर्वथा छिन्न भिन्न कर दिया। उनके इस कुकृत्य पर पश्चातापपूर्ण स्वर मे कवि कहता है कि—

"हमने अपनो को दुतकारा उसने गले लगाया।
उसने कूडे के फूलो से—अपना बाग सजाया ॥
× × ×
मिटती गई एकता अपनी अपनी ही भूलो से।
हमने करी घृणा उपवन मे अपने ही फूलो से ॥
छिन्न भिन्न एकता हमारी, कर दी धीरे धीरे।
सीता सी सम्पदा एकता हर ली धीरे धीरे ॥

(वही सर्ग ८ पृ० १५० १५१)

और अन्तत परिणाम यह हुआ कि—

"घेरा डाल दिया घर मे हथकडिया पहनाइ।
फूलो के पर्दो के पीछे फुलझडियाँ सुलगाइ ॥
शोषण करने लगे देश का रक्तस्नान करा कर।
सोने की चिडिया को फूका, छल से हम हराकर ॥'

(वही सर्ग ८, पृ० १५३)

इस प्रकार व्यापारी बनकर आए फिरगी भारत के शासक बन गये। देशवासियों के तन-मन बन्दी हो गए। वे अपने ही घर मे पराए से हो गए। पराधीन भारतवासियो की विवशता का शब्द चित्र द्रष्टव्य है—

"शासन करने लगा फिरंगी, फूलों में फणि लाया।
नींद किसी को आई मद में, शैया पर अहि आया ॥
तन बन्दी थे, मन बन्दी थे, सब थे आज्ञाकारी।
अपना घर हो गया पराया, रोती थी लाचारी ॥"
(व्यथित छाँह, सर्ग ६, पृ० १५८)

व्यथित भारत की दशा देखकर जवाहरलाल व्यथित थे। उन्हें चैन से नींद भी न आती थी। स्वप्न में भी उन्हें भारत की स्वाधीनता का ही बोध होता था। कवि के शब्दों में अशोक के शिलालेख, चन्द्रगुप्त की ध्वजा, चाणक्य की शिखा, ललनाओं के पुछे हुए सिन्दूर, जौहर की ज्वाला, हल्दी घाटी की आत्म पुकार, राणा की ललकार आदि ऐतिहासिक वीरता के सन्दर्भ जवाहर की निद्रा भग्न कर रहे थे। भारत माता का करुण क्रन्दन सुनकर तरुण जवाहर की सुप्त जवानी जाग उठी। जवाहर ने माँ के आँसू पोंछने का संकल्प लिया। जवाहर की व्यग्रता बढ़ती गई। उन्होंने कमला से स्पष्ट शब्दों में कहा—

पारतन्त्र्य परिदाह आह यह, मेरा भारत जलता।
मेरे तरुण अरुण से मन में—माँ का आँसू ढलता॥
पराधीनता में रंगरलियाँ क्रीड़ा सहन न होती।
मुझे दुलार पुकार रही है—माता रोती रोती॥
× × ×
मुझको नींद न आती कमला, मेरा धीरज छूटा।
मुझे क्रोध आता है उस पर, जिसने भारत लूटा॥"
(वही, सर्ग ६, पृ० १६४ १६५)

कमला स्वयं उच्चादर्शों वाली महिला थी। वह प्रिय के पथ का अवरोध न बनी। उसने सहर्ष पति को स्वाधीनता समर में जूझने को सम्प्रेरित किया और कहा कि—

कमला बन्धन नहीं राह में, कमला सिद्धि तुम्हारी।
बिना ताज के बादशाह से बोली राजकुमारी॥
जाओ प्रियतम! माँ के बन्धन काटो।
मुक्त करो आत्मा भंगुर बन्धन से।
तिलक करो माँ का स्वतन्त्र चन्दन से॥

मैं छाया की तरह धूप सह लूंगी।
दूर दूर रह साथ साथ रह लूंगी ॥
काटो प्रिय ! पतग सा दुश्मन काटो।
बाँटो मेरा धन जन जन को बाटो ॥"

(वही, सर्ग ६, पृ० १६८)

कमला की उत्सगमयी वाणी से जवाहर रसप्लावित हो गए। उन्होंने द्विगुणित उत्साह से मातृभूमि को बन्धन मुक्त करने का दृढ सकल्प किया। किन्तु बन्दी देशात्मा को मुक्त कराने का उपाय क्या है ? तभी उन्हें पथ प्रदर्शक के रूप में तपस्वी महात्मा गाधी का सान्निध्य प्राप्त हुआ। महात्मा गाधी के व्यक्तित्व की गरिमा का बखान करते हुए कवि ने लिखा है कि वे समुद्र की गहराई, सूय का प्रकाश पृथ्वी की सहिष्णुता, हिमगिरि का बल, परहित की तपश्चर्या दया धम का अभ्यास और अमर विजय की अदम्य आकाक्षा लेकर बिना शस्त्र के वीरव्रती सेनानी की भाति स्वाधीनता के पाथेय पर अग्रसर थे। कवि ने उन्हें भारती की आरती कहकर सम्बोधित किया है—

'ये मनीषी भारती की आरती हैं।
साथ इनके साधना सी 'वा सती हैं ॥
पास इनके सिद्धियाँ निधियाँ खडी हैं।
कीर्ति की किरणें यहाँ बिखरी पडी हैं ॥

सूय का तन, सोम का मन।
मोम का तन, होम का मन ॥"

(परित्राण सग १०, पृ० १७७)

ऐसे महान मनस्वी और कमठ देशसेवी से जब देश सेवा की दीक्षा (प्रेरणा) लेने जवाहर पहुँचे तो उन्होंने प्रश्नो की झडी लगा दी। उन्होंने कहा कि स्वतन्त्रता बलिदान चाहती है। मर मिटने का अभिमान और पर हित हेतु शिव के समान गरलपान का साहस चाहती है। स्वतन्त्रता के लिए तुम्हे तन मन धन सवस्व समपण करना होगा। फूलो का पथ त्याग शूलो पर चलना होगा। भारत के जन-जन से आत्मिक सम्बन्ध स्थापित कर देश मुक्ति के अभियान म जुटना होगा। बापू ने उदबोधन के स्वर म युवक जवाहर के अन्तश्चेतन को आदोलित करते हुए कहा—

"देश मुक्ति के लिए चाहिए—मोर्गो से मुक्तात्मा।
देश यज्ञ के लिए चाहिए—जन जन से युक्तात्मा॥
क्या सबके दुखो को अपने—दुख बना पाओगे ?
क्या आवाज लगाकर—सोया देश जगा पाओगे ?
राजमहल मे रहने वाले ! कारा मे रह लेगा ?
स्वतन्त्रता के लिये यन्त्रणा, हँस हँस कर सह लेगा ?

× × ×

बोलो युवक ! अग्नि पीकर क्या—ज्योति हृदय की दोगे ?
क्या धरती के लिए रक्त तज-गरल पान कर लोगे ?
क्रान्ति दूत बन नर मानव को, छाया दे पाओगे ?
शांति दूत बन कर जन जन की, काया बन जाओगे ?

(वही, सग १०, पृ० १८२)

युवक जवाहर ने संकल्प किया कि स्वतन्त्रता यज्ञ के लिए सभी प्रकार की आहुतियां दूँगा। अग्नि-पूजा को शोणित की धार श्रुवा के रूप में केम-रतहल्न और स्वर मे प्रगति मन्त्र लेकर जन जन के कल्याण हेतु धरा का अर्चन करूँगा। बापू ने प्रसन्न होकर कहा—

'कहा साधु ने सुनो जवाहर ! तुम नर तुम नारायण।"

(वही, सग १०, पृ० १८४)

बापू ने वीर जवाहर को निष्काम कर्म की महत्ता का गीता के कर्म योग की अवधारणा के परिप्रेक्ष्य में महत्व बताया। जवाहर ने समद्ध नमन् कर बापू को गुरु रूप मे वरण कर लिया—

'मैंने तो गुरु मान लिया है तुम ही राष्ट्रपिता हो।
तुम में प्रभु की ज्योति दीखती तुम ही श्वेत सिता हो॥
तन मन धन जीवन दे दूँगा, बापू की आज्ञा पर।
सागर मे नौका खे दूँगा, बापू की आज्ञा पर॥
मान योग से बुद्धि योग से, तुम धरती की कल हो।
हिमगिरि से गरिमाशाली हो, गगा से निर्मल हो॥

× × ×

मुझको बढने का पथ दे दें, बढते चरण तुम्हारे।
रण मे लडने का पथ दे दें, बढ़ते चरण तुम्हारे॥

(वही, सग १०, पृ० १८६)

बापू और जवाहर के मिलाप को कवि ने कृष्णार्जुन के मिलन की संज्ञा दी है। बापू ने कृष्ण की भाँति निष्काम कर्मयोग रूपी देश सेवा का प्रवर संदेश युवा जवाहर को दिया। बापू ने शुभाशीष देते हुए कहा—

"बापू बोले—ओ सेनानी ! निश्चित विजय तुम्हारी।
हिंसा बदल अहिंसा होगी, मति है धार दुधारी।।
स्वतन्त्रता हित रण करने को—जनता की सेना है।
चलता हुआ यान सागर के—हम जल में खेना है।।
गीत जीत के गा सकते हो, तुम जनता के बल से।
मन के विष को धो सकते हो नयन नयन के जल से।।
हे भारत के रूप ! सभी की—श्रद्धा से जय पाओ।
जय के लिए सभी के मन से एक शक्ति बन जाओ।।"

(वही सर्ग १०, पृ० १८६)

देश के स्वाधीनता आन्दोलन में वीर जवाहर की भाँति अन्य असंख्य देश भक्त भी योगदान कर रहे थे। प्रमुख स्वाधीनता सेनानियों में कवि ने सुभाष पटेल, राजेन्द्रप्रसाद मौलाना आजाद, जिन्ना, लाजपतराय मालवीय जी प्रभृति नेताओं के व्यक्तित्व और महनीय कृतित्व का श्रद्धापूर्वक पुण्य स्मरण 'पद्मादित्य' शीर्षक एकादश सर्ग में किया है। ये सभी देशभक्त पराधीन मातृभूमि को बन्धन मुक्त करने के लिए कृत संकल्प थे। कांग्रेस अधिवेशनों के अवसर पर इनकी विचारधारा की अनुगूंज सुनायी देती थी। सुभाषचन्द्र बोस क्रान्तिमन्त चिन्तनधारा के पक्षधर थे। वे अपनी ओजस्वी वक्तृताओं द्वारा क्रान्तिकारी ढंग से देश को स्वतन्त्र कराने की बात कहते थे। उनका अभिमत था—शस्त्र उठाकर प्रहार करने और रक्त दान से ही धरित्री मुक्त हो सकती है। 'वीरभोग्या वसुन्धरा' के सिद्धान्त का समर्थन करते हुए कहते थे—

वीर भोगते हैं धरती को शस्त्रों के वारों से।
प्यास बुझा करती देवी की, प्यासी तलवारों से।।
शस्त्र उठा कर रक्त दान लो स्वतन्त्रता पाओगे।
स्वाभिमान से रक्त दान से नयी सुबह लाओगे।।'

सुभाषचन्द्र बोस की वक्तृता उनके अप्रतिम शौर्य की आग्नेय हुँकृति के समान प्रतीत होती थी। वे रक्तदान और बलिदान को ही सर्वाधिक महत्व देते थे। उन्हीं के शब्दों में—

"रक्त जिसका दीप में जलता—
वह उषा की माँग में सिन्दूर भरता है।
रक्त में ही गीत हैं जय के,
गाहना अधिकार के खण्डे धरा का भार रखता है।
देश रक्षा को भगीरथ रक्तधारा दो॥

× × ×

भीम बन कर खून पी लो दुश्मनों का,
जय तभी मिलती कि जब कुछ रक्त बहता।
रक्त से ही तो विजय के दीप जलते हैं,
रक्त जिनमें है वही तम चीर चलते हैं।
रक्त लाली है उजाली है, दिवाली है॥"

(पद्मादित्य, सर्ग ११, पृ० १६८-१६९)

नेहरू जी भी सुभाषचन्द्र बोस के समर्थक बने। वे भी उन्हीं के स्वर में बोल उठे—

"शस्त्र उठा कर परदेशी से, हम स्वतन्त्रता ले लें।
महासिन्धु में बड़वानल की नाव शक्ति से खे लें॥"

(वही, सर्ग ११, पृ० १६९)

किन्तु अहिंसा की प्रतिमूर्ति बापू ने सभी को शांति और अहिंसा के पाथेय पर अग्रसर होते हुए समर्पित होने का पाठ पढ़ाया। उन्होंने कहा कि सहन-शक्ति में अद्भुत क्षमता है, स्वतन्त्रता को बलिदानों के बल से उपार्जित करना है। बापू ने विश्वास की गति और संगठन की शक्ति पर बल दिया। नेहरू जी की क्षमता दूरदर्शिता और अपराजेय कमठ शक्ति को लक्ष्यीभूत कर बापू ने कांग्रेस नेतृत्व का दायित्व उन्हें सौंप दिया। वीर जवाहर के नेतृत्व में संगठन और स्वदेश प्रेम का महान् संदेश सर्वत्र प्रसारित हुआ। यह संदेश था—

"एक संगठन, एक ध्वजा हो, एक राह दो राही।
कोटि कोटि तन एक रूप हो, एक चाह दो राही।
एक धरा पर एक साथ सब, गीत देश के गाओ।
बढ़ो तिरंगे की छाया में, मुक्ति शक्ति ले आओ।

सत्यम् शिवम सुन्दरम् के गुण त्रिगुण त्रिकाल तिरंगा।
गंगा यमुना सरस्वती की लहर रही नभ गंगा॥
× × ×
झरने गूँजे यमुना मचली, गरजी गंगा धारा।
कहा जवाहर ने ध्वज लेकर—हिन्दुस्तान हमारा॥'
(वही, सर्ग ११, पृ० २०८-२०९)

नेहरू जी के नेतृत्व में कांग्रेस के जो कार्यक्रम बने उनमें पीड़ित शोषित और पददलित वर्ग के अभ्युत्थान को प्रमुखता दी गई। इस वर्ग में श्रमिकों और कृषकों को मुख्यतः परिगणित किया जाता था। नेहरू जी पूँजीपतियों के शोषण से विक्षुब्ध थे। वे कमला जी से भी इस सम्बन्ध में अपना आक्रोश प्रकट करते रहते थे—

"शोषण करते हैं समाज का— शोषक पूँजीवादी।
इनके लिए जोतता बोता—मौन कृषक फरियादी॥
रोता है किसान भारत का पूँजीपति हँसता है।
महल बनाने वाला भोला—कूड़े में बसता है॥
× × ×
देख कृषक की दशा महल में मुझको नींद न आती।
सोच रहा, वापिस लाऊँ लुटी कृषक की थाती॥
(ग्रामात्मा सर्ग १२ पृ० २१४)

कृषकों की दशा सुधार के लिए जमींदारी प्रथा उन्मूलन का आंदोलन प्रारम्भ हुआ। इस आन्दोलन को अभूतपूर्व समर्थन प्राप्त हुआ। कृषकों और श्रमिकों ने प्राणपन से लोकनायक का साथ दिया। ग्रामों के कोटि कोटि जनों के सहयोग से जमींदारी कानून का विरोध प्रारम्भ हुआ। आंदोलनकारियों के उत्साह का वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है—

करो क्रान्ति का यज्ञ सिपाही! खेतों में खलिहानों में।
देर करो मत आग लगा दो रावण के अभिमानों में॥
× × ×
जमींदार के रंग महल में क्रान्ति मचाते बढ़े चलो।
मानव मन के अंधकार में दीप जलाते बढ़े चलो॥

दीप धरो, हम साथ हैं।
भारत मा के, गाँव गाव के कोटि कोटि हम हाथ हैं।
यज्ञ करो, हम साथ हैं॥
(ग्रामात्मा, सर्ग १२, पृ० २२६)

इस आदोलन मे समाज के निम्न वर्ग के सक्रिय योगदान-कर्ताओं मे बूढो बुगली भगन, बुद्दू नाई बुद्धन मोची, अक्खड ताई हीरा माली, दुर्गी मोटी, अनिमा बाई कल्लू तेली, घसियारे, बालक, बूढे सभी सम्मिलित थे। इतने विराट जन समथन से सचालित आदोलन अन्तत सफल हुआ और अवध काश्तकारी कानून बदल गया। यह लोकनायक नेहरू के नेतृत्व की अपूव सफलता थी। इसके पश्चात 'खिलाफत' आदोलन शुरू हुआ। 'बहिष्कार' आदोलन द्वारा विदेशी वस्त्रा का परित्याग किया गया। लोगो ने सोत्साह मूल्यवान रेशमी वस्त्रो की होली जलाई। अँग्रेजो के प्रति घृणा का प्रदशन जनता ने इस प्रकार किया—

'फूँको वस्त्र विदेशी फूँको, पवनारोही नारा।
पारतन्त्र्य के लिए घृणा का, दहक उठा अगारा॥
× × ×
विदेशी वस्त्र फूँको, हर तरफ थी एक ही बोली।
दिशाओ म, गली म हर तरफ थी जोश में टोली।
बनी ज्वाला बनी हाला, किसी की क्रान्ति की बोली।
लगी होली, जली होली, विदेशी माल की होली॥"
(द्वन्द्व, सर्ग १३, पृ० २४४ २४५)

जनगण ने प्रसन्न चित्त से खादी को अपनाया। विदेशी वस्त्रा की होली की लपटें क्रान्ति की ज्वाला बन गइ। घर घर मे स्वतन्त्रता की भावना सुलग उठी तथा धरा मुक्ति की कामना जन जन म जाग उठी। बहिनो ने घघूट पलट दिये माताएँ हुँकार उठीं, भोली भाली कुमारियाँ नागिन की भाति फुकार उठीं। नेहरू की ओजस्वी वाणी से अबलाएँ सबला बनकर बहिष्कार के लिए 'पिकेटिंग' करने निकल पडी। देवियो ने शराबखाना के आगे धरना देकर मदिरा-पान करने वालों को रोका, *क्योकि इन मदिरालयो के माध्यम* से देश का श्रमार्पाजन धन विदेशो म जाता था। मद्यपा ने मदिरा के प्याल तोड कर देशहित म प्राणोत्सग का प्रण किया। सम्पूण जनगण म देश प्रेम की लहर दौड गयी थी। कवि के शब्दा म—

"किन्तु लगन थी नर नारी मे, देश प्रेम जागा था।
मातृभूमि ने वीर सुता से - रक्तदान माँगा था।।
स्वतन्त्रता के लिए आग थी आँखो के पानी मे।
बहिष्कार की प्रबल प्यास थी जनता अभिमानी म ।।'
(ढृढ, सग १३, पृ० २४६)

'अश्रुदीप' शीर्षक चतुर्दश सग मे कमला की वियोग व्यथा और आशकाओ का वणन है। साथ ही कमला नेहरू के मन म राष्ट्र के लिए कुछ करने की व्यग्रता का भी अकन है। श्री जवाहरलाल नेहरू जिन दिनो देशव्यापी भ्रमण करते या जेलो म थे तो कमला जी व्यथित मन स्थिति से पुत्री इन्दिरा को समझाती रहती थी। कवि के शब्दो म—

'घडा लेकर गये जवाहर, कमला पगध्वनि भजती।
सिद्धि हेतु अपने प्रियतम की, ज्योति सुन्दरी तपती।।
(अश्रुदीप, सग १४, पृ० २५३)

नेहरू जी की बहिन विजयलक्ष्मी सगव भाभी को समझाती थी कि भया की जय के नारे देश भर मे गूँज रहे हैं। बिना ताज के राजा भया पर तुम्हें गव होना चाहिए। पति का यशोगान सुनकर कमला के नेत्र गव से छलक उठते थे। दूसरे ही क्षण उनके मन म विचार उठता था कि प्रियतम रण म हैं। तो मैं घर मे क्यो हूँ? क्या मैं कुछ योगदान नहीं कर सकती। कमला के मानसिक सघष को मिश्र जी ने इस प्रकार व्यजित किया है—

'प्रियतम रण म, मैं क्या घर म।
मन उठता है ध्वजा उठाऊँ।
बलिदानो के गीत सुनाऊँ।।
हथकडियो पर आँसू उगनूँ।
धरती के अगारे चुग लूँ।।
आग उगाऊँ डगर डगर म।
(वही, सग १४ पृ० २६२)

अन्तत कमला नेहरू ध्वजा उठा कर स्वाधीनता-आन्दोलन म कूद पडीं। स्वाधीनता-सगर म कमला का पदापण मानो बिजली की कौंध के समान था। वे स्थान-स्थान पर महिलाओ को लेकर पिकेटिंग करने लगीं। तन से दुबल होते हुए भी व अग्निशिखा के समान दीप्तिमान थीं। कवि के अनुसार—

"घूघट पलट तपस्या निकली-सत्याग्रह करने को।
कर्म क्षेत्र में कमला आई-करने या मरने को॥
× × ×
तन से दुर्बल मन से दीपित, अग्निशिखा लहराई।
अग्निपथ पर सबसे आगे, कमला दी दिखलाई॥
अमर जवाहर की उजियाली, सत्याग्रह में चमकी।
क्षणिक क्षीण बिजली की रेखा, आंदोलन में दमकी॥"
(अग्निशिखा, सर्ग १५, पृ० २७२)

'मानवेंद्र' के रचयिता की मति में पति के स्वाधीनता यज्ञ को सफल करने के लिए कमला जी आंदोलन की आग में आहुति बन कर प्रविष्ट हुई। कमला ही क्या नेहरू-परिवार की सभी नारियाँ स्वतन्त्रता के रण में प्रविष्ट हो गई। स्वरूपरानी विजयलक्ष्मी, कृष्णा, कमला सभी घर का सुख त्याग कर दीपित ज्योति शिखाओं की भाँति हुँकार उठीं। कमला का स्वास्थ्य निरन्तर क्षीण हो रहा था किन्तु वह क्रान्ति की ज्वाला के समान प्रज्वलित थीं। जवाहर लाल पत्नी के स्वास्थ्य की चिन्ता से ग्रस्त थे किन्तु राष्ट्रीय स्वाधीनता की चिन्ता कहीं अधिक विकट थी। वे कर्त्तव्य पथ से तनिक भी विचलित नहीं हुए। जवाहर ने द्विगुणित उत्साह और कमठ भाव से 'सविनय अवज्ञा' और बहिष्कार आंदोलन का संचालन किया। 'नमक कानून तोड़ा गया'। प्रशासनिक आज्ञाएँ भंग हुई। अराजकता बढ़ने लगी। साण्डर्स, स्काट, हृडमन, डायर कर्जन प्रभृति अंग्रेज प्रशासक दमन चक्र को तीव्र गति से चलाते रहे। सभी प्रमुख नेताओं को नेहरू जी सहित बन्दी बना लिया गया। नेहरू को बन्दी बना कर भी अंग्रेज उनकी आवाज को न दबा सके—

"बन्द जवाहर लाल कर दिये, बन्द न थीं आवाजें।
बन्दीगृह की दीवारों में, मन्द न थीं आवाजें॥"
(विरोधाचरण, सर्ग १६, पृ० ३०२)

तिरंगे ध्वज, भारत माँ, बापू और स्वतन्त्रता के नारे के समान नेहरू का नाम भी अंग्रेजी प्रशासन के विरोध और विद्रोह का प्रतीक बन गया। अंग्रेजी प्रशासन का निम्नोद्धृत कठोर आदेश इस तथ्य का द्योतक है कि नेहरू का नाम स्वाधीनता संघर्ष-काल में कितना क्रान्तिकारी बन चुका था—

'जो भी नाम जवाहर का ले बन्दी उसे बनाओ।
जो भारत माँ की जय बोले, फाँसी उसे चढ़ाओ॥

जो गांधी जी की जय बोले, उसको कफन उढ़ा दो।
गांधीजी का नाम धरा स, कर पर जुल्म उठा दो ॥
जहाँ तिरंगा झंडा देखो, वहीं चलाओ गोली।
उठो मिटा दो सदा सदा को, आजादी की बोली ॥
काटो जवान जिन पर हैं स्वतन्त्रता के नारे।
बढ़ते चरण राख हो जायें, सुलगें वे अंगार ॥"
(रक्तस्नान, सर्ग १७ पृ० ३०५)

जन-मन के स्वातन्त्र्य भाव का दमन अंग्रेज लाठी चार्ज हंटर प्रहार और गोली चला कर रहे थे। बमों और गोलियों की आग सुलगती और बुझ जाती किन्तु जनमानस में स्वाधीनता भाव की जो चिरन्तन ज्योति लोकनायक नेहरू की ओजस्वी वाणी से प्रज्ज्वलित की थी, वह निरन्तर प्रखर और प्रत्यक्ष हो रही थी। नेहरू की वाणी के प्रभाव का वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि—

'वह बिना ताज का बादशाह, भाषण से आग फूंकता था।
उसके शब्दों में पूजा थी, उसकी वाणी में जन मन था ॥
× × ×
वह बोला जनता बोल उठी, वह डोला जनता डोल उठी।
वह चला जिधर चल पड़े सभी भूचाल उठा गति काल उठी ॥
× × ×
उसके चरणों पर मचल उठा जनता सर्वस्व लुटाने को।
उसके दर्शन को तड़प उठी, धरती निज व्यथा सुनाने को ॥
(वही सर्ग १७ पृ० ३०७)

नेहरू जी जिस जनसभा में भाषण देते थे, वहीं जन समूह समुद्र की भाँति उमड़ पड़ता था। नेहरू जी ने अपने भाषणों में बताया कि वर्तमान शासन शोषण की नींव पर खड़ा है उसे ढहा दो। उन्होंने राम कृष्ण तुलसी नानक, तिलक, बन्दा बैरागी गोखले और गांधी की युग वाणियों का स्मरण दिलाते हुए जनमानस को सर्वस्व बलिदान कर स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए प्रेरित किया। लोकनायक की उत्कट राष्ट्रीय भावनाओं से ओतप्रोत ओजस्वी वक्तृताओं का पुष्कल प्रभाव यह होता था कि सिर से कफन बाँधे हुए आजादी के दीवाने इन्कलाब का नारा लगाते हुए बड़े से बड़े बलिदान को सन्नद्ध हो जाते थे। यही कारण था कि—

"जितने जुल्म किये गोरो ने, उतनी दहकी ज्वाला।
हर जवान को चढी हुई थी, देशभक्ति की हाला॥
× × ×
स्वतन्त्रता के भीषण रण म क्षण क्षण जोश नया था।
स्वतन्त्रता के लिए सिपाही सब कुछ भूल गया था॥"
(वही, सर्ग १७, पृ० ३१६, ३१६)

कारातप शीर्षक १८वें सर्ग म कवि ने बन्दी जवाहरलाल की जीवन चर्या का वर्णन किया है। कवि के अनुसार आनन्द भवन का राजकुमार कारागृह म योगी की भांति जीवन यापन कर रहा था। पुत्री इन्दिरा को जेल से लिखे गये पत्रो, हिन्दुस्तान की कहानी और 'विश्व इतिहास की झलक' शीर्षक रचनाएँ पण्डित जवाहरलाल नेहरू की असाधारण रचनाधर्मिता को प्रगट करती हैं। श्री यशपाल जन क शब्दो म—'कुल मिलाकर नेहरू जी स्वराज्य की लड़ाई के दिनो मे ६ बार जेल गए और उनके ८ वर्ष ११ महीने १२ दिन बन्दीगृह म व्यतीत हुए। कारावास का जीवन सुखद नही होता। जेल की इस विचित्र दुनिया म शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति हो, जिसका मन कुण्ठित न हो उठे। लेकिन जवाहरलाल जी तो असामान्य व्यक्ति थे। उन्होंने बन्दी-जीवन के एक एक क्षण का उपयोग किया और तभी वह इतना साहित्य देने मे समर्थ हो सके।' नेहरू जी की कृतियाँ उनके भावजगत के संघर्ष, ऐतिहासिक आस्थाओ विश्व मानवतावादी दृष्टिकोण और रचनात्मक सामर्थ्य को एक साथ व्यंजित करती है। आग्नेय शीर्षक १६वें सर्ग म महाकाव्यकार ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन के उग्र रूप और भगतसिंह बिस्मिल, अशफाक, राजगुरु, सुखदेव लाहडी प्रभृति देशभक्तो की क्रान्तिकारी भूमिका का उल्लेख किया है। चन्द्रशेखर आजाद क हृदय मे स्वतन्त्रता का यज्ञानल धधक रहा था। उस मतवाल क्रान्तिकारी का विप्लवी आह्वान सुनकर चन्द्रशेखर के दल मे प्राणदान करने वाली बलवती अदम्याकाक्षा जग गयी। कवि के शब्दो म—

"क्रान्तिघोष सुनकर शेखर का-नौजवान फुकारे।
प्रान्त प्रान्त के युवक लाडले समर मध्य हुँकारे॥

---

* साप्ताहिक हिन्दुस्तान—नेहरू स्मृति अंक ३० मई १६६५, पृ० ६ "अद्वितीय लेखक और साहित्यकार नेहरू' शीर्षक लेख।

विष से विष उतारने में हित-बना क्रान्तिकारी दल।
बम पार्टी बन गई देश में, धधका आँखो का जल॥
× × ×
दल बन गया 'चन्द्रशेखर' का, दल में रक्त नया था।
दलहित प्राणदान करने का, बल में रक्त नया था॥"
(आलय, सर्ग १६, पृ० ३४१)

बम दल ने साँडर्स की हत्या, रेल की लूट पाट और विध्वंसक प्रहारों द्वारा आतंक का वातावरण उत्पन्न कर दिया। इन निर्भय क्रान्तिकारियों ने आतंक कृत्यों द्वारा अंग्रेजी प्रशासन की नींव हिला दी। अंग्रेजी प्रशासन ने प्रतिक्रिया स्वरूप भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरु को फाँसी दे दी। इन देश भक्तों के बलिदान से सम्पूर्ण राष्ट्रीय जीवन में क्रान्तिमत चेतना प्रदीप्त हो गयी। कवि के शब्दों में—

'चेतना आई शहीदों की चिता से,
रक्त की हर बूंद बिजली बन गई थी।
फाँसियों से आग फैली हर दिशा में
हर तरफ आजाद युवकों के कदम थे,
रक्त की लहर ध्वजा में फहरती थी
× × ×
चूड़ियाँ टूटी हुईं लावा बनीं ज्वाला बनी हैं
हर पुँछे सिंदूर की लाली जवानी में भरी है
बिंदियाँ शिव को जगाती हैं प्रलय के गीत गाकर
प्यार की प्यासी उमंगे गति जवाहर के अधर पर।'
(वही सर्ग १६, पृ० ३४७)

शहीदों की चिताओं से उठी चिनगारियों ने जन मन में विद्रोह की आग लगा दी। जन क्रान्ति की भीषण हलचल धीरे धीरे सेना तक पहुँच गई। पुलिस वाले तन से सेवक होते हुए भी मन से विद्रोही बन गए। स्वतन्त्रता की आग प्रत्येक भारतवासी के मन में सुलग चुकी थी। इस भाव प्रदीप्ति का श्रेय लोकनायक नेहरू के ओजस्वी भाषणों को भी है। नेहरू जी क्रान्तिदूत बनकर जन मन में स्वातन्त्र्य चेतना का आह्वान कर रहे थे। कमला जी लखनऊ जेल में और नेहरू जी नैनी जेल में बन्द थे फिर भी वे हतोत्साह नहीं थे। जेल से

छूटकर उन्होंने रुग्ण पिता की दयनीय दशा देखी, उनका निधन देखा, दाह संस्कार किया किन्तु वे स्वाधीनता समर के पाथेय पर अग्रसर होने से विचलित नहीं हुए। उन्होंने स्वयं को सान्त्वना देते हुए कहा कि—

"आंसू रोको अभी न जाने कितने वज्र गिरेंगे।
स्वतन्त्रता के लिए मृत्यु से—अगणित बार घिरेंगे॥
एक नहीं दो नहीं न जाने—कितने वीर मरेंगे॥
× × ×
धरा रत्नगर्भा है इसमें—हैं मोती ही मोती।
अम्बर ही रोया करता है धरती कभी न रोती॥"

(सत्य आग्रह, सर्ग २०, पृ० ३६२)

'मानवेन्द्र' महाकाव्य के तृतीय खण्ड के प्रथम और प्रारम्भिक क्रम के 'संस्कार' शीर्षक २३वें सर्ग में कवि ने बताया है कि जनविद्रोह के समक्ष आंग्ल प्रशासन को अन्ततः झुकना पड़ा। 'गोलमेज कान्फ्रेंस' का प्रस्ताव अंग्रेजी-शासन ने शान्ति और व्यवस्था की दृष्टि से किया। 'सन्धि-सन्देश' नामक २४वें सर्ग में गांधी इरविन समझौते का उल्लेख है। अन्ततः अंग्रेजी प्रशासन ने प्रांतीय स्तर पर जनशासन की बात को सिद्धान्ततः स्वीकार कर लिया और फलस्वरूप देश में प्रान्तीय परिषदों के निर्वाचन हुए। नेहरूजी ने सुयोग्य जन प्रतिनिधियों के निर्वाचन हेतु देशव्यापी भ्रमण किया और मतदाताओं को उनके मत का मूल्य समझाया। वस्तुतः जन शक्ति की यह प्रथम विजय थी, जिसके द्वारा कांग्रेस के प्रतिनिधि राजकीय परिषदों में पहुँचे—

"बिखरी जनता हुई एक मत, चुना देश भक्तों को।
मिलने लगे श्रेष्ठ जन प्रतिनिधि, प्रान्तों के तख्तों को॥
कांग्रेस के प्रतिनिधि पहुँचे—राजकीय परिषद् में।
जनता के मनचाहे पहुँचे—शासकीय परिषद में॥
सत्याग्रह की प्रथम विजय थी, जय का प्रथम चरण था।
पयहीनों को महासिंधु में—मानों मिला शरण था॥"

(शासन सूत्र, सर्ग २३, पृ० ४०५)

जनता के प्रतिनिधि तो चुने गये किन्तु उनकी निर्धारित नीतियों को सञ्चालित करने वाला अधिकारी वर्ग विदेशी था, अतः बात विलायत की ही चलती थी। इस दोहरी नीति से जनता को त्राण नहीं मिला। जनता

विक्षुब्ध हो उठी। नेहरू जी पुन प्रशासन के विरोध म जनमत तैयार करने लगे। इसी बीच कमला जी का स्वास्थ्य बहुत गिर गया। वे मरणासन्न दशा को पहुँच गयी। विदेश म अध्ययन हेतु गयी पुत्री इन्दिरा और जेल से पति नेहरू ने आकर कमला को देखा तो स्तब्ध रह गये। पत्नी को विधिवत सभाल भी नही पाये थे कि बिहार के भयकर भूकम्प और बाढ के कारण अपार जन धन की हानि ने उनका ध्यान आकृष्ट कर लिया। बिहार के जननेता राजेन्द्रप्रसाद के साथ नेहरू जी ने जनसेवा के कार्यों का सचालन किया। वे स्वय बाढ पीडितो की सहायता कर रहे थे और उन्हें सब प्रकार से आश्वस्त भी कर रहे थे किन्तु—

'गूजता था एक नारा।
वह विकट भूकम्प था या थी प्रलय की क्रूर धारा।
धूलि था ससार सारा॥
मैं मरण के वक्ष पर इतिहास मेरी गति अमर है।
मैं क्षणिक विश्राम मे हलचल, अचल की यति अमर है॥
डूब जायेगी धरा ऐसा कभी सम्भव नही है।
ओ पराभव! काल से हारा कभी वैभव नहीं है॥
लौट जाओ क्रूर धारा।"
(अनुताप, सग २४, पृ० ४१६)

इस दैवी प्रकोप स जनजीवन को मुक्त कराने के प्रयत्न पूर्ण भी न हो पाये थे कि नेहरू जी को पुन बन्दी बना लिया गया। कमला का धैर्य टूट गया। कमला की मनव्यथा को कवि ने इन शब्दो म व्यजित किया है—

ससुर गये परलोक नाथ को—जेल ले गए जालिम।
हाय! मृत्यु शैया पर मुझको—दुख दे गए जालिम॥
कह न पाई आज तक मन की व्यथा मन की कथा।
क्या पता किसको कि मैं ने सिन्धु आँखों म मथा॥
रोकती हू पर हृदय थमता नहीं क्या हो गया।
जान पडता है कि मेरा आज सब कुछ खो गया॥
(वही सग २४ पृ० ४२४)

अन्तत कमला का निधन हो गया। कमला की अर्थी सवहन करते हुए जवाहर के मन सकल्प को शब्दबद्ध करते हुए कवि कहता है कि वह

अद्वितीय देश सेविका थीं क्योंकि देश की स्वतन्त्रता के लिए उसने सब प्रकार का त्याग किया और कष्ट सहे। उसका प्राणदान महान् उत्सर्ग का ही परिचायक है—

"सब सकल्प त्याग कर कमला मुक्ति हेतु जीती थी।
स्वतन्त्रता के लिए दृगो मे, सब आँसू पीती थी॥
× × ×
लो मरघट आ गया, कहानी खत्म हो गई सारी।
प्राणदान दे गई देश को एक पुण्य की नारी॥"
(वही, सर्ग २४, पृ० ४३५)

द्वितीय विश्व युद्ध का समारम्भ हुआ। यह युद्ध इतना भयानक था कि धरती काँप उठी थी। महायुद्ध के भीषण क्षण में ऐसा प्रतीत हो रहा था कि हिटलर के शस्त्रास्त्रो से इसी युग म महाप्रलय हो जायगी। द्वितीय विश्व युद्ध के विनाशकारी परिदृश्य का काव्याकन कवि ने सकौशल किया है। एक अश द्रष्टव्य है—

'सनिको की टोलियाँ लावारिसा सी जल रही हैं,
जगलो म सड रहे शव, न कोई पास उनके
चील कौवे तक घृणा करने लगे हैं
× × ×
दृश्य ये वीभत्स मरघट से भयानक,—
सड मुर्दों से भरे मदान देखो
वे भुजाएँ काल जिनसे काँपता था—
काल क्वलित हो गइ बन में पडी हैं,
चीटियाँ जिनको लिपट कर खा रही हैं
रक्त आमिष और मज्जा से लिपे मदान देखो।
(सघात, सग २५, पृ० ४४४ ४४५)

ब्रिटिश सरकार ने भारतीय नेताओ से पूछे बिना ही भारत को युद्ध में घसीट लिया। फलस्वरूप काग्रेसी मन्त्रि मण्डला ने त्यागपत्र दे दिए। गाधीजी ने सत्याग्रह का समारम्भ कर दिया। अग्रेज युद्ध म बुरी तरह उलझ गये थे। भारतीयो से सहयोग प्राप्ति हेतु ब्रिटिश सरकार ने एक मिशन क्रिप्स के नेतृत्व मे भारत भेजा और क्रिप्स ने विभिन्न प्रस्तावो द्वारा आश्वासन और

प्रलोभन दिए। इन्हीं दिनों सुभाषचन्द्र बोस ने प्रवासी भारतीयों की एक शक्तिशाली सेना का संगठन जापान में कर लिया था, जिसका नाम—'आजाद हिन्द फौज' था। वे भी भारत को स्वतन्त्र कराने के लिए प्रयत्नशील थे। अतः नेताजी ने नेहरू जी सहित भारतीय जननेताओं को परामर्श दिया कि अंग्रेज कभी भारत नहीं छोड़ेंगे, इनके आश्वासन धोखे से भरे हैं। अपने उद्देश्य का स्पष्टीकरण करते हुए सुभाष ने कहा—

'मैं सभी को मुक्ति देना चाहता हूँ,
मैं दलित को जिन्दगी की मुक्ति देना चाहता हूँ
मैं गुलामी की लकीरों को मिटाना चाहता हूँ,
भाग्य वाले फकीरों को बसाना चाहता हूँ,
चाहता हूँ सत जिनमें शक्ति हो कुछ
भक्ति हो निज देश हित अनुरक्ति हो कुछ,
व्यक्ति को मैं शक्ति का दीपक बनाना चाहता हूँ,
मैं तुम्हारे हित स्वयं तक को मिटाना चाहता हूँ,
मैं अंधेरे को नया दीपक दिखाना चाहता हूँ
मन्त्र 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' गाना चाहता हूँ।"

(वही, सर्ग २५ पृ० ४४६)

कवि ने सुभाषचन्द्र बोस के त्याग की भूरि भूरि प्रशंसा की है। सुभाष चन्द्र बोस सचमुच भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के महान नेता थे। उनकी क्रान्ति भावना निष्कलुष, देश प्रेम निष्काम और समर्पण निरवाध था। इसीलिए द्वितीय विश्वयुद्ध के अवसर पर भारतीयों का आह्वान करते हुए उन्हें राष्ट्र मुक्ति के लिए अनुप्रेरित करते हुए कहा था—

'इस तरफ से मैं बढ़ूँ उस ओर से तुम
मुक्त करलो देश निज तलवार से तुम
तुम विजय पाओ, तुम्हारा देश होगा
हर गली पर राज्य करना मुझे इसमें खुशी है।
मैं तुम्हारे हित लड़ाई में सजग हूँ
चाहता हूँ मुक्त हो हर देश, जग में सब सुखी हों।
नियम के आधीन हो सब
और अनुशासन प्रशासन में सभी निरत अनवरत हों,
व्यक्ति अपने देश-हित व्यक्तित्व अपना भूल जाये,

देश ही हो धर्म उसका, देश ही हो कर्म उसका,
व्यक्ति की आत्मा अखिल आलोक में हो,
देवता हर देश में दिव्यांशु सा हो,
रण नहीं, यह अर्चना है।"

(वही, सर्ग २५, पृ० ४४७)

इसी बीच भारत में 'भारत छोड़ो' आन्दोलन का समारम्भ हो गया। भारतीय नेता अंग्रेजी शासन की अवसरवादी कूटनीति से अवगत हो गए थे। अतः उन्होंने नेहरू के नायकत्व में पूर्ण स्वतन्त्रता की माँग की। एक ऐसी व्यापक क्रान्ति भावना जन-जन में जाग उठी, जिसने अंग्रेजी प्रशासकों को दहला दिया। वीर जवाहर ने अपने संकल्प को इस प्रकार व्यक्त किया—

"व्यापक क्रांति भावना जागी, जन जन में मन मन में।

× × ×

वायसराय, गवनर, सेना, पुलिस दहल थी सब में।
स्वतन्त्रता का महासागर था, चहल पहल थी सब में॥

× × ×

जन जन के मन बने जवाहर झण्डा फहराते थे॥
ध्वज की लहरों से धरती के, सागर लहराते थे॥
कहते थे हम ठीक जवाहर, हम स्वतन्त्रता लेंगे।
या तो आजादी लेंगे हम, या जीवन दे देंगे॥"

(प्रवरण, सर्ग २६, पृ० ४५६)

जवाहर ने कहा कि अब ब्रिटिश शासन समाप्त होगा। या तो हम आजाद होंगे या मर मिटेंगे। देशवासियों को स्वाधीनता-समर में प्राणोत्सर्ग के लिए आहूत करते हुए उन्होंने कहा—

"चाहे सम्मुख काल आ अड़े, पीछे हम न हटेंगे।
झम्पा नाचे, अणु बम बरसें, आगे वीर डटेंगे॥
शपथ हमें है भारत माँ की, शपथ ध्वजा की हमको।
युद्ध क्षेत्र से नहीं हटेंगे, बिना हटाये तम को॥
फर फर उड़ता हुआ तिरंगा, जन जन का तनमन धन।
इस झण्डे से बड़ा नहीं है—तन मन धन या यौवन॥

इस झण्डे को उठा बढ़ चलो, स्वतन्त्रता के रण म ।
आओ प्यारे वीरो ! आओ, इन्कलाब कण कण म ॥"
(वही, सग २६, पृ० ४८६)

आठ अगस्त सन् १९४२ का ऐतिहासिक दिवस आया । अंग्रेजों ने सभी भारतीय नेताओं को बन्दी बना लिया । कवि के अनुसार यद्यपि जवाहर बन्दी थे किन्तु उनका क्रान्तिमन्त्र आह्वान् जन जन म गूँज रहा था । प्रत्येक देश वासी आज आत्मोत्सग के लिए सन्नद्ध था—

"नेता बन्दी बन्द नहीं था क्रान्तिदूत का नारा ।
कहीं ताप से आग धधकती, और कहीं अंगारा ॥
× × ×
एक जवाहर बन्द कर दिये, कोटि जवाहर आगे ।
मरने या मरने को अगणित, ये मशाल से आगे ॥
चलीं गोलियाँ, रुके न क्षणिक, माता की जय बोले ।
मानो मन्दिर म भक्तो के स्वर गूजे बम बोले ॥
कट-कट कर शीश गिरे धरती पर उठ उठ बढ़े सिपाही ।
मरने वाले स आगे था बढने वाला राही ॥
× × ×
सब शहीद होने को आकुल मैं आगे बढ जाऊ ।
फूल पुजारी से कहता था, पहले मैं चढ जाऊँ ॥"
(वही सग २६ पृ० ४६३)

सन ४२ मे जो अदम्य उत्साह जन जीवन मे उमडा था वह अभूत पूव था । स्वाधीनता पथ पर मरण को महोत्सव मानकर प्राणोत्सग करने वाले देश भक्त कोटि कोटि की सख्या मे निकल पडे थे । इन देश भक्तों के सकल्प और उत्साह को कवि ने इस प्रकार शब्दांकित किया है—

'बलिदानों की चाह भरी थी हर जवान के मन मे ।
ध्वजा उठाने की इच्छा थी हर उठते यौवन म ॥
जेल भेज दो फाँसी दे दो, तोपों से उडवा दो ।
तन मन धन सब कुछ करारो गोलो से फुकवा दो ॥
सब सह लेंगे स्वतन्त्रता हित मिटने को हम आये ।
सर से कफन बाँध आये हैं शीश हाथ पर लाये ॥
(वही, सग २६, पृ० ४६६)

इन देश भक्तों में स्वातन्त्र्य चेतना का आह्वान लोक नायक नेहरू ने ही किया था। जवाहर एक ऐसे आलोक स्तम्भ के समान थे जिसने जन जन के उर को आलोकित किया। वे अमरदीप थे, जिन्होंने प्रत्येक जन के चेतना दीप को दीप्तिमान किया। कवि के शब्दों में—

"एक दीप यह देश दीप है, अमर जवाहर प्यारा।
संकीर्त्तन हम युगनायक के यह आँखों का तारा॥
हम सब उसकी वाणी के पग हैं हम सब उसके नारे।
यह मत समझो शलभ जल गये, शलभ बने अँगारे॥"
(वही, सर्ग २६ पृ० ४६६)

'भारत छोड़ो' आन्दोलन एक अभूतपूर्व क्रान्ति प्रयाण था। इस प्रयाण की ओर प्रथम चरण लोकनायक नेहरू ने बढ़ाया था, किन्तु कालान्तर में करोड़ों कदम इस ओर बढ़ते गये। और प्रत्येक बढ़ता कदम बलिदान का कीर्तिमान संस्थापित करने के लिए व्रत संकल्प था। अस्तु, जवाहर को बन्दी बना कर भी अँग्रेजी प्रशासक जनक्रान्ति को शान्त करने में सफल न हो सके। कवि के शब्दों में—

"आओ, दो बलिदान देशहित, गाता था अंगारा।
जाओ, हटो छोड़ दो भारत था कण कण का नारा॥
× × ×
समय आ गया भारत छोड़ो वर्ना मिट जाओगे।
अतिथि चले जाओ आदर से, वर्ना पछताओगे॥
× × ×
बन्द जवाहरलाल किन्तु हर प्राणी मतवाला है।
स्वतन्त्रता का अन्तिम मोर्चा, हर मनुष्य भाला है॥
× × ×
देखा जिधर उधर ही देखी-स्वतन्त्रता की ज्वाला।
आजादी की आग राम सन्ताप उठा तम काला॥
(वही, सर्ग २६, पृ० ४६६-४७१)

'सन्तापन' शीर्षक २७वें सर्ग में कवि ने भारत विभाजन की पृष्ठभूमि का मर्मान्तक चित्रण किया है। विभाजन के लिए ललनाओं के सुहाग लुटे, बहनों के रक्षा बन्धन टूटे, वृद्धा के सहारे लड़खड़ाये, बालकों के भाग्य डूबे,

कुमारियों की लाज लुटी और राजनीतिक कुत्सा का वीभत्स कलुषित और नृशंस काण्ड देखकर जन-नेता संतप्त हो उठे। लोकनायक नेहरू का हृदय सन्तप्त था यह सोचकर कि स्वाधीनता प्राप्ति से पूर्व ही भारत का एक अंग विदेश बन जायगा तथा गंगा और यमुना की धाराएँ बँट जायेंगी। जवाहर की सन्तप्त मनोदशा का वर्णन करते हुए कवि लिखता है कि—

'स्वतन्त्रता आने से पहले कितना रक्त छनेगा।
क्या मेरे भारत में निश्चित नया विदेश बनेगा॥
क्या गंगा जमुना का पानी दो धारों में होगा।
क्या अभिषेक देश का मेरे सहारों में होगा॥'

(सन्तापन सर्ग २७, पृ० ४७८)

देश को मुक्त कराने के लिए जननेताओं को विभाजन रूपी विषपान करना पड़ा। *अन्ततः लोक और लोकनायक के अथक प्रयत्नों तथा अप्रतिम बलिदानों* से भारत माँ की दासता के बन्धन टूटे। आलोक किरण' फूटी। भारत स्वतन्त्र हुआ। लाल किले पर 'विजयी विश्व तिरंगा फहराया'। स्वतन्त्रता की आलोक किरण से जन मानस जगमगा उठा। कवि ने स्वाधीनता की देवी का अभिनन्दन करते हुए राष्ट्र के अभ्युत्थान और जवाहर तथा जनता जनार्दन के सुखद भविष्य के लिए मांगलिक कामना इस प्रकार की है—

'अमर ज्योति आलोक किरण हो पाराशरि के स्वर हो।
स्वतन्त्रता की उजियाली से विषा दीप विषधर हो॥
जया, जवाहर ज्योति, जनार्दन ? जय ब्रह्मा की वय हो।
अणवोद्भवा ! आओ गाओ द्रव्याजन अक्षय हो॥'

(आलोक किरण, सर्ग २८, पृ० ५०३)

मुक्तजन मानस ने स्वाधीनता की देवी का मुक्त मन से अभिनन्दन किया। देश ने गांधी जवाहर, सुभाष, पटेल, राजेन्द्र प्रसाद प्रभृति नेताओं के प्रति आभार प्रगट किया जिनकी त्यागमयी कमठ साधना से स्वतन्त्रता का प्रकाश भारत में फैला। नेहरू की प्रशस्ति में कहा गया—

"धन्य धन्य वह मानवेन्द्र जो दीप लिए आता है।
मानो इन्द्रपुरी को अपने हाथों पर लाता है॥
जय जय जय धरणेन्द्र ? धरित्री धन्य तुम्हारी गति से।
मुक्त ! देश को मुक्ति मिली है अंगारों की अति से॥

(मुक्तिपूजा सर्ग २९ पृ० ५०७)

किन्तु नेहरू जी ने अपने भाषणो और व्याख्यानों मे सवत्र ही स्वाधीनता प्राप्ति का श्रेय राष्टपिता महात्मा गाधी को दिया। उन्होंने देश पर बलिदान होने वाले असख्य नाम अज्ञात देशभक्तो का कृतज्ञतापूवक यथाअवसर पुण्य स्मरण किया। नेहरू जी ने कहा कि स्वाधीनता का इतिहास शहीदों ने मुख-स्याही से और मा बहिनो ने आँसुओ से लिखा है। उन्होने स्वाधीन राष्ट्र को जन सम्पदा घोषित किया। उन्होंने कहा कि राष्ट्र का नव निर्माण शक्ति, श्रम और साधना से ही सम्भव है—

"गा रहा धरणेन्द्र पूजा के स्वरो मे,
ओ महामानव! धरा यह धन्य तुझ से।

× × ×

मुक्ति का स्वागत नये इतिहास से है,
यह नया इतिहास बदला या पुरातन फिर नया है,
सिद्धि जनता, साधना जनता प्रजा राजा बनी है,
यह सभी का देश है अब, राज्य है इस पर सभी का,

× × ×

मन्दिरों मे देवताओ की नई आराधना यह,
शक्ति से श्रम से, हृदय से, बुद्धि स, शाश्वत स्वरों से।'

(वही, सग २६, पृ० ५१२ ५१३)

'मानवेन्द्र' महाकाव्य के 'चतुथ खण्ड' के 'धमाचरण' शीषक ३०वें सर्ग में कवि ने स्वतन्त्र भारत की शासन व्यवस्था के आदश रूप का निरूपण किया है जिसका निर्देश राष्ट्रपिता गाधी ने लोकनायक नेहरू को दिया। बापू ने जवाहर को कहा कि देश का पुनज म हुआ है तुम दिवाकर की भाँति तप कर कठोर साधना द्वारा देश के जन जन की सेवा का व्रत लो। राजधम को तप श्चर्या मानकर उसका निर्वाह करो। शासन का ऐसा आदश रूप निर्मित करो जो सवहित सवद्धक हो—

वीर केसरी! राजधम का चरण शुरू होता है।
राजा वह है जो जनताहित-तन मन धन खोता है॥
मानव थे अब मानवेन्द्र हो निज पथ भूल न जाना।
सिंहासन पर राजधम को, तप तप धरण निभाना॥

मानवेन्द्र ! तेरे शासन को कोई ताप न घेरे।
दहिक दविक भौतिक दानव चरण तले हा हरे॥"

(धर्माचरण सर्ग ३०, पृ० ५२७)

इसी बीच काश्मीर पर पाक आक्रमण हुआ, जिसका भारतीय सेनाओं ने मुँहतोड उत्तर दिया। देश की एकता और जनतन्त्र की सार्थकता के लिए सरदार पटेल के कूटनीतिक प्रयासो से रियासतो को मिलाया गया। जन तन्त्रीय व्यवस्था मे राजतन्त्र की शासन पद्धति बाधक ही थी, अत उसका निवारण आवश्यक था। क्योंकि—

'प्रजातन्त्र का अर्थ प्रजा का, राज्य प्रजा का धन हो।
प्रजातन्त्र के सिंहासन पर कोटि कोटि का मन हो॥
जन जन मानवेन्द्र बन जायें प्रजा राज्य हो ऐसा।
प्रजातन्त्र के मगम पर है—राज्यतन्त्र यह कैसा।

(जन मत, सर्ग ३१ पृ० ५४४)

बापू ने स्पष्ट शब्दो म मानवेन्द्र का बता दिया कि स्वाधीन—भारत के विधान और शासन का लक्ष्य जन कल्याण ही है। जन जीवन की विषमता का सभी स्तरो पर निवारण स्वशासन का मूलभूत प्रयोजन है। भारत के प्रधानमन्त्री से बापू ने अपेक्षा की कि—

'मानव का मन अमृत स्रोत हो, कर्म करो अब ऐसे।
समृति धर्म दीप हो जाए धर्म करो सब ऐसे॥
अरे ! राज्य का अर्थ विषमता मिटे सरस हों जन मन।
जनहित स्वय समर्पित कर दें जन जन सब तन मन धन॥

× × ×

व्यर्थ सभी सघर्ष अगर जन-जनहित रह न जीने।
व्यर्थ कर्म सब जो जनता के पात्र रह गये रीते।

× × ×

सिद्धि मिलेगी, मुक्ति मिलेगी, जनता के अर्चन से।
रत्न मिलेंगे अमृत मिलेगा जनता के मन्थन से॥

(वही सर्ग ३१, पृ० ५४७ ५४८)

सृजन सोपान शीर्षक ३२ में सर्ग म कवि ने राष्ट्र निर्माण की योजनाओ एव विकास कार्यक्रमो का वर्णन करते हुए कहा है कि—

"पढ अनन्त के गीत प्रकृति म मुखर हुई युग भाषा।
मानवेन्द्र क मुख से निकली, जन जन को अभिलाषा ॥
धन्धे बढने लगे देश में—यन्त्रा की गतिविधि से।
बडे बडे उद्योग खुल गए—यहा वहाँ की निधि से ॥'
(सृजन सोपान, सग ३१, पृ० ५६६)

देश स्वाधीन हुआ, स्वशासन हुआ और सवतोमुखी विकास के कायक्रम भी बने, किन्तु पूँजीवादी तथा साम्प्रदायिक शक्तियाँ देश के जन मन का शोषण भी करती रही। स्वार्थी तत्व राष्ट्रीय जीवन को खोखला बनाते चले गए। सामान्य जन की शोचनीय दशा और अन्तदाह को कवि ने इन शब्दो मे व्यजित किया है—

भारत की प्रतिभा अधीर है, अचन अभी अधूरा।
जब तक हैं अनथ जन मन म, तब तक अथ न पूरा ॥
× × ×
यह कसा उत्थान, पतन के—पूत आक्रमण करते।
मन मे इतना गरल भर गया, मधु पी पी कर मरते ॥
× × ×
बढ़ने जाते स्वाथ देश पर, आँधी आती जाती।
भव्य भावना दीप जलाती, हवा बुझाती जाती ॥"
(अन्तर्दाह, सर्ग ३३ पृ० ५७८)

कवि पश्चाताप पूण शब्दा मे कहता है कि देश का शासन बदल गया किन्तु देश वासी नही बदले। देश की सम्पदा पर पूँजीपति नाग की भाँति शोषण की कुण्डली मारे बठे हैं। लाखों शहीदों के बलिदान से जो धरती आजाद हुई वही शोषण से पीडातुर होकर आँसू बहा रही है। लाखों आस्थाएँ, जिन्होंने, सिन्दूर को राख म बदलकर देश के भाग्य को बल्ला वे व्यथित होकर आह भर रही हैं। इसी प्रकार यदि विषमता का विस्तार होता गया तो स्वतन्त्रता सकट म पड सकती है। अस्तु कवि ने राष्ट्र को सजग करते हुए कहा कि—

'अमर शहीदा की छाती है, बलिदानो की श्री है।
माटि माटि लाला की निधि है, अभिमाना की श्री है ॥
× × ×
यह शुभ कर्मों की छाया है, बडी तपस्या का फल।
यह जीवन की अमर ज्योति है नयनो का गगाजल ॥

इस पर आंच न आने पाये, सावधान रखवालो।
इस की जय के गीत छांह में, श्रम साजों पर गालो॥'

(अंतर्दाह, सर्ग ३३, पृ० ५८७)

नवस्वतन्त्र राष्ट्र की दारुण परिस्थितियों ने राष्ट्रनायक नेहरू को चिन्तित बना दिया। उन्होंने कहा कि बापू के तप और शहीदों के बलिदान से अर्जित स्वातन्त्र्य सम्पदा को हम यों नहीं लुटने देंगे। नेहरू जी और अधिक शक्ति से राष्ट्र के अभ्युदय के लिए कृतसंकल्प हुए —

'स्वतन्त्रता को दुखी देखकर, दुखी हुए नरनाहर।
जनता के हित जनशासन में, तपने लगे जवाहर॥
× × ×
पर जब तक माँ! श्वास देह में हार नहीं मानूंगा।
जीते जी जग के जीवन को, मार नहीं मानूंगा॥
× × ×
जग का सारा विष पी लूँगा, माँ! मत कर इतना गम।
तब तक जलज नहीं सूखेंगे जब तक रविशशि का दम॥

(वही, सर्ग ३३ पृ० ५९३)

स्वतन्त्रता रूपी अमृत के साथ साथ राष्ट्र को विभाजन रूपी गरल भी मिला। विभाजन के परिणाम स्वरूप देशव्यापी साम्प्रदायिक दंगे प्रारम्भ हो गए। कवि के शब्दों में—

स्वतन्त्रता के दीप जले तो—बही रक्त की धारा।
पाकिस्तान बना क्या, जीवन—बना जहर अगारा॥
मानव की बर्बर विभीषिका—बढ़ती ही जाती थी।
हिन्दू मुस्लिम रक्तपात में—रक्तस्नान थाता थी॥

(भूपाल, सर्ग ३४ पृ० ५६५)

बापू नोआखाली पहुँचे। उन्होंने असंख्य सभाएँ समायोजित कीं। हिन्दुओं और मुसलमानों को मानवता का सन्देश देकर राष्ट्रीय एकता का महत्व समझाया। बापू के उपवास तथा अनशन तथा प्रार्थना सभाओं का अपरिमित प्रभाव भी हुआ। हथियार भी लज्जित होकर उनके आगे नतमस्तक हो गए। अंगार मन द्रवित हो उठे, रक्तिमवर्ण नेत्र आंसू बहाने लगे और मरघट

सदृश्य उजड़ा जीवन पुन लहलहा उठा। यद्यपि बापू का विरोध भी किया गया किन्तु वे अपने निश्चय से विचलित नहीं हुए। कवि के शब्दों में एक लँगोटी वाला धरती का विषपान शिव के समान कर रहा था—

विजय कम की, जीत दान की, धम फला करता है।
सघर्षों से जीने वाला कभी नहीं मरता है॥
धरती का विष पीने निकला एक लँगोटी वाला।
दिशा दिशा में घूम रहा था एकाकी उजियाला॥"

(वही, सग ३४ पृ० ५९९)

इधर दिल्ली म भी साम्प्रदायिक दग भड़क उठे। बापू न दिल्ली आकर अपनी प्राथना सभाओं म हिन्दू मुस्लिम एकता तथा ईश्वर-अल्ला के अभेदत्व का प्रतिपादन प्रारम्भ किया। किन्तु अन्धे साम्प्रदायिक तत्त्वों ने षड्यन्त्र रचकर तीन गोलियाँ दागी और युगपुरुष शिव को शान्त कर दिया। काल के क्रूर नयन की दृष्टि से युगद्रष्टा बापू भी न बच सके—

तभी काल ने क्रूर नयन से—राष्ट्रपिता को देखा।
पुण्य भूमि पर स्वग भूमि पर खिची रक्त की रेखा॥
नमन काल ने किया और फिर-तीन गोलियाँ दागी।
युग का शिव सो गया शान्ति से-सूय रश्मियाँ भागी॥"

(वही, सग ३४ पृ० ६०१)

बापू का निधन इतना दुखद था कि सवत्र करुणा का परिदृश्य व्याप्त हो गया। चन्दा और सूरज रोये, विश्व शून्य हो गया, चेतन जड़ हो गए, मेदिनी करुणा विगलित होकर मातम मना रही थी। बापू के अवसान पर लोकनायक नेहरू इतने शोक सन्तप्त थे कि मानो सवस्व लुट गया हो। गांधी की चिता के सन्निकट खड़े शोक सन्तप्त जवाहरलाल की मनोदशा को अंकित करते हुए कवि ने लिखा है—

'जो अनाथ का नाथ आज वह—है अनाथ यह देखो।
चिता किनारे अश्रु पोछता—मानवेन्द्र वह देखो॥
आह! जवाहरलाल आज यह—खड़ा शून्य म ऐसे।
जन्म जन्म में ज्ञान प्राप्त कर—ज्ञान भ्रमित हो जैसे॥
जसे सिद्धि प्राप्त कर कोई—विस्मृति म खोया हो।
जसे योगसिद्धि का फल पा—सिद्ध पुरुष सोया हो॥'

(वही, सग ३८ पृ० ६०४)

'भावलोक' शीर्षक ३५वें सर्ग मे कवि ने स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात राष्ट्र के नवनिर्माण और विश्वशान्ति के लिए किए गये नेहरू जी के महाप्रयासो का समोल्लेख किया है। लोकनायक नेहरू ने यह महत सकल्प किया था कि राजतन्त्र की विडम्बनाओ और छलछद्मो से सत्रस्त भारतीय जन जीवन को सत्य श्रम, कत्त व्यनिष्ठा और स्वतन्त्र साधना द्वारा अभावयुक्त राष्ट्र के रूप मे बदलूगा। निर्माण के इस पुनीत सकल्प का शब्द चित्र द्रष्टव्य है—

'सत्य से शिव से धरा की आरती होगी,
आरती श्रम से, सभी के श्रम के फल फूल,
मृत्यु से ऊपर रहेगे श्रम की हागी
प्यार से सौदय म सौरभ रहेगा
शक्ति हाथो म लगन म महकती होगी।
ये सभी निर्माण करने हैं मुझे पावन धरा पर—
जा धरा पर हा चुक हैं हा रहे हाते रहगे,
दीन हीनो के अभावो को हरगे जा।"

(भाव लाक सग ३५ पृ० ६०६)

स्वराष्ट्रीय अभ्युदय क साथ साथ नेहरू जी न पचशील के सिद्धान्ता सह अस्तित्व की भावना और गुट निरपेक्ष तटस्थ वदेशिक नीतियो के प्रचार प्रसार द्वारा विश्व मे शान्ति और सुरक्षा की भावना उत्पन्न की। मानवात्थान के चिरन्तन सिद्धान्ता के प्रसार हतु उ होने विश्व यापी भ्रमण भी किया। नहरू जी के विश्व मानवतावादी प्रयासो के सम्बन्ध म कवि का कथन है कि—

'देश देश न बात सुनी यह देश देश ने मानी।
दीप जलाने लगा विश्व म वह दीपा का दानी॥
मानवेन्द्र युग पुरुष जवाहर, दीप दिखाता घूमा।
पचशील के सिद्धान्ता क—सगर सिखाता घूमा॥
कभी चीन म कभी रूस म कभी एशिया भर म।
पथ दिखलाता भ्रमण कर रहा दीपक डगर डगर म॥'

(पच पवन, सग ३६ पृ० ६२७)

नेहरू जी ने एशिया और अफीका क दुबल और पराधीन राष्ट्रा के मुक्ति सघर्षो का भा समथन किया। मानवता क कल्याण का जा पावन-सन्देश गौतम और ईसा ने दिया था वही युगवाणी क रूप म लोकनायक नेहरू के मुख से सरस्वती कल्याणी का स्वर बन कर मुखरित हुआ—

"देते हैं सन्देश मेल का, सहअस्तित्व सिखाते।
मानवेन्द्र मॅंझधार भी रहे तट का दीप दिखाते।।
जो संदेश दिया गौतम ने, वही गीत गाते हैं।
जो संदेश दिया ईसा ने, वह ये फैलाते हैं।।
मानो नीति पुरुष के मुख से, मुखर विदुर ये वाणी।
मानो शान्ति पुरुष के मुँह पर, सरस्वती कल्याणी।'
(वही, सर्ग ३६, पृ० ६३६)

मानवता के सुखद भविष्य के मंगलाकांक्षी मानवेन्द्र के अथक प्रयत्न अभी चल ही रहे थे कि पड़ोसी और भाई राष्ट्र चीन ने धोखे से अपनी बर्बर विस्तार-वादी आकांक्षाओं की सम्पूर्ति हेतु भारत की सीमाओं पर आक्रमण कर दिया। हिमालय रक्त रंजित हो गया। युगों से भारत के गौरव का रक्षक स्वयं रक्षा के लिए पुकारने लगा। देश की मान मर्यादा पर आंच आती देखकर जवाहर नरनाहर बनकर हुँकार उठे। सम्पूर्ण राष्ट्र को बलिदान करने के लिए आह्वान किया। उन्होंने कहा—

'यह धरती अभिमानों से, यह धरती बलिदानों से।।
बलिदानों से सीमा रक्षा बलिदानों से होती जय।
तप से सिद्धि मिला करती है तप से सुरभित होती वय।।
स्वतन्त्रता बलिदानों की निधि अरमानों की थाती है।
फूलों के मिस मौन धरा यह, वीरों से मुस्काती है।।
होगी जीत जवानों से, यह धरती बलिदानों में।।"
(सीमांत, सर्ग ३७, पृ० ६४९)

लोकनायक की वाणी का विलक्षण प्रभाव हुआ। सम्पूर्ण राष्ट्र उत्सर्ग के लिए सन्नद्ध हो गया। कोटि-कोटि स्वरों में लोकनायक की ही अनुगूँज सुनाई दी कि मर मिटेंगे किन्तु भारत की मान मर्यादा को खंडित नहीं होने देंगे। दुश्मन से लोहा लेने को सम्पूर्ण राष्ट्र एकजुट हो गया। देश में एकता, बलिदान और राष्ट्रभक्ति का अपूर्व भावोदधि तरंगित हो उठा—

"भारत की मिट्टी मिट्टी से गूंजे स्वर धरती पर।
मिट जायेंगे, धरा न देंगे, सदा सहायक शंकर।।
रक्त बहुत है पर पीने को दान नहीं हम देंगे।
मर जायेंगे स्वतन्त्रता का मान नहीं हम देंगे।।

कण कण की आवाज यही थी, भारत भर हुँकारा।
तन से नाता छोड़ युद्ध में हर सैनिक फुंकारा॥
कोटि कोटि स्वर एक हो गये कोटि कोटि पग मचले।
बालक बदले, बूढ़े बदले, भोले शंकर बदले॥'

(वही सर्ग ३७ पृ० ६५४)

सम्पूर्ण राष्ट्र ने पूरी शक्ति से यद्यपि आक्रान्ता से लोहा लिया और उसे ढकेल भी दिया किन्तु आकस्मिक आक्रमण के कारण कुछ सीमान्त प्रदेश शत्रु हड़प गया। लोकनायक नेहरू को राष्ट्रीय क्षति से मानसिक आघात पहुँचा। नेहरू जी की शारीरिक रुग्णता के प्रति समय समय पर इंदिरा जी ने चिन्ता भी प्रकट की। किन्तु मानवेन्द्र ने अपने अपराजेय साहस के बल पर अपनी कर्मनिष्ठा की ज्योति को अमंद और प्रज्वलित ही रखा। पुत्री की चिन्ता का निवारण करते हुए उन्होंने अदम्य उत्साह से भरे स्वर में कहा—

"जब तक तन में श्वास इन्दिरा तब तक मैं न रुकूँगा।
बेटी! किसी कष्ट के आगे-हरगिज नहीं झुकूँगा॥
सुते! देह का अथ चले तन पाप पलायन करना।
दुःख दीप बन जाते पथ के दुःखों से क्या डरना॥
× × ×
दसों दिशाओं में जाना है अम्बर में जाना है।
सागर में गाना है मुझको पर्वत पर गाना है॥

(ध्रुवो मृत्यु सर्ग ३८ पृ० ६७३)

जीवन के अन्तिम क्षण तक नेहरू जी इसी उत्साह और निष्ठा से कर्मरत रहे। किन्तु मृत्यु ध्रुव सत्य है। कराल काल ने माली की भाँति एक दिन जवाहर गुलाब का जीवन वृन्त से तोड़ लिया। नेहरू के निधन की सूचना से सम्पूर्ण राष्ट्र शोक सिन्धु में डूब गया। मानवेन्द्र के देहावसान पर दिशाएं रो पड़ीं। चराचर में शोक-संवेदना परिव्याप्त दृष्टिगत हुई। शोक-संतप्त प्रकृति को चित्रांकित करते हुए कवि ने लिखा है—

हर दिशा से रुदन गीत आने लगे।
दर्द बढ़ा मातम मनाने लगे॥
चाँद तारे रवि सूर्य का रूप धुला।
मृत्यु के हाथ से बड़ा कमाल हुआ॥
× × ×

सिंधु बेहोश था, पेड़ बेहोश थे ॥
शोक ऐसा बढ़ा, शब्द खामोश थे ।
हर दुआ रो पड़ी, हर हवा रुक गई ।
हर दिशा का नमन, हर ध्वजा झुक गई ॥
आह ! शशि सो गया, आह ! रवि खो गया ।
आह ! क्या हो गया, आह क्या हो गया ॥"
(वही, सर्ग ३८ पृ० ६७८)

नेहरू के निधन पर विश्व भर में शोक संवेदनाएँ प्रकट की गयीं राष्ट्र ध्वज झुक गए, कवियों ने नानाविध भावांजलियाँ समर्पित कर युगपुरुष का स्तवन किया। 'मानवेन्द्र' के रचयिता ने पश्चातापपूर्ण स्वर में कहा है —

'तुम मरण पर भी वरण हो, युग युगांतर के चरण तुम ।
दान धरती के गगन को देवताओं के वरण तुम ॥
जन्म ले तुम को धरा की वेदना हरनी पड़ेगी ।
धर धरा ! धीरज मरण की अति सघन करनी पड़ेगी ॥'
(वही, सर्ग ३८ पृ० ६८७)

राष्ट्रनायक नेहरू के पश्चात भारतीय जीवन में परिवर्तन के कुछ परिदृश्य उभरे। परिवर्तन के क्रम में एक महत्त्वपूर्ण घटना थी—पाक आक्रमण। इस अवसर पर पुनः देश के नौनिहालों ने प्राणोत्सर्ग कर राष्ट्र रक्षण किया। इस अवसर पर राष्ट्र प्रेम का उदात्त स्वरूप सर्वत्र दृष्टिगत था। देश के जन जन का एक ही नारा था—

"भारतवर्ष अजेय हमारा, झंडा नहीं झुकेगा ।
कह दो झंझाओं से कह दो—दीपक नहीं बुझेगा ॥
× × ×
देशहित जीना हमारा देशहित मरना हमारा ।
देश मंदिर देश माला, देश सूरज, देश तारा ॥'
(परिवर्तन सर्ग ३९, पृ० ७१२ ७१३)

नेय पुरुष शीर्षक काव्य के अंतिम अर्थात ४० वें सर्ग में कवि ने दार्शनिक शैली में नेहरू के आविर्भाव को नारायण के अवतरण की संज्ञा दी है। सर्गांत में कवि ने मानवता के अभ्युदय की मंगल कामना की है—

'भूमा धन्य बने मानव से शक्ति यत्न से सुख हो
शिव के चरणों में कविता का, शतदल सुना सा मुख हो।

मति गति का गठ बन्धन हो, दास पुरुष की जय हो।
दास हो सब दुर्बलताओं की, आत्मतेज निर्भय हो।

(वही सर्ग ४०, पृ० ७२७)

इस प्रकार लोकनायक जवाहरलाल नेहरू के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का सर्ग क्रमानुसार मानवेन्द्र' महाकाव्य के माध्यम से अनुशीलन करने के पश्चात् हम सहज ही इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वे बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। इस सम्बन्ध में डा० भागीरथ मिश्र का यह कथन उद्धरणीय है कि—"पंडित नेहरू का व्यक्तित्व और जीवन इतना बहुमुखी था कि उसको किन्हीं निश्चित पर्तों के घेरे में बाँधना सम्भव नहीं। वे धर्मस्थानों में परम धार्मिक के रूप में दिखलायी पड़ते थे। शिकारगाह में शिकारी, खेल कूद के मैदान में खिलाड़ी, कलाकारों के बीच कला मर्मज्ञ साहित्यकारों के बीच धुरन्धर साहित्यिक राजनीतिज्ञों के मध्य में दूरदर्शी राजनीतिज्ञ तथा सामान्य जन एवं मजदूरों के बीच उनके अपने सगे बन जाते थे। मैं नहीं समझता संसार का कोई भी अन्य महापुरुष व्यक्तित्व के इस लचीलेपन और विविधता से सम्पन्न था। यह विविधता उनके व्यक्तित्व की परिपूर्णता है।'[८] युगपुरुष नेहरू के व्यक्तित्व वैविध्य को मानवेन्द्र के रचयिता ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

सेनादल में सेनानी थे, कृषकों में हलधर थे।
श्रमिकों में श्रमसाध्य सिद्ध थे, दवा में शंकर थे॥
विद्वानों में विद्याघन थे, भावुकता में कवि थे।
शान्त चन्द्रमा से शीतल थे, अन्धकार में रवि थे॥
ऋषियों में ध्रुव देव सदृश थे, तारों में ध्रुव तारे।
फूलों में थे कमल फूल वे, गुण थे प्यारे प्यारे॥
गीता सी शाश्वत बातें थीं—उस अद्भुत नेता में।
शायद यहाँ मिला द्वापर में और यहीं त्रेता में॥

(अनुताप, सर्ग २४ पृ० ४२०)

इस महान देश को महान नेतृत्व सदैव प्राप्त होता रहा है किन्तु नेहरू जी के नेतृत्व का वैलक्षण्य उसके आयाम विस्तृति और एकत्र छत्रता में है। उन्होंने पराधीन भारत के स्वाधीनता आन्दोलन और स्वाधीन भारत के निर्माणोन्मुख स्वरूप दोनों का ही अद्वितीय नायकत्व किया। स्वातन्त्र्योत्तर भारत के

---

८ रसवती, नेहरू-स्मृति अंक, वर्ष ७, अंक ७ जुलाई १९६४, पृ० २१

धुडान्त प्रशासक के रूप मे उनकी नीतिमत्ता और दूरदर्शिता आज भी राष्ट्र को फलदायी सिद्ध हो रही है। नेहरू जी ने नेता के रूप मे राष्ट्र को जो नारा सौंपा, वह भी उनके चरित्र की महानता का परिचायक है। यह नारा था—'आराम हराम है'। वस्तुत एक निर्माणोन्मुख राष्ट्र के लिये इस से श्रेष्ठ प्रेरक सदेश हो भी क्या सकता था ? मरणोपरान्त नेहरू जी की 'वसीयत', जिसमें उन्होंने शवदाह के पश्चात् भस्मी को गगा मे प्रवाहित करने तथा खेतो पर बखेरने की इच्छा प्रगट की थी, इस तथ्य को ज्ञाप्ति करती है कि इस देश की पुण्य सलिला भागीरथी और वीरप्रसू मृत्तिका के प्रति उनका अनन्य अनुराग था। वसीयत' का एक एक शब्द प० जवाहर लाल नेहरू के राष्ट्रप्रेम, उच्च सस्कारशीलता और सास्कृतिक उदात्त भाव का द्योतक है। नेहरू जी की जीवन चर्या, अभिरुचियाँ चिन्तन पद्धति, कृतित्व वशिष्ट्य और व्यक्तित्व वैविध्य उनके जीवन को पुराण गाथा के समान व्यापक, विराट और विस्तारपूर्ण सिद्ध करते हैं। ऐसे महिमामय व्यक्तित्व पर महाकाव्य सृजन कर श्री रघुवीरशरण मित्र ने निश्चयत श्लाघनीय महाप्रयास किया है।

मानवेन्द्र' महाकाव्य है, इतिहास ग्रन्थ नही। 'मानवेन्द्र' भाव सदीप्त प्रबन्धकाव्य कृति है शुष्क तथ्य सकुल आत्मकथा या जीवन चरित नही। फिर भी महाकाव्यकार का कौशल इस दृष्टि से अनुसन्धेय है कि उसने इतिहास के घटनात्मक सत्यों आत्मकथा के तथ्यों और प्रबन्ध-काव्य शली की विशेषताओ का अद्भुत सामजस्य 'मानवेन्द्र की सरचना मे प्रदर्शित किया है। 'मानवेन्द्र' की भाषा म भावसम्प्रेषण के अतिरिक्त प्रसगानुकूल शब्द विधान, उक्ति वचित्र्य लाक्षणिक प्रयोग शीलता और अलङ्कृति सवत्र द्रष्टव्य है। शैलीगत प्रयोगा का वैविध्य मित्र जी की रचना-सामर्थ्य का ही व्यजक है। काव्य मे उँगलियों पर गिने जाने लायक स्थल ही ऐसे हैं जहा इतिवृत्तात्मक नीरसता, भाषा म सपाट-बयानी और छन्दा म तुकान्तता का अतिरिक्त व्यामोह रचनात्मक शथिल्य को प्रगट करता है। नेहरू जी की वसीयत एक अत्यन्त महत्वपूर्ण स्मृति सन्दभ है किन्तु कवि ने उसका उल्लेख तक काव्य मे नहीं किया है और पाठक को यह खटकता है। 'युगो मृत्यु' शीर्षक ३८वें सग के पश्चात 'परिवतन' और 'नेव पुरुष' शीर्षक ३९वें और ४०वें सग कवि के दार्शनिक अनुचिन्तन को भले ही उजागर करें किन्तु कथाक्रम से असम्बद्ध हैं। अच्छा होता यदि कवि ने नेहरू जी की 'वसीयत' का अपने ढग से सगबद्ध करके लोकनायक की उस अन्तिम कामना की भाव-सम्पूर्ति की होती कि जिसम उन्होंने अपनी धूल से गगा की गोद को भरने तथा खेतों जगलो म बिखर कर भारती

वसुन्धरा के पार्थिव अस्तित्व में विलीन होने की अन्तिम आकांक्षा प्रकट की थी। काव्य के अन्तिम सर्ग (दीप पुरुष) की रचना में कवि का मन्तव्य नेहरू जी को नर के रूप में नारायण का अंश सिद्ध कर उनकी अतिमानवीय शक्तियों को प्रमाणित करना रहा है, किन्तु कवि की यह श्रद्धास्पद भावदृष्टि विज्ञान-युग के प्रबुद्ध पाठक वर्ग की तर्कमूलक जिज्ञासाओं और विवेक सम्मत आस्थाओं *को कितना आश्वस्त कर सकेगी, यह चिन्तनीय है ? प्रश्नचिह्नों के अन्तराल* में उभरे इन कतिपय रचनात्मक त्रुटि संकेतों के अतिरिक्त अपने सम्पूर्ण रूप में मानवेन्द्र एक श्रेष्ठकाव्यकृति है। मानवेन्द्र के महाआकार में काव्यनिबद्ध होकर लोकनायक नेहरू के विराट व्यक्तित्व ने जिस महानता और महार्घता का वरण किया है, वह उन्हें काव्य-कला के चिरन्तन क्षितिज पर मृत्युंजयी बना कर अमरत्व प्रदान करने वाली है। इस महान लक्ष्य सिद्धि की दृष्टि से 'मानवेन्द्र' सर्वथा अभिनन्दनीय महाकाव्य-कृति है।

'श्री गुरु गोविन्दसिंह' महाकाव्य
आत्मोत्सर्ग का जीवन्त समाख्यान

१७

'श्री गुरु गोविन्दसिंह' महाकाव्य

आत्मोत्सर्ग का जीवन्त आख्यान

'श्री गुरु गोविंद सिंह' महाकाव्य की सर्जन प्रेरणा के मूल स्रोत हैं—महत् चरित्र सृष्टि और जातीय जीवन को स्पन्दित करने की अदम्य आकांक्षा। गुरु गोविन्द सिंह का गौरवान्वित चरित्र मध्ययुगीन भारतीय इतिहास का उत्सर्गमय जीवन्त आख्यान है। राष्ट्रीय गौरव, जातीय स्वाभिमान, स्वदेश प्रेम, अनन्त शौर्य, अतुलनीय पराक्रम और रक्तिम बलिदान गुरु गोविन्द के यशस्वी चरित्र की उल्लेखनीय विशेषताएँ हैं। विदेशी शासकों के अत्याचारों से सन्त्रस्त और पददलित हिन्दू जाति को शस्त्र और शास्त्र उठाने का आह्वान कर गुरु गोविन्द ने जातीय अभ्युत्थान के जिस अप्रतिम अभियान का कुशल नेतृत्व किया था उसके कारण उनका चरित्र निश्चयेन महाकाव्योचित गरिमा से परिपूर्ण है। 'झाँसी की रानी' प्रबन्धकाव्य के रचयिता स्वर्गीय श्री श्याम नारायण प्रसाद ने समकालीन समाज और जीवन चेतना के गतिशील स्तरों का स्पर्शन करते हुए उसके परिप्रेक्ष्य में गुरु गोविन्द के चरित्र की महायता का आलोच्य महाकाव्य के माध्यम से महत्वांकन करके सचमुच श्लाघनीय प्रयास किया है।

काव्यारम्भ में ही कवि ने नवाब के अत्याचारों और नृशंसताओं का वर्णन करते हुए कहा है—

अल्ला हो अकबर की जय में, सब थे झुक जाते,
सुनी रहे परवरदिगार जय से थे सभी मनाते।
अनाचार से पवन प्रकम्पित पथ पर रुक जाता था,
अम्बर भी उस दम नवाब के, सम्मुख झुक जाता था॥

×　　　　×　　　　×

तन से तोड़ जोऊ हिन्दू, शिखा छिपाते जाते,
माला डार गले का चन्दन, टीका त्वरित मिटाते।

(सर्ग १, पृ० १६)

नवाब के आतंक के कारण हर हर महादेव की ध्वनि मौन हो गई थी। गुरुद्वारों की प्रभा पाप का लोहा मान चुकी थी। ऐसे वातावरण में अवतरित हुए—गुरु गोविन्द। वे बाल्यावस्था से ही निर्भीक दृढ़चेता और स्वाभिमानी थे। नवाब की सवारी को आती देख जहाँ सामान्य जनमन में सन्त्रास व्याप्त हो जाता था, वहाँ बालक गोविन्द अपनी टोली सहित राजमार्ग अवरुद्ध कर डट जाते थे। नवाब के सैनिकों की धमकियों के प्रत्युत्तर में वे कहते—

हमने जीना भी सीखा है, मरना भी सीखा है।
जाति धर्म के लिए अंगारे पर चलना सीखा है॥

× × ×

यहाँ मौन की छाती पर भी हँस हँस कर चढ़ना है।
बैठ हुताशन के आसन पर ग्रंथ सदा पढ़ना है॥

(सर्ग १, पृ० १९)

गुरु गोविन्दसिंह के आविर्भावकाल की परिस्थितियाँ अत्यन्त शोचनीय थीं। अनन्त से दिगन्त तक सघन अधर्म का निवास था। स्वजातीय गौरव का भाव नष्टप्राय हो चुका था। स्वधर्म का प्रकाश क्रूर शासकों के अमर्ष रूपी तिमिर में अन्तर्भूत हो गया था। तत्कालीन जनजीवन और समाज की दुर्दशा का चित्रण करते हुए कवि ने लिखा है—

अह कहीं बिलख रही स्वदेश की दुलारियाँ।
छिपी कहाँ कहो प्रभो! सतीत्व की कटारियाँ॥
यज्ञ की सुरभि न आज व्योम बीच खेलती।
भक्ति की लहर न आज कण्ठ कण्ठ खेलती॥
विलख रही ब्रजांगना न कृष्ण आज बोलते।
भूभूप है पड़ा अवध न राम आँख खोलते॥
भला किसे कहूँ कि लाल! लाज देश की बचा।
भला किसे कहूँ शिखा स्वजाति की अभय बचा॥'

(सर्ग २ पृ० २६)

ब्राह्मणो का कलमा पढने के लिये बाध्य किया जाता था। (सर्ग ४, पृ० ४१) स्थिति यह हो गई थी कि वे स्वधर्म त्याग कर पुराण की जगह कुरान बाचने को विवश थे। युवा वर्ग जातीय स्वाभिमान का परित्याग कर मुगलो के आगे नतमस्तक हो गया था। सम्पूर्ण समाज प्रशासकीय क्रोधानल में विदग्ध था। वातावरण इतना भयावह और दारुण हो गया था कि कवि पश्चाताप भरे स्वर मे कहता है कि—

'न एक इन्च भूमि है जो स्वत्व सत्य का पले,
न एक इन्च भूमि है जो दीप धर्म का जले।
× × ×
चली स्वधर्म का प्रखर दिनेश शेष हो गया।"
चली अनल असत्य मोह राख बीच सो गया।"
(सर्ग ११, पृ० १०५)

इन्ही परिस्थितियों मे गुरु तेगबहादुर ने गुरुद्वारे मे एकत्र सहस्रो सिक्खो से स्वधर्म और जातीय स्वाभिमान के लिए ओजस्वी वाणी में आह्वान किया। उन्होने कहा कि मुगल शासको का यह एलान कि पृथ्वी पर एक ही धर्म होगा और कुरान पढने से ही मंगल होगा, राज्यमोह है। यह क्रूर और नृशंस नृप का स्वर है धर्म का उद्घोष नहीं। हमे इस विडम्बना के प्लावन से माँ भारत को बचाना है। हम इतिहास के पुनर्निर्माण हेतु पुरुषार्थ का वरण करना है। हम हलवाले के बैल नहीं जो गाली और मार सहकर चलते रहें। न ही हम काबुल के कबूतर हैं जिन्हें पापी डकार जाए। हम उस अगस्त्य ऋषि की सन्तान हैं जिसने गण्डुलि पर रखकर अगम सिन्धु का पान कर लिया। जाति धर्म के लिए हमारे पूर्वजो ने अस्थिदान किया था सत्यरक्षण के लिए सोम के हाथों बिक गए थे। अत हमे अब प्राणो का मोह त्याग कर धर्म की ध्वजा को फहराना है—

सो अब प्राण मोह को त्यागो कफन बांध लो सिर पर।
और उड़ा दो ध्वजा धर्म की नभ मस्तक पर फर फर॥
जब तक सतलज और झेलम की नदियों मे है पानी।
तब तक जाति धर्म पर करते चलो विहँस कुर्बानी॥
(सर्ग ३, पृ० ३४)

गुरु तेग बहादुर ने स्वधर्म रक्षण हेतु अपने पाचो प्यारे शिष्यो सहित प्रयाण किया। वहाँ उन्हें प्रलोभन और भय से विचलित करने के सभी

शासकीय प्रयास निष्फल हो गए। औरंगजेब की भरी सभा में गुरु तेगबहादुर ने निर्भीक स्वर में कहा—

"शाह ! सोचते हो तेरी लोहित कटार मुझे,
सत श्री अकाल के सुपथ से हटाएगी।
शस्त्र का विजेता कभी शास्त्र नहीं जान पाया,
मौन क्या सुग्रंथ से कुरान पढ़वाएगी॥"

(सर्ग ६, पृ० ५७)

और अन्ततः गुरु तेगबहादुर ने हँसते हँसते प्राणोत्सर्ग कर दिया, किन्तु इस्लाम को स्वीकार नहीं किया। अपने पिता के शहीद हो जाने पर गुरु गोविन्दसिंह ने सम्पूर्ण हिन्दू जाति को रोष भरे स्वर में स्वधर्म रक्षण हेतु आह्वान किया। उन्होंने कहा—

'क्या यह जाति कभी भूलेगी यवनों का आघात ?
चमक उस फणीश के सिर पर मारो पवि सम लात॥'

(सर्ग ७, पृ० ६६)

गुरु गोविन्द ने अपने सन्देश में कहा कि सभी वीर शहीदी भेष धारण कर लें। भारत मां के सपूत कुसुमित कामिनी दुलार का त्याग कर कुपित कुठार धारण करें। अब प्रत्येक भवन को शस्त्रालय देवालयों को बलिवेदी तथा गुरुद्वारों को समरांगण में बदल दो। उन्होंने वीरोचित स्वर में कहा—

'जीना उसने सीखा जो पढ़ा मृत्यु इतिहास।
जिसने देखा है विभीषिका का करवाल विलास॥"

(सर्ग ७ पृ० ६६)

गुरु गोविन्द ने इतिहास पुरुषों का स्मरण दिलाते हुए कहा कि—

सूर्यचन्द्र वंश के सपूत ! तुम प्रकाश हो,
असत्य मोह के लिए बने प्रलय विलास हो।
× × ×
जवान ! राम कृष्ण के पवित्र रक्त रूप हो
महान चन्द्रगुप्त औ अशोक के स्वरूप हो॥

(सर्ग ११ पृ० १०६)

गुरु गोविन्दसिंह ने कहा कि आज देवताओं को नृत्य गान व्रतविधान या समाधि ध्यान से नहीं रिझाया जा सकता। वे युद्ध गान से ही रीझेंगे—

"नहीं हैं देव रीझते प्रसून नृत्य गान से,
नहीं हैं देव रीझते अभुक्त व्रत विधान से।
नहीं हैं देव रीझते समाधि और ध्यान से,
सही है देव रीझते हैं, वीर युद्ध गान से॥"

(सर्ग ११, पृ० १०७)

फिर क्या था? गुरु गोविन्द के उद्बोधनात्मक संदेश की जन मन पर भयकर प्रतिक्रिया हुई। सम्पूर्ण जन जीवन दावानल के समान भभक उठा। असहाय और मलीन मन वाले लाखों ने शहीदी बाना पहन कर आत्मोत्सर्ग के लिए स्वय को प्रस्तुत कर दिया—

"सुन गुरु का उपदेश समुज्वल, सब मे जागा नूतन ज्ञान।
× × ×
छोड़ शक्ति का सम्बल जो जन, बैठे थे असहाय मलीन।
× × ×
वे जन बना शहीदी बाना, उठा लिया कर मे करवाल।
ज्वालामुखी हृदय मे उनके, भभका शीघ्र हुताशन ज्वाल॥"

(सर्ग ८, पृ० ७६, ७७)

कुछ श्रद्धालु भक्तजनों ने गुरु गोविन्द देव को मणि कंचन भेंट किए। किंतु गुरु ने विहस कर कहा कि मुझे मणिकंचन की भेंट या पूजा का उपहार नहीं वरन मलेच्छ रक्त से तृषित चमकीले कटार चाहिए। माताएँ अपने पुत्रों की भेंट दें। शक्ति स्वरूपा कुल ललनाएँ अपने पतियों के कर मे मुक्त कृपाण देकर तथा बहनें मुदित मन से भाइयों के समर साज सजा कर विजय वजन्ती वरण करने के लिए विदा करें। गुरु गोविन्द के इस आह्वान का परिणाम यह हुआ कि—

रणभेरी बज उठी गुरु की, क्षत्रियत्व का ध्यारा तेज,
जिसके सम्मुख अनाचार का, भाग्य हुआ धूमिल निस्तेज॥

(सर्ग ८, पृ० ७६)

गाँव गाँव और नगर नगर में हथियार बनने लगे। सम्पूर्ण पंचनद प्रदेश स्वाभिमान में प्रमत्त होकर प्रतिशोध की अग्नि से शिव के त्रिनेत्र के समान उत्तप्त हो गया। गुरु गोविन्द को रात दिन नए नए अस्त्र शस्त्र भेंट किए जाने लगे। गुरु ने उच्च शैल शिखरों के समान प्रस्तरमय कोटों का निर्माण कराया।

अपनी युद्ध सज्जा और जातीय एकता का प्रखर रूप देखकर गुरु गोविन्दसिंह गद्गद् हो गए—

शस्त्रागार बने गुरुद्वारे, ध्वजा बनी रणक्षेत्र निशान।
हुए रौद्र रस में मतवाले, बच्चे, बूढ़े और जवान॥
रौद्र रूप गुरुदेव हो गए, गद् गद देश जाति को एक।
ऋद्धि सिद्धि आशा मण्डप में करने लगी मुक्ति अभिषेक॥

(सर्ग ८, पृ० ८०)

प्रस्तुत काव्य के द्वादश सर्ग में गुरु गोविन्द के दलबल सहित प्रयाण का दृश्य बड़ा ही रोमांचक है। सिक्ख सेनानी सिंहपूत और कालदूत के समान काल का वक्ष चीरते हुए आगे बढ़ रहे थे। उनका लक्ष्य एक ही था कि—

'व्योम में लसे अभय फूल सा हँसे अभय।
कामधेनु हो अभय, सामगान हो अभय॥

(सर्ग १२, पृ० ११२)

सिक्ख सेनानियों का नेतृत्व धर्म सेतु बने हुए गुरु गोविन्द कर रहे थे। गुरु गोविन्द श्याम तुरंग पर चढ़े हुए थे जो वायु वेग सा बढ़ रहा था। वे कहते जा रहे थे कि देश के जवानों! धर्म की नाव को पार लगाने के लिए—

'सात सिन्धु सोख लो, आसमान रोक लो।
अरि प्रवाह फेर दो, मृत्यु द्वार घेर लो॥'

(सर्ग १२ पृ० ११७)

और वे वीर—बोले सो निहाल, सत्त श्री अकाल कहते हुए शत्रुवाहिनी पर टूट पड़े। युद्ध क्षेत्र में विनाश का भयंकर दृश्य उपस्थित था। अरि वाहिनी प्रकम्पित हो त्राहि त्राहि कर उठी। काव्य के चतुर्दश सर्ग में मुगल सैनिकों और सिक्ख सेनानियों के मध्य हुए संगर का लोमहर्षक वर्णन हुआ है। कवि के शब्दों में—

रण द्विरद भर शुण्ड से नर मुंड को नभ में नचाते
फूंक कर भूधर सदृश्य दृग बन्द कर रद कड़कड़ाते।
शुंडहीन द्विरद कहीं खा मार भू पर तड़फड़ाता
मेदिनी धसती प्रकम्पित शैल डगमग लड़खड़ाता॥

× × ×

रुण्ड मुण्ड वितुण्ड से थी मेदिनी तिल भर न खाली,
मौन निरुपम थे पड़े थी सूखती व्रण रक्त लाली॥

(सर्ग १४, पृ० १३७)

युद्ध क्षेत्र में श्री गुरु गोबिन्द सिंह सेनानियों को उत्सर्ग के लिए आह्वान करते हुए कह रहे थे—

"एक एक कदम शहीदो ! तीर्थराज समान होगा,
मेदिनी अपवर्ग होगी, वीर गति का भान होगा।

× × ×

जन्म के ही साथ वीरो ! मृत्यु का इतिहास बनता,
कर्म के ही साथ धीरो ! स्वत्व का इतिहास बनता ॥"

(सर्ग १४, पृ० १३५)

अन्ततः गुरु के बाण से सेनापति अमरचन्द दीवान का प्राणान्त हुआ और मुगल सेना उखड़ गई। सिक्ख सेना की धर्म ध्वजा विजय गर्व की गरिमा से फहराने लगी।

आलोच्य महाकाव्य के उत्सर्गमय आख्यान का तृतीय सोपान गुरु गोबिन्द के फतहसिंह और जोरावर नामक दो पुत्रों के अनुपम बलिदान से अनुरंजित है। जयचन्द के समान कुपित जाति द्रोही गंगू ने प्रलोभन में आकर छद्मपूर्वक वीर जननी और दोनों लालों को मुगलों का बन्दी बनवा दिया। मौलवियों ने धर्म परिवर्तन के लिए दोनों बालकों को असंख्य प्रलोभन और प्रताड़नाएँ दीं, किन्तु ये वीर बालक अपनी धर्म निष्ठा और जातीय स्वाभिमान के प्रति अडिग आस्था धारण किए रहे। उन्होंने निर्भीक स्वर में शाह से कहा—

"जो जनमा, उसको मरना है शाह ! तनिक परवाह नहीं।
चाहे कीलों पर सुलवा दो, इसकी कुछ भी आह नहीं॥
जन्मघुटी के साथ जननि ने, हमको धर्म पिलाया है।
जाति धर्म पर तुम मर मिटना, इसका पाठ पढ़ाया है॥

(सर्ग १७, पृ० १५८)

और अन्ततः दोनों वीर बालकों को जिन्दा दीवारों में चिनवा दिया गया। उत्सर्गमयी गाथाओं के इतिहास में यह अद्भुत प्रकरण था। कवि के शब्दों में—

'वे दोनों माँ के सपूत चुन दिए गए दीवालों में।
चम चम तेज चमक कर जागा, किसलय की करवालों में॥

× × ×

बढा जाति का मान शहीदो, बलिवेदी मुसकाना म।
शोणित सिंधु अचना करता, जगो धम ! बलिदानो म ।।"

(सग १७, पृ० १६२)

दोनो पुत्रो के आत्मोत्सग से गुरु गोविन्द के मन म उभरे क्षोभ ने एक अन्तर्द्वन्द्व को जन्म दिया। वे सोचने लगे कि—

'पिता चले गए स्वधम बुद्ध दीप वारते
चले गए सपूत चार आरती उतारते।
हँसी जननी अनन्त म सुपन्थ को सवारती,
तो एक ओर धम है, औ एक ओर भारती ।।'

(सग १६ पृ० १७६)

किन्तु अन्त म वे इसी निणय पर पहुँचे कि स्वजाति और स्वधम रक्षण हेतु सघपरत रहना ही होगा। अपने तप प्रताप से जाति का उद्धार करना होगा। उन्होने दृढ सकल्प किया कि—

बिना न तप प्रताप स स्वदेश है कभी जगा
बिना न व्रत विधान से असत्य मोह है भगा।
बिना न खडग मान से प्रतान मान का तना,
बिना न शीशदान से विधान स्वत्व का बना ।।

(सग १६, पृ० १८७)

इसके पश्चात् गुरु गोविन्द ने वेश बदल कर देश भ्रमण किया। अपनी ओजस्वी वाणी से उन्होने जातीय जन जीवन म नवीन चेतना का सचार किया। उन्होंने माधवदास को (जो विरक्त हो गए थे) देश की दुदशा से अवगत कराते हुए कहा कि देश म यवनो का तूफान आया हुआ है। उनके उत्पात से अहर्निश आय भवन भस्मीभूत हो रहे हैं। काशी विश्वनाथ के धाम को ध्वस्त करके मसजिदो का निर्माण किया जा रहा है। सोमनाथ अनाथ हो गए हैं। यज्ञवेदियो पर घास उग आयी है। मन्दिरो मे उलूक निवास करते हैं ग्रन्थ और पुराण जलाए जा रहे हैं। और तुम वश की आन और धम का मान भूलकर एकान्तवास कर रहे हो। गुरु गोविन्द ने प्रेरक स्वर म कहा—

'यदि स्वदश के सारे वीर, जगपीडा स बलात अघोर।
पाकर जगत म एकान्त, ध्यान लगाकर ढूढें शान्ति ।।

सीमान्तिनी वीरता तार किसके लिए सजावे गात ?
कौन करे सिन्दूरी दान ? जिससे हो उसका सम्मान ।।
कौन करेगा शंख निनाद बसे घूम नभ प्रासाद ?
कौन पढ़ेगा श्रुति का मन्त्र ? कौन करेगा जाति स्वतन्त्र ।।"

(सर्ग २२, पृ० २००)

गुरु गोविन्द के इस प्रेरक प्रबोधन से माधवदास ने वैराग्य का परित्याग कर ग्रन्थ और खड्ग धारण किया और बन्दा नाम से देश धर्म और जाति रक्षण के कार्य में जुट गए। इस घटना के कुछ समय पश्चात दो पठान खालसा का भेष धारण कर आए और सोते हुए गुरु गोविन्द के वक्ष पर खड्ग प्रहार किया। गुरु ने जागकर अपनी असि के एक ही वार से उनके टुकड़े कर दिए। वक्ष का घाव अभी भरा भी नहीं था कि उन्होंने पांच मन भार वाले शरासन की प्रत्यंचा पर अपने भुजबल से बाण चढ़ाकर भक्त जनों के मन में जातीय स्वाभिमान का भाव जागृत किया। इस शौर्य प्रदर्शन के कारण उनके हृदय का टांका टूटकर फट गया और वे वीर बन्दा को ग्रन्थ रक्षा का गुरुतर दायित्व सौंपकर सत्यधामवासी हो गए।

इस प्रकार प्रस्तुत महाकाव्य के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि तप पूत कर्मयोगी और महान जननायक श्री गुरु गोबिन्द सिंह का जीवन चरित्र सचमुच उत्सर्ग का जीवन्त आख्यान है। धर्म, जाति और राष्ट्र रक्षण के लिए अपने पिता गुरु तेग बहादुर के बलिदान से वे स्वयं और उनके पुत्र ही अनुप्रेरित नहीं हुए वरन् सम्पूर्ण जातीय जीवन ही आत्मोत्सर्ग से आन्दोलित हो गया। लोकमंगल की पूत भावना, स्वजातीय गौरव के अभ्युत्थान की अदम्य आकांक्षा, स्वधर्म पालन की अनन्य निष्ठा और राष्ट्र सेवा का अखण्ड संकल्प गुरु गोविन्द के चरित्र की महनीय विभूतियां हैं। इन्हीं के कारण गुरु गोबिन्द का चरित्र एक साथ युगपुरुष महापुरुष और इतिहास पुरुष की उदात्त भूमिका पर अधिष्ठित होता है। उन्होंने अपने समकालीन हतचेतन जनमानस और परमुखापेक्षी समाज को धर्म परायणता, आत्म जागृति और राष्ट्रीय-गौरव की भावना से आन्दोलित करने के लिए जिस लोकोत्तर साहस और अनन्य शौर्य का दिग्दर्शन और अद्वितीय बलिदान किया, उसके कारण गुरु गोबिन्दसिंह भारतीय इतिहास चेतना के अविच्छिन्न अंग बन गए हैं।

गुरु गोबिन्द सिंह की चारित्रिक गरिमा का एक आयाम उनका कवि रूप भी है। आलोच्य महाकाव्य के भूमिका लेखक डा० हरभजनसिंह के शब्दों में—'गुरु गोविन्द सिंह हिन्दी काव्यधारा के प्रथम सचेत राष्ट्रीय कवि हैं।

हिन्दी वाङमय म उन्होने जो विद्रोहाग्नि सुलगाई, उस उन्हीं के आश्रित बावन कवियो ने प्रचण्डतर रूप देने का यत्न किया। गुरु गोविन्दसिंह की सुनिदिष्ट प्रेरणा के फलस्वरूप वीरकम और वीरकाव्य समानान्तर, जीवन्तधाराओ के रूप म प्रवाहित होने रहे।'[1] इसी सन्दभ म डा० महीपसिंह का मन्तव्य उद्धरणीय है कि—"लोगो की दुबलतापूण मानस्थिति म परिवतन लाने के लिए गुरु गोबिन्दसिंह ने जिस उपास्यदेव की कल्पना की वह भक्तिकालीन सतो का सुन्दर कोमल और मधुर रूप वाला ईश्वर नही था। उन्होन ईश्वर के उस रूप को प्रधानता दी, जो दुष्टो का दमन करने वाला रूप है। गुरु गोबिन्दसिंह के साहित्य म परमात्मा के लिए अगणित नामा का प्रयोग हुआ है परन्तु उन्ह काल नाम सर्वाधिक प्रिय था। काल को उन्होने अकाल, सवकाल, महाकाल श्रीकाल आदि नामो स पुकारा। काल के रूप म उन्होने ईश्वर के वीर और उग्र रूप की प्रतिष्ठा की। डमरू बजाते हुए फणिधर के समान फुफकारते हुए बाघ के समान दहाडते दामिनी के समान हँसते, रक्त पीने हुए, अष्टायुध धारण किए सिंह पर सवार अपनी दाढ म सभी को चबाते हुए महाकाल या महाकाली के रूप का चित्रण उन्होने अपने साहित्य म अनेक स्थानो पर किया है।"[2] इस प्रकार कवि के रूप मे गुरु गोबिन्दसिंह जी का योग महत्वपूण कहा जा सकता है। वस्तुत काव्य और शौय तथा कला चेतना और पराक्रम का सामञ्जस्य गुरु गोविन्दसिंह जी के चरित्र का वैलक्षण्य द्योतित करते हैं।

निष्कपत यह कहा जा सकता है कि कवि ने गुरु गोविन्दसिंह के महान चरित्र को महाकाव्य प्रणयन का माध्यम बनाकर अपनी लेखनी को धन्य किया है। गुरु गोबिन्दसिंह के महत चरित्र की अवतारणा के अतिरिक्त प्रस्तुत काव्य म मध्ययुगीन इतिहास का ममस्पर्शी समाख्यान तत्कालीन लोकमानस की व्यजना राष्ट्रीय चेतना के विकास का रूपाकन धर्मोत्थान के पुनीत सकल्पो और स्वजातीय सरक्षण के महाप्रयासो का विशद निरूपण होने के कारण श्री गुरु गोबिन्दसिंह का ग्रन्थ वास्तविक अर्थों म महाकाव्य और उसका रचयिता महाकवि अभिधान का अधिकारी है।

---

[1] श्री गुरु गोबिन्दसिंह—भूमिका, पृ० ६

[2] धमयुग—१६ अप्रल १९७२ पृ० २१, (डा० महीपसिंह के लेख से उद्धृत)

१८

'रामराज्य' महाकाव्य

रामकथा के परिवेश में विश्वजनीन शासनादर्शों की व्याख्या

हिन्दी रामकाव्य परम्परा की आख्यायिका का सम्बन्ध प्रमुख रूप से आदि कवि वाल्मीकि कृत रामायण से है। रामायण और महाभारत भारतीय साहित्य-साधना के अमर प्रतीक हैं। यह दोनों ग्रन्थ सहस्राब्दियों से काव्य रचना की प्रेरणा के अक्षय स्रोत रहे हैं। वसे रामकथा के प्राचीन रूप की उपलब्धि वैदिक वाङ्मय से ही होने लगती है। रामकथा की प्राचीनता का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि एतद्विषयक गाथाओं और उपाख्यानों की सृष्टि छठी शताब्दी ई० पू० से ही होने लगी थी।[1] प्रसार की दृष्टि से रामकथा विश्वव्याप्त है।[2] किन्तु रामकथा का सम्यक् स्वरूप प्रदान करने का समस्त श्रेय आदि कवि को ही है। विद्वानों का मत है कि—"विश्व साहित्य के इतिहास में शायद ही किसी अन्य कवि का प्रादुर्भाव हुआ हो जो प्रभाव की दृष्टि से भारत में आदि कवि वाल्मीकि की तुलना कर सके।[3] संस्कृत में रामकाव्य के कवियों ने तो 'रामायण' को आधार-ग्रन्थ के रूप में ग्रहण किया ही है हिन्दी के रामकाव्य रचयिताओं ने प्रेरणा प्राप्त की है। हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ काव्य ग्रन्थ 'रामचरित मानस' के प्रणेता गोस्वामी तुलसीदास ने भी आदि कवि के ऋण को साभार स्वीकार किया है। तुलसी के उपरान्त हिन्दी की सम्पूर्ण रामकाव्य परम्परा ने

---

[1] हिन्दी साहित्य कोश पृ० ६४१

[2] डा० कामिल बुल्के रामकथा उत्पत्ति और विकास

[3] हिन्दी साहित्य कोश, पृ० ६४६

रामायण को कथात्मक आधार के रूप में ग्रहण किया है। हिन्दी में मानस की रचना के अनन्तर रामकाव्यों की एक सुदीर्घ परम्परा मिलती है।[४]

राम के आख्यान को लेकर वर्तमान युग में अनेक काव्यों की रचना हुई है। आधुनिक युग के बहुचर्चित प्रबन्धकाव्यों में 'रामरसायन' 'श्रीरामचन्द्रोदय' रामचरित चिन्तामणि, कोशल किशोर, 'साकेत' वदेही-वनवास, साकेत सन्त, उर्मिला' कैकेयी' आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। वास्तव में राम का चरित्र और वस्तु य भारतीय जन जीवन की चेतना में आत्मसात हो गया है। राम का व्यक्तित्व भारतीय संस्कृति की अनिवार्य विशेषताओं (यथा सत्व, शील मर्यादा आस्था पुरुषार्थ) का संगम स्थल है। राम के चरित्र में युग जीवन की आकांक्षाओं को परितृप्त करने और मानव मूल्यों की प्रतिष्ठा करने की अमोघ शक्ति विद्यमान है। इसीलिए राम की जीवन गाथा रामकाव्यों का प्रतिपाद्य रहा है। अधिकांश काव्यों में रामचरितमानस की भांति ही कथा का विकास हुआ है। हां, कथा के प्रस्तुतीकरण और निर्वाह सभी में राम काव्यकारों का दृष्टिकोण भिन्न किंवा मौलिक रहा है। यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि चरित्र विश्लेषण को केन्द्र बिन्दु मानकर इन काव्यों में राम कथा का परिधि विस्तार हुआ है। उदाहरण के लिए, 'साकेत', साकेत सन्त, 'उर्मिला' वदेही-वनवास रावण 'कैकेयी' आदि काव्यों की रचना इनके पात्रों के चरित्र उत्कर्ष के लिए हुई है। आलोच्य महाकाव्य (रामराज्य) इसी परम्परा की रचना है। किन्तु प्रतिपाद्य की दृष्टि से डा० बलदेवप्रसाद मिश्र के रामराज्य महाकाव्य का विशेष महत्त्व है। राज्य की भांति रामराज्य की परिकल्पना भी बहुत प्राचीन है। रामराज्य शब्द आदर्श राष्ट्र और शासन व्यवस्था का सूचक है। वाल्मीक और तुलसी के ग्रंथों में रामराज्य की व्यवस्था के जिस रूप का अंकन हुआ है वह शासन-तन्त्रों के इतिहास की अद्भुत और अनोखी वस्तु है। डॉ० शम्भूनाथसिंह का मत है—" तुलसी ने रामराज्य की जो कल्पना की है, उसी को महात्मा गांधी ने लोकतन्त्र और स्वातन्त्र्य के युग में भी अपना आदर्श और लक्ष्य निश्चित किया।"[१] विद्वानों ने रामचरितमानस' का मुख्य कार्य और फलागम रामराज्य ही माना है। मानस के महत् कार्य का उल्लेख करते हुए डॉ० शम्भूनाथसिंह ने लिखा है कि— रामराज्य की स्थापना को तुलसी ने जितना महत्त्व दिया है, दूसरा

---

[४] हिन्दी साहित्य कोश हिन्दी राम साहित्य खण्ड पृ० ८६३ ६६

[१] डा० शम्भूनाथसिंह हिन्दी महाकाव्य का उद्भव और विकास पृ० ५६०

अनुमान इसी से किया जा सकता है कि रामराज्य की सुख-सम्पदा का वर्णन वाल्मीकिरामायण (उत्तर काण्ड सर्ग ६६) और अध्यात्मरामायण (युद्ध काण्ड २६) में केवल कुछ ही छन्दों में किया है, जबकि मानस में उसका वर्णन ११ दोहों (कडवकों) में हुआ है। अतः कथा की केन्द्रीय घटना की महानता की दृष्टि से राम रावण युद्ध, रावण-वध और रामराज्य की स्थापना ही मानस का महत्त्वपूर्ण कार्य है।' अस्तु—

रामराज्य की धारणा भारतीय संस्कृति और साहित्य की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि रही है। डा० बलदेवप्रसाद मिश्र ने इसी महत् कल्पना को 'रामराज्य' महाकाव्य में साकार करने का प्रयास किया है। आज के विश्व जीवन की अनेक विषम समस्याओं में आदर्श शासन व्यवस्था की स्थापना भी एक है। संसार की सभी शासन प्रणालियों और राज्य की व्यवस्थाओं में लोकतन्त्र को आज अत्यधिक महत्त्व दिया जाता है। किन्तु जनहित की भावना, लोकमंगल की साधना, सामान्य जन की सुख समृद्धि का संवर्द्धन और मानव मूल्यों का संरक्षण इस व्यवस्था के द्वारा कहाँ तक हो रहा है, आज विचारणीय है। हम विश्वसरकार (World Government) या विश्वराज्य की कल्पना कर रहे हैं। किन्तु राष्ट्रराज्यों का रूप अव्यवस्थित है। आन्दोलन और क्रान्तियों के द्वारा सरकारों के तख्ते उलट दिये जाते हैं। व्यक्ति समूह के हितों की अवहेलना कर रहा है और बहुसंख्यकों का शोषण कर रहा है। शासकों और शासितों में संघर्ष चल रहा है। व्यवस्था में सर्वत्र ही दमन, शोषण, स्वार्थ लिप्सा, प्रवंचना षड्यन्त्र और भ्रष्टाचार व्याप्त है। आखिर क्यों? जीवन मूल्यों के विघटन के कारण, राज्यादर्शों के पतन के कारण, शासक और शासित में भाव-साम्य के अभाव के कारण या सत्ताधारी की दुर्नीति के कारण? ऐसे वातावरण में 'रामराज्य' जैसे काव्यों की रचना निश्चय ही महत्त्वपूर्ण है। ऐसे काव्य प्रेरणा और प्रोत्साहन की वस्तु हैं। किन्तु प्रश्न यह है कि क्या 'राम राज्य' महाकाव्य वर्तमान जीवन की समस्याओं का प्रत्यक्ष या परोक्ष समाधान प्रस्तुत करता है? क्या उसमें युग के उन्नत बोध का प्रतिफलन हुआ है? क्या उसमें व्यवस्थाओं के व्यावहारिक आदर्श रूप का अंकन हुआ है? क्या 'रामराज्य' की रचना सच्चे मानों में रामकाव्य परम्परा को विकसित करने में समर्थ हुई है? अथवा क्या प्रस्तुत सृजन हिन्दी काव्य जगत की उपलब्धि है? इन्हीं परिसंदर्भों में 'रामराज्य' महाकाव्य का मूल्यांकन हमें अभीप्सित है।

'रामराज्य' के सृजन की मूल प्रेरणा कवि को आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी से प्राप्त हुई थी। काव्य रचना के उद्देश्य में जन समुदाय का कल्याण

और हिन्दी में सौभाग्य की श्रीवृद्धि दो प्रमुख कारण थे, जैसा कि कवि ने इसे काव्य के भूमिका भाग म स्वत स्वीकार भी किया है। निश्चय ही प्रेरणा और लक्ष्य दोनो महान् हैं। रामराज्य' के रचयिता ने इन लक्ष्यो को प्राप्त भी किया है।

रामराज्य की धारणा यद्यपि कल्पित विचारणा (Utopia) है। किन्तु रामकथा की ऐतिहासिकता उसे प्रामाणिकता प्रदान करती है। अत 'रामराज्य' के प्रणेता ने रामकथा को ही ग्रहण किया है। कथा का प्रारम्भ उस स्थल से होता है जबकि निर्वासित राम सुमन्त्र के साथ रथ पर बढकर बढ रहे हैं। इससे पूर्व के करुण प्रसगो (कैकेयी की वर-याचना और दशरथ मरण आदि) का कवि ने सकेत मात्र ही किया है। दसवें सग म राम के राज्याभिषेक का वणन है और इसके पूर्व दूसरे से दसवें सग तक परम्परित रामकथा है। काव्य के दो महत्त्वपूण सग ११ और १२ हैं जिनम क्रमश भारतीय क मानव धम की घोषणा और रामराज्य की व्यवस्था का उल्लेख है। सच पूछा जाय तो कथात्मक दृष्टि से हम काव्य की मौलिक उपलब्धि अन्तिम दो सग ही हैं। 'रामराज्य के कथा चयन हेतु कवि ने प्रमुख रूप से मानस को मुख्य आधार के रूप म ग्रहण किया है। किन्तु कवि की सूक्ष्म कल्पना और सृजन प्रतिभा के कारण इस काव्य म रामकथा अपने नवीनतम परिवेश म प्रस्तुत हुई है। मिश्रजी ने भूमिका म कहा है कि— कथा का उद्देश्य केवल कथा नही किन्तु राष्ट्रीय एकीकरण और सुराज्य स्थापना से सम्बन्धित राम के प्रयत्नो पर अपनी मति के अनुसार प्रकाश डालना है। इतिहास म यदि वतमान का प्रतिबिम्ब न हो और भविष्य के लिए प्रेरणा न हो तो उसे प्राय काव्य का विषय नही बनाया जाता। ग्रन्थकार ऐतिहासिक कथानक लिखते समय भी अपने युग को कसे भुला सकता है ? परन्तु हा उसका कत्तव्य यह अवश्य होना चाहिए कि वह ऐसी कोई बात न लिखे जो उसके कथानक के युग मे न फब सके। (भूमिका पृ० ६) स्पष्ट है कि मिश्रजी ने रामराज्य महाकाव्य की कथा निर्मिति म इतिहास की परम्पराओ के निर्वाह के साथ साथ युग चेतना का भी प्रतिबिम्बन किया है।

रामराज्य के प्रतिष्ठापक और सचालक श्रीराम हैं। कवि ने राम के व्यक्तित्व का निरूपण यथाथदर्शी लोकनायक के रूप मे किया है। वह उन्हें युग युग की प्रेरणा का धाम मानता है

नेता युग के नही, राम तो युग युग के प्ररणाधाम हैं।
पूण पुरातन चिर नवीन वे भाव स्रोत हृदयाभिराम हैं।।
(प्रस्तावना, पृ० ३)

राम ब्रह्म हो, राम विष्णु हो किन्तु राम नर तो हैं निश्चय ।
युग द्रष्टा ही नही, आप ही युग कर्ता भी जो निःसशय ।।'
(सर्ग १२, छन्द ८२)

राम सुमन्त्र के साथ रथारूढ वन गमन कर रहे हैं, उस अवसर पर उनके मन में विश्वबन्धुत्व के भाव जाग्रत हो रहे हैं

"क्या मेरा बन्धुत्व अवध की सीमा मे आबद्ध रहे ।
क्या न विश्व का मानव, खग मग तक मुझको निज बन्धु कहे ।।
बडी बात है वह मुझको तो इस पल है भारत का ध्यान ।
भरत यशस्वी हों, भारत का सर्वोदयमय हो उत्थान ।।"
(प्रथम सर्ग, छन्द २६, २७)

रामचरित के अनेक गायको ने राम रावण-युद्ध को उत्तर-दक्षिण के सघर्ष की सज्ञा दी है, आर्य और द्रविड सस्कृतियो का द्वन्द्व कहा है और इस विचारधारा को लेकर हमारे देश मे बडी विषम स्थितिया भी उत्पन्न हुई हैं । दशहरा के अवसर पर उत्तरी भारत के लोग रावण का पुतला जलाते हैं तो दक्षिण वाले राम की प्रतिमा को भी जलाने लगे हैं । मिश्रजी ने 'रामराज्य महाकाव्य म इस स्थिति का निराकरण स्वय राम के द्वारा ही बडे सुन्दर ढग से कराया है

"इसका जन-जन पावन चिन्मय, ग्राम ग्राम है अवध महान,
इसका जन जन स्वजन सजन है उत्तर दक्षिण एक समान ।
× × ×
दक्षिण यदि विकलाग रहा तो उत्तर की समृद्धि निष्प्राण,
सब अवयव हों स्वस्थ समजस, तभी स्वस्थ है पुरुष महान ।
किसी समय सम्भव है दक्षिण म भी हो ऐसे आचार्य,
उत्तर के दीक्षा गुरु हो जा और बनें आर्यों के आर्य ।।
किन्तु अभी जो अन्धकार है वहा प्रकाश जगाना है,
पुरुष परम पुरुषत्व देख ले वह सस्कृति फैलाना है ।।'
(प्रथम सर्ग, छन्द २९ ३० ३१)

इसी काव्य के अन्य अनेक स्थानो पर भी उत्तर दक्षिण की एकता की बात कही गयी है । उदाहरणार्थ, सर्ग ६/२७, १०/११, १०/४७ आदि ।

राम के उपर्युक्त कथनो म भारत की विशेषकर उत्तर दक्षिण की एकता का सन्देश है । वह दक्षिण म सास्कृतिक प्रकाश का प्रसार करने के लिए जाना चाहते हैं । इसी सर्ग म कवि ने विदेशियो की कूटनीति के कारण राज्य

की अव्यवस्था तथा ग्रामीण एवं नागरिक जीवन की सन्तुलित प्रगति का उल्लेख किया है। ग्रामीण जीवन के प्रति कवि की अनन्य आस्था है, क्योंकि भारत का यथार्थ रूप वहीं रक्षित है—

"नगर ग्राम्यों से बढ़कर हों वैभव में गुण दोषों में,
किंतु धनी हैं, ग्राम्य धन्य थे अपने दृढ़ सन्तोषों में।'
(सर्ग १ छन्द ४२)

× × ×

"जन आत्मा यदि जग न पायी तो शासन के व्यर्थ सुधार,
नगर बढ़ गये गाँव सुखाकर तो उस बस्ती को धिक्कार।
नगर बढ़ें पर साथ ही चलें बढ़ायें गाँवों को
वह विकास है, विकसित करदे जो जन जन के भावों को।'

राम के चारित्रिक शील और आदर्श विचारणा का रूप द्वितीय सर्ग में अंकित हुआ है। राम की मान्यता है कि— नहीं भोग में किन्तु त्याग में खिलता जीवन'। आधुनिक शिक्षा के रूप पर व्यंग्य करते हुए कवि ने कहा है कि

"ज्ञान नक्षत्रों को यदि लिया आप अपने से रहे अजान।
बुद्धि से भरा तर्क विस्तार, किया संकीर्ण हृदय का मान॥
ग्रन्थ के बोझ, पन्थ के बोझ खो गयी जिनमें मन की शान्ति।
ज्ञान की साक्षरता वह कौन, ज्ञान है वह तो केवल भ्रान्ति॥

शिक्षा का उद्देश्य यह है कि

कुजन हों सज्जन सज्जन शान्त, शान्त हों भव बन्धन मुक्त।
मुक्त हो जो वे आगे बढ़ें, करें औरों को भी उन्मुक्त।
यही शिक्षा का है ध्रुव ध्येय, न लद चलना उसको स्वीकार।
मनुज की मानवता बढ़ जाय, रचो प्रिये ऐसे रुचिर उपाय,
यही लक्ष्मण ! शिक्षा उद्देश्य, इसी से विकसित जनसमुदाय।'

भारतीय संस्कृति को आधार मानकर विश्वप्रेम सह अस्तित्व और सर्वजन हिताय की घोषणा इस प्रकार की गयी है

नहीं चाहते हम कि बढे साम्राज्य हमारा
काम्य यही है बढ़े शिवद् संस्कृति की धारा
गोरे काले लाल कि पीले जग के वासी,
समझें चातुर्वर्ण्य और ही हो सुख रासी।
(सर्ग ५ छन्द ३४)

विज्ञान युग की भौतिक प्रगति के प्रति भी लेखक जागरूक है, किन्तु भारतीयता की पुनीत भावना से ओत प्रोत होने के कारण जीवन के आध्यात्मिक

और सर्वोच्यो मूल्य ही उसे अधिक काम्य हैं। राम लका विजय के उपरान्त विभीषण का सदेश देते हुए कहत हैं

"असली अथ मनुजता ही है सात्विकता जिसके अनुरूप।
राजस तामस चित्तवृत्तियाँ, कर न सकें उनको अपरूप।।
उन्हे उदात्त बना दो जिसमे, निच निशाचरता मिट जाय।
प्रजा तुम्हारी सच्चे हित म, हो जाय विश्व सहाय।।"

सग ११ और १२ मे रामराज्य की अभूतपूव कल्पना साकार हुई है। ११वें सग के प्रारम्भ में ही कवि ने कहा है कि राम के राजा होते ही धम की घोषणा हुई। इसी म रामराज्य का रूप प्रकट हुआ है। घोषणा मे कहा गया है कि

'तभी राष्ट्रीयता होगी सुदढ इस देश की,
जब भिन्न-जनों मे भी, एक सस्कृति साम्य हो।"

कवि ने वर्णाश्रम धम यवस्था के नियम पर भी बल दिया है। राष्ट्रीय आचार का उल्लेख करते हुए कवि ने व्यक्ति की स्वाधीनता पर बल दिया है

'वही राष्ट्रीय आचार, व्यक्ति का समझा गया,
राष्टीयता विरुद्धमय जो सहायक हो सके।
(सग ११, छद ७८)

× × ×

राष्ट्र या जाति या व्यक्ति को अधिकार है,
जिये और फूले फले, अविरोधी प्रकार से।
राष्ट्र जाग्रत है तो व्यक्ति जाग्रत जानिए,
राष्ट्र ही सो गया, तो व्यक्ति फूला फला कहा।"

रामराज्यकार का मत है कि एक एक व्यक्ति के सुधार से राष्ट्र का निर्माण हो सकता है। किन्तु राष्ट्रहिताथ व्यक्तिस्वाथ का बल ही वाछनीय है

'यदि प्रत्येक ही व्यक्ति अपने को सुधार ले,
तो राष्ट्र का सुसस्कार, सुसाध्य कितना बने।
विरोध यदि हो 'राष्ट्रस्वाथ' औ व्यक्ति स्वाथ मे
तो राष्ट्रहित म व्यक्तिहित का स्वाथ त्याज्य है।"

इसी सग म सभी राष्ट्रवासियों के लिए पच प्रतिज्ञाओ की घोषणा की गयी है जिसके अनुसार रामराज्य का प्रत्येक निवासी सवधमसहिष्णु स्वावलम्बी, मितव्ययी, सदाचारी और सदविचारी बनने की प्रतिज्ञा करता है। सर्गांत में मानव महिमा और लोक कल्याण की भावना को सर्वोपरि कहा गया है

मनुष्य मे महाशक्ति, जागे सो शिव के लिए।
मनुष्य के लिए श्रेष्ठ यही धर्म है ॥
मनुष्य ही महासत्य मनुष्य मन के लिए।
वही परम आराध्य वही प्रत्यक्ष विष्णु है ॥
व्यक्ति की प्रेरिका होवे लोक कल्याण भावना।
सनातन सुखोद्रेकी सही वष्णव भाव है ॥

द्वादश सर्ग की कथावस्तु मर्मस्पर्शी और करुणापूरित गाथा है जिसमे सीता के निर्वासन और रामराज्य का उल्लेख है। रामराज्य के व्यावहारिक रूप का स्पष्टीकरण भी इसी सर्ग म हुआ है। रामराज्य मे राजा का प्रजा के प्रति व्यवहार लोक इच्छाओ की पूर्ति और सर्वजन सम्मान की भावना आदि का वर्णन है। रामराज्य म पच परमेश्वर के तुल्य था ग्रामो का जीवन स्वर्ग के समान था सहकारिता म लोगो को विश्वास था। विज्ञान के आविष्कार भी सहार नही, सृजन के लिए होते थे

पचो मे परमेश्वर बसते पचायती राज सुख छाये।
पाये थे पथ ने ऐसे पचशील के तत्त्व सुहाये ॥
सहकारिता खिली पडती थी कृषियो म गृह उद्योगो म।
सामूहिकता का महत्त्व था विविध उत्सवो सुख भोगो म ॥
गाँव-गाँव म पूर्ण स्वच्छता गाँव गाँव के सुपथ मनोरम।
गाँव गाँव क सुख सुविधामय देव गृहोपम सदनो के क्रम ॥
वैज्ञानिक आविष्कारो के नित्य प्रयोग हुआ करते थ।
किन्तु सहारक बातो पर विज्ञानी निजमन धरते थे ॥

इस प्रकार रामराज्य का चित्रण भी कवि ने यथार्थ की भूमिका पर युगीन सन्दर्भो म प्रस्तुत किया है। रामराज्य क सम्बन्ध म प्राय यह भ्रान्ति हुआ करती है कि यह राजतन्त्रीय व्यवस्था (Monarchy) है जो आज की सर्व जनतन्त्रीय-व्यवस्था (Democracy) के प्रतिकूल है। किन्तु यह उल्लेखनीय है कि रामराज्य की शासन व्यवस्था सच्चे मानो म राजा और प्रजा की सम्मिलित व्यवस्था है। राजा तो प्रजा की भावनाओ और इच्छाओ की पूर्ति का माध्यम मात्र है। यथा

महाराज श्री रामचन्द्र न रामराज्य इस भाँति चलाया।
राजतन्त्र या प्रजातन्त्र है भेद न यह कोई लख पाया ॥

कवि न उचित ही कहा है कि

रामराज्य इस क्षणिक जगत् या जिसने मानव मूल्य सिखाया।
असुरो का या कुत्सित मन स, नर भगवान निमूल कराया ॥'

यही कारण है कि शताब्दियों के उपरान्त भी रामराज्य की धारणा हमारी राज्य कल्पना का आदर्श है। मिश्रजी ने ठीक ही लिखा है कि—'श्रद्धेय महात्मा गांधी ने रामराज्य और सुराज्य को समानार्थक मानते हुए इस नाम के प्रति भारतीयों में पर्याप्त उत्सुकता जाग्रत कर दी है रामराज्य एक कल्पना ही सही, परन्तु वह ऐसी कल्पना है जो व्यवहार में भी असीम लाभप्रद हो सकती है।' (भूमिका पृ० ६, १०)

यहां तक हमने काव्य की रामराज्य विषयक विचारणा पर विचार किया। कवि की अन्य मान्यताएँ इस प्रकार हैं

नारी को कवि ने पुरुष का पूरक माना है। इसे शक्ति की सत्ता से सम्बोधित भी किया है। यथा

"तत्त्व यदि नर है नारी शक्ति, कहा ऋषि पत्नी ने यह आप।
उभय का होना जब सहयोग, जगत का चलता कार्य कलाप॥
बुद्धि है नर तो नारी भाव, इष्ट हो नर को जग कल्याण।
किन्तु है नारी का यह धर्म, करे वह उत्तम नर निर्माण॥
रही नारी है भावुक सदा, न भावुकता में बहना श्रेष्ठ।
नियन्त्रक भावुकता का पुरुष, इसी से पुरुष कहाता ज्येष्ठ॥
न कोई हीन न कोई उच्च उभय का अपना अपना मान।
उभय समझें अपने कर्तव्य, प्रकृति नियमों का रखकर ध्यान॥"

'रामराज्य' के रचयिता के शब्दों में कविता और साहित्य की परिभाषा निम्नांकित प्रकार है

'कविता सविता ज्योति शशांक सुधा है।
कविता मन्त्रों से वेद प्रबुद्ध हुआ है॥
हित सहित रहे साहित्य वही सुन्दर है।
जो समुदय अक्षर करे, वही अक्षर है॥'

कवि की महिमा और कर्तव्य का उल्लेख इस प्रकार किया गया है

कवि चाहे नर को अमर करे स्वर द्वारा।
कवि चाहे जन इतिहास बदल दे सारा॥
जन जन के अक्षर तत्त्व जगाता है कवि।
दिक्-काल बन्ध सब आप भगाता है कवि॥

जीवन के प्रति मिश्रजी का दृष्टिकोण यह है

जीवन आशा उल्लास सुखों का घर है।
जीवन नभ सा विस्तीर्ण न वह नश्वर है॥

इस विस्तृत नभ पर विघ्न मेघ से आये।
यह सम्भव ही है नहीं कि उसे मिटायें।।"

इस प्रकार 'रामराज्य' महाकाव्य में राज्य के आदर्श रूप के साथ साथ मानवतावादी जीवन दृष्टि का भी विकास हुआ है। कवि ने विज्ञान युग के विकास और ह्रास प्रगति और पतन के परिप्रेक्ष्य में रामराज्य की प्रतिष्ठा का आग्रह किया है। राष्ट्रीय एकता, शाश्वत जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा ग्राम्य जीवन की महत्ता, सहकारिता, पंचशील आदि जीवन प्रेरक प्रवृत्तियों के निरूपण के कारण इस काव्य में रामकथा का युगीन पुनराख्यान हुआ है। 'रामराज्य' काव्य में उत्तर दक्षिण की अभेद स्थिति का निरूपण निश्चय ही रामकथा के विकास में एक नवीन अध्याय की सृष्टि करता है। एक प्रकार से रामकथा के नायकों की एक त्रुटि का कवि ने मार्जन किया है। उद्देश्य की महानता, विवेचन की गम्भीरता, शैली की उत्कृष्टता, शिल्प विधि के समुन्नत स्वरूप, चरित्र विश्लेषण की मानवतावादी पद्धति, पौराणिक कथातत्व के पुनर्मूल्यांकन और कलात्मक औदात्त के कारण 'रामराज्य' महाकाव्य निश्चय ही हिन्दी काव्य जगत की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। आज के युग जीवन में ऐसी रचनाओं का स्थायी महत्त्व है। मिश्रजी भारतीय संस्कृति के अनन्य उपासक रहे हैं। उनके कृतित्व से हिन्दी साहित्य का उत्कर्ष हुआ तथा भारतीय संस्कृति की अखण्डता सिद्ध हुई है। 'रामराज्य से पूर्व कोशल किशोर और साकेत सन्त' जैसी अनुपम कृतियों से वह हिन्दी साहित्य भण्डार की पूर्ति कर चुके हैं। उनका तृतीय महाकाव्य (रामराज्य) हिन्दी जगत में अभिनन्दनीय है। भविष्य में भी वे हिन्दी संसार का ऐसी कृतियाँ प्रदान करेंगे, ऐसी आशा है। रामराज्य के कवि की मंगलाशंसा श्लाघनीय है—

'त्रेता युग का रामराज्य वह कलियुग को आलोक दिखाये।
जिसकी प्रबल प्रेरणा पाकर, शासन स्वप्न सत्य बन जाये।।
भारत की सीता समृद्धि को रावणत्व से मुक्त कराकर।
मिट जाय रावणत्व मनुज का, ऐसे योग रचें विश्वेश्वर।।
(द्वादश सर्ग, पृ० १६८)

'लोकायतन' महाकाव्य

विकासकामी मानवता के जीवन-सत्य की भागवत-कथा

१९

'लोकायतन' महाकाव्य

"विकासकामी मानवता के जीवन-सत्य की भागवत-कथा"

कविश्री सुमित्रानन्दन पन्त की सुदीर्घ कालीन-काव्य साधना के क्रम में 'लोकायतन' महाकाव्य का प्रणयन अभूतपूर्व है। 'लोकायतन' महाकाव्य न केवल पन्त जी की काव्य साधना की चरम उपलब्धि है अपितु यह आधुनिक हिन्दी महाकाव्य परम्परा की भी गौरवान्वित प्रबन्ध काव्य-कृति है। इसी तथ्य की ओर संकेत करते हुए श्री इलाचन्द्र जोशी ने कहा है—" 'लोकायतन' हिन्दी के मध्ययुगीन और आधुनिक महाकाव्यों की परम्परा के साथ एक अत्यन्त महत्वपूर्ण और नवीनतम कड़ी के रूप में जुड़कर हमारे सामने आता है। इस महाकाव्य की विशिष्टता का एक कारण यह है कि इसमें पन्त जी की जीवन व्यापी साधना एक ऊँचे धरातल पर उभर कर समग्र युग के बिखराव को समेटती और सजोती हुई अपनी सिद्धि के महाकाल के परिप्रेक्ष्य में लाकर खड़ा कर देती है।"[1] 'लोकायतन' सचमुच लोकचेतना का महाकाव्य है, जिसमें भारतीय लोकभूमि को आधारमान बनाकर विश्वजीवन की संक्रमणशील परिस्थितियों और विघटनशील जीवन मूल्यों के परिवेश में विकास कामी मानवता के गतिशील चेतना स्तरों को स्थापित किया गया है।

पन्त जी ने सदैव से ही काव्य-सृजन को एक सचेतन सांस्कृतिक प्रक्रिया के रूप में स्वीकार किया है और युग जीवन की चेतना और प्रवृत्तियों के अनुरूप काव्यकृतियों का प्रणयन किया है। यह तथ्य विभिन्न युगों में रचित काव्य कृतियों के द्वारा प्रमाणित हो जाता है कि पन्त जी की काव्य चेतना

---

[1] 'आलोचना' त्रैमासिक स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी साहित्य विशेषांक, भाग १, जून १९६५, पृ० १८५

निरन्तर विकासशील रही है। प्रकृति प्रेम और सौन्दर्य नामक निबन्ध का काव्यकर्त्ता छायावादी कविवर्य यदि वीणा', ग्रन्थि, पल्लव और 'गुञ्जन' में दिखाई देता है तो श्रमिक, कृषकों, पीड़ितों और पददलितों से सहानुभूति प्रकट करता हुआ कवि पन्त 'युगान्त', 'युगवाणी' और ग्राम्या में दृष्टिगत होता है। प्रारम्भिक काव्यकृतियों में कवि दृष्टि सौन्दर्य मूलक, आत्मोन्मुख, काल्पनिक भावुक और प्रकृति प्रेरित है तो 'प्रगतिवादी काल' की कृतियों में यथार्थ प्रिय, बहिर्मुखी युगसचेत, भौतिक बौद्धिक और मार्क्सवादी विचार दर्शन से आन्दोलित प्रतीत होती है। काव्य-साधना के तृतीय चरण में कवि महर्षि अरविंद के ऊर्ध्व चेतन भावबोध से अनुप्रेरित होकर सांस्कृतिक काव्य सृजन में प्रवृत्त होता है। 'स्वर्णकिरण' स्वर्णधूलि, मधुज्वाल 'युगपथ' 'उत्तरा' अतिमा', वाणी युगान्तर कला और बूढ़ा चाँद नामक काव्य संकलन तथा रजत शिखर, शिल्पी सौवर्ण शीर्षक काव्य रूपकों में अरविन्द दर्शन की ऊर्ध्व चेतना विकासात्मक अन्तर्बाह्य जड चेतन समन्वित सामंजस्यवादी चिन्तनधारा का पुष्कल प्रभाव स्पष्टत परिलक्षित होता है। काव्य चेतना के इस विकासक्रम को व्याख्यायित करते हुए पन्त काव्य के एक समीक्षक ने उचित ही लिखा है कि — पन्त जी के काव्य भवन का स्वर प्रकृति के विशाल प्रांगण से प्रारम्भ होकर प्रेम की परिधियों में श्वास लेकर लोक कल्याण के पथानुगामी साम्यवाद को स्वीकार करता हुआ अन्त में मानवात्मा और सांस्कृतिक उत्थान के लिए अध्यात्म में विश्राम लेता है।[1] पन्त जी की काव्यसाधना में विषय वैविध्य और चेतना स्तरों में परिवर्तन होते हुए कहीं बिखराव नहीं है। सुश्री महादेवी वर्मा के शब्दों में — उनका काव्य जीवन के विरल क्षणों में बिखरा नहीं है प्रत्युत वह प्रत्येक क्षण को जोड़ता हुआ उसी प्रकार संश्लिष्ट होता गया है जैसे स्वर की सम विषम विभिन्नता और उसके आरोह अवरोह किसी रागिनी में संश्लिष्टता प्राप्त कर लेते हैं। उनकी रचना ऐसे स्रष्टा का सृजन है जो युग के अन्तर्जगत में अभिव्यक्ति के लिए विकल भावनाओं और विचारों को वाणी देता है। जीवन के मांगल्य लक्ष्य के प्रति उनकी आस्था अद्भुत और साधना अडिग है।[1] अस्तु स्पष्ट है कि पन्त जी युग चेतना के कवि रहे हैं और उनकी काव्यकृतियों में युगीन

---

[1] युग कवि पन्त की काव्यसाधना (विनयकुमार शर्मा), पृ० ५३

[1] श्री सुमित्रानन्दन पन्त स्मृतिचित्र पृ० १७१ १७२

चिन्तनधाराओ की सफल समाहृति, समकालीन जीवन बोध की सटीक व्यजना और मनीषिया के चिन्तन का पुष्कल प्रभाव देखकर उनके काव्य को 'युग चेतना का काव्य' कहा जा सकता है।

उपर्युक्त विवेचन के आलोक में यदि हम 'लोकायतन' की सृजन प्रेरणा और रचनात्मक सोद्देश्यता पर विचार करें तो स्पष्ट प्रतीत होता है कि इस प्रबन्ध काव्य मे पन्त जी की काव्यसाधना का चरम निदर्शन है। लोकमागलिक आस्थाओ, शाश्वत जीवन मूल्यो की प्रस्थापना के आग्रहो, युगचेतना के परिवर्तनशील स्तरों सास्कृतिक निष्ठाओ, आध्यात्मिक मान्यताओ, विश्वजीवन में परिव्याप्त नैतिक सक्रमणशीलता तथा वैज्ञानिक सभ्यता के अभिशापो और वरदानो को 'लोकायतन' के महाकार काव्यदर्पण मे कवि ने मनोयोगपूर्वक प्रतिबिम्बित किया है। इसीलिए 'लोकायतन' को लोकचेतना की महागाथा सर्वांगीण चेतना का उद्गीथ',[४] अन्तर्मुखी रस से प्लावित बहिर्मुखी लोक जीवन की अमरगाथा[५] तथा 'दार्शनिक और व्यवहारिक सम्भावनाओ का लक्ष्य प्रधान भविष्योन्मुखी काव्य'[६] कहा गया है।

वीणा से 'वाणी' तक की काव्य यात्रा मे पन्त जी को कविवर और कविश्री होने का श्रेय तो प्राप्त हुआ किन्तु 'महाकवि' अभिधा के अधिकारी वे लोकायतन के प्रणयन के पश्चात ही हुए। वस्तुत 'महाकाव्य जातीय जीवन और सास्कृतिक चेतना के आकलन के भव्य प्रयास होते हैं। उनमे गम्भीर समस्याओ का महत्वपूर्ण निदान होता है। इसीलिए ये काव्य 'महा' विशेषण से विभूषित किये जाते हैं और उनके रचयिता 'महाकवि' कहलाते हैं।'[७] 'लोकायतन' का रचयिता महाकाव्य की कार्यगत महाधता से पूर्णत परिचित था इसीलिए उसने अपनी काव्यसाधना के प्रौढ और परिपक्व स्तर पर पहुँच कर एक महाकाव्य का सृजन किया। ऐसा महाकाव्य जो शिल्पगत वैशिष्ट्य और जीवन दर्शन सम्बन्धी उपलब्धियों, दोनों ही दृष्टियो से महत्वपूर्ण है। इसी प्रसग मे पन्त जी की महाकाव्य सम्बन्धी अवधारणा का अवलोकन भी

---

[४] समीक्षालोक—सुमित्रानन्दन पन्त विशेषाङ्क—वर्ष ३, अक १ २ अक्तूबर १६७२ पृ० ६६, डॉ० राजवशसहाय का लेख

[५] वही पृ० १०४, डा० ब्रजबिहारी तिवारी का लेख

[६] डा० सावित्री सिन्हा तुला और तारे, पृ० १६५

[७] डा० देवीप्रसाद गुप्त, हिन्दी महाकाव्य सिद्धान्त और मूल्याकन, पृ० ३७८

समीचीन होगा। श्री गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश' के 'तारकवध' महाकाव्य के प्राक्कथन में 'लोकायतन' के प्रणयन से पूर्व पन्त जी ने लिखा था— 'महाकाव्य कवि का विराट मानस प्रासाद होता है, जिसका विन्यास विधाता की ही सृष्टि कला का नमूना होता है, जिसके अन्तःपुर में बटना आसान नहीं होता। महाकाव्य के निर्माण में कवि अपने समस्त जीवन की व्यापक गम्भीर, सूक्ष्म, बहुमूल्य अनुभूतियों का मानव कल्याण के लिए उपयोग एवं कलात्मक प्रयोग करता है, उसके भीतर देश, जाति या विश्व भावना की अनेक पीढ़ियों का जीवन सत्य निवास करता है। संक्षेप में, महाकाव्य मानव सभ्यता के संघर्ष तथा सांस्कृतिक विकास का जीवन्त मूर्तिमान दर्पण होता है जिसमें अपने युग को देखकर मानवता अपने को पहचानने में समर्थ होती है।'[१] और यह प्रसन्नता तथा सन्तोष का विषय है कि पन्त जी ने महाकाव्य सम्बन्धी स्वकीय धारणाओं के अनुरूप ही 'लोकायतन' की रचना की है।

'लोकायतन' का प्रकाशन यद्यपि सन् १९६४ में हुआ और कवि के कथनानुसार 'लोकायतन' का श्रीगणेश मैंने ८ अक्टूबर सन् '५६ को किया था। संयोगवश ८ अक्टूबर सन् '६३ को ही समाप्त भी हो गया।'[२] तथापि इस काव्य की प्रेरक भूमिका का परिनिर्माण द्वितीय विश्व युद्ध की विभीषिका के भयावह वातावरण और राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन के समापन चरण (सन् १९४२ के 'भारत छोड़ो आन्दोलन') में ही हो गया था। 'श्री बच्चन के इलाहाबाद स्थित बंगले पर सन् ४२ में लोकायतन नामक संस्था की स्थापना का कवि संकल्प द्रष्टव्य है।'[३] बापू के निधन के पश्चात् श्री बच्चन जी के निवास स्थान पर ही 'लोकायन' की स्थापना की पुनः चर्चा हुई और संस्कृतज्ञ विद्वान के सुझाव पर इसका नाम 'लोकायतन' किया गया। इस संस्था की स्थापना समिति के सदस्य चुने गये नियमावली प्रकाशित हुई, संस्था का रजिस्ट्रेशन हुआ और उत्तर प्रदेश प्रशासन द्वारा संस्था को दस हजार रुपये का अनावर्तक अनुदान भी प्राप्त हुआ। धनाभाव ने 'लोकायतन' की स्थापना के संकल्प को ठेस पहुँचाई और पन्त जी आकाशवाणी की सेवा में निरत हो गये।'[४] 'लोकायतन' या 'लोकायन' की संस्थापना के लिए पन्त जी की तीव्रा

---

[१] तारकवध (महाकाव्य) प्राक्कथन, पृ० १

[२] लोकायतन— 'ज्ञातव्य' से उद्धृत

[३] कवियों में सौम्य संत—बच्चन, पृ० ७४

[४] वही पृ० ७७-७८

~~कांक्षा का अनुमान उनके द्वारा बच्चन~~ जी को लिखे गये पत्रो से लगाया जा सकता है।''[११] इस विवेचन स प्रगट होता है कि 'लोकायतन' काव्य का प्रणयन कवि के एक महत् भाव-सकल्प का मूर्त्तरूप है।

'लोकायतन' मे वर्ण्य विषय और प्रतिपाद्य का सूक्ष्म विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि साम्प्रतिक विश्वजीवन मे विघटनशील और ह्रासोन्मुखी भौतिक एव वज्ञानिक सभ्यता की कृत्रिमताओ, विकास के विध्वसक रूपो तथा परिवेश जन्य विसगतियो को उजागर करने की महत्वाकाक्षा ने कवि को सृजन प्रेरित किया है। सुदरपुर नामक काल्पनिक जनपद की गाथा तो निमित्त मात्र है। वस्तुत कवि हमारे समकालीन जीवन और युग की विनाशकारी सम्भावनाओं को अनुभूत सवेदन सत्य के रूप म रूपायित करना चाहता है। 'लोकायतन' की सृजन प्रेरणा के इस आयाम को समझने के लिए हमे वतमान युग की असाधारण परिस्थितियो के अन्तराल म भी प्रविष्ट होना पडेगा। 'विश्व इतिहास का वतमान युग कोई साधारण युग नही है। यह एक वध्या वज्ञानिक सभ्यता के विकास की चरमावस्था का युग है, जो हजारो वर्षों से विकास प्राप्त महान मानवीय मूल्यो को कुचल कर, सामूहिक मानवीय प्रगति की प्राकृतिक रेखा को बीच म ही लाघकर कुछ विचित्र ही प्रकार के वैयक्तिक, सामाजिक आर्थिक राजनीतिक और सास्कृतिक उलझनो म अपने आप का उल झाता हुआ महानाश की मरीचिका की मोहक ज्वालाओ की ओर तेजी से भागता चला जा रहा है।''[१२] श्री इलाच द्र जोशी इसी क्रम म युग विश्लेषण करते हुए लिखते हैं कि— दूसरे महायुद्ध के बाद सारे ससार म ऐसी उलझी हुई समस्याएँ और चक्रजालपूण परिस्थितियाँ उत्पन्न हो गई हैं कि उनके समुचित समाधान या सही व्यवस्था के लिए रास्ता ही अ तर्राष्ट्रीय नेताओ को नही सूझ पा रहा है। आज केवल राजनीतिक या आर्थिक क्षेत्रो म ही हम अव्यवस्था, अशान्ति और असतोष नही पाते, बौद्धिक और सास्कृतिक क्षेत्रो म भी एक विचित्र विशृखलता लक्ष्यहीनता, आत्मविद्रोह जीवन और प्रकृति के नियमो के अस्तित्व या उपयोगिता के प्रति सशय, विराट सष्टि की नियामिका शक्ति के प्रति मूलगत अविश्वास और अनास्था का बोलबाला सवत्र दिखाई देता है। मनुष्य आज लाखो वर्षों से चली आ रही, क्रमिक विकास सम्बन्धी

---

[११] कवियों मे सौम्य सत, बच्चन पृ० ५६ ५७, ७१, ७२, ७६

[१२] समसामयिक हिन्दी साहित्य उपलब्धियाँ—सम्पादक श्री मन्मथनाथ गुप्त, पृ० ३४

प्रगति के इतिहास के प्रति केवल उदासीन ही नहीं अविश्वासी भी हो चला है। जड़ विज्ञान की हवाई प्रगति से इतराया हुआ आज का यान्त्रिक मानव सर्वध्वंसी, वन्ध्या राजनीति के हाथ अपनी आत्मा बेच चुका है। पर जब चारों ओर रक्तपात की सन्ध्या का धुंधलका छाया हो ह्रास और विनाश की व्यापक योजनाओं के ऊपर प्रलय मेघों से घिरी कराल काल रात्रि सघन से सघनतर होती हुई, घिरती चली आ रही हो तब किसी महाकवि की वाणी अपने भीतर की घुटन में बंधी भी नहीं रह सकती। लोकायतन' सामूहिक जीवन की ऐसी ही परिस्थितियों में लिखी गयी महाकृति है जो कवि की उप चेतना से चारों ओर घिरी दीवारों को तोड़ फोड़ कर, ढाकर, बाहर से मुक्त और विस्तृत प्रांगण में असंख्य धाराओं में प्रवाहित होकर, उदात्त भावों, प्रतीकात्मक चित्रों और गहन विचारों के रंग बिरंगे फूलों को सहज भाव से खिलाती चली जाती है। वर्तमान युग विश्लेषण के परिप्रेक्ष्य में लोकायतन का रचनात्मक सार्थक्य यह प्रमाणित करता है कि आलोच्य कृति का रचनाफलक विराट है प्रतिपाद्य उदात्त है सर्जनात्मक आयाम विस्तारपूर्ण हैं और भाव संवेदन विश्वव्यापी सचेतन रचनाधर्मिता से अनुबद्ध है। इसी व्याप्ति के कारण कविश्री पन्त के दार्शनिक अनुचिन्तन की उपलब्धियाँ भावजगत की अनुभूतिपरक सक्रान्तियाँ, सचेतन मनस के संकल्प विकल्प सामूहिक अचेतन से प्रादुर्भूत रचनात्मक प्रतिक्रियाएं और मानवता के मंगल विधान की शाश्वत कामनाएँ 'लोकायतन' के वृत्त में समाहित हो गई हैं।

'लोकायतन' की सृजन प्रेरणा और रचनात्मक सोद्देश्यता के उपयुक्त विश्लेषण के अनन्तर जब हम काव्य के समीक्षण में प्रवृत्त होते हैं तो सर्वप्रथम हमारी दृष्टि इतिवृत्त विधान की ओर उन्मुख होती है।

पन्तजी ने काव्य के प्राक्कथन में लोकायतन को इतिवृत्तात्मक दृष्टि से 'युग जीवन की भागवतकथा तथा सक्रान्तिकाल की युगगाथा' कहा है। वस्तुतः इस काव्य का कथापट तथ्य और कल्पना के मिश्रित सूत्रों से बुना गया है। भारतीय स्वाधीनता संघर्ष से सम्बद्ध घटनाएँ ऐतिहासिक सीता राम, वाल्मीकि आदि के सन्दर्भ पौराणिक तथा सुन्दरपुर जनपद का उपाख्यान काल्पनिक हैं। लोकायतन' के इतिवृत्त में एक ओर 'महाभारत' के समान व्याप्तिऔर विस्तार है जिसका नियोजन कवि ने इतिहास पुराण धर्म दर्शन और विश्व भ्रमण के प्रसंगों द्वारा किया है तो दूसरी ओर सुन्दरपुर नामक अंचल में कलामन्दिर की स्थापना से सम्बद्ध काल्पनिक कथासूत्र नितान्त विरल दिखाई देता है।

सच तो यह है कि 'लोकायतन' कथाप्रधान प्रबन्धकाव्य है ही नहीं। 'लोकायतन' 'कथा प्रधान न होकर बुद्धि प्रधान रचना है।"[१४] डॉ० तिवारी के अनुसार भी—''लोकायतन' कथाप्रधान नहीं कथ्य और विचार प्रधान काव्य है। विचार की गहन वीथियों में कथासूत्र यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं।"[१५] श्री इलाचन्द्र जोशी के अनुसार 'ऐसे मसृण तन्तु से इस काव्य-कथा का पटन' बुना गया है जो मकड़ी के जाले के तन्तु से भी अधिक सुकुमार है।'[१६] इसी प्रकार का मत प्रगट करते हुए डॉ० सावित्री सिन्हा ने लिखा है—'कवि का उद्देश्य कथा कहना नहीं है 'लोकायतन' के पात्र और उनमें वर्णित घटनाएँ एक दार्शनिक 'थीसिस' को प्रस्तुत करने के निमित्त और माध्यम मात्र हैं।' कथानक की विरलता के कारण यद्यपि 'लोकायतन' की का यगत महाघता खंडित नहीं हुई है किन्तु इतिवृत्त विधान निश्चयतः महाकाव्य की गरिमा के अनुरूप नहीं बन पड़ा है। अनागत अतीत और वर्तमान से अनुबद्ध त्रिकाल दृष्टि, इतिहास, पुराण, कला, विज्ञान, धर्म, राजनीति और संस्कृति की युगसापेक्ष महत्ता को निरावरण करने की महत्वाकांक्षा, विश्वजनीन चिन्तनधाराओं के ज्ञानकोश को समीकृत करने की चेष्टा और विभिन्न प्रान्तों, महानगरों एवं विदेशों के विस्तृत वर्णनों ने 'लोकायतन' को दार्शनिक जटिलता, कोशवत विस्तार और महाकार तो प्रदान किया है किन्तु महाकाव्योचित कथा-क्रमबद्ध वृत्त संयोजन शिल्प, संश्लिष्ट चिन्तन की विराटता, गहन संवेदनशीलता और कहीं कहीं कलात्मक चारुत्व से वंचित भी किया है। इस दृष्टि से 'लोकायतन' की कटु आलोचना भी हुई है। डा० रामदरश मिश्र के अनुसार—"कथानक रचना की शिथिलता, अनुपातहीनता और रिपोर्टिंग की प्रवृत्ति से इस प्रबन्ध काव्य का प्रभाव बहुत कुछ आहत हुआ है। कथानक रचना इस कारण और भी शिथिल हो उठी है कि कवि ने अपनी अभीप्सित बात बार बार फेंट फेंट कर कही है। अनेक अनावश्यक प्रसंगों और दृश्यों को लिया है। 'लोकायतन' के प्रारम्भिक अंशों में

---

१४ समीक्षालोक सुमित्रानन्दन पंत विशेषाङ्क, पृ० ६४

१५ वही पृ० १००

१६ आलोचना (त्रैमासिक) स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी साहित्य विशेषांक, जून १९६५ पृ० १९०

१७ तुला और तारे, पृ० १५८

जो गठन संगठित होती है वह यहाँ भी सुलभ हो गई है।[18] यहाँ विचारणीय यह है कि क्या कथा-तत्त्व की दृष्टि से ही लोकायतन की आलोचना सार्थक है? कथा तत्त्व की दृष्टि से हिन्दी के आधुनिक प्रबन्धकाव्यों में अनेक प्रयोग हुए हैं। कामायनी, कुरुक्षेत्र, उर्मिला, उपलब्ध आदि में अत्यन्त विरल कथासूत्र हैं। इनमें काल्पनिक विस्तार और चिन्तनधारा का वैभव ही प्रमुख है। वैसे भी— आख्यान तत्त्व का ह्रास इस युग की विशेषता है। जो केवल महाकाव्य में नहीं वरन् सम्पूर्ण आधुनिक कथा साहित्य में परिलक्षित होती है। आधुनिक कथा साहित्य की कृतियों में कथानक का सूत्र इतना क्षीण हो गया है कि एक क्षणिक मार्मिक प्रसंग पर कहानी की रचना हो रही है और एक व्यक्ति के मन का विश्लेषण करते करते उपन्यास पूरा हो जाता है। दूसरे आज का बुद्धिजीवी पाठक घटनात्मक विवरणों में रुचि लेता भी नहीं है चाहे वे कथा साहित्य में हों या कथाकाव्य में।[19] इस मन्तव्य के आलोक में विचार करने पर लोकायतन के कथानक की त्रुटियाँ अदृष्ट हो जाती हैं। 'लोकायतन' २०वीं शताब्दी के सातवें दशक का महाकाव्य है। इसे हम महाकाव्य रचना का एक नवीन प्रयोग' भी तो कथानक की दृष्टि से कह सकते हैं जिसका रहस्य अन्विति, विन्यास, सुसंगठन, और क्रमबद्धता आख्यान तत्त्व में नहीं अपितु चिन्तन तत्त्व (जीवन-दर्शन) में है। श्री इलाचन्द्र जोशी ने उचित ही कहा है कि—"आज जब साहित्य के सभी अंगों के फार्म बदल रहे हैं तब नए महाकाव्य के लिए यह नियम लागू क्यों नहीं हो सकता? इसलिए इस सम्बन्ध में इस दृष्टि से भी सोचा जा सकता है कि पन्तजी ने महाकाव्य को एक नया 'फार्म'—एक नया रूप 'विन्यास' दिया है।[1] इसीलिए हम लोकायतन' के कथानक का विश्लेषण आधिकारिक, प्रासंगिक या अवान्तर कथा प्रसंगों के रूप में वर्गीकृत करके अथवा प्रारम्भ, विकास, चरमसीमा, निगति और फलागम आदि के निर्देश द्वारा नहीं कर सकते हैं। 'लोकायतन' में कथानक की सिद्धि इस बात पर निर्भर करती है कि उसमें काव्य के प्रतिपाद्य को संवहन करने की सामर्थ्य है या नहीं? आख्यान में मार्मिक प्रसंगों की अवतारणा हुई या नहीं? इतिवृत्त नियोजन में कवि की कल्पना शक्ति कितनी सामर्थ्यपूर्ण है और घटनात्मक विस्तार में ऐतिहासिक या तथ्यमूलक विरोधाभास तो नहीं है? आदि।

---

[18] हिन्दी कविता तीन दशक पृ० १५४

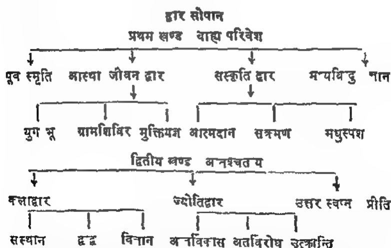
[19] हिन्दी के आधुनिक पौराणिक महाकाव्य, पृ० ३६५

[1] आलोचना जून १९६५, पृ० १९७

'लोकायतन' महाकाव्य दो खण्डों में विभाजित है। प्रथम खण्ड का शीर्षक—'बाह्य परिवेश' और द्वितीय खण्ड का—'अन्तश्चतन्य' है। 'बाह्य परिवेश' शीर्षक खण्ड पुन पूर्व स्मृति आस्था', 'जीवन द्वार', 'सस्कृति द्वार तथा 'मध्य बिन्दु ज्ञान' और 'अन्तश्चतन्य' खण्ड 'कला द्वार', 'ज्योति द्वार' और 'उत्तर स्वप्न प्रीति' नामक उपखण्डों म वर्गीकृत हैं। य उपखण्ड द्वार पुन निम्नांकित प्रकार से वर्गीकृत किए गए हैं—

१ जीवन द्वार—'युग भू', 'ग्रामशिविर' और 'मुक्तियन'
२ सस्कृति द्वार—'आत्मदान', 'सक्रमण' और 'मधु स्पश'
३ कला द्वार—'सस्थान' 'द्वन्द्व और 'विनान'
४ ज्योति द्वार—'अन्तर्विकास', 'अन्तर्विरोध' और 'उत्क्रान्ति'

सम्पूण काव्य के वर्णित कथाक्रम को इस प्रकार प्रदर्शित किया जा सकता है—



उपयुक्त कार्यक्रम सप्रयोजन है। 'लोकायतन के दो प्रधान द्वार हैं—'बाह्यपरिवेश' और 'अतश्चतन्य'। ये दोनों प्रधान द्वार तीन उपद्वारों तथा सात अन्तद्वारों मे विभक्त हैं। कुल मिलाकर पन्द्रह द्वार हैं। 'लोकायतन को एक प्रकार से पन्द्रह उपद्वारों वाले लोकचेतना स दीप्तिमान लोकग्रह के रूप मे सस्थापित किया गया है। 'कामायनी के सगक्रम की भाति 'लोकायतन की 'द्वार-योजना भी अथवत्तापूर्ण है। यह अथवत्ता मानवता के सचेतन

विकास क्रम और मानवीय चेतना में अन्त सघर्ष की विजय-पराजय विकास विघटन, आरोह-अवरोह तथा प्रगति विगति को एक साथ व्यंजित करती है। लोकायतन' समग्र एक काव्यग्रन्थ भी है, जिसकी दार्शनिक आध्यात्मिक और मनोवैज्ञानिक व्याख्या अपेक्षित सन्दर्भों में गवेषणा द्वारा की जा सकती है। सांकेतिक रूप में भारत वसुधरा ही लोकायतन का स्पष्ट व्यंजना का लोकप्रह है। इस लोकप्रह में प्रविष्ट होने से पूर्व कवि ने पूर्वस्मृति के रूप में भारत के गौरवान्वित अतीत के प्रति पूर्ण 'आस्था प्रणाम' की है। कवि की आस्था प्रथम छन्द से ही मुखर है—

'वाग्वाणि अमर कवि गिरे प्रणाम
जयति, पार्वती-परमेश्वर प्रिय राम!
× × ×
परब्रह्म से नाद ब्रह्ममयि शतमुख
ध्वनि रस की स्वर गरिमाओं में गुंजित,
रचो मगलायतन लोक कल्याणी
नित सम्प्रेरणा में असीम से प्रेरित!

(लोकायतन पूर्व स्मृति पृ० ५)

वाणी की अधीश्वरी लोककल्याणी सरस्वती के मांगलिक आह्वान के साथ कवि भूमिजा सीता राम वाल्मीकि परिश्री आदि के आभिजात्यपूर्ण कलात्मक बिम्ब उभारता है। पूर्वस्मृति में ही कवि ने रामायणी-कथा के अन्य पात्रों को प्रतीकाश्रित अभिव्यक्ति दी है। अतीत के प्रति आस्था और परम्परा के प्रति विश्वास का स्वर लेकर कवि जीवन द्वार में प्रवेश करता है। उसे 'युगभू' की पीढ़ियों की अनुभूति है। युगभू की पीड़ा कवि को 'ग्रामशिविर' की स्थापना और मुक्तियज्ञ की आयोजना के लिए अनुप्रेरित करती है। मुक्तियज्ञ के माध्यम से जन जागरण का शंखनाद होता है।

संस्कृति द्वार पर पहुँचते ही भारतीय संस्कृति की मूलभूत प्रवृत्ति 'आत्मदान' का बोध कवि कराता है। युगजीवन में मूल्यगत संक्रमणशीलता मानवता के विकास क्रम में पतनशीलता से अवगत कराती है। संक्रमण की स्थिति का निदान कवि आत्मदान में खोजता है। आत्म दान-बोध मधुस्पर्श कराता है। मधुस्पर्श धरा पर प्रकृति की अलौकिक किन्तु सचेतन सत्ता का पर्याय है। मध्यबिन्दु दानमूलक है। बाह्य परिवेश की प्रतिक्रियाएँ अंतश्चेतना में प्रविष्ट कराती हैं। अंतश्चेतना' के कलाद्वार पर पहुँच कर एक सांस्कृतिक

पीठ की स्थापना एवं सस्थान' के रूप म होती है। 'द्वन्द्व' की स्थितिया और वैनानिक उपलब्धियाँ सस्थान' की योजनाओ को सफलता प्रदान करती हैं। 'अतश्चेतन्य की जागृति जिस जीवन को विकसित करती है उसमे ही 'अन्तर्वि रोध' की स्थितियाँ निष्पन्न होती हैं। 'अन्तर्विकास' अन्तत 'उत्क्रान्ति को जन्म देता है। 'उत्तर स्वप्न' के सोपान पर पहुँच कर कवि धरा पर स्वर्गारोहण की कल्पना का परस्पर 'प्रीति' भाव मे प्रत्यक्ष होत हुए पाता है। नवमानव चेतना 'प्रीति' के द्वारा भू लाछन का प्रक्षालन कर जीवन को श्री शोभा सम्पन्न बनाती है —

"रस पूत प्रीति म बध स्त्री नर
तन बोध रहित, मन मे ये स्थित,
भू लाछन कल्मप से ऊपर
प्राणों का सरसिज था शोभित।
अब काम ग्लानि से मुक्त हृदय
श्री शोभा का करता आदर,
लौटी थी निवासित सीता
जन भू मन का कर रूपान्तर।
(उत्तर स्वप्न, पृ० ६५६)

इस प्रकार लोकायतन' के कथा रूपक को सग क्रम' की अन्विति मे स्पष्टत खोजा जा सकता है। यहा अति सक्षेप म कथाक्रम में अन्वित रूप कात्मक बिन्दुओं को उभारा गया है। वस्तुत 'लोकायतन के 'द्वार सोपान के विभिन्न खण्डो, उपखण्डों और द्वारो म अनुबद्ध चेतना विकास के काव्य-रूपक का अनुसधान अनेक अनुदघाटित रोचक तथ्यो को प्रस्तुत कर सकता है। निश्चय ही 'लोकायतन के कथानक का अनुशीलन रूढ काव्यशास्त्रीय मानदण्डों के आधार पर नहीं किया जा सकता है। इस काव्य के कथाक्रम का परिशीलन प्रतिपाद्य के परिप्रेक्ष्य म ही विवेच्य है।

ग्रन्थारम्भ 'बाह्य परिवेश' शीर्षक प्रथम खण्ड क पूर्व स्मृति आस्था नामक उपखण्ड से होता है। रामकथा के राम, सीता, लक्ष्मण आदि पात्रों के परिसवाद तथा महाकवि वाल्मीकि का भाव चेतन प्रतिक्रियाओं के माध्यम से युग जीवन की विसगतिया मूल्यगत सक्रमणशीलता, भयावह वातावरण और सहारक प्रवृत्तिया का चित्रण करत हुए मानवता के सुखद भविष्य की मगल-कामना की गई है। समकालीन युग-जीवन की शोचनीय दशा का शब्दचित्र कवि ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

'वह विरक्त जीवन निषेध विष मूर्छित
जाति, पाँति, मृत रूढ़ि रीति से श्री हत !
पर भाषा, पर संस्कृति ओढ़े युग से
अंतर गौरव शून्य, सिद्ध शुक पढ़ित
मनोयन्त्र निष्क्रिय, पर धी संचय प्रिय
बहिरंतर के दैन्यों में शत खण्डित !'

(पूर्व स्मृति, पृ० ६)

इस वैषम्य और विषाद के युग-जीवन का युग कवि पन्त मंगलायतनी हरि और लोककल्याणी वीणा पाणि सरस्वती से युगवाणी में जन मन को उद्वेलित करने वाला स्वर्णिम काव्य रचने की शक्तिप्राप्ति हेतु स्तवन करता है। वह नव्य कल्प के आदि काव्य का कथापट लोकजीवन के सूत्रों से बुनकर मानव मन और भूमंडल को नूतन जीवन रचना से संयुक्त करना चाहता है। शतियों के मृत-संस्कारों से मर्दित मानव मन के अभ्युत्थान का उपाय आत्म बोध की निष्क्रिय समरसतापूर्ण स्थितियों में नहीं है जैसा कि स्वर्गीय श्री जयशंकर प्रसाद ने 'कामायनी' में प्रतिपादित किया है—

बसे वह्नि इड़ा लुब्ध युग मनु स
श्रद्धा संग वह करे मेरु नग रोहण
आत्म बोध की निष्क्रिय समस्थिति को
जन भू पथ पर करना सक्रिय विचरण !

(वही पृ० ७)

लोकायतन के रचयिता की जीवन दृष्टि कामायनीकार से यहीं तत्त्वतः भिन्न है। कामायनी का जीवन दर्शन जहाँ शैवागमों की आनन्दवादी अवधारणा पर आधृत व्यक्तिनिष्ठ सामरस्य का प्रतिपादक है वहाँ लोकायतन का काव्य दर्शन अरविन्द प्रतिपादित ऊर्ध्व और समदिक की सामंजस्य भावना पर केन्द्रित होते हुए भी लोकोन्मुख किंवा समष्टिपरक है। इस दृष्टि से 'पन्त का लोकदर्शन उस शिखर से आरम्भ होता है जहाँ पर 'कामायनी' का दर्शन समाप्त हुआ था।[११] यहाँ व्यक्ति से समष्टि की ओर कवि उन्मुख हुआ है। 'लोकायतन' का कवि मानवता के जनक मनु के लिए ही नहीं अपितु सम्पूर्ण मानवता के सुखद भविष्य का मंगलाकांक्षी है।

---

[११] डा० सावित्री सिन्हा तुला और तारे, पृ० १६२

'पूर्व स्मृति' उपखण्ड में कवि ने कथानक के पौराणिक सूत्र को वदेही के निवासन की घटना से जोड़ा है। रघुवर को ज्ञात था कि जनक नंदिनी निर्दोष हैं, फिर भी लोक जीवन के संशय और अविश्वास का निराकरण करने के लिए उन्हें निर्वासित किया था। कवि के अनुसार भारतीय इतिहास का यह घटना क्रम सनातन सत्य का उदघाटक है—

'जनरव भय से राघव ने पत्नी को
छोड़ा था क्या ? क्या पुरातन रे यह

× × ×

यह इतिहास न हो तथ्यों पर कल्पित,
भारत भू मानस का सत्य सनातन
देशकाल पुलिनों का रहा डुबाता,
यहा चेतना के जीवन का प्लावन।"

(वही, पृ० १०)

इसी उपखण्ड' में राम और सीता के संवाद द्वारा कवि ने सृष्टि विकास के विभिन्न युगों का सचेतन तथ्यमूलक इतिहास दोहराया है। राम कहते हैं कि जड़ चेतन का संघर्ष चिर अनादि है। चेतन ही जड़ और जड़ ही चेतन होता है किन्तु तर्कप्रवण बुद्धि नहीं समझ पाती है। ह्रास और विकास मन की ही गतियां हैं। रामराज्य राज्यतन्त्रीय व्यवस्था का युग दर्पण था। अब लोक तन्त्र का स्वर्णोदय हुआ है जिसमें नवीन जीवन मूल्यों पर शासन व्यवस्था आधृत है। राम धर्म, नीति संस्कृति विचार विधि, दर्शन शास्त्रज्ञान धन कर्म, नियम, व्रतसाधन, शासन पद्धति, चतुवर्ण और चतुराश्रम व्यवस्था सीता को समर्पित कर नव सृष्टि संरचना का आह्वान करते है। जानकी उस समर्पण को स्वीकार कर नव करप सृजन के लिए कृत संकल्प होती हैं। इसके पश्चात कवि ने सीता के विश्व व्यापी महत् रूप को व्याख्यायित करते हुए कहा है कि सीता ही आद्यन्त रहित अनन्त जगधात्री हैं वे ही चिन्मुक्ता अमृत प्रीति है जो अणु अणु में व्याप्त हैं। असंख्य ब्रह्माण्ड, तारग्रह दिशा, काल, गगन नीलिमा, सिन्धु जल, पावक, हरितधरा समीरण परिवृत आदि में वही चेतना स्वरूपा आदि शक्ति विद्यमान है। राम और सीता की भांति कवि ने रामकथा के अन्य पात्रों के प्रतीकात्मक व्यक्तित्व एवं सत्ता का स्पष्टीकरण किया है। उदाहरणार्थ हनुमान अजेय पौरुष के, विदेहराज जनक मानस स्थिति के, रावण अहं

वृत्ति का, ऊर्मिला शील की और निशाचर युग की क्रूरता के प्रतीक थे। ये सभी पात्र अनश्वर हैं —

सीता जन भू हृदय, राम जन मन बल
नर चरित्र धर मानस पात्र अनश्वर,
प्रीति प्रणत लक्ष्मण अनंत पौरुष बल
शील मूर्ति ऊर्मिला विरह रस सागर।
यह रूपक संक्षिप्त, प्रिये गत युग का
क्रांत चक्र हो रहा, कल्प परिवर्तित'

(वही, पृ० १६ १७)

राम सीता के संवाद की परिसमाप्ति पर सहसा उज्ज्वल इन्द्रधनुष मण्डित नीलगगन में चित रश्मियों के दिक स्फूर्तित मण्डल में स्वर्ण शुभ्र नवचेतना एक सूक्ष्माकृति के रूप में प्रादुर्भूत हुई। इस कवि ने युग युग की चेतन्य ज्योति कहा है। भावना प्रेरित वाल्मीकि युगदेवी की वंदना कर जगद्धात्री से लोक मंगल के लिए नवचेतना प्रसार का वर माँगते हैं। शक्ति स्वरूपा सीता ने कवि को स्वर्ग भय और संशय का हरण करने के लिए महत्-सृजन की प्रेरणा दी। क्रौंच की करुणा से डाकू से कवि बने वाल्मीकि ने संकल्प किया कि मैं युद्धान्ध जग को शांति मंत्र दूँगा, लोक जुगुप्सा हिंसा क्षुद्रता, क्रूर वृत्ति यन्त्र युग की विगर्हणा और सर्वनाशक उदजन आयोजनों का परित्याग कर धरा प्रेम करुणा श्रम समन्वय आत्मीय एकता और विश्व मानवतावादी मूल्यों के प्रति निष्ठावान होगी। कवि ने ध्यानावस्थित होकर देखा कि मानवता का भविष्य चित किरणों के स्वर्णिम प्रकाश से आलोकित है। शत शत इन्द्रधनुषों की ज्वाला से मण्डित नयी चेतना का विकास हुआ जिसके भाव बोध से इन्द्रियाँ मन, प्राण प्रहर्षित हो उठे। नयी चेतना के शक्तिपात से सर्वत्र मधुरिमा और मांगल्य की अभिवृद्धि हुई—

'ज्योति प्रीति आनन्द मधुरिमा मंगल
जन जीवन में मूर्त हो रहे जग में
× × ×
रहस कलामयी महाशक्ति जग धात्री
अणु में जो करती अनंत मवधारण।
देख रहा उठता भू-आलय ऊपर,
उर्वर ज्योतिर्पिडों ॥ अभिनंदन

जड के मुख पर शक्ति पात चेतन का,
मन शृंग पर हो शत तड़ित प्रकंपित !"

(वही, पृ० २४)

इसके पश्चात् कवि ने धरा अवतरण और धरित्री जीवन की विडम्बनाओं का निरूपण किया है। आद्र कंठ से सबसहा वसुंधरा ने भूमिजा सीता से कहा कि बेटी ! तुम्हें मेरे मन का संघर्ष ज्ञात है। युग संध्या को इस वेला में अग जग में क्रांति मची हुई है। नए कल्प का जन्म होने वाला है नव नव परिवर्तन संसार में घटित हो रहे हैं। विनाशकारी प्रयास और शान्ति प्रयत्न तथा अंध भौतिकता का कर्कश स्वर और तप त्यागजन्य विरति का रोदन एक साथ सुनायी पड़ रहे हैं। कवि के अनुसार दो विरोधी गुटों में बंटा विश्व जीवन भय भ्रम में फंसा हुआ है—

'क्रुद्ध शेष फूत्कारों से दिशि धूमिल,
महामृत्यु मंथो से मथित अंबर,
मुझे विरोधी शिविरों का भय भ्रम हर
सृजन शान्ति स्थापित करनी भू तल पर !
भौतिक वैभव के मद से उत्तेजित,
मानव शोणित में निमज्जित भू प्रांगण
इधर अंध भौतिकता का कर्कश स्वर
उधर रिक्त तप त्याग विरति का रोदन !

(वही, पृ० २६)

कवि का मत है कि धरित्री जीवन की सभी व्याख्याएं अपूर्ण हैं। तत्व विदों ने धरा को मर्त्य धाम कह कर जरा रोग, भय, पाप ताप का प्रांगण बनाया है। धर्मों ने त्याग विराग सिखा कर जगत को व्यर्थ, मिथ्या और माया बंधन कहा है। यतियों ने मुक्ति मार्ग का निर्माण कर धरणी को निर्जन बनाने का प्रयत्न किया है। स्वर्ग नरक और जड़ चेतन के द्वन्द्व में फंसे लोग जीवन की वास्तविकता से अपरिचित हैं। अपने आदिम किंवा मौलिक स्वरूप का प्रतिपादन करते हुए धरा ने कहा कि मैं मन से बड़ी, क्षण परिमित और नित्य अपरिमित हूं। मैं ज्योतिप्रिय हूँ और दीप्त ग्रहों के साथ नर्तन करती हूँ। रवि मेरा भालफूल शशि मुकुरदर्पण, उषा माँग की रोली और ज्योत्स्ना तन का उबटन है। घन मुझे रसधार से स्नान कराते हैं। वसुंधरा ने भूमिजा से कहा कि तुम मेरे अन्तर की अकलुष प्रीतिज्योति हो। तुम स्वयं प्रकाशित

सत्यशिखा हो अत जग म श्री और समग्रता स्थापित करा। ऋषि कवि ने देखा कि भू गोलक तप्त धनक के समान अमित सिन्धु से परिवृत शक्ति सम्पन्न हो गया। सकडा सूय और चन्द्र धरा को तिमिर मुक्त बना रह हैं। अगणित कृमि खग मग, नर मुनि किन्नर, सुर अकल्पित ब्रह्माण्ड के विस्तार मे परिव्याप्त हैं। दीप्त भुवन, देव ऋषिया के आश्रम, कोटि सभ्यताओ और सस्कृतिया के निरुपम स्वग स्तर धरागभ मे विद्यमान हैं। दवी चेतना के प्रभाव से जन भू का अ तर दीप्तिमान हो उठा। तभी कवि ने उन्मेषित स्वर से जगद्धात्री शक्ति स्वरूपा महागौरी का स्तवन किया। मनीषी कवि ने कहा—

नटराणी तुम निज अत सुख मे स्थित
उठा मत्त कर पद, करती भव नतन,
शुभ्र स्तना सं ऋत चतन्य छलकता
स्वर्णिम जघना से मरकत भू जीवन।
× × ×
कसे व्यक्त करूँ श भो के मन स
किस प्रकाश से आदोलित कवि अतर।

(वही, पृ० ३०)

महागौरी ने सत्य द्रष्टा ऋषि को सृष्टि के मगल के लिए वरदान दिया और कहा कि भू जीवन ईश्वर इच्छा का दपण है जिसे समझने मे मनुज मन असमथ है। राग द्वेष हिंसा स्पर्द्धा घृणा क्रोध मद स्वाथ लोभ, तृष्णा, भय आदि के कारण जडता का अवगुठन चेतना स्तरा को आवृत्त किए हुए है। जो जावन को अपूण और अस्थिर कहत हैं वे अध पतित हैं। मनीषी कवि के रूप म तुम्हारा कत्त य जीवन मगल के लिए प्रशमित मानव चेतना को उध्वमुखी कर जन भू को शाति प्रीति और आन द की ज्योति से आलोकित करना है—

'कविमनीषी का कत्तव्य सनातन
जीवन मगल का करना सुख सजन
श्री सुषमा रस महिमा स्वर गरिमा स
कुसुमित कूजित रखना जन भू प्रागण।
× × ×
कवि मन का देना आलोक जगत को,
शाति प्रीति आनद ज्योति मगल कर।

अधिमानस की काम धेनुओं को दुह
उच्च प्रेरणा स्रोतों को ला भू पर,
प्रज्ञामृत से भरना नव सजीवन,
मानव उर का पोषक रस जो भास्वर !

(वही, पृ० ३३)

महागौरी ने वरमुद्रा में ही कवि से कहा कि स्वर्णिक क्षितिजों के अक्षय वमव से सम्पृक्त शब्द सृष्टि द्वारा भावी मानवता के हित सरचना करो। तुम असत तमस पर सत्य ज्योति की जय का गान करो। कवि मन के भावना-ज्वार में भू-जनों का अंतर आप्लावित होकर भेद मुक्त होगा। कवि के उर से निःसृत भाव धारा शांति, ज्योति और आनन्द की त्रिवेणी बहा देगी। इस उन्मद आह्लादक रसधारा से भू उर आलावण्य तथा यौवन स्मित बनेगा। महागौरी ने कवि को मानवता का मगल विधायक अमृतघट सौंप दिया—

"तुम्हें सौंपती लो, यह कनक अमृत घट,
नर नारी के रस मगल से पूरित।'

(वही, पृ० ३४)

कवि ने मंगलघट को अभिगृहीत कर परमशिवा से यह वर पुन माँगा—

'सहज प्रसन्न जननि वह, जन को दें वर,
बरसे श्री शोभा मंगल पग-पग पर,
महत् सत्य से प्रेरित हो मानव उर,
धरा स्वर्ग हो सुदर से सुदरतर।'

(वही पृ० ३५)

उमा ने मंद स्मित मुख से 'तथास्तु' कहा और वे सीता से स्नेह विनय युक्त वाणी में बोली कि तुम प्रति युग में विकसित होने वाली विश्व चेतना हो। तुम अंत केंद्रित परात्पर भिन्न ज्योति हो। अब तुम धरा चेतना के शिखरों के ऊपासित शृंगों से उतर कर हरित धरा पर स्वर्णिम निर्झर सी झरो जिससे स्वर्ग मृत्य के भेद तिमिर की खाइ पट जाय और समूह जीवन में शुभ्र शांति परिव्याप्त हो। कविवर पंत के अनुसार यह स्मृति पट का उद्घाटन था जिसमें यह कामना की गई कि—

'मगल' प्र' हो जन भू के जीवन हित
धतमन का यह पावन आरोहण,
भूत भविष्यत के ज्योतिष्पुलनो पर
बने पुण्य स्मति स्वग सेतु जन मोहन।

(वही, पृ० ३६)

इस प्रकार पूव स्मति के अन्तगत कवि ने सीता को भू चेतना का प्रतीक मानकर युगों और कल्पो म विकसित मानवता क भावी मागल्य की भूमिका प्रस्तुत की है। पूव स्मति उपखण्ड 'लोकायतन महाकाव्य के कथा नक से असम्बद्ध होते हुए इस का य का प्रवशद्वार है। 'पूव स्मृति' एक प्रकार से लोकायतन की प्रस्तावना भूमिका या प्राक्कथन है। इस काव्य खण्ड में वतमान युग जीवन की विसगतियो का यथाय मूलक दृष्टि से अवलोकन कर भू-जीवन को सुखद शान्त और मगलमय बनाने के लिए महाकवि के दायित्व का भी निदशन किया गया है। वतमान भू जीवन की निश्चेष्टता को माव चेतना से आदोलित कर नयी आशाओ उमगो और आनन्द तरगो से प्रहर्षित पुलकित करना ही मनीषी कवि का कत्त य है। वैज्ञानिक युग की विनाश कारी उपलब्धियो की चकाचौंध मे दिग भ्रमित जड मानवता को मूल्यगत विघटन और विनाश के महागत्त म गिरने से बचाकर उसे नवनिर्माण के पथ पर अग्रसर होने क लिए प्ररणा सदीप्त करने का काय आज के कवि को करना है। लोकायतन के रचयिता ने इस गुरुतर दायित्व का सहृप सवहन किया है। पूव स्मृति म जो चिन्तन-सूत्र उभारे गये हैं तथा मानवता के मगलविधान हेतु जिन चतना स्तरो को रखाकित किया गया है उन्हीं के मिलन बिन्दुओ पर लोकायतन का विशाल का य भवन निर्मित है। यही पूव स्मृति उपखण्ड की रचना का महत्व और साथकय है।

लोकयतन क कथाक्रम का समारम्भ प्रथम खण्ड बाह्य परिवेश के 'जीवन द्वार' उपखण्ड क युग भू' प्रगण्ड स होता है। नव युग जन्म जगत हित शुभ हो भू की प्रसव व्यथ जय गाजा' इस कथन से कवि आरम्भ करता है। जाने कितने दिवस मास वष शतियाँ और युग बीत गए भारत की जन भू अनक प्रकार क उत्थान पतन रण देख चुकी है। इस भू ने दैन्य, दासता दस्यु आक्रमण और ह्रास की अमरय दारुण स्थितियो को सहा है। इसी भारत बसुधरा पर सुन्दरपुर नामक जन-पद अवस्थित है जिसक जन जीवन म मध्य युग की परम्परप्रियता और जड सस्कार शीलता परिव्याप्त है। कवि के शब्द म—

"घोर असुन्दर था सुदरपुर
दय अविद्या का जड पजर
रूढि रीतियो का निष्क्रिय गत
विगत सभ्यता का हत खडहर।
× × ×
धरा गम का नरक कुड था
सुदरपुर जनपद विपण्ण मन,
भू दारिद्रया का दुगम गढ—
निज दुगति के प्रति विरक्त जन।'

(जीवन द्वार, युग भू, प० ४२ ४३)

इस जनपद मे फाडफूँस के नग्न घरौं से घर थे जिनके निवासी राग द्वेष भय घृणा और कलह म डूबे हुए नराश्य अमगल से भरा भाग्यवादी निष्फल जीवन बिता रहे थे। यहाँ तरुण वग विषय कलुष विष पीकर दुगति पूण जीवन यापन कर रहा था। इसी जनपद मे भावुक सहृदय युवक कवि वशी और उसका समवयस्क सखा हरि भी थे। जनपद की अवनति से वशी क्षुब्ध और खिन्न था। वशी ने हरि से सुन्दरपुर जन पद की ह्रासोन्मुख शोचनीय दशा पर गभीर विमश कर जनपद को पतन के गत्त से निकालकर विकास मुख करने के उपायो पर विचार किया। वशी इस निष्कष पर पहुँचा कि—

'जाति पाँतियो म दशो म,
वण श्रेणियो मे विभक्त जन,
बाधक उनके योगक्षेम का,
गत सस्कारो का बौना मन।'

(वही, युग भू पृ० ५०)

वशी न कहा कि देश दासता के गत्त मे गिरकर हत चेतन है। 'पराधीन को स्वप्न म भी सुख नही है अत हमारा सवप्रथम ध्येय है कि—

'प्रथम देश स्वाधीन बन सके
यही परम हो लक्ष्य हमारा,
फूके युग-जागरण शख हम,
जन स्वतन्त्रता का दे नारा।"

(वही, युग भू पृ० ५०)

वंशी ने कहा कि देश मुक्त होने से ही गाव और जनपद गतिशील बनेंगे देश और जातियो के जीवन म एसे महत क्रांति क्षण आते हैं जब जा सभ्यता के शव मे भी सचेतन शोणित प्रवाहित होने लगता है । जनाय गाधी के नेतत्व म अहिंसा के युगचेतन के नीचे आज वही युगातरकारी वेल आई है । अंग्रेजी साम्राज्यवाद की विगहणा से भारतीय जन जीवन ही प्रताडि नही अपितु विश्व के अय अनेक राष्ट्र भी पीडित थे अत कवि के अनुसार—

'भारत का हो यह न मुक्ति रण
विश्व मुक्ति का आया शुभ क्षण ।'

(वही, युग भू, पृ० ५२

जन शक्ति और अंग्रेजी शासन के अपरिमित पशु बल का समर अदभु था । ऐसा प्रतीत होता था मानो प्रथम बार मानव की समूह शक्ति मौप पशुबल से जूझने को सकल्पित हुई थी । मुट्ठी भर हड्डियों के ढाँचे वा गाधीजी शुभ्र अहिंसा का बल लेकर असहयोग सत्याग्रह आन्दोलनो का सचा लन करत हुए दैत्याकार क्रूर विदेशी प्रशासन से सघष कर रहे थे । हरि औ वंशी भी स्वाधीनता भाव स आ दोलित थे । हरि ने कहा कि वह गाँव गा मे सत्याग्रह का सन्देश पहुँचा कर जन पद वासियो को राष्ट्र के लिए सवस्व समपण की भावना से अनुप्रेरित करेगा । वंशी सचेतन रचनाकार था, उसकी चेतना ऊध्वमुखी भावना यापक और दृष्टिकोण विश्वमानवतावादी था । उसकी यह बद्धमूल धारणा थी कि—

भारत क जीवन मगल मे,
निहित भुवन सब जीवो का हित ।
× × ×
लोक क्षेम रत रहा प्राण पण
विश्व कम हो भू पथ साधन ।

(वही युग भू पृ० ५८ ५९)

'जीवन द्वार उपखण्ड के ग्राम शिविर शायक द्वितीय प्रखण्ड म पन्तजी न सुन्दरपुर जनपद म 'कलाशिविर की स्थापना स्वाधीनता आदोलन की भावना क प्रचार प्रसार और ग्रामीण जीवन की कुप्रथाओ का चित्रण किया है । कवि क अनुसार राग चेतना का विकास ही निखिल प्रगति का सार है । इस राग चेतना का सवद्धन शोभा द्वारा करता है । किन्तु धरा पर स्वग

ज्योति वितरित करने वाली ग्रामीण नारी का जीवन अभिशप्त और शोचनीय है। हरि की बहन सिरी (श्री) की विचारणा के माध्यम से कवि ने ग्रामीण नारियों की गर्हित दशा का वर्णन किया है। सिरी की प्रेरणा से गाँव की स्त्रियाँ कलाशिविर में जाकर सूत कातती, नए विचारों को ग्रहण करती और सामूहिक स्वर में इस प्रकार देश वन्दना करती थीं—

"कर्म भूमि, जय जनपद भारत
जन मन हो भू रचना में रत
तू ही जन मन जनगण जीवन,
तुझ में हो सब लोग एक मन!
× × ×
दृष्टि सत्य के प्रति हो जाग्रत,
लोक कर्म हित भुज नित उद्यत,
अन्तर में हो आस्था अक्षत,
धरा प्रीति हो जीवन का व्रत!
हम नव भारत की बालाएं
मुक्ति चेतना की ज्वालाएँ,
शील, स्नेह, सेवा मालाएँ,—
राष्ट्र शक्ति में हों जन परिणत!"

(वही, ग्राम शिविर पृ० ६९ ७०)

ग्राम बालाओं को सिरी अवज्ञा और असहयोग का महत्व समझा कर राष्ट्रीय स्वाभिमान के लिए सर्वस्व समर्पण की भावना उनमें भर रही थी। सिरी की चिन्ता यह थी कि जन मन को सङ्गठित करने के लिए शिक्षा प्रसार आवश्यक है। अशिक्षा ही भय दैन्य और दासता का मूल कारण है। सिरी घर घर जाकर महिलाओं को स्वास्थ्य सफाई और शिक्षा का महत्व समझाती थी। सामूहिक जीवन में नव जागृति हेतु कर्मण्यता भाव उत्पन्न करने के लिए भी सिरी ने प्रयत्न किया। सिरी का भाई हरि भी गाँव गाँव में जाकर लोगों को असहयोग के लिए प्रेरित कर रहा था। इस प्रकार जनपद का युग-जीवन सुसंगठित होकर निर्भय कर्मपथ पर बढ़ रहा था—

'दृढ़ सकल्प बनाता निर्भय निज पथ,
सामूहिक जन बल ही युग जीवन रथ!'

(वही, ग्राम शिविर, पृ० ८१)

'जीवन-द्वार' उपखण्ड के तृतीय अर्थात 'मुक्तियज्ञ' प्रखण्ड में कवि ने सन १९२१ से १९४७ तक के स्वाधीनता संघर्ष की प्रमुख घटनाओं को छंदबद्ध किया है। इस काव्यखण्ड के नायक राष्ट्रपिता महात्मा गांधी हैं। डा० सावित्री सिन्हा के अनुसार— 'मुक्ति यज्ञ प्रसंग 'लोकायतन' का ही एक अंश है परन्तु अंश होने भी वह अपने आप में पूर्ण है। 'मुक्तियज्ञ' में उस युग का इतिहास अंकित है जब भारत में एक हलचल मची हुई थी और सम्पूर्ण देश में क्रांति की आग सुलग रही थी। 'मुक्तियज्ञ' में गांधी युग के स्वर्ण इतिहास का काव्यात्मक आलेख है।'[1] पंतजी ने स्वयं इस प्रखण्ड के सम्बन्ध में कहा है कि —

'कथा नहीं यह हृच्छ साधना
भू जीवन मंगल की निश्चय,
सत्य अहिंसा की जय, कविते,
नव भू मानवता की युग जय !

(वही, मुक्तियज्ञ पृ० ८२)

भारतीय जन जीवन के स्वातन्त्र्य हेतु किए गए मुक्तियज्ञ के पुरोहित (नेता) महात्मा गांधी थे। कवि ने गांधीजी की तुलना देवदूत से करते हुए उनके नमक-कानून तोड़ो आंदोलन को स्वराज्य मुक्ति का प्रतीक कहा है।

कौन चल रहा वह नर भूधर
जन धरणी पर ऊर्ध्व चरण धर ?
ऋषि अगस्त्य सा लवण सिंधु को,
पी हंस हंस अंजलि-पुट में भर।
× × ×
लोक प्रगति का देवदूत यह,
तीस कोटि का रहा कृती जन !

(वही, मुक्तियज्ञ, पृ० ८४)

कवि के अनुसार नमक बनाना बापू का ध्येय नहीं था। वस्तुतः भारतीय जनगण के लिए यह विद्रोह पर्व का प्रतीक था। यह एक ऐतिहासिक युग क्षण था जब बापू ने नमक कानून तोड़ा और दांडी यात्रा की। गांधीजी ने अहिंसा की शक्ति द्वारा जो रक्तहीन रण किया वह इतिहास में विलक्षण है। दूसरे

---

[1] मुक्तियज्ञ परिचय, पृ० २१

भारत का स्वाधीनता आन्दोलन इस अर्थ में विश्वव्यापी था कि उसका प्रभाव और प्रतिक्रिया अन्तर्राष्ट्रीय हुई—

"भारतीय स्वातन्त्र्य युद्ध था,
मनुष्यत्व का भू पर युग रण
अन्न रिक्त बहि समृद्ध अग
हिंसा स्पर्धा का था प्रागण !"

(वही, मुक्तियज्ञ, पृ० ८९)

इस आन्दोलन को प्रशमित करने के लिए अंग्रेजी प्रशासन ने तीव्र गति से दमनचक्र चलाया, बापू सहित चोटी के नेता कारागृह में ठूस दिए गए। किन्तु सत्याग्रहियों का उत्साह कम नहीं हुआ। कवि के शब्दों में—

'भारत के कोने कोने में, फैल गया सन्देश मुक्ति का,
उल्टा ही फल हुआ जगत में अन्यायी की दमन युक्ति का !
स्वर्ग धौत बलवती बनी भू सत्याग्रह में रक्त स्नान कर,
हुए गौरवान्वित निरस्त्र जन मुक्ति यज्ञ हित आत्मदान कर !"

(वही, मुक्तियज्ञ, पृ० ९५)

'मुक्तियज्ञ' आन्दोलन में पुरुषों के समान ही स्त्रियों ने भी अभूतपूर्व उत्साह से योगदान किया—

सच्चे साहस शौर्य त्याग से
दीप्त, युवतियाँ थीं उन्मेषित
जगी अहिंसा मूर्त रूप धर
भारत लक्ष्मी में अभिषेचित !
कोमल अंग भले हों विनत
धर्य मनोबल में अप्रतिहत
पहन केसरी बाने फिरती,
रण चण्डी बन, लिए मुक्ति व्रत !

(वही, मुक्तियज्ञ, पृ० ९६)

पन्त जी के मतानुसार भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन व्यापक अर्थों में आध्यात्मिकता और भौतिकता का समर था जिसमें आध्यात्मिकता अहिंसा के बल पर और भौतिकता प्रतीकार की शक्ति लेकर जूझ रही थी अन्ततः विजय अखण्ड भारत आत्मा की ही हुई—

पशुबल के ही हिंस्र क्षेत्र पर
आत्मशक्ति की जय भौगोलिक।
भौतिकता के प्रतीकार में
आध्यात्मिकता का सक्रिय रण,
× × ×
विजय हुई भारत आत्मा की,
खण्डित नहीं हुआ जन भू मन।'

(वही मुक्तियज्ञ, पृ० ९७)

भारत स्वतन्त्र हो गया। गाँवों और नगरों पर आस्था का केतन फहराया। काल ध्वस्त जर्जरित जन खंडहरों में जीवन-ज्योति जगमगा उठी। शतियों से हत पतझर वन में मधु यौवन का शोणित फूट पड़ा। युगों से जड़, निष्क्रिय और निद्रित जन जीवन में स्वातन्त्र्य चेतना की नवजागृति सर्वत्र दृष्टिगोचर हुई—

'जगे खेत खलिहान बाग पड़, जगे बैल हँसिया हल विस्मित,
हाट घाट गोचर घर आगन वापी पनघट जगे चमत्कृत!
मोट गडारी नार जगत जग लगे माँडने मुक्ति शस्य स्मित,
अँगड़ाई ले जगा पुरातन युग-युग से जड़ निष्क्रिय निद्रित।'

(वही, मुक्तियज्ञ, पृ० ९८)

इस युग रण में सुंदरपुर जनपद के अनुदान का आलेख भी स्वर्णाक्षरों में अंकित हुआ। आत्म-त्याग के इस अलौकिक पथ पर रक्तबलि देकर जनता महिमान्वित हुई। हरी जेल में बन्द था और उसका घर ढूह बन गया था। माधो गुरु नित नए हथकंडे चलाते थे। माधो गुरु की चाला से ही वंशी की पिटाई हुई। वंशी भी कारागृह गया। हरी और वंशी के पकड़े जाने पर सिरी ने सत्याग्रह आन्दोलन का नेतृत्व किया। भारत के स्वतन्त्रता आंदोलन को कवि ने 'सागर मन्थन' के रूपक द्वारा प्रभावकारी ढंग से इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

'भारत भू उद्वेलित सागर,
बच्छप युग-नायक का दृढ़ पग,
जनगण दल अहि रज्जु काटि फण
मन्दर गिरि स्थिर लोक-संगठन

आत्मशक्ति पशुबल जुट मथते,
नवयुग देवासुर संघर्षण,—
जब रामराज्य लक्ष्मी प्रकटी तब,
जन भू मंगल हित था शुभ क्षण ।"
(वही, मुक्ति यज्ञ, पृ० ११२)

अगणित देशभक्तों के आत्मोत्सर्ग से प्राप्त स्वाधीनता भारत के रश्मि गोलार्ध पर स्वर्ण स्मित के रूप में दीप्तिमान हुई, किन्तु मानवता के मंगल विधान की ओर यह प्रथम चरण था। कवि की दृष्टि में विश्व ऐक्य और मानव-प्रीति के महत् उद्देश्यों की सिद्धि ही अभीप्सित है—

"राष्ट्र मुक्ति रे केवल प्रथम चरण भर,
विश्व एकता करनी भू पर निर्मित,
मनुज प्रीति के अमर सूत्र में गुम्फित,
स्वर्ग पीठ करनी भू-मन पर स्थापित।'
(वही मुक्ति यज्ञ, पृ० ११५)

'संस्कृति द्वार' प्रथम खण्ड' का द्वितीय द्वार है। संस्कृति द्वार' का प्रथम उपखण्ड 'आत्म दान' है। इस उपखण्ड में कवि ने भारत के विभाजन के पश्चात् हुए साम्प्रदायिक दंगों और उनके निवारक प्रयत्नों में बापू के महान बलिदान (आत्मदान) का काव्यात्मक समाख्यान किया है। विभाजन के दुष्प-रिणामों का उल्लेख करते हुए कवि ने लिखा है—

"गत नियति ! मुक्ति उपक्रम में
भारत का करुण विभाजन
लाया संग दुर्मति प्रेरित
कटु रक्तपात, खल गृह रण ।
× × ×
स्त्री, शिशुओं वृद्धों का वध
नर हत्याएँ क्षुर घातें
व्यभिचार, लूट लपटता
काली जनकहनी बातें ।'
(वही, आत्मदान, पृ० ११६)

विभाजन ने भाई भाई के प्रेम को घृणा रूपी विष में बदल दिया। नारकीय प्रतिहिंसा ने वीभत्स घृणा का रूप धारण कर लिया। विभाजन के

फलस्वरूप जभी द्वेषाग्नि के पागलपन का कारण मंदिरा और मस्जिदों म बैठे अल्ला ईश्वर भी सन्त्रस्त हो गए। धर्मांध साम्प्रदायिकता का यह दुर्दान्त विध्वसक रण वस्तुत मध्य युग का ही अभिशाप था—

> ¯स रक्त काण्ड क पीछे थे मध्य युगो के खण्डहर,
> उच्छिष्ट जीर्ण सस्कृति के, स्वार्थो के कट्टर पत्थर।'
>
> (वही, आत्मदान, पृ० १२२)

इस अवसर पर बापू न साम्प्रदायिक एकता और हि दू मुस्लिम धम समन्वय का महाप्रयास किया। मीलो लम्बी पद यात्राएँ करके दूरस्थ गाँवो म घर घर पहुँच कर पीडित शोषित और सन्त्रस्त जनो को आश्वस्त किया। बापू के प्रेम स देश ने आत्त हि दू मुसलमानो के नराश्य विषाद को दूर किया। नोआखली पजाब दिल्ली और बिहार मे सवत्र साम्प्रदायिक दगो की ज्वाला धधक रही थी। सेना के बल स दिल्ली म शाति स्थापित हो गई थी, कि तु यह कृत्रिम ही थी क्योकि भीतर ही भीतर विक्षोभ और हिंसा उबल रही थी। अपनी प्राथना सभाओ म बापू ने रक्तपात समाप्त कर दया प्रेम का माग अनुसरण करने का उपदेश दिया। बापू कहते थे कि—

> गीता कुरान दोनो ही जो हम न सुन सकें सविनय
> तो व्यथ प्राथना करना मेरा सीधा सा आशय।
> भारत भव धर्मों की भू सब का हो यहाँ सम वय
> प्रिय राम रहीम उभय ही ईश्वर क नाम न सशय।'
>
> (वही आत्मदान, पृ० १२८)

गाधी जी को यह भी चिन्ता थी कि यदि भारतवासी ही अहिंसा के पाथेय का परित्याग कर देंगे तो विश्व जीवन तिमिराच्छन्न हो जायगा। अस्तु बापू ने अनशन प्रारम्भ कर दिया। इस नारकीय प्रतिहिंसा रूपी नाटक का समापन अन्तत बापू के बलिदान म हुआ—

> इस नारकीय हिंसा के नाटक का करुण समापन
> प्रिय बापू की बलि म हो! ओ अकथनीय अघटित क्षण!!
> प्रायना सभा को जाते साकार प्रायना से नत
> वे ¯ण न्योछावर भू पर नर-पशु प्रहार म आहत!
>
> (वही आत्मदान पृ० १३०)

बापू क निधन क पश्चात जन जीवन म जो सकरुण विषाद और प्रकृति क प्राण में ¯ार मउष्णा परिव्याप्त हो ग¯ ¯सका कवि न मर्मस्पर्शी वणन

किया है। बापू के प्रति अपनी भावांजलि समर्पित करते हुए कवि ने उन्हें गौतम और ईसा की समुज्ज्वल परम्परा में स्थान दिया है। यन्त्र-युगीन जन जीवन को बापू ने सत्यम चेतना का मंगल आह्वान किया। तप, त्याग, शील, क्षमा, करुणा जैसे जीवन मूल्यों की साग्रह प्रतिष्ठा कर बापू ने भारतीय संस्कृति के चिरन्तन मूल्यों का पुनरुत्थान किया। इसीलिए बापू को राष्ट्रपिता महामानव, युगपुरुष आदि अभिधानों से अलंकृत किया है—

"जय राष्ट्रपिता, जय मानव, जय शुभ्र पुरुष, युग सम्भव,
जय आत्मशक्ति के पर्वत, भू स्वर्ग दूत, युग नर नव।
तुम छू जन जीवन के बहु, जर्जर पक्षाहत अवयव,
भू संस्कृति को युग मन की दे गए ऊर्ध्व नव गौरव।"

(वही, आत्मदान, पृ० १३६)

वर्तमान युग की पीठिका पर बापू का व्यक्तित्व नर भूधर के समान है। कवि ने बापू को स्फटिक सत्य का दर्पण संकल्प शक्ति का निर्झर, सर्वस्व त्याग की प्रतिमा नव युग का प्रथम पुरुष और गत युग का अंतिम मानव कहा है। गांधी जी ने अहिंसा का अमोघ अस्त्र प्रदान कर निर्बलों में भी अपरिमित आत्म शक्ति का संचरण किया। गांधी जी ने यह प्रमाणित कर दिया कि पशुबल केवल सामूहिक संहार शक्ति से ही परिचित था। जीवन की मंगल रचना करने वाली वास्तविक शक्ति अहिंसा है। युद्ध नद्ध जग के लिए बापू ने आत्मशक्ति का दर्शन और सांस्कृतिक साधन उपलब्ध कराए। पन्त जी के अनुसार बापू का योगदान यह था कि उन्होंने—

"जड़वाद ग्रस्त जग में से,
अध्यात्म क्रांति का केतन,
व्यापक गंभीर आस्था में
संगठित कर गए जन मन!
भौतिक मूल्यों से पीड़ित
संदेह दग्ध ये भू जन
तुम सत्य शिखा ले आए,
धर सौम्य अहिंसक का तन!'

(वही आत्मदान, पृ० १४०)

बापू ने युग की राजनीति में भी ध्रुव सत्य, निष्काम लोक सेवा, परहित, निर्बल निर्धन के प्रतिनिधित्व और आत्म उन्नयन पर बल दिया। अन्तर्राष्ट्रीय जगत में बापू ने पशुबल की चरम परिणति आणविक बल में देखी। सत्साध्य

शुद्ध साधनो की स्थापना, नतिक एकता की घोषणा और मानव प्रेम की सक्रिय जीवन-गति को स्थापित करने म बापू का योगदान असाधारण रहा। भारत सदा से ही विश्व को यह सदेश देता रहा कि युद्धशाति की स्थापना अहिंसा के द्वारा ही हो सकती है, बापू ने भी यही किया। कवि के अनुसार—

"भू के समृद्ध देशो लो
भारत से शक्ति तपोबल,
दिव्यास्त्र अहिंसा उर के
कलुषो को करती घायल !
भौतिक वभव मदिरा पी
मत बनो ध्वस हित पागल
नतिक समद्धि ही भू निधि,
खोलो निरद्ध अन्तस्तल !"

(वही आत्मदान, पृ० १४३)

पन्त जी के अनुसार दासी भारत भू के उद्धारक के रूप म शतियो तक जन मन बापू का कृतज्ञ रहेगा। वे अणु मत जन भू के तारक के रूप म भी सदा स्मरण किए जायेंगे। लोकायतन के रचयिता के मतानुसार बापू ने एक जीवन म सौ जीवन जिए और प्रतिक्षण सौ युगो मे मुक्त-सचरण किया। वे ऐसे महापुरुष थे जिनके साथ एक कल्प का समापन हो गया। अस्तु बापू के बलिदान पर नव युग नतमस्तक है और उनके पद चिह्नो पर चलने के लिए कृत सकल्प है—

'सौ जीवन जो जीया एक महत जीवन मे
सौ युग जिसके सग नित चलते थे प्रतिक्षण म !
एक कल्प उसके सग साधक आज समापन
पद चिह्नो पर नव युग करता मौन पदार्पण।

(वही आत्मदान पृ० १४४)

सस्कृति द्वार के द्वितीय उपखण्ड का शीर्षक 'सक्रमण' है। देश के स्वाधीन होने पर बन्दी मुक्त हुए। वशी और हरी भी कृशतन किन्तु उद्वेलित मन से सुन्दरपुर जनपद लौटे। जनपद क नर-नारियो ने उनका अभिनन्दन किया। हरी की बहन श्री उसके उर स स्नेह माल की भाँति लिपट गई। मा ने सिर सूघा और पिता रघु ने गर्वोन्नत मस्तक से पुत्र को सराहा। हरी के स्वागत

अभिनन्दन सम्बन्धी समायोजन के परिदृश्य का चित्राजन करते हुए कवि ने लिखा है कि—

'उत्कंठित कला शिविर ने गाया कुसुमित अभिवदन,
सज वदनवार पुलक के रच अपलक चितवन तोरण !
वह प्रथम मुक्ति उत्सव था, वह क्रीडा, रस प्रदर्शन
प्रिय लोक नृत्य गीतो का युग पव मनाते थे जन।

(वही, सक्रमण पृ० १४६)

किन्तु वशी एकात अजिर म बठा युग चिन्तन म रत था। वह सोचता था कि स्वतन्त्रता स्वय म सिद्धि नही है। वशी का सजग मन रक्त स्वद अभिपेक्ति भू जीवन की रचना का सकल्प कर रहा था। उसकी कामना थी कि जन भू पर जीवनोल्लास तभी सम्भव है जब बहिरतर विभव समन्वित हो। शान्ति की प्रतिष्ठा और प्रेम के प्रकाश से ही कामनाएँ चरितार्थ हो सकेंगी। जन जीवन देश और जातियो की सीमा लाघ कर ही वसुन्धरा को स्वर्ग बना सकता है। वशी की चिन्ता यह थी कि उपनिषदो की ज्योतिमय चेतना से जन भू क्यो वचित है ? तभी वशी के उपचेतन मे भारत क उस प्राचीन आध्यात्मिक युग का परिदृश्य उभरा जिसे आलोक जागरण का युग कहा जाता है जिस युग के ध्यान मे जगत हित का दिव्य निदर्शन था। इसी क्रम म वशी की दृष्टि चतुर्दिक परिवेश की ओर उन्मुख हुई। उसने देखा भारत के करुण विभाजन के कारण राष्ट्रीय जीवन आहत हो गया गृह कलह की कालिमा अमिट रेखा के रूप मे राष्ट्र मस्तक पर अकित हो गई। भारतीय जन-जीवन म जो कटु कोलाहल हुआ उसक कारण घृणा और द्वष के कदम से धम दीपित मन भी सन गये। तभी वशी ने मानवता विकास के विभिन्न युगो पर दृक्पात किया तो उसे ज्ञात हुआ कि कृषि युग की समाप्ति के पश्चात से धरा पर ह्रास विकृति और विघटन का तम छाया हुआ है—

'कृषि हस्त चरम विकसित हो
जब क्रमश हुआ समापन
छाया हत भाग्य धरा पर,
जड ह्रास, विकृति तम विघटन ! '

(वही सस्कृति द्वार सक्रमण पृ० १५१)

विभिन्न युगो पर दृक्पात करते हुए वशी की दृष्टि मध्य युग पर केन्द्रित हुई। सामन्ती व्यवस्था के अभिशापो की अनुभूति का कवि ने इस प्रकार शब्दाकित किया है—

शुद्ध साधना की स्थापना, नैतिक एकता की घोषणा और मानव प्रेम की सक्रिय जीवन-गति को स्थापित करने में बापू का योगदान असाधारण रहा। भारत सदा से ही विश्व को यह संदेश देता रहा कि शुभ्रशांति की स्थापना अहिंसा के द्वारा ही हो सकती है, बापू ने भी यही किया। कवि के अनुसार—

"भू के समक्ष देशो, लो
भारत से शक्ति तपोज्वल
दिव्यास्त्र अहिंसा, उर के
कलुषों को करती घायल।
भौतिक वमव मदिरा पी
मत बनो ध्वंस हित पागल
नैतिक समृद्धि ही भू निधि
खोलो निरुद्ध अंतस्तल !'

(वही आत्मदान, पृ० १४३)

पंत जी के अनुसार दासी भारत भू के उद्धारक के रूप में शतियों तक जन मन बापू का कृतज्ञ रहेगा। वे अणु मत जन भू के तारक के रूप में भी सदा स्मरण किए जायेंगे। लोकायतन के रचयिता के मतानुसार बापू ने एक जीवन में सौ जीवन जिए और प्रतिक्षण सौ युगों में युक्त-संचरण किया। वे ऐसे महापुरुष थे जिनके साथ एक कल्प का समापन हो गया। अस्तु बापू के बलिदान पर नव-युग नतमस्तक है और उनके पद चिह्नों पर चलने के लिए दृढ़ संकल्प है—

सौ जीवन जो जीया एक महत् जीवन में
सौ युग जिसके संग नित चलते थे प्रतिक्षण में।
एक कल्प उसके संग सार्थक आज समापन
पद चिह्नों पर नव युग करता मौन समर्पण।

(वही आत्मदान पृ० १४४)

मुक्ति द्वार के द्वितीय उपखण्ड का शीर्षक 'सत्रमण' है। इस में स्वाधीन होने पर बन्दी मुक्त हुए। बंशी और हरी भी कृशगात किन्तु उद्वलित मन से सुन्दरपुर पहुँचे थे। जनपद के नर-नारियों ने उनका अभिनन्दन किया। हरी की बहन थी उसके उर में स्नेह भाव की भांति सिमट गई। माँ ने सिर सूँघा और पिता रघु ने सौंजना समाज में पुत्र को सराहा। हरी के स्वागत

'संस्कृति द्वार' उपखण्ड के 'संक्रमण' प्रखण्ड का कवि ने दो वर्गों में प्रस्तुत किया है। 'ह्रास' का विवेचन ऊपर किया गया है। अब विघटन की स्थिति द्रष्टव्य है। वंशी ने देखा कि भारत मां का ग्राम्यांचल दारिद्र्य के कदम से मला है। दारिद्र्य के कारण ही अविद्या और अज्ञान ग्राम्या में फैला हुआ है। वंशी का अन्तर पश्चात्ताप अज्ञान तम में आशा की किरण खोज रहा था कि हरि और सिरी ने प्रवेश किया। हरि ने कहा कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के चौदह वत्सर बीतने पर भी हमारा जीवन निष्प्राण प्रेरणा शून्य और तामस ग्रस्त है। दारिद्र्य और अशिक्षा रूपी दानव जन जीवन पर मुँह बाये खड़े हैं। निज निर्वाचित शासन में भी दिन प्रति दिन चारित्रिक विघटन हो रहा है। राम राज्य के स्वप्न तिरोहित हो रहे हैं। सुख सुविधाएँ मन्त्रिगण तक ही परिसीमित हैं। रक्षक भक्षक बन गए हैं। राष्ट्रीयता का देशवासियों को कोई आकर्षण नहीं। कवि के शब्दों में—

> कदम कन्दन में पलते मरते भर जन साधारण,
> परत न देश स दुष्कर स्वाधीन धरा का जीवन!
> यह गाधी का गौरव-युग गण लोकतन्त्र का प्रागण,
> हन विला घरौंदों म घुस रेंगता लाख कृमि जीवन!
> बसते ऊँचे महलो मे स्वार्थी नर, लोक प्रतारक
> जन रक्षक स भक्षक बन, सेवक से प्रभु भू शासक?
> × × ×
> जन मन का बाँध न पाता राष्ट्रीयता का आकर्षण
> एसा कुछ कहीं नहीं जो, फूँके जन म नव जीवन!
>
> (वही, संक्रमण (विघटन), पृ० १८६)

हरि ने कहा कि हमने भी लठिया खाई थी कारागृह की सासत भोगी था, चक्की पीसी पानी पली और कंकड़ कूटे थे किन्तु स्वातन्त्र्य जीवन का सुख मुट्ठी भर लोग भोग रहे हैं। जन सेवक अब शासक बनकर नगरों में सुख सुविधा पूर्ण जीवन बिता रहे हैं और जन जीवन दूषित खाद्यान्न के कारण रोग, निराश और विषादपूर्ण है। ग्रामीण जीवन सुधार के नाम पर सहयोग (सहकारिता) और ग्राम पंचायत आदि संस्थान समुचित नेतृत्व के अभाव में भ्रष्ट प्रशासनिक संस्थान बन गए हैं। बड़े उद्योग धन्धों की अव्यवस्था का अनाथ बना रहे हैं। मुट्ठी भर लोगों की सुविधा के लिए अगणित निरीह जन पिस रहे हैं—

"सामंती युग की पद्धति संस्कृति, विचार, विधि, दर्शन,
निःसार हो चुके थे सब, जीवन विकास के साधन,
आध्यात्मिक दुर्बलता से संकीर्ण मतों में खण्डित
लघु स्वार्थों में रत थे जन, भव विशद दृष्टि से वंचित,
निष्प्रभ निर्जीव, घिनौना कट्टर हिन्दुत्व उभर कर,
लगड़ाता निष्क्रिय भू पर ढो मुर्दे युग डग धर।
भू मानस का कल्मष था वह मध्य युगों का मानस
प्रलय पराधीन शक्तियाँ सब, मन, आत्म पराजित आवृत्।
(वही, संक्रमण, पृ० १५२ १५३)

कवि के अनुसार शंकर, चैतन्य कबीर तुलसी, भास्कर, वल्लभ, रामानुज स्वामी दयानन्द रामकृष्ण प्रभृति धर्म गुरुओं और महापुरुषों ने आध्यात्मिक प्रकाश प्रसार के समय समय पर प्रयास किए। विभाजन के अभिशाप पर चिन्तित कवि कह उठा कि यह मध्य युगीन मानस का संकीर्ण चिन्तन और जन जीवन का दुर्भाग्य था कि यह 'इस्लाम और मुसलमान को आत्मसात् न कर सका—

दुर्भाग्य समेट न पाई निज विस्तृत बाँहों में भर
यह भूमि मुसलमानों को तमसावृत था जन अन्तर।
(वही, संक्रमण, पृ० १५६)

कवि के अनुसार संकीर्ण धार्मिकता के युग बीत गए। अब वैज्ञानिक युग की विद्युतवत् चेतना संस्पर्श से निष्क्रिय सामंती स्थितियाँ समाप्त हो गई हैं। इसलिए कवि की मंगलकामना यह है कि—

'गत जाति धर्म कर्दम से
बाहर निकले युग मानव,
भव मानवता का स्वर्णिम
भू स्वर्ग रचे वह अभिनव!
लोकोदय की रचना हो
बहिरंतर सत्य समन्वित
भू जन की सित समता पर
जग में हो ऐक्य प्रतिष्ठित!
(वही, संक्रमण, पृ० १५७)

'संस्कृति द्वार' उपखण्ड के 'संक्रमण' प्रखण्ड का कवि ने दो वर्गों में प्रस्तुत किया है। 'ह्रास' का विवेचन ऊपर किया गया है। अब 'विघटन' की स्थिति द्रष्टव्य है। वंशी ने देखा कि भारत मां का ग्राम्यांचल दारिद्र्य के कर्दम से मला है। दारिद्र्य के कारण ही अविद्या और अज्ञान ग्राम्यों में फैला हुआ है। वंशी का अन्तर पर्वताकार अज्ञान तम में आशा की किरण खोज रहा था कि हरि और सिरी ने प्रवेश किया। हरि ने कहा कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के चौदह वत्सर बीतने पर भी हमारा जीवन निष्प्राण, प्रेरणा शून्य और तामस रत है। दारिद्र्य और अशिक्षा रूपी दानव जन जीवन पर मुँह बाये खड़े हैं। निज निर्वाचित शासन में भी दिन प्रति दिन चारित्रिक विघटन हो रहा है। राम राज्य के स्वप्न तिरोहित हो रहे हैं। सुख सुविधाएँ मंत्रियों तक ही परिसीमित हैं। रक्षक भक्षक बन गए हैं। राष्ट्रीयता का देशवासियों को कोई आकर्षण नहीं। कवि के शब्दों में—

> 'कर्दम कर्दम में पलते, मरते कर जन साधारण
> परत न्त्र देश से दुष्कर, स्वाधीन धरा का जीवन!
> यह गांधी का गौरव युग गण लोकतन्त्र का प्रांगण,
> हत बिलों घरौंदों में घुस रेंगता लोक कृमि जीवन!
> बसते ऊँचे महलों में, स्वार्थी नर, लोक प्रतारक
> जन रक्षक से भक्षक बन, सेवक से प्रभु भू शासक?
> × × ×
> जन मन को बांध न पाता, राष्ट्रीयता का आकर्षण
> ऐसा कुछ कहीं नहीं जो, फूँके जन में नव जीवन?
> (वही संक्रमण (विघटन) पृ० १५६)

हरि ने कहा कि हमने भी लाठियाँ खाई थीं, कारागृह की यातना भोगी थी, चक्की पीसी, घानी पेली और कष्ट झेले थे किन्तु स्वातन्त्र्य जीवन का सुख मुट्ठी भर लोग भोग रहे हैं। जन सेवक अब शासक बनकर नगरों में सुख सुविधा पूर्ण जीवन बिता रहे हैं और जन जीवन दूषित खाद्यान्न के कारण रुग्ण, निराश और विपन्नपूर्ण है। ग्रामीण जीवन सुधार के नाम पर सहयोग (सहकारिता) और ग्राम पंचायत आदि संस्थान समुचित नेतृत्व के अभाव में भ्रष्ट प्रशासनिक संस्थान बन गए हैं। उन्हें उद्योग देश की अव्यवस्था का अनाथ बना रहे हैं। मुट्ठी भर लोगों की सुविधा के लिए अगणित निरीह जन पिस रहे हैं—

सहयोग ग्राम पंचायत लगा और युग प्रगत,
समुचित नेतृत्व बिना क्या आ सकता उत्तम जीवन?
पारिवारिक प्यार न ऐसा रहा इस भू के मानव,
छुट्टा भर की सुविधा हित गिरा निराहृ अगणित जन?
×   ×   ×
टूटे घर की कुण्ठ उपेक्षित, दुर्गन्ध भरे जन प्रांगण
दूषित नालियाँ सज्जित भरे विषाक्त गुहा मन!
मानुषी उन्नति विरहित सहृदयता शून्य विगुण जन
जीवन पनाग पूरता बिखरा थी गरिमा निधन!'

(वही, संक्रमण पृ० १६१)

इसी बीच तृतीय निर्वाचन आया। विभिन्न राजनीतिक दल अपने झण्डे फहराते हुए गाँवों की ओर दौड़े। ग्रामीणों को आश्वासन दिए और वोट लिए। कवि के अनुसार देश में विद्वेष के कारण गाँवों और नगरों के जीवन में असामंजस्य किंवा वैषम्य है। जिस पश्चिमी प्रभाव और औद्योगीकरण में नगरों का जीवन रँगा वही ग्रामीण जीवन के लिए अभिशाप सिद्ध हो रहे हैं। हमारी भाषा नीति अर्थनीति राष्ट्रीय एकता से सम्बन्धित प्रश्न और योजनाएँ सभी में समन्वय का अभाव है। विदेशी ऋणों पर चलने वाली योजनाएँ देश के आर्थिक ढाँचे को जर्जरित कर रही हैं। कवि के अनुसार जन श्रम ही सच्ची सम्पदा है और यदि जनश्रम से राष्ट्रजीवन की विकास योजनाएँ निर्मित होतीं तो जनचेतना जागृत होती और सम्पन्नता भी आती—

जन श्रम से होता कल्पित
यदि नए राष्ट्र का जीवन,
बंधता गति लय में जन मन
जाग्रत युग प्रति हो जन।'

(वही संक्रमण (ह्रास) पृ० १६७)

अस्तु हरि इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि राष्ट्रीय जीवन के विकास हेतु भविष्य में हमें जन मन में नवचेतना और नवप्रेरणा का संचार करना होगा। बहिरंग के साथ अन्तर्मन का भी विकास करना होगा। वंशी युग जीवन के प्रति जागृत था। उसने हरि के आहत वचनों का समर्थन किया और कहा कि भारत की आत्मा जनतान्त्रिक ढाँचे में ही अक्षम रहेगी किन्तु आवश्यकता कर्मठ लोक पुरोधाओं (प्रतिनिधियों) को चुनने की है। नवकूप खनन नहरों

बाँधो, परिवहन विद्युत, इस्पात सीमेंट आदि के विकास के साथ जन मन को जातिवाद के विष से मुक्त करना भी आवश्यक है—

'गत जाति पाति वर्णों के
विष से विमुक्त कर जन मन,
जड़ रूढ़ि रीति का तम हर,
युग दीपित कर भू प्रांगण,—
हमको निर्मित करना नव
राष्ट्रिय मानस दिग विस्तृत,
चेतना धरा जीवन का,
मन के कर पूर्ण समन्वित।'

(वही, संक्रमण (विकास), पृ० १७१)

कवि ने यह भी मत प्रगट किया कि लोकतंत्र के सुसंचालन के लिए सबल प्रतिपक्ष भी आवश्यक है। वास्तव में एक सजगता का जन जन में व्याप्त होना भी जनतंत्र की सफलता के लिए आवश्यक है। कवि के अनुसार—

यह भी अनिवार्य हमें अब ऊँचा करना अपना स्वर,
नव लोक क्रान्ति की भेरी जन मन में पैठ करे घर!

× × ×

सामाजिक क्रान्ति अपेक्षित भारत जन के मंगल हित
हो जाति वर्ण में बिखरी चेतना राष्ट्र में केंद्रित।"

(वही संक्रमण (विकास) पृ० १७२)

शासन व्यवस्था के साथ साथ जन मन के चेतना स्तरों में भी क्रान्ति आवश्यक है। मानव मन अवचेतन कुंठाओं से मर्दित हो चुका है, विज्ञान की उपलब्धियाँ ध्वंसकारी सिद्ध हो रही हैं। कीड़े मकोड़ों की तरह जन-संतति प्रतिक्षण बढ़ रही है। ऐसी स्थिति में भारतीय जन मानस को उर्ध्वगामी बनाने के लिए युगचेतना का स्पर्श कराना परमानिवार्य है। इसके लिए विज्ञान और अध्यात्म का समन्वय कर सांस्कृतिक नवचेतना का विकास आवश्यक है। सांस्कृतिक चेतना विकास आर्थिक और प्रशासनिक सलक्ष्यों की सम्पूर्ति से भी महान है। इसीलिए—

"सांस्कृतिक चेतना का नव भू पर करना आवाहन,
जो रचे शुभ्र जीवन पथ अनिश्रम कर युग मानव मन!

अविरत तारिका आँगन पाए, जाएँ जब, सम्मुख,
सांस्कृतिक संचरण आज तब उज्ज्वल हो जीवन मुख !'

(वही, सप्तम, पृ० १८२)

संस्कृति-द्वार उपखण्ड के मधुस्नान प्रसंग में कवि ने एक कल्पनातीत स्वप्न का निरूपण किया है जिसमें कवि भावातिरेक्य के लिए उस दिव्य शक्ति का उपकार करता है जो विश्वव्यापी और सर्वोपरि है। सर्वप्रथम प्रकृति के सुन्दर दृश्य सामने हैं जिन्हें देखकर कवि के मन में यह प्रश्न उठता है कि कौन शक्ति अनन्त और अपार दृश्यों का निर्माण विधान करती है। प्राकृतिक सुषमा का सूक्ष्म अनुशीलन करते हुए कवि को नारी की मनोहर छवि का आभास हुआ। उसे प्रकृति सुन्दरी का चन्द्रमा मुख, गिरि शिखर उरोज, पुष्प दल माला जपाए, हरित तटी कटि प्रदेश, उड़ते खग चपल दृग, अधखिले मुकुल अरुण अधर, आह्वान सौरभ मुखश्वास, पिक-स्वर प्रणय वचन और संध्या का झरना तम श्यामल कवि को प्रतीत हुआ। कवि शोभा प्रेमी था और शोभा के रूपसी अनघ को वह प्राकृतिक-सुषमा में ही निरखता था। जगतहित में कवि ने एकाकी जीवन यापन करना ही श्रेष्ठ भी माना—

जग में एकाकी जीवन
समझा उसने श्रेयस्कर,
जब तक न प्रेम का पंकज
उभर कर्दम से ऊपर।

(वही, मधुस्पर्श, पृ० १६६)

कवि को बार बार अनुभव होता था कि धरा का जीवन संकीर्ण और अज्ञान-तम कवलित है। लोग जीवन से पलायन मुख हो रहे हैं। लोगों की आस्थाएं परनिन्दा, अहम्मन्यता और थोथे मूल्यों में संस्थापित होने के कारण जीवन को निराशापूर्ण बना रही हैं। कवि का मन जग से विरक्त हो गया। वह अपने आप में खोया रहने लगा। भावुक कवि दिवा स्वप्न दर्शन में तन्मय हो गया। अतीन्द्रिय लोक में भ्रमण करते हुए कवि ने देखा कि युग में की दारुण छाया वहां भी परिव्याप्त है। उसने अनुभूति की कि तन मन आहत और प्रकम्पित है। अंग अंग से भीषण अग्नि रज्जुएं लिपटी हैं और भग्न आकांक्षाएँ सर्पदंश जैसी वेदना उत्पन्न कर रही हैं। अभाव व विषपान की प्रतिक्रियाओं को कवि ने इस प्रकार अंकित किया है—

"उस मंदिर दश ज्वाला से रति विह्वल उसका अन्तर
लोटा करता शोभा की दरियों में तृषित निरन्तर !
उसको न ज्ञात था, कस सुख को अतृप्ति पर पा जय,
आकुल अशांत सलिला में खोजे वह सत का आश्रय !"

(वही, मधुस्पर्श, पृ० २००)

इस भीषण परिदृश्य के अवलोकन और दारुण अनुभूति के पश्चात योग, तन्त्र षड्-दर्शन, नृतत्त्व शास्त्र आदि के आधार पर उसने जब अन्तर्जगत में प्रवेश किया तो ज्ञात हुआ कि जन भू-समाज का महत् भविष्य रचा जा सकता है। इसी सचेतन समाधिदशा में कवि को वासव ने दर्शन दिये और कहा कि तुम काल्पनिक मुक्ति-कामी बन कर आत्म शून्य में लय मत हो। तुम्हारा चरम लक्ष्य धरा को स्वर्ग बनाना होना चाहिए—

"जीवन का ध्येय नहीं यह, मन ब्रह्म रंध्र से उड़ कर
खो जाय रिक्त गगन में, खग सा झुलसा मति के पर !
मैं जड़ धरणी का प्रेमी तुम से कहने आया कवि
निज प्रतिमा पट पर आंको तुम धरा स्वर्ग का नव छवि !

× × ×

ऊपर के सूर्योदय से, नव भू जीवन कर निर्मित,
बहिरंतर संयोजन भर तुम गढ़ो मुक्ति जन जन हित !"

(वही मधुस्पर्श, पृ० २०८-२०९)

इस प्रकार कवि के मन क्षितिज के आलोक से उद्भूत वासव देव कवि की अन्तर्दृष्टि को सदीप्त तथा कर्त्तव्य पथ को प्रशस्त कर अन्तर्लोक में तिरोहित हो गये।

'प्रथम खण्ड' के 'मध्य बिन्दु' (ज्ञान) शीर्षक तृतीय उपखण्ड में कवि ने एकांगी अन्तर्मुखी साधना की व्यर्थता प्रमाणित करते हुए मानवता के मंगल विधान हेतु व्यक्ति और समूह के ऐक्य की साधना का रूप निदर्शन किया है। वासव देवता से प्रेरणा प्रकाश पान के पश्चात वंशी व्यथित विश्व को राग द्वेष के कल्मष से मुक्त कर नव उन्मेषों से आंदोलित कर स्वर्णिम सोपानों पर अग्रसर करने के लिए कृत संकल्प होता है। वंशी श्रुतियों सन्तों और सद्ग्रन्थों के ज्ञान रूपी चित्कणों को चुनकर मानवता को देश जाति की संकीर्ण सीमाओं से मुक्त कर मांगलिक भविष्य की ओर उन्मुख करने के लिए प्रयत्नशील है। भावी मानव के आदर्श रूप की परिकल्पना करते हुए कवि ने मानवीय चेतना विकास का इस प्रकार अन्त दर्शन किया—

'सित स्वप्न मास देही ये मावी मानव गत देश जाति बंधन विमुक्त युग सभव ।
कटु मनोग्रथिया कुठाओ से विरहित राष्ट्रो के भय सशय स्पर्धा स वचित ।
विद्रवित हो रहा युग युग का निमम मन भू जीवन नव श्रद्धा आस्था का प्रागण ।
आ रहे निकट सब देश विदेशो के जन, स्त्री पुरुष निकटतर मुक्त काम अहि दशन ।
लघु गृह पुर आँगन लाघ मुक्त नारीनर, सामाजिक शतदल के से अवयव सुदर ।
सास्कृतिक पीठिका पर नव युग की शोभित श्रम लग्न, सौम्य रचना मगल म योजित ।

× × ×

स्वर्णिम रेखाओ म सौ सम्मुख अकित चेतना हो रही नव रूपो म विकसित ।
रस रहा ऊध्व समदिग जीवन म वितरित छायामा के ताना बाना म गुफित ।"

(वही मध्य बि दु (ज्ञान), पृ० २१७ २१८)

कवि ने चेतना स्तर पर समारूढ होकर प्राण गुहा के भीतर प्रविष्ट होकर युग जीवन के सवेदन सत्यो को अनुभूत किया । उसे अनुभूति हुई कि नराश्य ग्लानि, विद्वेष प्रमाद भेदमाव आदि के कारण भू उर जजर है । रस तत्त्व खोजती कवि दृष्टि ने पूणकला के समान जागृत नव चेतना के महत्तर रूप का साक्षात्कार किया । कवि को काल बोध हुआ । उसने कालदेवता की भविष्य वाणी को सुना—

मैं शक्ति देव वह कहता युग अधिनायक
मेरे कर म सवस्व नाश अणु सायक ।
मैं पीता जीवन ज्वाला भौतिक हाला
मैं मृत्यु गरल फेनिल मिट्टी का प्याला ।
भावी मनुष्य क सम्मुख दिग दारुण रण
टूटते मुकुट शत लुप्त नृप सिहासन ।
भू कप मनो भू पर आने को भीषण
मूल्यो म घटन को मौलिक परिवतन ।
गत रूढि रीति की कारा से बद्ध जन मन
नव युग भू पर करने का मुक्त पदापण ।
मैं काल, ज्ञान मुझको जीवन का इति अथ,
उडने को दिव पथ म भू मानव का रथ ।'

(वही, मध्य बिन्दु पृ० ३१६)

कवि युग प्रबुद्ध और विश्व नियति का ज्ञाता था । युग द्रष्टा होने के कारण उसे यह भी ज्ञात था कि विश्व सभ्यता वतमान म कहाँ स्थित है और भविष्य

म गत संस्कृतियाँ किस प्रकार समाजित होगी। वह चाहता था संसार मे प्रेम मृष्टि हो सौन्दय शान्ति आनन्द और क्षेम का निर्झर धरा पर झरे। तभी कवि ने नव युग चेतना का महान आह्वान किया—

'जागो, हे जागो धरा चेतने, जागो
युग-युग की ईर्ष्या, कुंठा, स्पर्धा त्यागो।
× × ×
जागो हे भू की राग चेतन, जागो
निज काम द्वेष वधव्य वेश अब त्यागो।
× × ×
जागो हे भू की प्राण चेतने, जागो,
जीवन के मधु म मन के पख न पागो।
× × ×
जागो-जागो, जग मनश्चेतने जागो,
देखो मुड अन्तमुख यह विधि, मत मागो।
× × ×
जागो, भू की अध्यात्मचेतने जागो,
गत सस्कारो धर्मों के गुण्ठन त्यागो।'

कवि ने चेतना-स्तर पर उभरते हुए काल्पनिक परिदृश्य मे देखा कि जन भू का अवरुद्ध मन सकीण सीमाओं को लाघ कर आलोक स्पश से सचेतन हो रहा है। इस नव चेतन प्रकाश के अवतरण से जाति, समाज और देश के बन्धनों से विमुक्त होकर राष्ट्र एक दूसरे के समीप आ रहे हैं। विज्ञान के वैभव के समक्ष राजनीतिक और आर्थिक सघष धूमिल प्रतीत हो रहे हैं। दूसरी ओर विनाश की विभीषिका के फलस्वरूप दो प्रतिस्पर्धी गुटो में बटा जन-जन विनाशकारी आयोजनों म भी जुटा हुआ है किन्तु कवि इस तमिस्रा आवृत वातावरण म श्रेय और सृजन का आकाक्षी है—

जन भू कुत्स्य दारिद्र्य तमिस्रा आवृत,
अन्धी आस्था अस्मिता अविद्या शासित!
मन राग द्वेष तन रोग शोक मे मज्जित—
हो सृजन प्राण नर सत्र श्रेय हित अर्पित!'

(वही, मध्य बिन्दु, पृ० २२१)

यशी का अभिमत है कि युग गोता के सपु मेट्री द्वारो म यंट वर धरा जड़ तामस गण्डहर बा गयी है। युगों की निमम सीमाओ म निबद्ध रहने के कारण पतन्य धरोहर और सुर-सम्पन्न म वद्धि न हुई। समाज म नारी का स्थान आज भी हेय और तिरस्कार पूण है। उसे निर्वासन, अपहरण, लोका पवाद लांछना और मृत्युमय से सम्पन्न रहना पड़ता है। सामाजिक और पारिवारिक जीवन का वषम्य गनयुग का अभिशाप है। गत युगों म व्यक्ति केन्द्रित विधान होने के कारण सामूहिक स्तर पर मानवता विकास के प्रयत्न सफल नहीं हो सके थे। किन्तु इस युग म विज्ञान ने नए मनुष्य का दृष्टि विस्तार कर सामूहिकता के प्रति मानवीय आस्थाओं को दृढ़ किया है। कवि के शब्दो म—

> 'आर्थिक तांत्रिक सामूहिकता की भू पर,
> नव मनुष्यत्व अवतरित हो रहा भास्वर।
> गत युग की जविक सीमाए कर विस्तृत
> आता सामाजिक मानव अन्तर्विकसित।
> सामूहिकता का भौतिक जड़ युग दशन,
> गढ़ रहा लौह पीठिका शात हो युग रण।
> × × ×
> भू मन को चनना अन्तश्चेतन दपण,
> बिम्बित हो जिसम नव ईश्वर का आनन।

(वही मध्य बिन्दु पृ० २२४)

पन्त जी के अनुसार सभी द्रष्टा कवियो का यही मत है कि चिर अभिनव नित्यत्व (ब्रह्म) मन-वाणी से परे है, तक विश्लेषण से उसे नहीं जाना जा सकता। कवि धरा पर ऐसी अध्यात्म चेतना के जागरण का आकांक्षी है जो अन्तजगत मे स्वय प्रकाश पूण और जन भू का मगल करने वाली है—

> आनन्द सूय के भीतर स्वय प्रकाशित,
> मगलमय, शाश्वत एकाकी, आत्मस्थित।
> अनुपम, अनत शोभा समुद्र अतरगित,
> अगणित स्वर्गों मे सर्जित एक अखण्डित।
> छाई हिरण्मय ज्योति, रत्न रज भास्वर,
> निज स्वण पख छायाएँ बरसा भू पर।
> × × ×

इस मरकत भू से विशद कौनसा मंदिर
नर नारी से उच्च और कौन स्वर्गिक धन।
× × ×
जन मंगल हित श्रम पूजन कर अर्पण,
श्रद्धा में प्राण प्रतिष्ठा करनी नूतन।"

(वही, मध्य बिन्दु, पृ० २२५)

वंशी के विचार से आत्मोन्मुखी त्यागी साधना भू को भगवत प्रांगण बनाने में असमर्थ रही है। प्रस्तर प्रतिमा में चिन्मय प्राण प्रतिष्ठा करके भी मानव मति ईश का साक्षात्कार न कर सकी। वस्तुतः जनधरणी ही मूर्त चिद् वभव है इसके अतिरिक्त ईश्वर की खोज निरर्थक है। ईश का सर्वश्रेष्ठ स्तवन भू रचना श्रम ही है। जन भू को छोड़कर अन्यत्र कोई स्वर्ग नहीं है। परलोकमुखी जीवन निषिद्ध मुक्ति का आदर्श त्याज्य है। वास्तविक मुक्ति का अर्थ है—जन भू का प्रांगण शुभ्र शांति सुख सम्पन्न हो तथा प्राणिमात्र में आप्तकाम प्रभु की शक्ति का प्रतिनिधित्व हो। अस्तु नयी पीढ़ी के संवाहक रचनाकारों को मानवता के मंगल विधान हेतु जनभू पर ही स्वर्ग संरचना करनी है। कवि की यह धारणा निश्चयतः युगीन है कि—

'जन भू को छोड़ न स्वर्ग कहीं रे ऊपर,
आनन्द मधुरिमा मंगल का जग हो घर।
वास्तविक मुक्ति वह जब जन भू का प्रांगण,
हो शुभ्र शांति सुख स्वर्ग सृजन श्रम रत मन।
× × ×
जीवन की ही रे पूर्ण चेतना ईश्वर
जो व्याप्त निखिल जीवों में, शाश्वत निर्जर!'

(वही—मध्यबिन्दु पृ० २२६)

गत युगों के मानस का सिंहावलोकन करने पर ज्ञात होता है कि विविध धर्म नियमों में अवगुंठित करके ईश्वर को दुरूह अगम्य और तिरोहित कर दिया गया था। अनेक प्रकार के मंत्र तंत्र पंथ और वादों में खंडित ईश विषयक विचारणा विश्वास शून्य कुंठित आस्थाओं को ही जन्म देती रही। द्रष्टाओं साधकों और सत्ता ने ईश और नर जगत (माया) का माध्यम रख कर विभक्त किया। गत कर्मों का फल नियति (प्रारब्ध) का बंधन, परलोक की धारणा, पुनर्जन्म की परिकल्पना और मायावादी चिन्तन मनुष्य का भ्रमित

करते रहे। बहिरन्तर जग जीवन के सम्यग्—सयोजित और समग्र विकास की ओर चेतना उन्मुख नही हुई। इसीलिए इस धरा जीवन को दु खपूर्ण और सघर्षमय कहकर काल्पनिक स्वर्ग की खोज की गई। किन्तु सच यह है कि—

"जग जीवन म ही समव ईश्वर दर्शन,
सुदर से सुदरतर हो जन भू प्रागण !
× × ×
यदि ब्रह्म सत्य तो जग भी सत्य असशय,
मिथ्या से मिल सकता न सत्य का परिचय !'

(वही, मध्य बिन्दु पृ० २३० २३१)

कवि की मान्यता है कि भू सामूहिक जीवन ही यज्ञस्थल है। सर्वोत्तम भाव का सदविकास ही आत्मोत्थान है। व्यक्ति की साधना का सर्वोत्तम स्वरूप वह है जिसमें क्षुद्र स्वार्थों का परित्याग कर सामूहिक हित मे व्यक्ति कर्मनिष्ठ होता है। व्यक्ति और समूह की समन्वित साधना का स्वरूपाकन कवि ने इस प्रकार किया है—

'हो विश्व मनस से व्यक्ति मनस सचालित
आत्मा से जीवन, जीवन से मन शासित !
जन भू मगल ही धर्म लोक श्रम पूजन
गत अ ध तमस से रूढि मुक्त हो जन मन।
ध्यानस्थ सत्य सम्मुख स्थित देखें बुधजन
बहिरतर भव सच्चिदानद का प्रागण।'

(वही, मध्य बिन्दु, पृ० २३२)

ब्रह्म की सत्ता और सृष्टि सरचना के विकास क्रम को पतजी ने अरविन्द दर्शन की मूलभूत अवधारणा के परिप्रेक्ष्य मे व्याख्यायित करते हुए कवि ने कहा है कि आदि हेतु ब्रह्म स्वय का सीमित कर सित स्वर्ण गर्भ मे सर्जित हुआ। वह हिरण्यगर्भ स्वर्णिम डिम्ब ही बँट कर स्वर्ग भू सूक्ष्म स्थूल और सुर नर बना। विश्वात्मा ब्रह्म स्वर्ण रश्मि से आवृत स्वय प्रकाशित नि सीम, अखडित सजन मुक्त शिव शक्ति ग्रथित तथा प्रज्ञामेघ भास्वर है। जब मूल प्रकृति आदि शांति मे लय रहती है तब ब्रह्म उसम वशी मे व्याप्त स्वर की भाति तन्मय रहता है। ईश्वर सष्टि नही रचता वरन स्वय सष्टि बन जाता है। अत शाश्वत तत्व से ही क्षण भगुर पदार्थ का उदभव होता है—

"प्रभु सृष्टि न रचते स्वय सृष्टि बन जाते
निज से ही निज म अभिव्यक्ति वह पाते।

× × ×

शाश्वत ही से मधुर पदार्थ का उद्‌भव,
सप्रति मे गुठित मुख भविष्य का चिर नव!"

(वही, मध्य बिन्दु पृ० २३३)

महर्षि अरविंद ने भी यही विचार व्यक्त किया है कि—"The Braha mn alone is and because of it all are for all are the Brahamn This Reality is the Reality of everything that we see in self and Nature'" अर्थात सवत्र एक ब्रह्म ही है और उसी के कारण सम्पूर्ण पदार्थों की स्थिति है क्योंकि सभी ब्रह्म हैं। इसीलिए 'लोकायतन' के कवि ने मुक्त कठ से स्वीकार किया है कि जगत मिथ्या नही है यह जगत सत्य और ब्रह्म अवलम्बित है। ब्रह्म स्वय जीवन का जीवन, सत्यो का सत्य तथा जगत् का कारण है—

"मिथ्या न जगत यह ईश्वर का घर आँगन

× × ×

वह परम न जीवन शून्य अखण्ड परात्पर
भव जीवन का न विनाश, क्रमिक रूपातर!
वह जीवन का जीवन, आनन्द अमृत घन,
सत्यों का सत्य, अकारण, जग का कारण!
उस परम सत्य के पलने मे पालित जग,
वह अमृत प्रसव उद्‌भव विकास गर्भित भग!

× × ×

यह जगत सत्य रे नित्य ब्रह्म अवलम्बित!"

(वही, मध्य बिन्दु पृ० २३४)

ब्रह्म और जगत की व्याख्या के पश्चात जीव का स्वरूप विश्लेषण करते हुए कवि ने लिखा है कि वह जीव जो श्वास-सूत्रो से गुम्फित हैं सित पुरुष के

---

[22] The Life Divine, II, p 45

हृदय-पुर शतदल मे निवसित रहता है। वह प्राणो से उपचेतन जीवन धारण करता है तथा चेतन गतियो से मन सचालित होता है। आत्मा और विश्वात्मा का ऐक्य सवथा वाछनीय है। मनुष्य का यह दायित्व है कि वह भू पर शकराचाय, माधवाचाय, रामानुज प्रभृति आचार्यों द्वारा चर्चित मौलिक दिव्य एकता की स्थापना करे। हम सब विश्व चेतना के अविनश्वर अग हैं, इसलिए हमे मृण्मय को चिन्मय का ज्योतिगृह बनाना है अस्तु यह आवश्यक है कि—

'जग म जो कुछ सब मे व्यापक ईश्वर स्थित,
भोगो जग को निज को कर प्रभु को अर्पित।
मत उसे बाट सोचो मेरा तेरा धन
ईश्वर, जग तुम अब एक, न कम ग्रसित मन!'

(वही, मध्य बिन्दु, पृ० २३६)

कवि के अनुसार आज का मानव बौना अध अज्ञानी, अहरत और बबर है। उसे विद्वेष रहित तेजस्वी और मनस्वी बन कर लोकमगल का विधान करना है। जब जनगण का श्रम सब श्रेय हित म निरत होगा तभी यह धरा स्वग बनेगी और भू पर सुर विचरण करेंगे। नव युग के सम्प्रदाय धर्मों तथा वर्णों से ऊपर उठकर मानवता निश्चयत विकासोन्मुख होगी। इस सब के लिए जन जीवन म एक महत सास्कृतिक क्रान्ति अपेक्षित है। ऐसी क्रान्ति नवचेतन नवसृजन और नव मानवता का विकास करने वाली हो। पत जी ने मनीषा कवियो की भाति सृजन चेतना के जागरण का आह्वान भी किया है—

"जागो जागो, जन सृजन चेतने जागो।
निज जन्म मत्व अनुराग मुक्ति तुम मागो?
सौन्दय प्रेम का भू पर कर आराधन,
आनन्द दीप्त तुम करो जनो के तन मन।
प्रिय हो मानव प्रिय भू प्रिय शशि गृह अबर
प्रिय फूल विहग प्रिय ऋतु प्रियगिरि सरि सागर।
प्रिय शिशुओ के मुख प्रिय हो स्नेही सहचर
अनुराग मधुर हो वधुओं के प्रति अतर।

× × ×

नव हृदय जन्म ले रिक्त मनुज के भीतर
नव मनुष्यत्व का अमृत भुवन रस सुन्दर।

जिसमें स्वर्णिम अनन्त म उतरे ईश्वर,
नव रचना मगल का दे जन भू को वर!"
(वही मध्य विन्दु पृ० २४३ २४४)

इस प्रकार 'लोकायतन' महाकाव्य के 'प्रथम खण्ड बाह्य परिवेश के अन्तगत कवि ने पूव स्मृति आस्था के अनन्तर 'जीवन-द्वार और 'सस्कृति द्वार उपखण्डों म राष्ट्रीय स्वाधीनता सगर का विराट रचना फलक पर निरूपित कर 'स्वतन्त्रता प्राप्ति' के पश्चात क भारतीय जन-जीवन का यथार्थमूलक दृष्टि से चित्रण किया है। यह चित्रण निश्चयत पन्त जी का युग द्रष्टा कवि सिद्ध करता है। 'प्रगति वाद युग' की 'युगवाणी, 'युगात' और 'ग्राम्या' प्रभृति काव्यकृतियो की भाँति 'सस्कृति-द्वार' उपखण्ड के 'सक्रमण' प्रखड का युगचित्रण मात्र बौद्धिक महानुभूतिपूर्ण या सतही नहीं है। यह युग चित्रण जनजीवन की ज्वलन्त समस्याओ से सत्रात और ह्रासोन्मुख मानवीय चेतना की सत्रस्त मन स्थितियो के अनुभूत सवदन सत्यो से सम्पृक्त है। देश के विभाजन और साम्प्रदायिक विद्वेष की भूमिका का सधान मध्ययुग की सास्कृतिक सक्रमणशीलता के परिपार्श्व म उभारने तथा उसकी मध्ययुग की ह्रासशील चेतना से सगति निर्धारित करने मे लोकायतन' के कवि ने मौलिक चिन्तन शक्ति और विलक्षण काव्य प्रतिभा का परिचय दिया है। विवेचना के इन्हीं स्तरो पर लोकायतन' सच्चे अर्थों मे एक महाकाव्य प्रमाणित होता है।

लोकायतन महाकाव्य के द्वितीय खण्ड का शीर्षक—"अन्तश्चैतन्य" है। द्वितीय खण्ड के प्रथम उपखण्ड का शीर्षक 'कला द्वार' है जिसे 'सस्थान' 'द्वन्द्व' और 'विधान' नामक तीन प्रखण्डों मे वर्गीकृत किया गया है।

'सस्थान' नामक प्रखण्ड में कवि ने सुन्दरपुर जनपद मे एक आदश कला शिविर (सस्थान) की स्थापना का वणन किया है। इस कला-सस्थान मे ग्रामीण जन जीवन के अन्तर्बाह्य विकास शिक्षा-दीक्षा अथव्यवस्था, जीवन चर्या, सामाजिक राजनीतिक, धार्मिक आध्यात्मिक और सास्कृतिक अभ्युत्थान की सश्लिष्ट रचना-पद्धति का विस्तृत समायोजन दर्शाया गया है। 'सस्थान' प्रखण्ड के समारम्भ मे सरस्वती का आह्वान करते हुए कला की सिद्धि लोकमगल मे मानी है—

कला के लिए कला का राग वरद कवि वाणी का व्यभिचार!
लोक जीवन के भीतर पैठ, स्वग शोभा मे उस सँवार!
× × ×

सूक्ष्म रस सृष्टि तूलि का ध्येय, लोक मगल-सुख प्रेरित मात्र
× × ×
लक्ष्य कवि का न मात्र आनन्द, न रस ही उसकी अतिम सिद्धि।"
(वही, कलाद्वार सस्थान, पृ० २५४)

स्वाधीनता प्राप्ति के दस वर्ष पश्चात हरि का स्वप्न साकार हुआ। उसने वृद्ध राजा ठाकुर से सुरम्य प्राकृतिक वातावरण म एक भू खड प्राप्त कर जन कला लोक प्रासाद (कला सस्थान) का निर्माण किया। इस कला सस्थान मे छात्र छात्राओ, शिक्षको, नट, नर्तक, छविकार कलाकार, कृषक श्रमिक व्यवसायी आदि को बुलाकर बसाया गया। हरि ने सर्वप्रथम सभी को कर्म निष्ठ बनने की प्रेरणा दी। हरि ने कहा—

'प्रथम शिक्षा हरि कहता, बाह्य कर्म पर हो निष्ठा विश्वास
कर्म का प्राण स्पर्श पा मूढ जनो का सभव मनोविकास।
कर्म प्रेरणा करे जन प्राप्त रिक्त जीवन वर्जन से मुक्त।
कर्म प्रेरणा शक्ति का स्रोत, जनो को कर लौह सयुक्त।'
(वही कलाद्वार सस्थान पृ० २५७)

इस कला-केन्द्र के जन जीवन को सम्प्रेरित करने म वशी का अशदान भी महत्वपूर्ण रहा। युगकवि वशी ने आत्मप्रेरक स्वरादघोष द्वारा केन्द्र के जनमन को आदोलित करके नवचेतना और कर्म उत्साह प्रदान किया। वशी हरि को बताता था कि यदि जन मन को समुन्नत करके धरा पर स्वर्ग उतारना है तो वर्तमान की विषम स्थितिया के बीच व्यापक साम्य की खोज करनी पडेगी। जाति वर्गों के वेष्ठनो को खोलकर, राष्ट्र स्त्रियो के बन्धनों का उच्छेदन कर देश राष्ट्र की सीमाओं का नाश कर धर्मान्ध जन जीवन को दर्प और भय से मुक्त करना होगा। अतीत और वर्तमान युग जीवन के परिवर्तित चैतन्य (बोध ?) का अन्तर स्पष्ट करते हुए वशी ने कहा —

क्रूर गत भू स्थितियों से रुद्ध
पूर्ण हो सका न मनोविकास
विचरता बौना क्षुद्र मनुष्य
मनुजता का भू पर उपहास!
जन्म लेता अब नव चैतन्य
विश्व मानस मे —वृत्त महान्

गुहा मू गर्भ तिमिर को चीर,
विहँसना वन्य सुम अम्लान।'
(वही, सस्थान, पृ० २६०)

हरि की बुद्धि सारग्राही थी, उसने क्रातदर्शी कवि वशी के उर का सत्य और विश्व कल्याण का विशाल सकल्प समझ कर कला केन्द्र के जीवन का उद्‌बुद्ध किया। और जना के प्रिय सहयोग से शिविर का अभीष्ट विकास हुआ। विश्व-मानवता तथा लोक साम्य के आदर्शों को साकार करने के लिए केन्द्र म सभी धर्मों के देवी-देवताओ की स्थापना की गई। जिस चतुर्मुखी युग ब्रह्मा की प्रतिमा कला प्रागण म प्रस्थापित की गई वह विविध रूपा का आत्मसात् किये थी—

"कला प्रागण म स्थापित उच्च, चतुर्मुख युगब्रह्मा की मूर्ति—
राम सँग बुद्ध मुहम्मद यीशु, विविध रूपा की करते पूर्ति!
चतुर्दल नील पद्म के मध्य, काल का काल हीन सित हाथ,
लिए नव ज्योति शिखा था ऊर्ध्व-सत्य का युग प्रतीक हो साथ।'
(वही, सस्थान, पृ० २६३)

कला केन्द्र के छात्र छात्राएँ और स्त्री-पुरुष अपनी प्रार्थनाओ म भी यही कामना करते थे कि हे जग के कर्त्ता हम शक्ति प्रदान करो जिससे हम लोक हित करें। हम मन, वाणी और कर्म से लोक निर्माण के कार्यों मे सलग्न हो आदि। उस जनपद का निर्माण करने मे सभी न अपेक्षित योग दान किया। फूस और खपरैल से पटी झोपडियाँ जनसस्थाना म बदल गई। स्वच्छ और विस्तीर्ण मार्ग स्वास्थ्यगृह तथा अतिथि शालाएँ निर्मित हुइ। जनपद की कृषि और उद्योग सहकारिता के आधार पर निर्मित किए गए। परिवार नियोजन के महत्व स भी जनपद निवासियो का हरी न अवगत कराया—

जना का हरि आकर प्रति वार
सिखाता सतति निग्रह मत्र,
नियोजित यदि न मनुज परिवार,
न सभव पूर्ण काम जन तन्त्र!
अशिक्षित, निर्धन रुग्ण अपार
बढाते व्यर्थ धरण भू भार,

नरक क्या बने न जन भू स्वर्ग
नहीं जब प्रजनन पर अधिकार !

(वही, मस्थान, पृ० २७०)

कला-केन्द्र के छात्र छात्राओं की जीवनचर्या नितान्त संयमित, सौहार्दपूर्ण और सहयोग भाव पर आधारित थी। पोथी ज्ञान के स्थान पर अनुभूत सत्यान्वेषी शिक्षा पद्धति पर विशेष बल दिया जाता था। हरि छात्रों को बताता था कि नमदिक भू के पाशों को चूर्ण कर ऊर्ध्व चेतना निधि को जीवन मे प्रत्यक्ष करो। छात्रों को चित्र नृत्य संगीत आदि विविध कलाओं का ज्ञान कराया जाता था। कला व्याख्या करते हुए उसकी सोद्देश्यता पर हरि इस प्रकार प्रकाश डालता था—

कला क्या ? कहता हरि सोन्मेष
असगति म सगति भर नव्य,
असुन्दर म सुन्दर की खोज
रूप गढना जन भू का भव्य !
× × ×
अचेतन तम का मुख मद चूम
कला को करना रस सस्कार !
सत्य से अधिक महत्तर सत्य
कला का रचना नव ससार !

(वही मस्थान, पृ० २७८)

केन्द्र के शिक्षार्थियों की दृष्टि गहनतर होती जाती थी। उन्हे यह पूर्ण परिज्ञान हो गया था कि सभी कलाओं का चरम लक्ष्य लोक मांगलिक विधान ही है। कवि के शब्दों म—

कला के स्पर्शो स स्व ज्ञाति देह मन का निज कर निर्माण
धरा को करने शोभा मूर्त शिविर जीवन करता श्रमदान !
न ग्रन्थों तक सीमित हो काव्य, पटों म हीन सुरक्षित चित्र
कला जन भू का कर शृंगार लोक जीवन को करे पवित्र !

(वही सस्थान पृ० २८५)

कला शिविर क विद्यार्थी नाट्य अभिनय द्वारा ग्राम जीवन की त्रुटियों पर व्यंग्य करते थे। जाति धर्मगत विद्वेष स्वार्थ कलह भाग्यवाद की विडम्बना अविद्या दैन्य निराशा रूढ प्रथाओं पर कुठाराघात नाटकों के मुख्य विषय थे।

सहनृत्य प्रदर्शन, प्रहसन, कठपुतली-नाच आदि के द्वारा शिविर युग सत्य का प्रचार प्रसार करता था। छात्र छात्राएँ साथ साथ रहते थे किन्तु उनके पारस्परिक सम्बन्ध शुद्ध प्रेम भाव और संयम सदाचार से अनुशासित थे। नारियों का कला शिविर में उचित अधिकार प्राप्त थे। आर्त अबलाओं, विधवाओं, परित्यक्ता, पति पीडिता और अनाथ स्त्रियों के लिए केन्द्र की ओर से 'करुणा कक्ष' खुले हुए थे। प्रौढ शिक्षा विभाग में रात्रि को स्त्री पुरुष अपना दैनिक कार्य समाप्त कर पढ़ते थे। शिशु कक्ष में बालकों को रुचि के अनुकूल अध्यापन कराया जाता था। अनेक संग्रहालय और ग्रन्थागार थे। इस प्रकार 'कला संस्थान' एक आदर्श केन्द्र था जो कवि वंशी की प्रेरणा और हरि की कर्मनिष्ठा से संचालित था—

चेतना वंशी हरि मन देह
परस्पर प्राणों में सित स्नेह
प्रेरणा था कवि, हरि युग कर्म,
केन्द्र भू श्री शोभा का गेह।'

(वही कलाद्वार संस्थान, पृ० २६६)

'कलाद्वार' उपखण्ड का द्वितीय प्रखण्ड 'द्वन्द्व' है। इस प्रखण्ड के प्रारम्भ में ही कवि यह स्वीकार करता है कि पुरातन युग की रूढियाँ समाप्त होकर नवचेतना का विकास हो रहा है। जो कल तक सत्य था, आज नवयुगों मेघ में असत्य हो गया है—

'सत्य था कल जो आज असत्य,
जगत जीवन रहस्य इतिहास।
समापन प्राय पुरातन वृत्त
क्षितिज तम से छन नव्य प्रकाश
निकष पर स्वर्ण रेख सा शुभ्र
विहँसता भू चेतना विकास।'

(वही, कलाद्वार द्वन्द्व पृ० ३१२)

सत्य और असत्य का द्वन्द्व चिर नन है। सुदरपुर जनपद के कलाकेन्द्र की प्रतिस्पर्धा में माधो गुरु द्वारा एक मठ का निर्माण किया गया जिसे शान्ति आश्रम' संज्ञा दी गयी। 'शान्ति आश्रम' में अष्ट विधि योग साधना द्वारा मोक्ष प्राप्ति का मार्ग बताया जाता था। शान्ति आश्रम की शिष्य मण्डली प्रात सायं गंगा स्नान कर संध्या, जप तप, ध्यान और वेद मन्त्रों से हवन

करती थी । माधो गुरु ब्रह्मचारी शिष्यो को वर्णाश्रम यवस्था के अनुपालन, द्विज-सेवा तथा वराग्य वत्ति सधारण करने का उपदेश देते थे । पूर्व-कम, नियतिवाद, जन्मातर और दवयोग मे उन की दृढ आस्था थी । नारियो को वे पतिव्रत धम का उपदेश देते थ । नारी स्वातन्त्र्य मे उनकी अनास्था थी । विधवाओ को वे जप तप त्याग सयम उपवास आदि के द्वारा जग से विमुख रहकर जीवन-यापन के लिए कहते थे । जगत को मायाजाल बताकर वे लोगो को विरक्त होने के लिए प्रेरित करते थे । सक्षेप मे माधो गुरु की जीवन दृष्टि पलायनवादी अमानवीय, दवाधीन अव्यावहारिक, परम्परागत और अभावात्मक थी । कवि के शब्दो मे माधो गुरु एक विलक्षण मिश्रण थ—

'विलक्षण मिश्रण थे गुरु गूढ —
धम का परम्परागत पक्ष,
मानते,—कर्मों म स्वाधीन
कुतर्कों, वाग जालो म दक्ष !
× × ×
जगत को बतला माया जाल
धरा जीवन प्रति बढा विरक्ति
मृत्यु परलोकवाद से त्रस्त,
बची जन मे न प्रेरणा शक्ति !'

(वही, द्वद्व पृ० ३१७)

कवि के अनुसार धर्मों का इतिहास बताता है कि उनका पुनरुत्थान असम्भव है । धम मनुजता को बाटते रहे है । जगत से ईश्वर को भिन्न बताकर मनुष्य का ससार स पलायन का उपदेश देने म दाशनिक तकवाद सविस हुआ है । सत्य ■ दा और तकवाद के जाल म उलझता रहा है । पुरोहितो और पण्डो न स्वार्थांध होकर धम की मनमानी व्याख्या की तथा देश को अन्धकार मे ढकेला है—

विरस वैराग्यवाद ने घेर
लिया नर ईश्वर का अपकार
पारलौकिक जीवन का खडग
सष्टि मुख पर आसुरी प्रहार !
पुरोहित पण्डे हो स्वार्थान्ध,
अ ध विश्वासो का बुन जाल,

नरक मे जन को गए ढकेल
देश को अन्धकार म डाल !
घणित पाखण्डा की कर सृष्टि
धम के ये लोभी क्ककाल,
वेच खा गए सत्य का दाय
खडे कर कम काड कमाल !'

(वही, छन्द, पृ० ३१६)

धम की इस सकीण व्याख्या का प्रभाव यह हुआ कि लोग घर आँगन छोड जीवन भ्रात होकर स यास ले वन का च ल गए। इससे सामाजिकता की नीव हिल गयी। शाति आश्रम क आचाय माधो गुरु भी इसी विचारधारा का प्रचार प्रसार करते रहे। वे लागों को चौरासी लाख योनियो म भ्रमण करने और जगत के मिथ्यात्व का उपदेश देते थे। मध्य युग के थोथे आदर्शो का पुनरुत्थान करके व लोगा के मन मस्तिष्क म पराजय, दु ख और नैराश्य भाव को जगाते थे। कभी व यम नियम प्राणायाम और इडा पिंगल सुषम्ना नाडियो म प्राण-वायु को रोकने तथा कुडलिनी शक्ति जागृत करने की बात कहते थे। माधो गुरु का बाह्याडम्बर प्रभावशाली था। उनके अनेक भक्त थे जो पूजा अचन करते थे। आत्मा न द हरिपाद सदृश उनके चेले आरती कीत्तन आदि के द्वारा भक्तो को अभिभूत किए रहते थे। कवि के अनुसार—

"पूजत उनको श्रद्धा मूढ,
भेंट कर अ ध भक्ति, धन धा य !
गेरुआ वसन, साधु का वेश,
देश म सहज सब जन मा य !'

(वही छ द, पृ० ३२३)

आश्रम मे बहुत स षड्दशन प्रवीण और शास्त्र ज्ञान निष्णात पडित भी थे जो विभिन्न परम्परागत दशना और धार्मिक मा यताओ पर आश्रमवासी मण्डली के समक्ष प्रवचन करते थे। इन प्रवचनो में नागाजुन कणाद, दिङ् नाग वाचस्पति मिश्र, जयन्त, पतजलि, जैमिनी कुमारिल भट्ट, मडनमिश्र, रामानुज शकर आचाय उदयन प्रभति विचारको की वैशेषिक, परमाणुवाद, द्वैतवाद, अद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद, सत्कायवाद साख्य नास्तिक, आस्तिक वेदा त मीमासा, पराविद्या विततवाद प्रतिबिम्बवाद, प्रौढिवाद, मायावाद सम्ब धी विचारधाराओ का विवचन किया जाता था। माधो गुरु मुक्त हस्त

से दान देते थे। उनका व्यक्तित्व रहस्यमय आख्यान बना हुआ था। वशी से द्वेष रखने के कारण वे मन ही मन कुंठित भी थे। उन्हें इस बात से असंतोष था कि लोग वशी का सम्मान करते हैं और उन्हें वशी के समान कीर्ति नहीं मिली—

"काष्ठ उर म रहती ज्यो अग्नि, प्रकृति मे था माधो के द्वेष,
प्रीति का मुखडा पहन उदात्त हृदय मे पाते गोपन क्लेश !
न आका जग ने उनका मूल्य, मिला जन से न कीर्ति धन दाय
ऐंठ सी गई अहता रज्जु, उपेक्षित देख अमर यश काय !
छीनकर उनका कीर्ति किरीट घूमता वशी बन सम्राट
सालता उर म निष्ठुर शूल, क्षुद्र बन जाता सिमट विराट !"
(वही, द्वद्व, पृ० ३३२)

यहा यह उल्लेखनीय है कि लोकायतन के कतिपय समीक्षको ने वशी को पत जी और माधो गुरु को निराला का प्रतीक कहकर यह स्थापित करने का असफल प्रयास किया है कि पन्त जी ने निराला जी के प्रति अपने आक्रोश की अभिव्यक्ति दी है। उदाहरणार्थ डा० सावित्री सिन्हा लिखती हैं— वशी कवि और माधो गुरु के व्यक्तित्व म स्वय पत और निराला के व्यक्तित्वो की छाया मिलती है। लोकायतन का हर आलोचक इस तथ्य की ओर इङ्गित कर चुका है। कलाद्वार के अन्तर्गत द्वद्व नामक उपखण्ड में माधो गुरु का रूढिवादी जड परम्पराओ और मूल्यो के प्रतिनिधि रूप मे चित्रित किया गया है। कही कही व्यक्तिगत स्पर्शों के सकेत बिलकुल स्पष्ट हो गए हैं।[1] डा० व्रजबिहारी तिवारी के अनुसार— पन्त जी ने गाधी, रवीन्द्र अरविंद आदि के साथ साथ वाल्मीकि व्यास कालिदास प्रसाद और महादेवी को भी श्रद्धा प्रसून चढाय हैं। निरालाजी की उपेक्षा सब को खटकगी। इससे ही कुछ लोगो को यह कहने का मौका मिला है कि माधो गुरु निराला और वशी पत।[2] मेरी व्यक्तिगत धारणा है कि 'लोकायतन' का मूल्याकन करते समय इस प्रकार के आक्षेप आलोचको के पूर्वाग्रह और सकीर्ण अध्ययन दृष्टि के परिणाम हैं। वस्तुत पत जी सदृश्य मनीषी कवि का अभिप्रत कदापि भी निराला के व्यक्तित्व पर कीचड उछालना नही रहा। महाकाव्य के विराट रचना फलक

[1] फूल और तारे (निबन्ध सकलन) पृ० १६१
[2] समीक्षालोक सुमित्रानदन पन्त विशेषाङ्क पृ० १०२

पर अनेक व्यक्तित्व उभरते हैं, किन्तु उनकी सगति कवि के व्यक्तिगत जीवन मे जोडना सवथा काम्य नही है। जहाँ तक माधो गुरु का सम्बन्ध है 'लोकायतन' के रचयिता ने स्पष्ट शब्दो म उन्हें ह्रास युग के दम, अहकार, अध विश्वास और परम्परा प्रियता का प्रतीक माना है। पत जी के ही शब्दो म द्रष्टव्य है कि—

'व्यक्ति माधो ये मात्र प्रतीक,
ह्रास युग अधकार के शूल,
उलट कर अहिसा दे विप दश,
जिसे हो आना था निर्मूल !"

(वही, कलाद्वार (द्वद्व), पृ० ३४५)

अस्तु स्पष्ट है कि माधो गुरु को किसी व्यक्ति विशेष (निराला ?) का यथाथ प्रतीक मानना भयकर भूल है। माधो गुरु भी वसे ही काल्पनिक पात्र और प्रतीक हैं जसे—हरी, सिरा, मेरी, वशी, सीता राम, लक्ष्मण, राधा आदि क्रमश कमठ पुरुष, प्रकृति शक्ति, पश्चिम की वैज्ञानिक चेतना, नव युग चेतना रचनाकार, लोक मानस, मर्यादा अनन्त पौरुष, धरा की रसात्मकता के प्रतीक हैं। माधो गुरु के प्रति कवि के श्रद्धा भाव का प्रतिपादन मैंने सप्रमाण आग यथा प्रसग किया है।

माधो गुरु के चिन्तन और आचरण पद्धति के विपरीत वशी युग चेतना म सम्पन्न रचनाकार था। वह अत मन से विश्व क भीतर ज्योतिर्विश्व का निस्तरग आनन्द लूटता था। आत्म साक्षात्कार के सृजनात्मक क्षणो मे उसे विलक्षण अनुभूतियाँ होती थी। उदाहरणाथ—

'एक दिन छाया सा हट विश्व, गया पीछे कवि हुआ समक्ष
नाभि से जगा ऊर्ध्वमुख नाद गीत उन्नमित हुआ उर कम्प !
नित्य होती अभिनव अनुभूति सयमित हुए शक्ति पा प्राण,

× × × ×

चित्त मे कवि के ज्योति गवाक्ष खुला रहता शोभा अनिमेष—
विश्व स उसका मन सयुक्त, वहन करता स्वर्गिक उन्मेष !'

(वही द्वद्व पृ० ३३३)

माधो गुरु जीण शीण जीवन मूल्यो का पुनरोद्धार कर सनातन परम्पराओ के सस्थापन म सलग्न थे। किन्तु वशी दुधष प्रतिरोधी दल से सघष करते हुए नवीन युग चेतना के आलोक म युगीन जीवन मूल्यो का प्रतिष्ठाता था। पर

म्परा की जडता से सुपरिचित होने के कारण पुरातन के प्रति उसका कोई व्यामोह नहीं था। कवि के अनुसार वशी नवयुग का प्रतीक था—

'नए युग का वशी प्रतिरूप
चेतना का फहरा नव केतु—
पार करता भू मन का सिन्धु,
लोक मगल हित रच ऋच सेतु।''

(वही, द्वन्द्व, पृ० ३४६)

माधो गुरु स्पर्धा वृत्ति और ईर्ष्या के कारण वशी का घोर विरोध कर रहे थे। उन्होंने लोगो को कहा कि वशी को स्थान न दें। माधो गुरु के शिष्य भी सक्रिय रूप से कला केन्द्र का विरोध कर रहे थे—

गिरोहों म बँट गुरु के शिष्य
जनो मे फलाते अपवाद,
शिविर क सस्कृत छाना छान,
बचाते अप्रिय वाद विवाद।
केन्द्र के प्रति कर कुत्सित व्यग्य
असत्यो का बुनते थे जाल।
सदस्यों पर करते आक्षेप,
कोटि फन हो कुत्सा विषव्यास।'

(वही कलाद्वार पृ० ३५३)

हरि और शकर न जाकर माधो गुरु से धृष्ट शिष्यो को सयमित करने का अनुरोध किया। गुरु ने स्वय केन्द्र म जाने और वशी से भेंट करने का विचार प्रगट किया और एक दिन पूव सूचना-केन्द्र म पहुँच गय। अपने प्रिय शिष्य के साथ माधो गुरु वशी के कक्ष में पहुँच गए और वशी स हाथ मिलाते समय उसक उर मे गुरु ने गोपन प्रहार किया और कवि को हतचेतन अवस्था में छोड लौट गए। द्वेष निमम गुरु ने जिसे तमकूप मे ढकेल दिया था उससे वशी भाग्यवश बच गया। सयोगवश कवि को विदेश भ्रमण का निमन्त्रण मिला और उसने हरि को सस्थान का भार सौंपकर विश्व राष्ट्रो क तन्त्र विधान को जानने के लिए प्रस्थान किया।

कलाद्वार उपखण्ड के तृतीय प्रखण्ड विधान म कवि ने वशी द्वारा विश्व भ्रमण और पाश्चात्य सभ्यता सस्कृति क वैज्ञानिक उपलब्धियो क परि-

प्रेक्ष्य मे प्रसार का निरूपण किया है। यान पर आसीन होकर व्योम मे भ्रमण करते हुए वशी को विलक्षण अनुभव हुए। नक्षत्रो से मडित नभ को देख कर कवि की कल्पना दृष्टि निर्बन्ध और निर्बाध दिशा विस्तार से परे पहुँचकर प्रकृति के दिव्य और विराट रूप का दर्शन करने लगी। नीलाकाश कवि को एक विराट नि सीम विस्तार प्रतीत हुआ—

"नील केवल, अकूल अति-नील,
निभृत, निस्तल, नि सीम, विराट
और चन्द्रा का दिव्य किरीट,
धरे था सिर पर दिक सम्राट।

(वही कलाद्वार (विज्ञान), पृ० ३६६)

अन्तरिक्ष के विराट् विस्तार और द्यो लोक की शक्ति-दीप्ति देखकर कवि विस्मय स्तमित था। वह सोचता था कि वह कौन सर्वव्यापी शक्ति है? जो अपरिमित महा शून्य म कोटि शत अधिवर्षों से असख्य ज्योति पिण्डो को भ्रमण करा रही है। वशी के मन मे यह प्रश्न भी उभरा—

"महत् किस आकर्षण से खीच सजा किसने अखण्ड ब्रह्माड,
असख्यो लोको से कर पूर्ण भर दिया महाकाल का भाड!
परम ज्योतिर्मय का क्या ध्येय? विश्व सगति का क्या उद्देश्य?
विहँसता महाशून्य नि शब्द—सृष्टि मे निहित स्वत सदेश।"

(वही विज्ञान, पृ० ३६८)

इसी अन्तरिक्ष विस्तार के मापन का साहसिक कार्य विज्ञान युग के मानव ने किया। कवि की दृष्टि में युगान्तर के साहसिक अन्तरिक्ष अभियानों का साधक्य क्या है? जब जन भू सकटा से घिरी है। मनुष्य जब धरा के ही दायित्वों के निर्वाह म अक्षम है तो अन्तरिक्ष स धान मे क्यो प्रवत्त हुआ है—

'लाभ क्या बहिशून्य म घूम
पुन बन युग त्रिशकु सपाति
रिक्त करतल सा फला देश
खेत चींटो सी उडुगण पाँति।
धरा के प्रति अपना दायित्व
निभा क्या चुका मनुष्य समग्र?
ग्रहो पर जो अब मत्य प्रभुत्व
प्रतिष्ठित करने को वह व्यग्र।"

(वही, विज्ञान, पृ० ३७०)

आणविक युग का मैं पश्चात्, प्रलयंकर प्रक्षेपास्त्रों का निर्माण कर घृणा, स्पर्धा और हिंसा के जो बीज धरती पर बो चुका है, उन्हीं को उगाने ज्योति पिंडो की ओर अन्तरिक्ष अभियानों के माध्यम से प्रयाण कर रहा है। कवि के स्मृति पट पर प्राचीन भारत का वह स्वर्णिम युग उभरा जब द्रष्टा ऋषि गुह्य मनोनभ अन्वेषण में लीन रहते थे। वे ध्यान का दिव्ययान निर्मित कर अन्तर्मानस का नीलगगन भेद कर प्राण पथ से ऊर्ध्व आरोहण करते थे। भारत के द्रष्टा ऋषि शुभ्र समाधिस्थ ज्ञान के बल पर प्राण के मरकत सोपान पर चढ़ कर शांति सौन्दर्य, प्रीति और आनन्द के दिव्य वभव से ओतप्रोत प्रकाश स्रोत खोजने में समर्थ हो सके। वे ऋषि चेतना के सित स्वर्णिम श्रृंग लाँघकर ध्रुव ध्यान में तन्मय होकर एक अणु में ही अखण्ड ब्रह्माण्ड देखने में सक्षम थे। वस्तुतः सच्चिदानन्द रूप चेतन्य ही सम्पूर्ण जगत में परिव्याप्त है, उसका दर्शन प्राण मन का अतिक्रमण कर अन्तश्चेतन्य स्तर पर ही सम्भव है—

"प्राण मन को अतिक्रम कर ऋषि
देख अक्षय सूर्यों का सूर्य
मृत्यु तम पर अमृतत्व प्रकाश
विजय का फूँक अभय स्वर तूर्य।
जगत जिसके विकास का नेत्र
स्वभू जो शुद्ध स्व-बुद्ध, अनन्य,
एक वह बहु भूतों में व्याप्त,
सच्चिदानन्द रूप चैतन्य।

(वही, विज्ञान पृ० ३७१)

ऐसे विश्वात्मा दिव्य स्वरूप ब्रह्म के साक्षात्कर्ता मनीषी ऋषि अनन्त काल से मनुज जीवन को श्रेय प्रेय से संयुक्त करने के लिए प्रयत्नशील रहे हैं। किन्तु उनकी आत्मचेतना की अभय ज्योति भी भू का पथ प्रशस्त नहीं कर सकी है। आज भी मनुष्य हिंस्र, बर्बर और विध्वंसक बना हुआ है। कवि के अनुसार आध्यात्मिक ज्ञान और भौतिक विज्ञान दोनों ही अर्द्ध युग सत्य हैं। वे समन्वित रूप में ही युग जीवन का पूर्ण सत्य बन सकते हैं। कवि के चिन्तन के अनुसार ज्ञान विज्ञान की सापेक्ष स्थिति इस प्रकार है—

ज्ञान विज्ञान अर्ध युग-सत्य,

पृथक रह उगल रहे वे न्यय
नाभि से भाव वस्तुमय ऊण ।
ज्ञान आत्मा, विज्ञान शरीर
अथ वाणी से सतत अभिन्न,
अध विज्ञान ज्ञान चिर पगु
रहे जग मे यदि व विच्छिन्न ।

(वही, विज्ञान, पृ० ३७२)

इसी प्रकार सोचते सोचते कवि पश्चिम की भूमि पर जा पहुँचा। उसने देखा पश्चिम के नगर इन्द्रपुर के समान विशाल और विपुल वभव सम्पन्न हैं। वहाँ के हाटबाट उद्यान स्वच्छ स्मिन और भव्य हैं। औद्योगिक क्रान्ति और यन्त्र युग की उपलब्धियों ने वहाँ के जीवन को भौतिक सुख सुविधाओं से परिपूर्ण बना दिया है। पश्चिम के लिए आधुनिकता वरदान सिद्ध हुई है। वहाँ की नारी पुरुष के समकक्ष नव्य सत्वा वे गौरव से युक्त है। डारविन के विकासवाद और कार्ल मार्क्स के ख्यात विचारदशन ने वहाँ के जीवन में बोध के नये क्षितिजो को विकसित किया है। रसायन, भौतिकी, चिकित्सा शास्त्र गणित, वनस्पति और जीवन विज्ञान के क्षेत्रों म हुई खोजों ने जीवन को सम्पन्न बनाया है। किन्तु भौतिक प्रगति की चरम परिणति साम्राज्यवादी, पूँजीवादी अधिनायकवादी आदि प्रवत्तियो के विकास में भी द्रष्टव्य है। अणु परमाणु विज्ञान विध्वसक उपादानो के विकास मे निरत होने के कारण मानवता के कल्याण विधायक नहीं हैं। कवि के अनुसार पश्चिम की ज्ञान सम्पदा मृत तथ्यों का ही ढेर है—

'ज्ञान सम्पद मथथ यह बाह्य, रिक्त मृत तथ्यो का जड ढेर
सत्य दीपित हो अतश्चित्त अभी युग सयोजन मे देर।
दप पवत बाहर से सभ्य मनुज भीतर से आदिम खव,
आज भी वह दिन दारुण दूर, एक हो भू मानवता सब।"

(वही कलाद्वार (विज्ञान), पृ० ३७६)

एशिया और अफ्रीका के अनेक भू खण्ड मथथ करते हुए पश्चिमी उपनिवेशवाद के जुए को उतार कर स्वतन्त्र हो रहे हैं। ससार भर म शक्ति सघष छिड़ा हुआ है। कवि की धारणा है कि विज्ञान की उपलब्धियों से जड तत्त्व म प्रसुप्त चतन्य की खोज की जा सकती है। आवश्यकता इस बात की है कि भौतिक विज्ञान भूमा का वरदान बनें। अन्यथा भौतिकता का आधिक्य विपदा

और भय का सूचक है। दलित वग म क्रान्ति जन्म ले रही है। यदि इतिहास की गति को न बदला गया तो इतिहास वतमान जीवन की गति को बदल देगा—

"स्थूल भौतिकता का आधिक्य विपद् भय का सूचक अविवाद,
छा रहा मानव जग म गूढ़, मनोवैज्ञानिक जड अवसाद।
× × ×
क्रान्ति का होता मन में जन्म विजित हो रहा शक्तिमद मोह,
रुद्ध युग मन मे उठता ज्वार दलित जन म भीषण विद्रोह।
न हम यदि बदलेंगे इतिहास, हमे बदलेगा वक्र इतिहास,
शक्ति का भू वितरण अनिवाय, राशि गुण की सम-वृद्धि विकास।'
(वही कल्पाद्वार (विधान) पृ० ३८२)

कवि की मान्यता है कि बाह्य विस्फोट युद्ध जनक्रान्तियाँ और मानसिक सामाजिक सघष अन्तत गूढ़ अन्तर्विश्वास के चिह्न हैं। आज के युग मे मानस म भ्रान्तियाँ अग्निमुखी आवेश क रूप म उमड रही हैं। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि विज्ञान और चेतना के सत्य मिलकर जगत जीवन के अन्त बाह्य विकास मे योग दें—

'बन रहा अब नव भव इतिहास,
बज रहा वैज्ञानिक युग तूय
मनुज अन्तमन का तम भेद
प्रकट क्या हुआ सत्य का सूय ?
चेतना-स्वर्णिम कवि आलोक
जगत जीवन विकास हित काम्य
पूण सयोजित जिसमे सत्य
भीतरी ऐक्य, बाहरी साम्य।
(वही, विज्ञान पृ० ३८१)

वशी ने विदेश भ्रमण करते हुए रोम यूनान, मिस्र, जमनी इटली, फ्रास, नार्वे, स्वीडन इगलड जापान, रूस और अमेरिका आदि देशो को देखा। आल्पस की पहाडियो, फ्रास क कलाशिल्प आइफिल टावर रोम दिगत स्मित सग्रहालयो दाते वर्जिल की कीर्ति फ्लोरेंस के कला केन्द्रो एथेंस के अवशेषो, स्वीडन की प्राकृतिक सुषमा स्टाक होल्म की कला, शेक्सपीयर के जन्मस्थान लेनिनग्राड, रेडस्क्वायर, वोल्गा, अमेरिका के औद्योगिक सस्थानो तथा टोकियो

नगर की सुषमा ने कवि को विशेष रूप से आकर्षित किया। इन सभी देशों की सांस्कृतिक समृद्धि का कवि ने यशोगान किया है। सोवियत भूमि के प्रति कवि विशेष रूप से आकर्षित हुआ, क्योंकि—

मित्र भारत के सब भू देश, रूस का उनमें अपना स्थान,
दलित भू जन को जिसने भव्य, स्वप्न जीवन का दिया महान।"

(वही, विज्ञान, पृ० ३६८)

इस भू भाग (सोवियत रूस) का प्रशस्ति गान करते हुए कवि ने लिखा है—

'नव्य जाग्रत यह जन भू भाग
धरा की अब समृद्ध जन शक्ति
महत सामाजिकता का अंग
यहाँ का जीवन सक्रिय व्यक्ति।
घृणित शोषण पीडन से मुक्त
मनुजता पाती युग अभिव्यक्ति,
लोक मंगल सामूहिक ध्येय,
श्रेय के प्रति अखण्ड अनुरक्ति।"

(वही विज्ञान पृ० ३६८)

भू-जीवन का वैचित्र्य देखकर कवि दृष्टि वाष्प-सजल हो उठी। वह सोचने लगा प्रकृति-सुभगा सृष्टि कब एक होगी? मानवता के हित में यह ऐक्य परमानिवार्य है। भारत और पश्चिम के भू-जीवन में उसे बहिर्मुखी वृत्तियों का पार्थक्य स्पष्टतः परिलक्षित हुआ। पश्चिमी जीवन में बहिर्मुखी भौतिक सभ्यता ने स्वार्थ, अनास्था, कटु सन्देह, रणभय, शक्तिमोह और राष्ट्रीय दर्प को उत्पन्न किया है तो भारतीय जीवन की अन्तर्मुखी जीवन दृष्टि में पलायन, पाप-पुण्य भय, दंभ विरक्ति, पारलौकिकता, अंधविश्वास, रूढ़िवाद और जड नीतियाँ विकसित हुई हैं। विश्व मंगल की दृष्टि से दोनों ही स्थितियाँ दुर्भाग्यपूर्ण हैं। कवि के शब्दों में—

'देख पश्चिम भू सौष्ठववित्र हुआ कवि के मन में आभास,
बहिर्मुख जीवन में जन मग्न न अन्तर्जीवन पर विश्वास।
विश्व मंगल हित यह दुर्भाग्य, कि पश्चिम बहिर्जगत में लीन
भाव-जीवी भारत जन भूमि, वस्तु जीवन महत्व से हीन।

ह्रास-तम का भारत म रूप, पलायन, पाप-पुण्य की भीति,
पारलौकिकता, कम विरक्ति, अध विश्वास, रुढि जड रीति !
सभ्य पश्चिम म स्थापित स्वाथ, अनास्था, रण भय, कटु सदेह
शक्ति का मोह, राष्ट्र का दप, बहिमुख भौतिक जाड्य सदेह !"

(वही, कलाद्वार (विनान), पृ० ४०८)

कला दशन से अधिक जहाँ सशस्त्र रण यानो को महत्व दिया जाता है, उस पश्चिमी सभ्यता से ध्वस के अतिरिक्त क्या अपेक्षा की जा सकती है ? पूर्वी जगत ने दुख से निवृत्ति का उपाय त्याग (वराग्य) बताया है। उभय पथ एकागी हैं। मानवता समन्वय का आदश अपनाकर ही विकासोन्मुख हो सकती है। इसके लिए आवश्यक है कि महत्ता के साथ सौजन्य शक्तिमत्ता के साथ कारुण्य धमव के साथ आर्थिक न्याय बुद्धि के साथ श्रद्धा भाव और बहिजगत के साथ अन्तश्चैतन्य हो। नव मानवता विकास के लिए देश की सकुचित सीमाओ और परिभाषाओ को भी बदलना पडेगा। कवि के शब्दो मे—

'मात्र मानवता रे अब देश
और सब देश प्रगति पथ रोध,
निखिल सस्कृतियो का नवनीत
शुभ्र नव मनुष्यत्व का बोध !
सभ्यता को करना सघष
मिटें राष्ट्रो की रेखा स्थूल
मथें जन गत इतिहास समुद्र
दिखें नव मानवता के कूल !'

(वही विनान, पृ० ४०६)

तभी कवि से पश्चिमी जगत ने प्रश्न किया कि भारत पर यदि आक्रमण हो तो क्या वह अहिंसा से ही प्रतिरोध करेगा ? कवि का उत्तर था—भारत अपनी अन्त शक्ति से ही लडेगा। यह वीर भोग्या वसुन्धरा है किन्तु वीरता के अनेक रूप हैं। सत्य के हेतु जो युग युद्ध लडा जायगा वह विश्व मगल कारी होगा और मानवता के विकास का माग प्रशस्त करेगा। क्षय भय से जर्जरित विश्व को एक स्थितप्रज्ञ देश चाहिए जो सत्य के लिए ही जिये मरे और अनास्था का तमस दूर कर चिद् ज्योति स जन मन को आलोकित करे। लोक अन्तमन का निमाण करने वाली ईश्वरत्व की शक्ति अर्जित करने

के लिए यदि युद्ध और बलिदान भी हो तो कवि उसका समर्थक है। कवि के अनुसार—

'युद्ध यदि युग भू पर अनिवार्य
मनुजता हित दे निज बलिदान
अ घ मू तम का मुख कर दीप्त
करे भारत जन भू कल्याण!
× × ×
युद्ध यदि दुर्निवार युग सत्य,
रक्त वह धोए धरा कलंक
खिले नव जीवन शोभा पद्म
जन्म दे नव युग को भू पंक!"

(वही, विज्ञान, पृ० ४१३)

विश्व जीवन का परिचय प्राप्त कर कवि दक्षिण सागर के तट पर महर्षि अरविन्द के दर्शनार्थ पहुँचा। निभृत आश्रम मे आत्म प्रशात योगरत श्री अरविन्द दिव्य मानस के स्वर्ण प्रतीक प्रतीत हो रहे थे। कवि को वहाँ शुभ्र चैतन्य सूर्य का आलोक दृष्टिगत हुआ। महर्षि के दर्शन से कवि के उर में दिव्य दवी चेतना का निपात हुआ। उस दिव्य चेतनालोक की अलौकिकता का वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है—

"निखिल बोधों का अक्षय बोध, बिना जिसके जग मृत विनाश,
स्पर्श मणि जड़ जिससे चैतन्य ज्योति तम से पर, स्वयं प्रकाश!
× × ×
गुह्य निश्चेतन से नभ व्याप्त, दिव्य अतिचेतन तक सोपान,
योग्य सक्रिय था, दिखा निगूढ़ विश्व का अन्तर्दीप्त विधान!
कोटि सूर्यों सा ही जाज्वल्य ऊर्ध्व चिद् विद्युल्लोक विशाल,
रहा आश्चर्य चकित, हतवाक ज्योति तन्मय कवि उर कुछ काल!
दिखा कवि को विशुद्ध चित् तत्व, सच्चिदानंद अनिर्वचनीय
आदि जो अन्त रूप का रूप, शुभ्र सौवर्ण, परम कमनीय!
प्रीति, आनन्द, शांति, नीरध्र, ज्योति रस, श्री शोभा कर पान
जगा कवि उर म नव उन्मेष, हुए विस्मय रोमांचित प्राण!"

(वही, विज्ञान, पृ० ४१७)

इस ऊर्ध्व चेतन शक्ति पात से कवि के प्राण कृतार्थ हो गए। माधो गुरु के व्रण का चिह्न भी मिट गया। अरविन्द आश्रम की रुपहली शांति और निस्तरंग गम्भीर वातावरण का कवि के मनस जगत पर शुभ प्रभाव हुआ। वंशी इस चिंतन में निमग्न हो गया कि धरा पर भगवत-ज्योति किस प्रकार साकार हो ? ऊर्ध्व जीवन क्या है ? समन्वित पथ का अवरोध कहाँ है ? आदि प्रश्न उसके समक्ष उपस्थित हो गए। इस चिन्तन क्रम में कवि इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि मनुज के सत् पर सन्देह करना जगत को मिथ्या कहना, और जीव को अशुभ स्वभाव मानना भेद मति का परिणाम है। जप तप संयम, ज्ञान विराग मोक्ष या इष्ट सिद्धि के द्वार नहीं हैं। मन्दिरों में प्रस्तर प्रतिमा में ईश्वर को स्थापित कर निष्क्रिय बना दिया गया है। आध्यात्मिक आस्था के नाम पर साम्प्रदायिक वमनस्य पनपा है और नैतिक मूल्य डूबे हैं। इस विडम्बना और विशृंखलन को दूर करने का उपाय बहिरन्तर जीवन शक्ति का सामंजस्य और ऊर्ध्वोन्मुख चेतना विकास है।

द्वितीय खण्ड (अन्तश्चेतन्य) का द्वितीय उपखण्ड—'ज्योतिद्वार' है। 'ज्योतिद्वार' उपखण्ड के प्रथम प्रबन्ध का शीर्षक—अंतर्विकास है। विदेश भ्रमण से लौटकर वंशी ने कला-शिविर को समुचित रूप में विकसित पाया। केन्द्र वासियों की साधना के फलस्वरूप वहाँ के जीवन में नवचेतना विकास और सांस्कृतिक क्रान्ति के लक्षण स्पष्टत परिलक्षित हुए—

गूढ़ सांस्कृतिक क्रांति हृदय भीतर
चलती कला शिविर भू रम मथित
× × ×
मुक्त युवक युवती जन निज मन में
गाढ़ एकता का करते अनुभव,
देह भाव की रज को अतिक्रम कर
कृच्छ जन्म लेता समग्र मानव !
× × ×
विस्मित लगती भू प्रहसित अंबर
रस क्षितिजों में उड़ता प्रेरित मन
यह बोध से निखर सब स्त्री नर
मुक्त भोगते आत्मा का यौवन !

(वही, ज्योतिद्वार, अंतर्विकास, पृ० ४३१)

वशी के लौटने पर कुसुमित वंदनवार से पथ रचकर, शिविर प्रांगण में मंगल घट सजाकर, शंख-ध्वनि और स्वागत गायन से केन्द्र वासियों ने उसका अभिनंदन किया। छात्रों द्वारा अर्पित पुष्पहार वशी ने हरी को पहना दिया। और स्नेह उच्छ्वसित हर्ष विह्वल हृदय से लगा लिया। हरी की प्रेरणा और अनुशासन से केन्द्र के युवकों में नव चेतना उद्भूत हुई थी। वशी के मनस शिखर पर श्रद्धा-आस्था का जो प्रवाहघन उमड़ा था वह शत शत रस धाराओं में निःसृत हो कला पीठ को सचेतन करने लगा। कवि ने बताया कि ध्यान, धारणा और प्रणति भावना में ही सृष्टा के पूजन की इति नहीं, न ही प्रभु प्रतिमा, देवालय या तीर्थस्थल तक ही परिसीमित हैं। पूजा विधि का निरूपण करते हुए कवि ने कहा—

"रचना मंगल श्रम से ही जन के सम्भव जीवन ईश्वर का अर्चन,
जन मन की उन्नत आकांक्षा ही, प्रभु पद पूजन की पवित्र साधन।
निश्छल उर नवेद्य अनघ निश्चय, सरल दृष्टि ही अपलक नीराजन,
अस्थि मांस की स्वस्थ देह मंदिर, जन जीवन गरिमा ईश्वर दर्शन।'

(वही, ज्योतिद्वार, अन्तर्विकास पृ० ४३४)

कला-केन्द्र द्वारा प्रशिक्षित युवक युवतियाँ दैन्य और निराशा का दारुण-तम दूर करने तथा लोकजीवन को सामूहिक श्रम की महत्ता से अवगत कराने के लिए ग्रामों में जाते थे। पन्त जी के शब्दों में—

"नव संस्कृति संदेशवाह बनकर
युवक युवति जन गावों में जाते,
नव युग का अभियान कुटीरों में
कर्म वचन, तन मन से पहुँचाते!
मानवता के दूत जनों में घुल
भू मन की रचना करते नूतन
× × ×
लोक प्रेरणा की किरणें बरसा
ग्रामाहृत करते सामूहिक श्रम!
स्फटिक स्वच्छ श्रीसुंदर हो भूतल
जीवन मूल्यों पर दत्त व बल,
श्रम की गति लय में निर्मित हो मन,
जीवन रचना श्रम ही में मंगल!

(वही, अन्तर्विकास, पृ० ४३७)

इस प्रेरणा के फलस्वरूप रुद्ध जन मन और ग्रामधरा का रूपान्तर हो रहा था। जन्म-जन्म कर्म के कर्दम से निष्क्रिय और रूढ़ि रीतियों से जर्जरित जन मन विगत युगों के जातिवाद कटुता स्वार्थवृत्ति, वश कुल-दम्भ राग-द्वेष, स्पर्धा, परनिन्दा, कामुकता आदि असत्य अभिशापों से ग्रस्त था। ग्रामवासियों का जीवन मानो खेत खलिहान, हल बल, खेत मेड और घर पुर तक ही परिसीमित था। शिविर के कर्मठ कार्यकर्ताओं की प्रेरणा से नव चेतना जागृत हुई, वे व्यापक दृष्टि अपना कर नवीन भावबोध से आन्दोलित हुए। किन्तु दूसरी ओर कुछ दुर्मति ग्रामीणों का दल ऐसा भी दल था जिसके मन में ईर्ष्या-द्वेष का गुप्त विराघानल धधक रहा था और हीन भावना से पीड़ित होकर वे लोग कला शिविर का विरोध कर रहे थे। घृणाद्वेष के विष से दर्शित उनके मन सांस्कृतिक अभ्युत्थान और ऊर्ध्व चेतना विकास के उदात्त आशयों को समझने में असमर्थ थे। माधो गुरु के वे अनुचर कवि वर्गों के प्रति अनुक्षण विष वमन कर रहे थे—

> 'समझ न पाते कला पीठ आशय लघु साधारणता में खोए जन,
> जनरव फैला माधो के अनुचर आग उगलते कवि के प्रति अनुक्षण।
> अहम्मन्य पागलपन के पूजक विश्वह्रास विघटन का था युग रण!'

(वही, अन्तर्विकास पृ० ४३९)

इस विरोध के होते हुए कला शिविर के प्रतिनिधि प्रशांत भाव से नव्य संस्कृति का प्रेम श्रद्धाजनित संदेश जन जन तक पहुँचा रहे थे। वे नगरों की भांति ग्राम धरा के विकास के पक्ष धर थे। ग्रामवासियों को संकीर्णसाम्प्रदायिकता और भेद भाव मूलक धार्मिक आचरण से मुक्त कर सूक्ष्म चेतना के अनेकानेक पक्षों का उद्घाटन करते हुए रचना उन्मेषों के पावक से प्रदीप्त पथ पर अग्रसर कर रहे थे। उनके प्रयत्नों का परिणाम यह हुआ कि—

> रूढ़ि ग्रस्त भय कल्मष गढ़ गत मन
> स्वस्थ धात पा रस चिति का भीतर
> सुमन उठा नव शोभा लपटों में
> ऊर्ध्व अभीप्सा के नभ को छू कर!
> ×   ×   ×
> धन गुरु में पठ शांति चुपके
> बरसाती जागृति चिनगी प्रतिक्षण!'

(वही, अन्तर्विकास पृ० ४४२)

युग कवि वशी का मन अ तद्र ष्टा था। वह भावी जीवन के वस्तु सत्य का स्वप्न देख रहा था। कवि दृष्टि मे भारतीय जन जीवन ही नहीं अपितु विश्व जीवन सक्रमण काल से जूझ रहा है। कवि क शब्दो म—

'भू पर था सक्रान्ति काल भीषण
बँटते जात दशा के जन, मन,
अकुलात नर बदी अणु दानव
भरता मन ही मन विनाश गजन।
रिक्त मतो, जड जीवन मूल्या म
पथरा से ये गए नागरिक जन
राजनयिक आर्थिक पद्धतिया क
पाटा मे पिसता हत जन जीवन।'

(वही, अर्तविकास, पृ० ४४५)

ऐस सक्रमणशाल जन जीवन को अ तआस्था से आलोकित करके ही सकट मुक्त किया जा सकता है। अरिआक्रमण की आशका भी जन मन मे व्याप्त थी। इस स्थिति म भी कवि उत्सवों और पर्वों पर नव रस मूल्या क वितरण द्वारा जन जीवन म शोभा विकास के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहता था। वासती सौदय पव आया। लोक नृत्य गीतो का सोल्लास सयोजन किया गया। कला केन्द्र म सभी प्रदेशो के लाग आते थ, अत परम मागलिक वसत पव पर युवक युवतिया अपनी प्रातीय वेशभूषा मे रागरजित हाकर मधु वभव लुटा रहे थे। पजाबी युवती मलमली साटन ज्वाला मे लिपटी थी तो आभिजात्य की गरिमा से मडित रूप गर्विता राजस्थानी वधू लहग चूनर म शोभायमान था। इसी प्रकार भाव यौवना वग युवतिया कला रगिनो सौम्य सुसस्कृत गुजराती बालाएँ दीप शिखा सी तजस्वी तनिमा दीप्तानन महाराष्ट्र कन्याएँ मृदु गिरि मुकुलो की कोमलता और हिम शृगा की भी अनिद्य गरिमा से परिपूण काश्मीरी ललनाए नृ य भगि निपुणा समृग रेशमी शाया म विभूषित दक्षिण वामाए तया शोभा गुठित शशिवाला सी यवन नारिया स्वकीय वेश भूषा म उत्सव की शोभा वृद्धि कर रही थी। इन युवतिया क तन मन उन्नत उरोज, भृकुटिविलास, मधु स्मिति चचलनयन, सुदर रूप और नव छवि से कुसुमित थे। इसी प्रकार व द क युवक बल पौरुष क प्रतिनिधि थे। इनके सम्ब ध मे कवि की धारणा है कि—

"विविध विदेशों की किशोर तरुणी
कला शिविर संस्कृति में थी दीक्षित,
मुग्ध भाव सौंदर्य परिष्कृत छवि,—
जीवन मधु रस वभव में लालित।"

(वही, अंतर्विकास, पृ० ४५१)

कला शिविर के युवक युवतियाँ रस स्पंदित और भाव ग्रहण से उल्लसित मुक्त विचरण करते थे। उनकी राग चेतना नवधी वभव से सदीप्त और ऊर्ध्वोन्मुखी थी। अत उनका पारस्परिक प्रणय भाव मोह, शका और कुंठा से विरहित था। यौन कर्म उनकी दृष्टि में—

"यौन कर्म हो रस पवित्र संस्कृत,
देह प्रणय स्वप्नों की मुग्धशयन।"

इसी प्रसङ्ग में कवि ने एक नाट्य रूपक के अभिनय द्वारा स्त्री-पुरुष के प्रणय सम्बन्धों का निरूपण किया है। शकर और प्रीति के माध्यम से महाकाव्यकार ने प्रेम के शाश्वत स्वरूप, रागात्मक सम्बन्धों आलिंगन-सभोग आदि कायिक चेष्टाओं का विश्लेषण किया है। 'सभोग प्रक्रिया' के भौतिक परिदृश्य को कवि ने एक सशक्त बिम्ब द्वारा इस प्रकार अंकित किया है—

'स्फीत ज्वार में गिर ज्यों फूल युगल
ऊब डूब करते गति लय ताडित,
प्राणसिन्धु में तृणवत् दो देहें
तिरतीं तन्मय, मुग्ध आत्म विस्मृत।
वज्र स्तंभ सी थीं बलिष्ठ जाँघें
तिग्म काम ज्वाला से परिवेष्टित
उमड़ अमेनन से प्रमत्त लहरें,
दृप्त भुजगों सी लगतीं नर्तित!
तडित्पात होता रस का दुर्धर
अग्निपुंज सा धसता उर भीतर
मन संज्ञा अहि दंश से विद्रुम
प्राण भाजन मरकत मर!

(वही, अतर्विकास पृ० ४७८)

कवि के अनुसार ऊर्ध्व चेतना ने युवक-युवतियों की प्राण रुचि को

विकसित कर दिया था। वे देह मिलन के सुख का अतिक्रम कर भाव मिलन के रस ग्रहण मे तन्मय थे। यही नवजीवन का अरुणोदय था।

माधो गुरु के समर्थक अब भी कला केन्द्र के विरुद्ध कुचक्र करते रहते थे। शकर अस्वस्थ माधो को देखकर लौट रहा था कि उसे नाडी मे पड़ा हुआ नवजात शिशु मिला, जिसे लाकर उसने वशी को सौंप दिया। हरि ने इसका विरोध भी किया कि केन्द्र कोई अनाथालय नही है जो अज्ञात शिशुओ का भरण-पोषण करे। किन्तु प्रत्युत्तर म वशी ने कहा—

"निखिल विश्व ही आज अनाथालय
सुलभ मनुज को जहा न सुख साधन,—
अकथनीय जन भू विकास की स्थिति
मानव भक्षी अभी मनुज का मन!
कला पीठ क्या ?—कहा दीप्त कवि ने
नूतन प्राक्तन का युग सघर्षण,
नव्य चेतना म कर आरोहण
जन मन को करना भू पर विचरण!"

(वही, अन्तर्विकास, पृ० ४८८)

अन्तत वशी ने बालक को केन्द्र म रख लिया। उस का नाम अतुल रखा गया तथा श्रद्धा नवजात शिशु का लालन-पालन करने लगी। इस प्रकार वशी ने शिशु के पालन का दायित्व स्वीकार कर उदात्त भाव बोध का परिचय दिया।

कवि वशी का कृत्य यद्यपि श्लाघनीय था किन्तु उसकी तीव्र प्रतिक्रिया हुई। कला केन्द्र म ही उसका विरोध प्रारम्भ हो गया। हरि और सिरी के अन्तर म भी असतोष उत्पन्न हुआ। कवि वशी की मान्यताओ के अनुरूप केन्द्र के जीवन विकास को न पाकर हरि ने एक दिन कला शिविर के सचालन म अपनी असमर्थता वशी के समक्ष प्रकट की, और कहा कि मुझे आज्ञा दो मैं घर जाकर हसिया हल लेकर गाँव म खेती करूँ तथा सिरी के लिए योग्य वर खोजूँ। अश्रुपूरित नेत्रो से कवि ने कहा हरि तुम कला पीठ के जनक हो! अभी केन्द्र ने अपने उद्देश्यो को प्राप्त नहीं किया है। हरि ने स्पष्ट शब्दो मे कहा—

'प्रकृति जात शिशु को आश्रय देकर
तुम विरुद्ध कर चुके क्रुद्ध जनमत,
अब सुन्दर आस्था के कुल कृमि से
स्वर्ग कल्पना नरक कुंड परिणत!'
× × ×
वमन करेगी धरा कोख कल्मष
कुल कलंक उपजेंगे नित संकर,
वर्ग चयन गत कुल संस्कारों का
भू जीवन होगा अपन्य खंडहर!

(वही ज्योतिद्वार अन्तर्विरोध, पृ० ५०४)

कवि ने अपने ढंग से सामाजिक जीवन की युग सम्मत धारणा, प्रजनन कर्म, विवाह बंधन और नैतिकता पर प्रकाश डालकर हरि को आश्वस्त किया। कवि के प्रति श्रद्धावनत होकर शिविर में कर्मरत रहना स्वीकार किया। किन्तु जार पुत्र से प्रीति के कारण केन्द्र और कवि का विरोध मध्य युगीन सामाजिक आदर्शों में आसक्त जनों द्वारा चलता रहा। इस परिस्थिति का लाभ उठाकर माधो के अनुयायी जनमत को उकसाते रहे। अन्ततः जनमत को पूर्णतः विरुद्ध करके माधो गुरु के नेतृत्व में उनके दल के शिष्य और अन्य लोग कला केन्द्र पर आ धमके। निरंकुश युवकों ने केन्द्र में घुसकर मार पीट शुरू कर दी। वे कवि वंशी पर टूट पड़े। बलिष्ठ हरि ने कवि को बाहों में भर कर अपनी आड़ कर दी। तभी किसी ने छुरी के अधम घात से हरि पर घातक प्रहार कर उसका प्राणान्त कर दिया और भीड़ भाग गई। हरि के निधन पर उसकी बहिन श्री ने करुण विलाप किया। वंशी ने भी पश्चाताप और वेदना मिश्रित वाणी से हरि के बलिदान का पुण्य स्मरण करते हुए उसकी चारित्रगत विशेषताओं का निरूपण किया। हरि के वध से कलाकार भी उग्र होकर प्रतिक्रियात्मक आचरण के लिए सन्नद्ध हुए किन्तु कवि ने उन्हें उच्चकोटि के प्रबोधन द्वारा शान्त कर दिया। कवि पुनः भू मंगल के महत् अनुष्ठान में निरत हो गया—

करुणा मूर्त से था कवि जिस नर व्रण
भू मंगल प्रति हुआ पुनः अर्पित
लगा खोजने ज्योति ——— नूतन
अब धरा मन हो जिससे मर्यादित!

(वही अन्तर्विरोध पृ० ५२६)

हरि के वध की घटना से माधो गुरु का अन्तर भी ग्लानि कवलित हो गया। यह ऐसा असाध्य व्रण उनके उर में उपजा कि क्षीण और विघटित होते होते वे दिवंगत हो गए। गुरु के देह निधन से भी वंशी के कुसुम मर्म को गोपन आघात पहुँचा। सुन्दरपुर के चौराहे पर वंशी ने माधो गुरु की पूर्णाकृति प्रतिमा स्थापित की और सश्रद्ध नमन करते हुए कहा—

"गुरु को हम करते शत नम्र नमन
युग मन की संपद, श्रद्धा पूजन
गुरु चरणों पर करते नत अर्पण !
× × ×
ज्योति स्तंभ वह विगत अस्मिता के
करते रहे दिशा पथ निर्देशित,
× × ×
नूतन प्राणनन के संघर्षण में
रहे सदा माधो जन नायक—"

(वही, अन्तर्विरोध, पृ० ५३४)

कवि वंशी की श्रद्धांजलि से स्पष्ट है कि जन मन में यह मृषा धारणा थी कि कवि का गुरु से गोपन वैमनस्य था। कवि के इस सदाचरण से यह भी प्रमाणित हो जाता है कि 'लोकायतन' के कतिपय समीक्षकों की यह धारणा भी खण्डित हो जाती है कि 'माधो गुरु' निराला के प्रतिबिम्ब हैं और काव्य में उनके प्रति विगर्हणा प्रगट की गई है। पन्तजी ने तो वंशी (कवि) के मुख से माधो गुरु के चरित्र की प्रशस्ति भी कराई है जो अविकल रूप से नीचे उद्धृत है—

'गुरु उदार थे, पर उपकार निरत दान त्याग तप की प्रतिमा जीवित
तेजस्वी द्रष्टा, शिल्पी सर्जक दर्प दीप्त प्रतिमा कर रवि विरचित !
दुर्बल के बल, दुखिया के रक्षक, स्वाभिमान के उन्नत मूर्य शिखर,
जन संघर्षण के अजेय नायक युग पथ निर्माता, प्रबुद्ध, तत्पर !
सह सकते न अन्याय न पर शोषण, घृणा क्रोध, अपमान, दंभ, लांछन,
बुद्धि जीवियों के निर्भय प्रतिनिधि, कविता कानन के गजेन्द्र गर्जन !
हास्य व्यंग्य प्रिय मुक्त प्रकृति दुर्जय, प्राण दृष्टि थे माधो युग नायक
मन्त्र तन्त्र विधि दीक्षित साधक वर, व स्वतन्त्र चेता रुचि निर्णायक !
× × × ×

सामाजिक दुष्प्रवृत्तियों से आहत, अत्याचारों से कर निर्मम रण,
आत्म विजय का केतन फहराते, किया उन्होंने निज जीवन अर्पण।'
(लोकायतन ज्योतिद्वार अन्तर्विरोध, पृ० ५११ ५१२)

'ज्योतिद्वार' उपखण्ड के तृतीय प्रखण्ड 'उत्क्रान्ति' में कवि ने अन्तश्चेतना के ऊर्ध्वोन्मुखी विकास का समस्त निरूपण किया है। अन्तश्चेतन क्रान्ति की प्रतिक्रिया का उल्लेख करते हुए कवि ने लिखा है—

'बरस रही युग स्वप्नों की शोभा
अन्तर्वैभव से कर उर विस्मित
नव प्रकाश के रस सिक्त स्पर्शों से
भाव मुग्ध प्राणों को कर पुलकित!
× × ×
क्रान्ति क्रान्तियों को करती अतिक्रम
बहिरन्तर का होना रूपान्तर,
आत्मा के रस पावक में तप कर
निखर, पूर्णतम ढलता स्वर्णिम नर!
(वही उत्क्रान्ति, पृ० ५३६ ५३७)

कवि ने कल्पना दृष्टि से अनागत जीवन के अन्तश्चैतन्य विकास का दिग्दर्शन किया। उसे अनुभूति हुई कि मनुष्य के साथ पशु पक्षी और वनस्पतियाँ भी नव चेतन सुषमा से अभिमण्डित है। वंशी का अन्तर्जगत ज्यों ज्यों जग जीवन को आत्मसात करता हुआ ऊर्ध्वोन्मुखी समदिक सचेतन होता था, उसमें नव चेतना अवतरित होती थी—

'ज्यों ज्यों ऊपर उठता कवि अन्तर
आत्मसात करता वह जग जीवन
समदिक बनता ऊर्ध्व समदिक,
मौन अवतरण करता नव चेतन!
(वही उत्क्रान्ति पृ० ५३८)

वंशी ने अनुभूत किया कि भू जीवन की पूर्णता को लाँघकर प्रबुद्ध नूतन भाव दिव्य चेतना के रूप में जन्म ले रहा है। ज्ञान चक्षुओं से आत्मा का इन्द्रिय कुसुमित वैभव दिखा। आत्मा की सित शरद नीलिमा में अकलुष चेतन सुषमा का उगता शशि और सित प्रकाश का निर्भर बरसाता माणिक

रवि दृष्टिगत हुआ जो जन भू को श्री शोभा, आनन्द और प्रीति से स्नात किए है। सप्त वर्ण ज्वालाओं में लिपटी चेतनाएँ भू पर उतर रही हैं। लोक एक्य की लौह पीठिका पर भावी भू मानव अवतरित है। कवि ने उर्वशी, मेनका, रंभा आदि अप्सराओं को भी दिवाभिसार करते हुए देखा। कवि ने इन शोभा छायाओं को जन भू के विकास हेतु रचना श्रम करते को कहा। कवि के चेतना पट पर अप्सराओं का आगमन प्राणों की आकांक्षा का छल था।

वंशी के सन्देश को केन्द्र के युवक युवतियाँ सुन्दरपुर जनपद के क्षेत्रों में फला रहे थे। इसी बीच हरि की बहन सिरी का भी स्वर्गवास हो गया। शुभ्र त्याग की प्रतिमा सिरी के निधन के अवसर पर कवि ने प्राणवायु (श्वास) को अनिल तत्व में तद्गत होते हुए देखा। इस प्रकार कवि ने मृत्यु के सुन्दर रूप को देखा। किन्तु वह अविचलित भाव से युग विकास का आग्रह लेकर कर्त्तव्य पथ पर बढ़ता रहा। सचेतन साधना और अन्तर्दर्शन से कवि को जो दिव्य अनुभूतियाँ होती थीं उन्हें वह गूढ़ प्रतीकों बिम्बों और चिह्नों के माध्यम से उद्घाटित करता था। कवि को यह अनुभव होने लगा था कि नव-युग कल्पान्तर दूर नहीं है—

'अन्तस्तल से निखर मेरु हिमवत्
प्राण सिंधु जल से उठते ऊपर
भावी मानव संस्कृति शृंगों—से,
मेरु सानु था चित स्वर्णिम सुन्दर!
× × ×
शिव सा शशि गंगा अहि गण परिवृत
था अन्तश्चैतन्य भूति भास्वर,
अध ऊर्ध्व स्तर भव जीवन सक्रिय—
दूर न था अब नव युग कल्पान्तर!

(वही, उत्क्रान्ति, पृ० ५४८, ५४९)

कवि ने ध्यानावस्थित अवस्था में अन्तर्दृग से देखा कि अज्ञान धूम छट कर चिति का स्वर्णाभ शिखर ज्योति अंकित हो गया है। ज्योति-ज्योति-सूत्रों से भू जीवन का छायांचल बुना जा रहा है। मानवता का भविष्य भी उसे प्रकाशपूर्ण दिखाई दिया—

तेजोमय मण्डल वलयित रवि सा
मनुष्यत्व का भावी मुख दीपित—

नव भू जीवन गरिमा का दपण,
सूक्ष्म दृष्टि म कवि के हुआ उदित !"

(वही, उत्क्राति, पृ० ५५१)

विश्व भ्रमण के अवसर पर कवि यशी ने कुछ बौद्धिको को आमन्त्रित किया था। अनेक बौद्धिको ने कलापीठ का आतिथ्य ग्रहण किया। समागत विद्वानो से कला केन्द्र के छात्र छात्राओ ने भौतिक आध्यात्मिक युग विपयो राजनयिक-आर्थिक युग सकट और एकागी वनानिक उन्नति पर विचार विमश किया। वाद विवाद का निष्कप यह निकला कि—

'पश्चिम जग की दृष्टि न ऊध्वगहन
बहिर्गत विश्लेषण म सीमित —
वास्तवता से शून्य पूव की मति,
अतभुवनो के मम मे केन्द्रित !
× × ×
निष्क्रिय नियति निपेध ग्रस्त भारत
शशक शृगवत् आदर्शों म रत
शक्ति मत्त स्वार्थांध, भोगवादी
पश्चिम जड वास्तवता का अनुगत !'

(वही उत्क्राति, पृ० ५५४ ५५६)

अस्तु आवश्यकता इस बात की अनुभव की गई कि पूव और पश्चिम, बाह्य और आन्तरिक आध्यात्मिकता और विज्ञान स्वदेशी भावना अन्त र्राष्ट्रीयता तथा रुढ रीतियो और प्रगतिशील जीवन मूल्यो मे सामजस्य स्थापित किया जाय। केन्द्र म जो विदेशी आये उन्होने भी इसे नवीन विधि से सचालित किया। रोज नाम की अनुपम सुन्दरी ने भी अपना जीवन भारतीय आध्यात्मिक निष्ठाओ के अनुरूप ढाल लिया। कवि युग मन को निरन्तर भावयोग साधना के लिए प्रबोधन कर रहा था। उसकी दृढ धारणा थी कि ऊध्वमुखी अत साधना जन जीवन को सस्कारित कर आत्म गौरव प्रदान कर सकती है—

ऊध्व निखारे अन्तर्मानस को शुचि सस्कार करे जन जीवन का !
× × ×
जन मन का हो अन्तरवय सितबल, मनुष्यत्व सम्राट लोक प्रतिनिधि,
आत्मिक गौरव हो जीवन प्रेरक, क्षमा शील नियमन हो सहृदय विधि।

जो भू मानव के अंतर्जग में करे ज्योति साम्राज्य शुभ्र स्थापित,
क्षण भंगुर जीवन संघर्षण को शाश्वत के पट में कर संयोजित !'

(वही, उत्क्रांति, पृ० ५६७)

केन्द्र के जीवन में यद्यपि ऊर्ध्व चेतना का विकास हो रहा था किन्तु कवि देख रहा था कि भारतीय ग्रामीण जीवन स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् रूढ़ि जर्जरित ही था। विगत युगों के अभिशाप यथा—, रूढ़िवाद, जातिवाद, छुआछूत, अविद्या, अन्धविश्वास के रूप में ग्रामीण जीवन को आक्रान्त किए हुए थे। नगरीय जीवन में विज्ञान शक्ति ध्वंस उपकरण जुटाकर महाप्रलय का आवाहन कर रही थी। पूँजीवादी शक्ति उपनिवेशवाद के रूप में जन शोषण कर रही थी। कवि की दृष्टि में इस स्थिति का निदान राजनीतिक नहीं अपितु सर्वोदयी विचार धारा के प्रसार और अवसर की समानता में निहित है—

'सामाजिक युग क्रांति अहिंसा रत
नव सर्वोदय की हो निर्मायक।
× × ×
अन्न वस्त्र गृह द्वार मिले जन को,
शिक्षा संस्कृति से दीपित हो मन,
सुन्दर हो भू सुंदरतर स्त्री नर,
मानव गरिमा वहन करें भू मन।'

(वही, उत्क्रान्ति पृ० ५७६)

किन्तु कवि की भावना के विपरीत संघर्ष की दावा सर्वत्र फैल रही थी। अणु शक्ति के आविष्कार और विकास ने विश्व जीवन में विनाश का आतंक फैला दिया था। विश्व की शक्तियाँ संघर्ष की भूमिका तैयार कर रही थीं। इस संघर्षपूर्ण युग-वेला का निरूपण पंत जी ने इस प्रकार किया है—

"कल्पान्तर का था वह निर्मोचक
युग संध्या थी महा ह्रास का तम,
पहन सभ्यता का मुख आदिम पशु
उपजाता मानव होने का भ्रम।
जीवन मरण खड़े थे अब सम्मुख
आलोडित भू का निगूढ़ अंतर
उमड़ रहा था प्रस्तर युग का तम
उबल रहा था निश्चेतन गह्वर।

(वही, उत्क्रांति, पृ० ५८३)

दानवीय प्रक्षेपणास्त्रों के संचालन हेतु अनेक अड्डे बनाये गये। सुन्दर जनपद की पार्श्व भूमि में भी हवाई अड्डा बना। वंशी ने अपनी आंतरिक प्रेरणा और अन्तर्दृष्टि के द्वारा महानाश का पूर्वाभास पा लिया था—

'मनोदृष्टि से देखा युग कवि ने गुह्य बोध से जीवन परिचालित,
वही शक्ति जो रचना मंगलरत अणु विनाश के हित भी रण सज्जित।
× × ×
देखा कवि ने नरक दृश्य दारुण विश्व ह्रास से अवरुण विघटन का।''

(वही, उत्क्रान्ति, पृ० ५८८ ५८९)

अस्तु कवि वंशी अपनी प्रिय शिष्य विदेशी महिला मेरी को ऊर्ध्वोन्मुखी ज्ञान चेतना का महाभाव सौंप कर आत्म साधना के लिए अन्तर्धान हो गया—

'भावात्मा दे विनत आत्मजा को स्वर्ग स्वप्न से भरा मुक्त अंतर,
उसे छोड़ तद्गत स्थिति में चुपके, हुआ कक्ष से कवि द्रुत बाहर।
और उसी क्षण छोड़ केन्द्र प्रांगण अंतर्धान हुआ वह चिद्घन में,
बढ़ता रहा पथिक शाश्वत पथ का कार्य समापन कर सब जीवन में।'

(वही उत्क्रान्ति, पृ० ६०६)

पन्त जी के शब्दों में कवि वंशी की स्रष्टा के प्रति रस कृतार्थ मन की चरम परिणति थी। उसने प्रेम सत्ता में तन्मय होकर सत् चित् आनन्द लोक का अतिक्रमण कर उस बोध को प्राप्त कर लिया था जिसे दिव्य प्रेम कहते हैं यही दिव्य प्रेम विश्व प्रेम का उद्गम है। इस प्रकार अमृत यौवन विश्व चेतना का कला पीठ एक स्वर्ग दर्पण के समान था, जिसे वंशी ने अपनी जीवन साधना द्वारा निर्मित किया। किन्तु अणु बम विस्फोट से वह केन्द्र ध्वस्त हो गया—

''ध्यान भ्रष्ट अणु बम से सुन्दरपुर
ध्वस्त हो गया भर विदीर्ण गर्जन।
ध्यान नहीं फिर कला केन्द्र का क्या
अंत हुआ सक्रान्ति काल दुर्वह,
ज्योति द्वार मानव उर में शाश्वत
भगवत पीठ धरा पर चिर् विग्रह।

(वही उत्क्रान्ति पृ० ६०१)

उत्तर स्वप्न प्रीति द्वितीय खण्ड (अन्तश्चेतन्य) का तृतीय और अन्तिम काव्य प्रखण्ड है। इस प्रखण्ड में पन्तजी ने नवयुग चेतना के अवतरण और नए

मानव (अति मानव) के आविर्भाव का अरविन्द दर्शन की मूलभूत अवधारणों के परिप्रेक्ष्य म किया है। वस्तुत पन्तजी की काव्य साधना के क्रम म विचारणा के तीन स्तर स्पष्टत परिलक्षित होते हैं जिन्हें मैंने निम्नांकित प्रकार से अपने एक लेख मे वर्गीकृत किया था—

१ सौन्दर्यमूलक दृष्टिकोण से आदोलित छायावादी (प्रकृतिवादी) काव्य चेतना।

२ मार्क्सवादी विचार दर्शन से प्रभावित प्रगतिवादी (मानवतावादी) काव्य चेतना।

३ महर्षि अरविन्द के ऊर्ध्वचेतन भाव बोध से अनुप्रेरित सास्कृतिक (अन्तश्चेतनावादी) काव्य चेतना।[११]

इस सम्बन्ध म पन्त काव्य के सभी समीक्षक सामान्यत एकमत हैं कि सन १९४० के पश्चात से पत जी की रचनाधर्मिता (Creative Urge)दार्शनिक अनुचिन्तन की तन्न्यापी गहराइयो का स्पर्श करने लगी थी। आचार्य नद दुलारे वाजपेयी जी के शब्दों मे—' सन ४० के पश्चात् पतजी का व्यक्तित्व उत्कट वचारिक सघर्षों के पश्चात् जिस भूमिका पर आकर स्थिति हुआ वह मूलत दर्शन की भूमिका ही कही जायगी। काव्य और दर्शन के इस सघर्ष म दर्शन की ही विजय हुई यह सत्य स्वीकार करना ही होगा।"[१७] डा० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय के अनुसार भी—'सन् १९४० के बाद से आज तक पन्तजी ने जो कुछ लिखा है उसम अरविन्द दर्शन को ही वाणी दी गई है।[१८]

इस सम्बन्ध मे स्वय पन्त जी का मत यह है कि—"मैंने अपना जीवन दर्शन युग की आवश्यकताओ एव मानव विकास की सम्भावनाओं को सम्मुख रखकर अनेक महान ग्रन्थो तथा महापुरुषो की प्रेरणा ग्रहण कर उनके उपयोगी तत्त्वो को आत्मसात कर, लोक कल्याण एव भूमगल की भावना के उद्देश्य से अपने काव्य पट म गुम्फित करने का साहस किया है।"[१९] पन्त जी के

---

[११] 'पन्त की काव्य चेतना' शीर्षक लेख—समीक्षालोक, वर्ष ३ अक १ २, अक्टूबर १९७१

[१७] सुमित्रानन्दन पन्त स्मृतिचित्र पृ० ११७

[१८] पन्त का नूतन काव्य और दर्शन पृ० १२८ १२९

[१९] चिदम्बरा, चरणचिह्न, पृ० २५

काव्य चेतना (जीवन-दर्शन) की निर्मिति में विभिन्न युगीन विचारधाराओं और महान् विचारकों का योगदान होते हुए भी, महर्षि अरविन्द का अनुदान सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। कवि ने स्वयं स्वीकार किया है कि— मैं अपने युग के विगत देश की प्रायः सभी महान् विभूतियों से किसी न किसी रूप में प्रभावित हुआ हूँ। वीणा-पल्लव काल में मुझ पर कवीन्द्र रवीन्द्र तथा स्वामी विवेकानन्द का प्रभाव रहा, युगांत और बाद की रचनाओं में महात्माजी के व्यक्तित्व तथा मानस-दर्शन का। किन्तु इस सबमें एक परिपूर्ण तथा संतुलित अन्तर्दृष्टि का अभाव खटकता था, उसकी पूर्ति मुझे श्री अरविन्द के जीवन-दर्शन में मिली, और इस अन्तर्दृष्टि को मैं इस विश्व संक्रान्ति काल के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तथा अमूल्य मानता हूँ। विश्व कल्याण के लिए श्री अरविन्द की देन को इतिहास की सबसे बड़ी देन मानता हूँ। उसके सामने इस युग के वैज्ञानिकों की अणु शक्ति की देन तुच्छ है।"

उपर्युक्त विवेचन के आलोक में यदि हम लोकायतन महाकाव्य के अन्तिम प्रकरण— उत्तर स्वप्न प्रीति की मूलभूत मान्यताओं को समझने का प्रयास करें तो अन्ततः अरविन्द दर्शन की उपपत्तियों को अधिगृहीत करना ही होगा।

अणु युद्ध के कारण संसार का एक बड़ा भाग नष्ट हो गया। अणु विस्फोट के कारण सुन्दरपुर जनपद का सांस्कृतिक कला पीठ भी नष्ट हो गया। तब मेरी ने हिमगिरि की प्राकृतिक सुषमा से सम्पन्न शुभ्र प्रांगण में 'लोकायतन' नामक नवीन सांस्कृतिक-आध्यात्मिक केन्द्र की स्थापना की। आणविक युद्ध की यन्त्रणाओं से संत्रस्त और विज्ञान की विभीषिकाओं से संतप्त स्त्री पुरुष देश विदेश से इस केन्द्र में अनन्त शांति और चिदानन्द की अकल्पनीय अनुभूति प्राप्ति हेतु आये। पन्तजी के शब्दों में—

"उस दारुण क्षण से बच कुछ जन
आये प्रशान्त हिम प्रान्तर में
हिमगिरि अंचल में मेरी ने
जन लोक बसाया लोकोत्तर[1]
× × ×
मेरी कहलाती संयुक्ता,
लोकप्रिय अब उसका आश्रम,

[1] उत्तरा— (संस्करण वि० २००६ का), प्रस्तावना, पृ० १९-२०

दे लोकायतन उसे सज्ञा
जन रचते नव जीवन उपक्रम।"

(वही, उत्तर स्वप्न, पृ० ६१४)

इसी काव्य प्रखण्ड म कवि श्री पन्त ने हिमगिरि के विश्व विश्रुत गौरव और महानता का भी निरूपण किया है। हिमाद्रि शुभ्र पखो वाला सौंदय हस, भूमा-स्वग का दिग भास्वर अथवा चैतन्य लोक का हिल्लोलित आनन्द सिन्धु सा प्रतीत होता है—

'सामने खडा था दिग विराट भू स्वग सेतु सा हिम पवत,
महिमान्वित करता अबर को भू का गौरव मस्तक उन्नत !
देखा गिरि उसने प्रथम बार आनन्द सिन्धु सा हिल्लोलित,
जड जीवन मन की श्रेणि लाँघ, चतन्य लोक हो सित शोभित।"

(वही, उत्तर स्वप्न, पृ० ६१७)

लोकायतन-केन्द्र का ही एक छात्र अतुल था। कवि वशी के सदेश को उसने हृदयगम कर लिया था। यह सदेश था—भू पर स्वग उतारने का, चेतना विकास तथा भव सकट का अतिक्रम कर मानव को ऊर्ध्वोन्मुखी बनाने का। अतुल यह जान चुका था कि आध्यात्मिक मत्यों के बल पर धरा का रूपातर नही हो सका न ही तप, व्रत, योग साधना करने वाले ज्ञानी मुक्त और वरागी ईश्वर का यथाथ दिग्दशन करा सके हैं क्योकि ये सभी मानव और ईश्वर, भौतिक जगत और अतीन्द्रिय चेतना लोक, भू और स्वग, विज्ञान और अध्यात्म तथा जीवन यापन और ईश साधना मे अभेद दृष्टि से नहीं देख सके हैं। जबकि कवि वशी के चितन का सार यह था कि—

सित प्रीति काम से नहीं पृथक मन भू जीवन का ही दपण,
सभव न सवगत मनोन्नयन रस शुद्ध न यदि जीवन प्रागण !
सभव कवि का था यही लक्ष्य जीवन से विलग नहीं ईश्वर,
इन्द्रिय हो आत्मा का गवाक्ष हो धरा स्वग ही प्रभु का घर !
× × ×
नव मूल्यों से रच मानव जग, मत मनोदृष्टि को कर विस्तृत,
ईश्वर को भू जीवन पट म करना जन को चेतना प्रथित !"

(वही उत्तर स्वप्न, पृ० ६२२ ६२३)

मूल प्रश्न है कि यह अन्तर्बाह्य सामजस्य तथा धरा पर दिव्य चेतना का अवतरण सभव कसे होगा ? महर्षि अरविन्द का मत है कि नवयुग की जीवन

प्रक्रिया में हम जिस ओर अनात रूप से बढ रहे हैं उससे यह सुनिश्चित है कि हम बुद्धि के स्थान पर अन्तश्चेतना, उपयोगितावादी मानदण्डों के स्थान पर आत्म विश्लेषण, प्रकृति ज्ञान के बाह्य नियमानुसरण के स्थान पर गुप्त ईश्वरेच्छा-अनुसरण प्रयोग करेंगे।[31] महर्षि अरविन्द की इसी धारणा को 'उत्तर स्वप्न' में पन्त जी ने प्रतिपादित किया है।

एक दिन अतुल निर्मम होकर हिमगिरि के उच्च शिखरों पर रोहण करने चुपके से निकल गया। जीवन के चित शिखर की खोज में वह उस नान प्रखर सित असि पथ पर अविरत बढता गया। अतुल को उत्तुंग शृंग पर स्वर्णिम उन्मेषों के प्रभात का दर्शन हुआ। उसने स्वयं में रस पूर्ण तेजोमय स्वरूप का आत्म साक्षात्कार किया। उन रजत नील नीहारों में उसने जाना कि वह स्वयं आत्मा का चिन्मय अस्थि धवल है। हिमाद्रि शृंग पर लय होने से पूर्व उसने निखिल चराचर में जीवन विकास और दैवी सत्ता का साक्षात्कार किया। आत्म-साक्षात्कार हिमाद्रि रोहण से प्राप्त कर अतुल पुन जगत में नहीं लौटा। यद्यपि उसके प्रिय सुहृदों ने यथ खोज भी की।[32] अतुल का कथारूपक वस्तुत आत्मचेतना के आरोहण अर्थात ऊर्ध्वोन्मुखी विकास का ही द्योतक है। 'लोकायतन' के रचयिता की यह बद्धमूल धारणा है कि यान्त्रिकता मानव चेतना को भौतिकता के पाश में निरन्तर निबद्ध नहीं रख सकती। अन्तत वह ऊर्ध्वोन्मुखी होगा ही—

समदिग यान्त्रिकता में बधकर
बन सकता मनुज न चक्रदंत

[31] In this process the rationalistic ideal begins to subject itself to the ideal of intutional knowledge and a deeper self awareness the utilitarian standrad gives way to the aspiration towards self consiousness and self realization the rule of living according to the manifest laws of Physical Nature is replaced by the effort towards living according to the vield law will & power active in the life of the world and in the inner and outer life of humanity —*The Human Cycle*, p 31

[32] लोकायतन उत्तर स्वप्न, पृ॰ ६३०

वह सजनात्मा, यत्री,—उसका
चाहिए ऊर्ध्वमुग चिद दिगन !"

(वही उत्तर स्वप्न, पृ० ६३२)

अस्तु, युग प्रबुद्ध देशो के जन भी मन साधना के लिए हिमाचल म एकत्र होकर गिर अधित्यका म पण कुटी बनाकर साधको के रूप मे रहने लगे। वे अन्तमुख सिन चिन्तन म रत होकर अधिमन शिखरो पर आरोहण करते थे। चिन्मूल्या के अनुशीलन हेतु उनका मन विनान भूमा मे रहता, ऋद्धि सिद्धि उन्ह सुलभ थी तथा आँख बद कर वे प्रभु दशन कर लेते थे। आश्रम वासिया के सम्बन्ध म कवि का यह कथन कितना सटीक है कि वे—

'जीवन विकास गति प्रति चेतन,
अध्यात्म तत्त्व क अभिलाषी।
अन्तमन के वज्ञानिक थे,
कुछ शान्त दृष्टि आश्रमवासी।'

(वही उत्तर स्वप्न, पृ० ६३४)

आश्रमवासी सृष्टि, जीव आत्मा, ईश्वर, पाप-पुण्य श्रद्धा पय, आस्था, भू सयोजन के सम्बन्ध म प्रश्नोत्तर करत थे। इसी प्रश्नोत्तर क्रम मे कवि ने स्पष्ट किया है कि जड चेतन जगत की निमाता इच्छा शक्ति ही है और इच्छा शक्ति चेतना' का ही रूपान्तरण है। यह विवेचन तत्वत अरविन्द दशन की विचारणा के ही अनुरूप है।[33] इस सदभ म हिमाद्रि शृग पर अतुल का आत्म बोध द्रष्टव्य है—

"आनन्द रूप मैं हूँ अपूण, मैं स्वत एक से बहु बन कर
इद्रिय मासल भू जीवन म रस मूत्त सत्य शिव मे सुन्दर!

× × ×

आत्म स्थित भी जन भू ही का, मैं शिखर नही इसमे सशय,
था मात्र शून्य दिक काल न विधि मैं तुम न, जगत न, जगत आश्रय!
ले प्रेम वणु छेडी मैंने रस तन्मय विश्व सृजन की लय,
मैं प्रकृति पुरुष बन, मह्त बुद्धि, अब जड चेतनमय जीवाशय!

(वही, उत्तर स्वप्न, पृ० ६२८ ६२९)

---

33 'The Energy that creates the world can be nothing else than a will and will is only consciousness applying it self to a work and a result —*The Life Divine* p 22

अरविन्द दर्शन की सबसे महत्वपूर्ण उपपत्ति अतिमानस (Super Mind) या अतिमानव (Super Man) है। जीवन विकास के तीन सोपान माने गये हैं—जड (Matter), जीवन (Life) और मानस (Mind)—इस विकास की पूर्ण या चरम परिणति अतिमानस (Super Mind) तक होनी है—ऐसी अरविन्द की धारणा थी। महर्षि अरविन्द 'मानव' को सृष्टि विकास का अन्तिम सोपान नही मानते हैं। उनके मतानुसार— मानव विकास का अन्तिम परिणाम आत्म विस्तार और आत्मोत्तर स्थिति के विचित्र प्राकट्य म होगा। अति मानव की व्याप्ति केवल ईश्वर साक्षात्कार तक ही नही है वरन वह हमारी भौतिक मानवीय चचा म भी ईश्वर का जीवन्त अभिव्यञ्जन करता है।''[१४] लोकायतन के रचनाकार ने अरविन्द दर्शन की इसी मान्यता को उत्तर स्वप्न प्रखण्ड मे स्थापित किया गया है। उदाहरणार्थ—

> धीरे धीरे पीढि पीढि होता अमृत मानव विकसित
> जीवन विकास क्रम सहयोगी भू ईश्वर प्रतिनिधि बन अविजित !
> × × ×
> जग म ही सम्भव प्रभु दर्शन, अब ब्रह्म सत्य यह नि सशय
> ईश्वर प्रतिनिधि शाश्वत मानव रज रूप मर्त्य नर से अतिशय !'
>
> (वही उत्तर स्वप्न पृ० ६३५ ६३६)

मेरी द्वारा हिमगिरि के अचल म स्थापित लोकायतन नामक सास्कृतिक केन्द्र के जन जीवन म कवि ने महत् चेतना शक्ति के अवतरण का अकन किया है। इस केन्द्र के नव जीवन म स्वर्णिम सगीत तथा व्यक्ति प्रेम के स्थान पर समष्टि प्रीति भावना का विकास हुआ। अब मानव का मन अन्तर्दीपित था। राजनीति को पीछे छोडकर सस्कृति रथ युग पथ पर गतिशील था। अणु रण ध्वस ने युग मानव के मन का भौतिक जीवन के प्रति भ्रान्ति मुक्त कर दिया। वह आस्था प्रीति और प्रतीति युक्त अन्तमूल्यो के प्रति आकर्षित हो गया। इस नव अन्तमन अरुणोन्य का जन भू मानस ने अभिनन्दन किया। अब रण बन्दी जड विज्ञान भी मुक्त होकर रचनात्मक कार्यो म सलग्न हुआ। नव युग चेतना प्रभाव का विवेचन कवि ने इन शब्दो म प्रस्तुत किया है—

> पा नयी दृष्टि नव युग मानव जीवन का करता मूल्याकन,
> देशो राष्ट्रो स्त्री पुरुषो क खुल गए भाव गत वे बन्धन !

---

[१४] डॉ० प्रतापसिंह चौहान हिन्दी कविता और अरविन्द दर्शन पृ० ५६

अब मूल्य शुभ्र चिति में परिणत, परिवेश विश्व का परिवर्तित,
जीवन पदार्थ रस सिक्त, पावन भू आध्यात्मिक मंगल हर्षित !
शुभ्र शान्ति लोक मन में स्थापित, अणु अस्त्र सिन्धु जल में मज्जित
कटु पूर्वग्रहों से मुक्त धरा दिशि में सहस्रदल सी प्रहसित !

× × ×

अब भाव वस्तु जग संयोजित अन्तः प्रबुद्ध मानव अन्तर,
अन्तर्मुख आध्यात्मिक जीवन ले चुका जन्म नव जन भू पर !"

(वही, उत्तर स्वप्न, पृ० ६४५-६४६)

इस अन्तर्मुखी आध्यात्मिक विकास ने जीवन में भौतिक और अभौतिक ऋद्धि सिद्धि का नव भू मानव के कर गत कर दिया है। अन्तःश्री से कुसुमित सित राग भावना का मुक्त स्रोत प्राणों में आनन्द का सृजन करके उर को तन्मय विस्मृत रखता है। नव मानव का अन्तर जगत भगवत चरणों के प्रति रति रखकर उसी की अनन्त शक्ति का संचय करने में निरत है। अन्तः चिचति के प्रति जाग्रत जन के लिए 'कर्मयोग' सबसे बड़ा दर्शन है। भगवत शोभा और आनन्द ज्योति ने सत प्रीति और शान्ति का विकास जीवन में कर दिया है। अब यह धरा ही स्वर्ग बन गई है क्योंकि—

"अज्ञान तिमिर से मुक्त दृष्टि
सुन्दर सुन्दरतर अब भू पर !
घर सत्य महत्तर सत्य चरण
विकसित होता शिव बन शिवतर !'

(वही उत्तर स्वप्न, पृ० ६४६)

इस नवीन भावोदय के कारण लोग दमित कामना ग्रंथियों से मुक्त होकर सहज संयमित और शीलनमित थे। जाति, वर्ण कुल का अतिक्रमण कर मानव कुटुम्ब के सदस्य बनकर जीवन यापन करते थे। अनेक सांस्कृतिक केन्द्रों की स्थापना हुई। इन सभी लोक केन्द्रों का एक ही ध्येय था 'मानव विकास'। भौतिक जीवन आध्यात्मिक मूल्यों से नियंत्रित हो गया। संयुक्त कर्म, भगवत् चिन्तन, सामान्य विधायक सजन और सामूहिक संरक्षण के प्रति नव आस्था जमी। भू प्रकृति और जन प्रकृति में भी इस परिवर्तन क्रम की प्रतिक्रियाएं स्पष्टतः दृष्टिगत हुई। यथा—

भू प्रकृति हो गई थी नीरुज
परिवेश स्वच्छ आहार शुद्ध,

उन्नत विचार, सौन्य बोध,
अब कम न संस्कृति म विरुद्ध।
रस सौम्य शास्त्र-सौन्य बुध
आता मानव न असमय पर,
विज्ञान नात व परिणय म
चरित्राथ मनुज का अंतरतर।

(वही, उत्तर स्वप्न, पृ० ६५१)

नारी के प्रति भी जीवन दृष्टि म नवीन भावा मय हुआ—

'नारा अब मात्र न काम तल्प,
वह प्रीति सुधा रस सजीवन
जो हृदय शिराओं म बह नित
जीवन मन या करती पावन।

(वही उत्तर स्वप्न पृ० ६५५)

आत्म-स्पर्शी मे ज्यातित अन्तश्चेतन मन की पूजा पद्धति का भी स्वरूप भिन्न था। उदाहरणाथ—

'अब भू मगल ही जन भू धन,
जीवन रचना ही तप साधन
अर्पित मन का श्रम पूण योग
भव शोभा सुख म प्रभु दशन।
सत प्रेमापण ही पाणि ग्रहण
मानव कुल हो शिशु कुल पावन,
सस्कृत अतर ही जन सदन
भू आंगन भव का घर आगन।'

(वही, उत्तर स्वप्न पृ० ६५८)

स्वग चेतना का प्रतिनिधित्व मानव अब भू पर उन्मुक्त भाव से विचरण करता है। जगत अब ईश्वर से पृथक नहीं माना जाता। भव मानव का मन ऊर्ध्व सोपानों पर निभय रोहण करता है। शाश्वत शोभा समदिग जीवन पथ पर विचरण करती है। इस युग मानव के विराट वभव का वणन करते हुए कवि ने लिखा है कि—

मन से ऊपर जगदात्मा का
प्रतिनिधि अब विकसित भू मानव

वह सूय किरण मणि पात्रों से
पीता स्वर्णिम चित रस_आसव।
शशि अमृत पाणि वीणा उसकी,
सागर मरकत विगलित अतर,
गिरि उसके चिन्तन मौन शिखर,
नीलिमा दृष्टि नीरव, भास्वर।

(वही, उत्तर स्वप्न, पृ० ६६२)

नव युग चेतना के अनुरूप ही ज्ञान और भक्ति की अवधारणा मे परिवतन हुआ। नवीन धारणा के अनुसार—

'नव आध्यात्मिकता म न भक्ति
केवल अब जप तप व्रत पूजन,
वह ईश्वर तन्मय रह, भू पर
विकसित जन जीवन की साधना।
अब ज्ञान न निष्क्रिय आत्मबोध,
या शास्त्रो का अध्ययन मनन,
वह जग म प्रभु, प्रभु म जग के
शाश्वत अखड करता दशन।

(वही उत्तर स्वप्न पृ० ६६३)

इसी काव्य प्रखण्ड म कवि ने सयुक्ता (मेरी) और हिमगिरि के एक महत्वपूण परिसवाद का सयोजन किया है। एक बार सयुक्ता ने विराट मौन नगपति का गरिमामडित आनन देखा। व राजोचित मनुज वेश म नवतृण आसन पर आसीन थे। विस्मय हत सयुक्ता ने कहा हे देव! मैं किस प्रकार आपका पूजन-अचन करूँ? सयुक्ता को नगपति के मत्री पापदगण सिंह ऋक्ष, गज, वृष, खग, पशु भी नरतन धारण किए हुए दिखाई दिए। उमने प्रतीक परिधान धारण किए वन, लता, खग मृग को देखा। सयुक्ता ने अनुभव किया कि सर सरिता, सिन्धु कानन, पवत, रवि शशि, ग्रह, गगन, पवन पावक आदि सभी नव मानवता के स्वागत हेतु आए हैं।[१५] सयुक्ता न देखा कि वन्य पशु-पक्षियो और हिंस्र जीवो के साथ केन्द्र के किशोर किशोरियाँ मुक्त विहार कर रहे है। उस भूमा के बहुमुखी मूत रूप एक ही चेतना क पावक कण

[१५] लोकायतन, उत्तर स्वप्न (प्रीति) पृ० ६६७ ६६८

के प्रतिरूप प्रतीत हुए। विस्मय अवाक संयुक्ता को देखकर नगपति ने सयत स्वर म प्रबोधित किया। हिमगिरि की घन मद्र प्रतिध्वनियां शिखरों से उठकर अबर म भर रही थीं। हिमाद्रि ने कहा कि मर शिखरों का विद् यमय जन भू के चरणो पर समर्पित है। प्रिय सुते! गुणात्मक परिवर्तन की इस बेला म मेरी मगल-कामना यही है कि—

> 'यह प्रम मृष्टि हो प्रेम धम,
> जन म प्रतीति समता स्थापित,
> मन पाप पुण्य फल प्रति तटस्थ
> जन हो न नरक भय से तापित!
> यह पूण दया से भी अतिशय
> शिव प्रीति परस्पर, हो अपित
> हो लोक कम सुख निरत प्राण,
> उर सृजन शांति रस म मज्जित!

(वही, उत्तर स्वप्न, पृ० ६७१)

हिमाद्रि ने आग कहा कि मैं शिखरो का अधिपति तुम्हें क्या दीक्षा दूँ? तुम ऋतु रस स्पित हो। तुम जावन ईश्वर को पूजो जीवन ईश्वर वह प्रेम है जो परम अनिर्वचनीय, घट घट वासी और अक्षय रस के समान है। ईश्वर प्रेम का ही पर्याय है। यही युग का जीवनदशन है। हिमगिरि ने कहा—

> मैं लाघ विश्व मानस समस्त
> प्राची पश्चिम को अतिक्रम कर
> इतिहास धम, सस्कृतियो के
> शिखरो पर नवयुग के पग धर—
> दे रहा तुम्ह जीवन दशन—
> यह महत कल्प परिवतन क्षण—
> निर्माण करो नूतन भविष्य
> भू जीवन हो भगवत दपण!

(वही उत्तर स्वप्न पृ० ६७३)

यह कह कर हिमाद्रि सहसा अदृश्य हो गए। खग पशु गिरि वन प्रातर आदि का परिदृश्य भी ओझल हो गया। वस्तुत सयुक्ता को अन्त स्फूर्ति और प्रेरणा प्रदान करने वाला यह सचेतन कल्पना दृश्य था जिसे सयुक्ता ने अनुभूति स्तर पर देखा। इसके पश्चात् दिव्य देवी चेतनालोक से सयुक्ता

अभिभूत हो गई। उसने मनस् जगत मे भूमा का ऐसा निरवधि प्रागण देखा जिसम दिशा पान कालगति में लय हो चुका था। जहाँ का सचराचर प्रीति पाश मे बँधकर भू जीवन को शोभा सम्पन्न कर रहा था। सयुक्ता के मनस जगत म दैवी चेतना के अवतरण परिदृश्य का बिम्बाकन कवि ने इस प्रकार किया है—

"नीहार सरोवर मे तिरता,
ज्यों शुक्र रजत जल मे बिम्बित
निवसन तरती सयुक्ता
स्मित मानस शोभा मे परिवृत !
× × ×
देखा, उसने मन के दृग से—
वह स्वप्न लोक का था आगन
विद्रुम आभा छाई नभ मे
माणिक प्रभ धरा पटल शोभन !
ऊषाएँ परिक्रमा करती
स्मित अप्सरियां करती नर्तन
उड अन्तरिक्ष मे देव दूत
सित पुष्प वृष्टि करते प्रतिक्षण !

(वही, उत्तर स्वप्न पृ० ६७५)

इसके पश्चात सयुक्ता को साधनावस्था म निरन्तर दिव्य अनुभूतिया होती रही। सयुक्ता की दैवी प्रेरणा स लोकायतन-केन्द्र के साधको का जीवन भी अभिभूत हुआ। अन्तत उसी ऊर्ध्वोमुखी चेतना का प्रसार निखिल विश्व जीवन म हो गया। लक्षणा के माध्यम से इस तथ्य का प्रतिपादन कवि ने इन शब्दो म किया है—

"वह तन मन से प्रभु मे लय हो
छा गई निखिल जग मे गोपन
रस पूत चेतना जीवन की,
बन कर जन मन म पुण्य स्तवन !

(वही उत्तर स्वप्न पृ० ६७८)

पन्त जी के अनुसार एक कवि के कल्पना जगत मे भावी मानवता के मागलिक स्वरूप को उत्तर स्वप्न म दर्शाया गया है। प्रथम चार जगत् ब्रह्म

म और ब्रह्म को जगत म प्रतिष्ठित किया गया है। भू जीवन म यह अदभुत नव सास्कृतिक कल्प है जिसमें युग मानव ऊर्ध्वोन्मुखी दिव्य चेतना से अभिभूत हुआ है। लोकायतन महाकाव्य का समापन पन्त जी ने समपण भाव के इस छद के साथ किया है—

जन्म ले चुका अब नव मानव
जड चित को कर रस सयोजित,
धरा स्वग कल्पना न रह अब
जन जीवन मे होता मूर्तित !
कवि मन के रस सित स्पण म
देख भविष्य मनुज का आनन,
आओ, म मन के विषाद को,
करें प्रेम के प्रभु को अपण !

(वही उत्तर स्वप्न, पृ० ६८०)

इस प्रकार लोकायतन महाकाव्य के विराट कलेवर म पन्त जी ने नव युग चेतना का व्यापक रचनात्मक आधार प्रदान किया है। जहा तक आलोच्य काव्य की शिल्प सरचना का प्रश्न है—कथानक और चरित्र विधान के सम्बन्ध मे प्रस्तुत लेख क आरम्भिक भाग म विस्तारपूवक विचार किया जा चुका है। भाषा शली की गरिमा और आभिजात्य ता काव्य म आद्यन्त द्रष्टव्य है। पत जी भाषा के शिल्पी हैं। उनकी भाषा सवत्र भावानुगामिनी रहती है। कोमलकान्त पदावली पद लालित्य व्यजना कौशल आरूपक अलकृति सशक्त बिम्ब योजना सटीक प्रतीक विधान और सम्प्रेषणीयता पन्त जी की रचना शली की सामान्य विशेषताए हैं और ये लोकायतन म भी सवत्र समुपलब्ध हैं। लोकायतन की भाषा का वशिष्ट्य वस्तुत उन स्थलो पर विशेष रूप स द्रष्टव्य है जहा दशनशास्त्र की पारिभाषिक शब्दावली सश्लिष्ट भाव सवेदनाओं और गूढ वचारिक मान्यताओ का सफल अभिव्यक्ति हुइ है। रूपको क माध्यम से अरविन्द दशन की आधारभूत मान्यताओ को व्यजित करने म कवि पूण सफल रहा है। हा, छद की दृष्टि से लोकायतन म वविध्य का अभाव खटकता है। कवि ने यदि दीघमात्रिक छदो का भी ग्रहण किया होता तो लोकायतन म महाकाव्योचित छान्दिक गरिमा आ जाती।

वस्तुत लोकायतन की उपलब्धियो का स धान शिल्पगत वशिष्ट्य म नही अपितु प्रतिपाद्य की सयोजना म है। लोकायतन युग चेतना का काव्य

है। 'लोकायतन' मे स्रष्टा ने समकालीन जीवन परिवेश और परिस्थितिया के परिसन्दम मे मानवीय चेतना विकास के जो विभिन्न रूपान्तर अंकित किए हैं तथा युग सत्य के यथार्थो मुख आदशवादी रूप का जो चित्रण किया है उसके कारण वह 'महाकवि अभिधान का निश्चयत अधिकारी बन गया है। चरा चर जगत म व्याप्त दिव्य दैवी चेतना को मानवता के मगल विधान हेतु जिस साधना-अनुष्ठान का रूप निदशन पन्तजी ने किया है, वह सवथा श्लाघनीय है। 'लोकायतन' का कवि युगद्रष्टा और भविष्य द्रष्टा दोनो रूपा मे हमारे सामने आया है। विज्ञान युग की विभीषिका से सन्त्रस्त मानवता को सहज प्रीति साधना और समष्टिमूलक ऊर्ध्वोन्मुखी भाव-बोध का सम्बल प्रदान कर पन्तजी ने मनीषि कवियो म स्वय का पक्तिबद्ध कर लिया है। 'लोकाय तन की सिद्धि एक काल्पनिक विचार दशन को युगसवेद्य रूप मे प्रस्तुत कर तक सम्मत आधार प्रदान करने म है। समष्टि रूप म 'लोकायतन जीवन दशन की महत सिद्धियो के कारण हिन्दी महाकाय परम्परा का गौरव ग्रन्थ है। 'लोकायतन सचमुच महाकाव्य है और उसका रचयिता महाकव ।

'कैकेयी' महाकाव्य
पश्चात्ताप-पूता नारी की मनोव्यथा का पुनर्मूल्यांकन

२०

'कैकेयी' महाकाव्य
पश्चात्ताप-पूता नारी की मनोव्यथा का पुनर्मूल्याकन

आधुनिक काल की साहित्यिक-सरचना के अनुक्रम म मनोविज्ञान के प्रवेश ने रचनाकारो मे एक ऐसी अन्तर्दृष्टि का विकास किया है जिसके फलस्वरूप पौराणिक इतिवृत्तो का बुद्धिग्राह्य रूप मे तथा पौराणिक पात्रो को युग जीवन की सवेदनाओ के अनुरूप अकित किया गया है। साहित्य की विभिन्न विधाओ मे काव्य और काव्य के नाना रूपो म आधुनिक हिन्दी महाकाव्य की सजना में रचनाधर्मी दृष्टिकोण की मनोवैज्ञानिकता और तद्विषयक परिवर्तनो की प्रक्रिया स्पष्टत परिलक्षित होती है। आधुनिक महाकाव्यो के इतिवृत्त विधान चरित्र विनियोजन, शिल्प सगठना सृजन प्रेरणा, रचनात्मक-सोद्देश्यता और जीवन दर्शन सम्बन्धी विवेचना सभी म मनोवैज्ञानिक सस्पश मिलता है। रूप विधायक तत्त्वो की दृष्टि से वर्तमान युग के अधिकाश महाकाव्य चरित्र प्रधान हैं और अनेक महाकाव्यकारो ने चरित्र विश्लेषण में अपनी मनोवैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि के विस्तार का प्रभूत परिचय दिया है। उदाहरणार्थ महाकाव्य के नायकत्व के सम्बन्ध मे काव्याचार्यों द्वारा निर्दिष्ट गुणो लक्षणो और योग्यताओ (जैसे—धीरोदात्तता उच्चकुलीनता आदि) की उपेक्षा करके आधुनिक महाकाव्यों मे पुरा आख्यानो के कलकित उपेक्षित और तिरस्कृत पात्रो को महाकाव्योचित गरिमा से मडित करके प्रस्तुत किया गया है। रामकथा की उपेक्षिता उर्मिला के चरित्र को आधार बनाकर स्वर्गीय श्री मैथिलीशरण गुप्त और प० बालकृष्ण शर्मा नवीन द्वारा क्रमश साकेत और 'उर्मिला तथा निषाद पुत्र एकलव्य और सूत पुत्र कर्ण के चरित्र पर डा० रामकुमार वर्मा, श्री रामधारीसिंह दिनकर श्री आनन्दकुमार और प० लक्ष्मीनारायण मिश्र द्वारा क्रमश 'एकलव्य', 'रश्मिरथी, अगराज और 'सेनापति कर्ण शीर्षक महाकाव्य रचे

गये। हिरण्यकशिपु, हिरण्याक्ष, बलि प्रह्लाद बाणासुर आदि दैत्यों तथा रावण कुम्भकरण आदि राक्षसों के चरित्रों के आधार पर श्री हरदयालुसिंह द्वारा 'दैत्यवंश' और 'रावण' नामक महाकाव्यों का प्रणयन हुआ। इसी परम्परा में श्री पोन्मल चन्द्र द्वारा रामकथा की कलंकिता कैकेयी के विशदतर व्यक्तित्व और वात्सल्य भाव से परिपूर्ण चरित्र को आधारभूत बनाकर 'कैकेयी' महाकाव्य की रचना हुई है। परम्परित रामकथा और रामकाव्यों में कैकेयी का चरित्र अत्यन्त अनुचित और तिरस्कृत रूप में अंकित किया गया है। कैकेयी द्वारा वर प्राप्ति के ऐतिहासिक कारणों के अनुसन्धान और नारी-मनोविज्ञान की विश्लेषणात्मक अन्तर्दृष्टि के अभाव के कारण रामकाव्य के विधायकों की दृष्टि में वह नितांत उपेक्षित और कलंकित बनी रही है। इस दृष्टि से आलोच्य महाकाव्य के प्रणेता श्री चन्द्र जी द्वारा कैकेयी के चरित्रोद्धार का यह प्रयास सर्वथा श्लाघनीय और अभिनन्दनीय है।

'कैकेयी' महाकाव्य की रचनात्मक सोद्देश्यता को स्पष्ट करते हुए श्री चन्द्र जी ने लिखा है कि—'नारी के प्रति पहले से ही एक विशेष उच्च भावना भरी रही है। रामायण के नारी पात्रों के अध्ययन के समय कैकेयी की ओर मेरा ध्यान गया। राम वनवास की एक मात्र घटना के अतिरिक्त कैकेयी के चरित्र में कहीं कोई कलुष नहीं दिखायी दिया। अतः उस घटना के ऐतिहासिक कारणों की खोज एवं नारी मनोविज्ञान का विश्लेषण ही प्रारम्भ में 'कैकेयी' महाकाव्य की रचना के लिए प्रेरणा बना।'[1] श्री चन्द्र जी के उद्धृत मन्तव्य से स्पष्ट है कि ऐतिहासिक अनुसन्धान वृत्ति और मनोवैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि लेकर वे 'कैकेयी' महाकाव्य के प्रणयन में प्रवृत्त हुए हैं। 'सत्योपाख्यान'[2] और 'वाल्मीकि रामायण'[3] के साक्ष्य के आधार पर श्री चन्द्र ने यह धारणा बनाई कि—'कैकेयी के पुत्र को राज्याधिकार देने की शर्त पर ही कैकेयी का दशरथ के साथ विवाह हुआ था।'[4] काव्य के एकादश सर्ग में वरयाचना के अनन्तर यही बात वह राम से कहती है—

---

[1] कैकेयी महाकाव्य पार्श्व भूमि, पृ० ङ

[2] सत्योपाख्यान, अध्याय ८ श्लोक सं० १३ १४ १६, २०

[3] 'पुरा भ्रात पित न स मातर ते समुद्वहन।
माता महे समाश्रौषीद राज्य शुल्क मनुत्तमम॥'
—वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकाण्ड, सर्ग १०७, छन्द ३

[4] कैकेयी, परिपार्श्व, पृ० ङ

'होगा ज्ञात न तुम्हें तात कुछ यह महनी बात पुरानी।
ब्याह समय केकय स्वामी की, शर्त इन्होंने मानी॥
ज्येष्ठा भी पुत्र उन्हें हो, अवसर यदि ऐसा आये।
फिर विवाह जिस अथ करें ये, राज्य पुत्र मेरा पाये॥'[५]

कैकेयी की वर प्राप्ति के फलस्वरूप भरत के राज्याधिकारी बनने और राम-वन-गमन की सूचना से आवेशपूरित होकर जब लक्ष्मण भरत के विरुद्ध विद्रोह करने को उद्यत होते हैं, तब भी राम उन से यह रहस्योद्घाटन करते हैं कि—

'केकय-कन्या ब्याह समय,
तुम हम जन्मे भी न थव।
किया गया अधिकार नियत
अवध राज्य पर उनका तब॥'[६]

इस प्रकार के काव्य सन्दर्भों से प्रमाणित है कि रामकथा के ऐतिहासिक घटना क्रम के अनुसार महाराज दशरथ कैकेयी के पुत्र को राज्य देने के लिए वचनबद्ध थे और कैकेयी ने उस अवसर पर जबकि उसे राम के राज्याभिषेक की तैयारियों से अनभिज्ञ रक्खा गया उसके पुत्र को ननिहाल भेजकर रहस्यात्मक ढंग से राजमाता के पद से वंचित किया जा रहा था तो उसने पूर्व प्रतिबद्ध सङ्कल्प की सम्पूर्ति कराके कोई अनर्थ नहीं किया। अस्तु वर प्राप्ति के आधार पर कैकेयी के चरित्र की विगर्हणा और भर्त्सना राम के उन रचयिताओं और समीक्षकों द्वारा की गयी है जो इस ऐतिहासिक तथ्य से अपरिचित रहे हैं कि महाराज दशरथ केकय नरेश से कैकेयी के पुत्र को अपना उत्तराधिकारी बनाने के लिए वचनबद्ध थे और रघुकुल की रीति के अनुसार भरत को राज्य देकर अपने कौलिन्य गर्व की अभिवृद्धि ही की थी। वचनबद्धता के अतिरिक्त वर प्राप्ति के ही परिसन्दर्भ में यह भी उल्लेखनीय है कि दोनों वरदान कैकेयी ने अपने सारथ्य-कौशल के बल पर महाराज दशरथ के प्राणों की रक्षा करके प्राप्त किये थे। घटना क्रम इस प्रकार है कि—एक बार शंबासुर के आतंक से सन्त्रस्त होकर देवराज इन्द्र ने महाराज दशरथ से त्राण के लिए अनुनय विनय की। शरणागत को अभयदान देने की 'रघुवंशी रीति' के अनुसार महाराज

५ वही, सर्ग ११, छन्द ४४, पृ० १०६
६ वही, सर्ग १२ छन्द ५४ पृ० १२५

दशरथ शबासुर से लोहा लेने के लिए कटिबद्ध हो गये, तभी कैकेयी ने उनके साथ युद्धक्षेत्र में सारथ्य कर्म करने की अभिलाषा प्रगट की और जब महाराज दशरथ ने कैकेयी की युद्धक्षेत्रीय योग्यता के सम्मुख प्रश्नचिह्न लगाकर उसे साथ न चलने को कहा तो कैकेयी ने स्वाभिमानिनी राज्य महिषी के समान दर्पोक्त वाणी में कहा कि—

"न भूलो कि मैं अश्वपति की सुता,
न भूलो अवध नाथ की वल्लभा।
कि वीरागना आर्य नारी विदित,
भारत खण्ड गरिमा, जगत दुर्लभा।
समर ज्ञान सारथ्य पारंगता,
महाभाग! रणभूमि छाया बनी।
रहूँ साथ ज्यों सूर्य के संग विभा,
महत चाँद के साथ ही चाँदनी॥"

(सर्ग ३, पृ० २८)

और कैकेयी ने जो कहा, युद्ध क्षेत्र में वही कर दिखाया। युद्ध-क्षेत्र में कैकेयी ने अश्व चालन कला का अद्भुत प्रदर्शन किया। महाराज दशरथ का रथ कभी उरग सा रेंगता था तो कभी हवा में उड़ता था। शत्रु के वाहिनी-व्यूह में रथ को प्रविष्ट कराके पुनः चपल दामिनी की भाँति कैकेयी उसे निकाल लाती थी। एक अवसर पर रथ की धुरी टूट गई और चक्का डगमगाने लगा। तभी शबासुर ने महाशक्ति का प्रहार किया। इस अवसर पर कैकेयी ने रथ को भूमि से सटा कर निकाल लिया और महाराज दशरथ महाशक्ति के मर्म भेद प्रहार से बाल बाल बच गए। विजय के पश्चात महाराज दशरथ ने प्रसन्न मुद्रा में कहा कि—

'खिली स्मित नराधिप-अधर "आज की,
प्रिये! यह विजय तो तुम्हारी विजय।
बचा प्राण दो बार तुमने लिए,
कहो दें तुम्हें कौन वरदान द्वय॥'

(सर्ग ३ पृ० २८)

कैकेयी एक माँ थी। माँ की ममता और वात्सल्य भाव के अतिरेक ने ही उसे अपने पुत्र भरत के लिए राज्य प्राप्ति हेतु प्रेरित किया। काव्य में अनेक

स्थल इस तथ्य की सपुष्टि करते हैं। मन्थरा की कुमन्त्रणा की पहली प्रतिक्रिया कैकेयी के मन मस्तिष्क पर भरत के ही सम्बन्ध में हुई। वह सोचने लगी कि—

'क्या गया कोई रचा षडयन्त्र सचमुच ?
छा रही क्या सत्य ही या—
भरत के सद्भाग्य पर काली घटाएँ ?
क्या बने स्वामी स्वय विश्वासघाती ?
जानकर भेजा गया भोले भरत को
क्या किसी ऐसे अशुभ उद्देश्य से ही ?'

(सर्ग ८, पृ० ६४)

कैकेयी का ममत्व भाव ही उसे शकालु बनाता है। भरत के अशुभ भविष्य की परिकल्पना मात्र से वह काँप जाती है। कवि के शब्दों में—

'लाल को मेरे अरे क्या झाकनी ?
छाया असित कोई ?
कहीं क्या चाहता ग्रसना ?
गई वह काँप ही इस कल्पना से
वल्लरी ज्यो तीव्र झोंके से पवन के !!" (सर्ग ८, छन्द ४१)

कैकेयी की आशकाओं को निर्मूल नहीं कहा जा सकता क्योंकि प्रथम तो भरत ननिहाल में और दूसरे महाराज दशरथ द्वारा परिषद-सचिव को यह कूटनीतिक आदेश था कि कैकय नगर निमन्त्रण देर से पहुँचे तथा कैकेयी तक भी कोई दास दासी यह सदेश न पहुँचाये—

'भेज दें सबको निमन्त्रण, अमरपति भी आयें।
वृत्त पर कैकय नगर को देर से भिजवायें॥
× × ×
यह रहे पर ध्यान छोटी राजरानी पास।
ले न जाय वृत्त कोइ क्षुद्र दासी दास॥'

(सर्ग ६ पृ० ४८ ४६)

राम के वन गमन के अवसर पर प्रजाजनों के प्रति अगाध निष्ठा और स्वकृत्य के प्रति आक्रोश देखकर कैकयी के मन में पुन यही शका उठती है कि इस सब के कारण कहीं भरत की क्षेम सकट में न पड जाय। वह यह सोचने को विवश थी कि—

'किन्तु यही तो भय जनता का अतुल राम पर प्रेम ।
पड न कहीं खतरे में जाये, सरल भरत का क्षेम ।।''

(सर्ग १३, पृ० १४०)

राम के वन गमन और महाराज दशरथ के निधन के पश्चात भरत ने ननिहाल से लौटकर वस्तुस्थिति से अवगत होने के पश्चात रोष और आवेश मे कैकेयी को महान् अनर्थकारिणी, वरिल, घातिनी, कुनारि, पिशाचिनी और सघातिनी तक कह डाला। (सर्ग १४, छन्द ३५, पृ० १४७) प्रत्युत्तर म कैकेयी न भरत को अपने कृत्य का औचित्य बताते हुए कहा कि मैंने केवल तेरे हित रक्षण हेतु राज्य मांगा है। मैंने कोई पाप नही किया। किन्तु माँ के मन की विवशता को कौन जानता है ? कैकेयी ने कहा कि—

समय पर वर न यदि दो माग लेती, विमाता क्या न जाने त्रास देती।
मुझे चिन्ता नही लवलेश मेरी, अभीप्सित नित मुझे तो कुशल तेरी ।।

× × ×

हृदय यदि पुत्र की ममता सजाई, बनी जो माँ, किया क्या पाप कोई।
तजे माँ प्राण यदि हो भय सुवन को, समझता काश, कोई मातृ मन को ।।'

(सर्ग १४, पृ० १४८)

उपर्युक्त विवेचन के आलोक म यह तथ्य प्रमाणित हो जाता है कि कैकेयी ने वात्सल्य भाव के उद्रेक और ममत्व से अनुप्रेरित होकर ही स्वपुत्र हित सरक्षण हेतु महाराज दशरथ स भरत के लिए राज्य मांगा, जो उत्पन्न परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य म मनोवैज्ञानिक दृष्टि से एक माता के लिए सर्वथा स्वाभाविक एव अवश्यम्भावी था। अब प्रश्न यह शेष रहता है कि राम को वनवास दिलान म कैकेयी का क्या प्रयोजन था ? राम के शील और सौजन्य तथा भरत क प्रति उनके अतुलनीय अनुराग एव सौमनस्य भाव स सुपरिचित होने हुए भी उन्ह वन भेजने म क्या कैकेयी की कुटिलता, क्रूरता और कुबुद्धि नहीं प्रगट होती ? क्या दूसर वर की याचना क कारण कैकयी का चरित्र कलुषित और कलकित नहीं होता ? वस्तुत इन्हीं प्रश्नचिह्नो क सन्दर्भ म कैकयी के कृत्य के औचित्य अनौचित्य पर यहाँ विमर्श अभीप्सित है।

कैकयी महाकाव्य क प्रणेता न राम वन गमन विषयक वरदान का साभिप्राय नानाविध सिद्ध किया है। काव्य के अन्तर्द्वन्द्व शीर्षक अष्टम और नवम सर्गों म कैकयी क मानसिक सघर्ष की अभिव्यजना म सर्वप्रथम तो मानत्व भाव का अतिरेक दर्शाया है जो उस भरत हित म राज्याधिकार प्राप्त करने क

लिए अनुप्रेरित करता है। तदनन्तर कैकेयी के अवचेतन में संकल्प विकल्प और आशा आशंका का जो द्वन्द्व आविर्भूत होता है, वह उल्लेखनीय है। कैकेयी सोचती है कि मेरे नाथ मुझे प्राणाधिका मानते हैं। वे सुरपुर विजित करके उसका राज्य मेरे चरण तल में बिछाने के लिये सन्नद्ध रहते थे तो राम के राज्याभिषेक रूपी महत् आयोजन को मुझसे गोपनीय क्या रखा ? हो सकता है कि शासन-कार्य में व्यस्त हों। वह दूसरे ही क्षण सोचती है कि मैं भी कितनी मूर्ख हूँ, ऐसा संवाद सेवक द्वारा कैसे प्रेषित कर सकते थे ? वे तो स्वयं ही यह सूचना देकर मुझे चौंकाना चाहते होंगे अथवा इस कार्य में मेरी मौन स्वीकृति मानकर उन्होंने जनपद और पौर गणों को राज्याभिषेक की तैयारी के लिए कह दिया होगा। शंकित मन कैकेयी पुनः सोचने लगी कि कहीं मेरी असहमति की आशंका से ही तो उन्होंने मुझे राज्याभिषेक की सूचना से वंचित नहीं रखा ? और यह विचार आते ही कैकेयी के नारीत्व भाव पर आघात लगा। उसका हृदय चीत्कार कर उठा कि—

'पति सदा विश्वास जिनका, मान जिनका,
ध्यान जिनका, प्राणधन संसार जिनका,
आर्यकुल की नारियाँ इहलोक की हम
संगिनी, अनुगामिनी परलोक में भी।
फिर करें संदेह कोई तरह तो,
तन सुलगता लोट उर पर साँप जाता।।

(सर्ग ८ पृष्ठ ६७)

कैकेयी के अन्तर्द्वन्द्व ने नवीन दिशा ग्रहण की। वह सोचने लगी कि मैं राम को सौत का सुत नहीं मानती फिर आर्य सुत ने अभिषेक की सूचना सबसे पहले मुझे क्यों नहीं दी ? कैकयी अन्ततः इस निष्कर्ष पर पहुँची कि—

"भरत का, मुझको व केकयराज को भी
इस महोत्सव से निपट अज्ञात रखना,
क्या न इनके मन-कपट का प्रगट करता ?

(सर्ग ८, पृ० ७२)

अतः उसने भरत को युवराज बनाने के साथ-साथ राम को वनवास दिलाने का भी निर्णय यह सोच कर कर लिया कि कौन जाने इस द्वेष के कारण गृह कलह की आग भड़क उठे या जन विद्रोह की विषम स्थिति उत्पन्न कर दे। अस्तु सुत के हित रक्षण हेतु कठोर बनना ही पड़ेगा—

'द्वेष की वह वह्नि भीतर और भी क्या,
तब भयंकर रूप धारण कर न लेगी,
कौन जाने गृह कलह की आग भडके,
या कि जन विद्रोह का तूफान आए,
कौन जाने इट से बज इट जाये,
या रचा कोई नया षडयन्त्र जाये!
× × ×
चोट खाय वायुभक्षी भांति भीषण,
व बनेंग, कब डसेंगे कि न जाने!
सुत हिताय कठोर बनना ही पडेगा ॥'

(सर्ग ८, पृष्ठ ७५)

कैकेयी के अन्तर्द्वन्द्व से स्पष्ट है कि उसने स्वसुत के हित संरक्षण और राजनीतिक दूरदर्शिता की भावना से अनुप्रेरित होकर ही राम के लिए वनवास मांगा था।

नवम सर्ग के अन्तर्द्वन्द्व में राम वन गमन विषयक वरदान के अन्य प्रयोजनों का भी उद्घाटन हुआ है। कैकेयी के स्मृति पटल पर एक अन्य विचार उभरा कि आज देश की विषम स्थिति है। दक्षिण दिशा के असुर वनवासियों पर घोर अत्याचार कर रहे हैं। वे गुप्त वेश धारण कर लोगों को लूटते और घर जलाते हैं। यज्ञ ध्वंस करते हुए तपलीन ऋषियों का सिर काटकर खल प्रजा रुधिर का पानकर सर्वत्र आतंक फैला रहे हैं। सीमावर्ती प्रदेश की प्रजा में भयाक्रान्त होने के कारण मनोबल का निरन्तर ह्रास हो रहा है। यह अवसर है कि राम दक्षिण दिशा कानन में जाकर आसुरी दल शक्तियों को पराजित करें। कैकेयी के मन में एक अन्य विकल्प जन्मा कि क्यों न विश्वामित्र मुनि को कह कर पुन राम को वन गमन कराके यह कार्य पूर्ण कराऊँ? किन्तु उसने सोचा—

नाथ वैसे तो न भेजेंगे स्वयम ही
किन्तु क्या?
मैं ही न क्या इस कार्य को पूरा करूँ अब?
राम को वन भेजकर
वरदान के मिस॥

(सर्ग ९ पृ० ८०)

कैकेयी यह सोचकर पुन चिंतित हो उठी कि दुष्ट हिंस्र पशुओ को मिटाने के लिए क्या राम को अकेले ही भेज देना उचित होगा ? क्या बिना सैन्य और शस्त्रास्त्र सज्जा के विषम रिपु से जूझने की कल्पना करना नीति युक्त और बुद्धिमत्तापूर्ण है ? किन्तु उसने फिर सोचा कि व्योम पर सहस्रों तारे जो नही कर पाते वह अकेला चन्द्रमा कर देता है। एक ही नाहर सब वनचरो पर राज्य करता है। एक ही सूर्य समस्त प्राणियों का प्राणदाता होता है। फिर राम तो शक्ति सम्पन्न, तेजस्वी, मनस्वी साहसी और शूरवीर हैं। बाल्यावस्था से ही राम मे युग पुरुष के लक्षण प्रकट होते रहे हैं। अत उन्हें वन भेजना सर्वथा उचित है। दूसरे ही क्षण कैकेयी के मन मे यह भाव जमा कि—

'किन्तु यों वरदान का लेकर सहारा,
राम को यदि विपिन भेजूँ
गलत समझी क्या न जाऊँगी भला मैं ?
दुनिया कहेगी क्या न जाने ?
कौन समझेगा हृदय की भावना को ?
स्वयम् स्वामी राम, परिजन भी न जाने,
कल्पना क्या - क्या करेंगे—
राज्य लोलुप, स्वार्थिनी, निठुरा,
न जाने और क्या क्या ॥'

(सर्ग ६, पृ० २०३)

कैकेयी ने सोचा कैसी विषम स्थिति उपस्थित है ? राम को वन न भेजूँ तो कार्य नहीं होता और वरदान के मिस राम को वन भेजू तो जग बुरा कहेगा। जो भी हो मुझे लोक कल्याण के लिए यह कठिन कार्य करना ही पड़ेगा—

कुछ कहें, कह ले जगत,
अपवाद भी सहना पड़े, संभावना यह।
किन्तु मानव-मात्र कल्याणार्थ कोई,
कार्य ऐसा कठिन करना ही पड़ेगा,
वज्र सा करके कलेजा ॥'

(सर्ग ६ पृ० ८३)

और अंततः कैकेयी ने दृढ़ प्रतिज्ञ भाव से माता के कर्त्तव्य की संपूर्ति, लोकमंगल की कामना और राष्ट्र हित हेतु स्नेह को कर्त्तव्य पर बलिदान करके राम को वन भेजने का निर्णय ले ही लिया—

"उचित निश्चित कुलिश बनकर,
अब उपक्रम राम को वन भेजने का ही करूँ,
यों पूर्ण हो कर्त्तव्य माँ का
देश का भी लोक मंगल कामना का,
× × ×
शक्ति साहस दो करूँ भगवान,
स्नेह का कर्त्तव्य पर बलिदान।
साक्ष्य तुम हो, स्वार्थ प्रेरित मन न अन्तर्द्वंद्व,
विश्व मानवता रहे निर्द्वंद्व ॥
(सर्ग ६, पृ० ८७)

यही कारण था कि राम के वन गमन के अवसर पर जहाँ 'मानस' की कैकेयी कठोर और उग्र बनी रहती है वहाँ आलोच्य महाकाव्य की कैकेयी मनस्संताप से द्रवित हो जाती है। किंतु भावी संकट की कल्पना से दृढ़ता धारण किये रहती है। कवि के शब्दों में—

हुई कैकेयी विचलित आखिर,
दृश्य निरख हृदय द्रावी।
पर सोचा दृढ़ रखना होगा
मुँह बाय संकट भावी॥"
(सर्ग ११, पृ० ११६)

कैकेयी को अपने इस कृत्य के लिए मर्मांतक वेदना भी भोगनी पड़ी। वैधव्य की व्यथा स्वपुत्र द्वारा तिरस्कार परिजनों की भर्त्सना और पुरजनों का रोष-आक्रोश सभी उसने सहा। कैकेयी के मनस्संताप का अनुमान चित्रकूट की सभा में सबके समक्ष राम को सम्बोधित करते हुए इस आत्मस्वीकृति से लगाया जा सकता है कि—

'कहाँ परिणाम से अवगत रही तब ?
कहूँ क्या वत्स ! मैं जड़ रोग की सब।
समझ मैंने उचित जो कुछ किया जब।
कहाँ इसकी मुझे कुछ कल्पना तब॥

बनी जड स्वार्थिनी, पतिघातिनी मैं ।
हुई हा हन्त ! आप अभागिनी मैं ।"
(सर्ग १४, पृ० १४५)

अथवा

"सोचा जिसमे जग कल्याण,
राष्ट्र-श्रम, माँ का कर्तव्य
सिद्ध हुआ मेरा अज्ञान,
सर्वनाश हित, हा ! भवितव्य ॥'
(सर्ग १५, पृ० १६५)

काव्य का षोडश सर्ग (पश्चाताप) कैकेयी की मर्मान्तक मनोव्यथा का ही व्यजक है। इस सर्ग म कवि ने षडऋतुओ के माध्यम से कैकेयी के पश्चाताप का करुण स्रोत प्रवाहित किया है। पश्चाताप की व्यथा मे कैकेयी कहती है कि ऐसी घटना कैसे घटित हो गई ? क्यो मैं असमय मे मूख बन गई ? मन्थरा का क्या दोष, ये सारी विडम्बना विधि की कुटिलता या दुर्भाग्य दोष ही है। अतुल गुणो के धनी श्री और शौर्य के पुज, सत्यवादी देवोपम स्वामी के प्रति अविश्वास और दैवीय गुणो की विभूति से युक्त जीजी (कौशल्या) का अहित करके मैंने अपने मस्तक पर कलक का वह टीका लगाया है, जिसके कारण आने वाली पीढियाँ भी मुझे अभागी और वशघातिनी ही कहेगी—

"टीका ऐसा सिर पर लगा, मेरे मिटेगा न जो।
भावी पीढ़ी व्यथित मन रो रो कहेगी क्या,
ऐसी कोई तरणिकुल म रानी अभागी रही।
अज्ञानी सी खुद बन गई जो वश की घातिनी ॥
(सर्ग १६, पृ० १६७)

कैकेयी को मनस्सताप के कारण चतुर्दिक वातावरण दम घोटने वाला लगता है। सरयू के प्रवाह म उसे रुदन-स्वर सुनाई देता है। वह तिल तिल दीप समान, मौन म जलती' रहती है। वर्षा के मिस कैकेयी अपने अश्रु स्रोत को ही प्रवाहित मानती है। शरद कौमुदी उसके तन मन को झुलसाती है। शीत ऋतु के तुषार पात को देखकर उसे सीता का स्मृति दश व्याकुल कर देता है। वह कहने लगती है कि—

अपराधिनी मैं बहू ! तुम्हारी भारी।
कैसा किया अनर्थ, व्यथ वन नारी ॥

हिम शर खर प्रासाद गडे जब तन म।
तुम कोमल-तन चरण भटकती वन म॥

(सग १६, पृ० १७२)

शिशिर अजिर म हहराते पतझार की प्रतिक्रिया ककयी अपने पीत वण और विवण वस्त्र म देखती है। ककेयी की आकुलता इन शब्दो म व्यजित हुई है—

"जीण शीण क्या प्राण, न मम झड पडते ?
इस पिंजर म अटक, वृथा फडफडते॥'

(सग १६, पृ० १७३)

वसत को देखकर तो ककेयी की विषम वेदना चरम सीमा पर पहुँच जाती है। वह कहती है कि वसन्त की बहार का क्या अथ जब मेरे हृदय म भीषण होली जल रही है। ककेयी की मानसिक व्यथा का चरम निदशन निम्नोद्धत छन्द मे द्रष्टव्य है—

"लषन जानकी, राम विपिन के भागी।
भरत माण्डवी, भवन विरागी, त्यागी॥
प्रिय स्वामी सुरधाम, व्यथित मन मेरा।
फिर मधु हतु ! क्या काम अवध म तेरा।

(सग १६, पृ० १७५)

कवि न काव्य के अतिम सग म ककेयी को राम के वन से आगमन की प्रतीक्षा मे अत्यन्त आकुल दर्शाया है। अवधि की परिसमाप्ति पर आशा आशका और उत्कठा चिन्ता का आवेग ककेयी के मन मस्तिष्क को आक्रान्त किए रहते हैं। कवि के शब्दो मे—

अकथनीय ककयी की स्थिति
उत्सुक सी शकित सी।
आशान्वित उर स्नेह सिंचित,
हुलसित सी, चिंतित सी॥
रह न सके चुप अति आतुर मन
कह न सके प्रकटित सी।
स्मरण पूव कृति कर विचलित सी
वत्सलता—पूरित सी॥'

(सग १६ पृ० १८६)

इस प्रकार कैकेयी द्वारा राम-वन-गमन विषयक वरदान के औचित्य और तद् विषयक प्रतिक्रियाओं के प्रत्याकन में श्री चन्द्र जी ने तर्क और मनोविज्ञान दोनों का आश्रय लिया है। "कैकेयी" महाकाव्य के भूमिका लेखक डॉ० बलदेव प्रसाद मिश्र के शब्दों में—"कैकेयी की चरित्र विषयक परम्परागत भावना तो यही रही कि उसमें नारी विषयक दुर्बलता ही दिखाई है—त्रियाहठ, सौतियाडाह, 'तीय-अधर बुद्धि', निज पर भाव आदि। वर्तमान युग नारी के श्याम पक्ष पर नहीं, किन्तु उसके उज्ज्वल पक्ष पर अधिक ध्यान देता है। अतएव इस युग के कवियों और चिन्तकों ने कैकेयी का राम वन गमन विषयक कृत्य का अपनी कल्पना के नेत्रों से उज्ज्वल पक्ष—उदात्त कारण—देखने का प्रयत्न किया है। उनके अनुसार कैकेयी का यह वरदान माँगना उसकी कर्त्तव्य परायणता का, उसकी 'शठे शाठ्यम' वाली नीतिमत्ता का, उसकी दूरदर्शिता का और उसकी राष्ट्र हितैषिता का द्योतक है। श्री चन्द्र जी की कैकेयी इन्हीं गुणों से युक्त चित्रित की गई है। राम वन गमन विषयक वरदान को कैकेयी के केवल क्षुद्र स्वार्थ का परिणाम न बताकर उन्होंने उसे राक्षस वध विषयक अथवा यों कहिए कि राष्ट्र संरक्षण विषयक कैकेयी की दूरदर्शिता का परिचय भी बताया है। उनका विशेष बल इस अपर पक्ष पर ही है। क्षुद्र स्वार्थ भी केवल भरत के विषय में कर्त्तव्य प्रेरित स्वार्थ है।[७] डा० मिश्र के उद्धृत मन्तव्य से स्पष्ट है कि कैकेयी महाकाव्य के प्रणेता ने राम वन गमन विषयक वरदान को कैकेयी की कर्त्तव्यपरायणता, नीतिमत्ता दूरदर्शिता और राष्ट्र हितैषिता का द्योतक माना है। आधुनिक युग के कतिपय अन्य महाकाव्यकारों ने भी राम वन-गमन की घटना को अन्य दृष्टियों से व्याख्यायित किया है। स्वर्गीय श्री मैथिलीशरण गुप्त विरचित साकेत महाकाव्य के सुधी समीक्षक डा० द्वारिका प्रसाद सक्सेना का मत है कि—'राम तो साकेत को छोड़कर वन में इसलिए जाते हैं कि जनसाधारण में धर्म का प्रचार हो, अधर्म का विनाश हो सर्वत्र वेद की वाणी गूंजती रहे आकाश में यज्ञ धूम उड़ता हुआ दिखाई दे, उससे वसुधा हरी भरी बनी रहे सर्वत्र ज्ञानी जन तत्त्वों का चिन्तन करते रहें ध्यानी जन निर्विघ्न ध्यान में लीन रहें यज्ञ की अग्नि में निर्विघ्न आहुतियाँ पड़ती रहें और सर्वत्र तप-त्याग की विजय वृद्धि हो।'[८] 'साकेत' के राम स्पष्ट शब्दों में यह कहते हैं—

---

७ कैकेयी भूमिका, पृ० त, थ

८ साकेत में काव्य, संस्कृति और दर्शन, पृ० ३५१

'मुनियों को दक्षिण देश आज दुर्गम है,
बर्बर कौणप गण वहाँ उग्र यम सम हैं।
यह भौतिक मद से मत्त यथेच्छाचारी,
मेटूँगा उसकी कुमति-कुमति मैं सारी।।'[१]

इसी सम्बन्ध में 'ऊर्म्मिला' महाकाव्य के रचयिता पं० बालकृष्ण नवीन ने लिखा है कि—'मैंने राम वन-गमन को एक विशेष रूप में देखने और उपस्थित करने का साहस किया है। राम की वन यात्रा मेरी दृष्टि में एक महान् अर्थ पूर्ण आर्य-संस्कृति प्रसार-यात्रा थी। 'ऊर्म्मिला' में लक्ष्मण के मुख से मैंने यह बात कहलवाई है, यह कदाचित् पुरातन विचारवादियों को न रुचे, पर, जितना भी मैं इस राम वन-गमन पर विचार करता हूँ उतना ही मैं इस बात पर दृढ़ होता जाता हूँ कि राम की वन-यात्रा भारतीय संस्कृति प्रसारार्थ एक महान् यज्ञ के रूप में थी।'[२] कवि नवीन ने लिखा भी है कि—

"आज विजित करने उस भौतिक, दैहिक, शारीरिक बल को,-
राम लखन वन गमन कर रहे, संग ले आत्म ज्ञान-दल को।
× × ×
आर्य सभ्यता आर्य ज्ञान औ—आर्यों की संस्कृत वाणी
परापरा विद्या का वैभव वेद भारती कल्याणी,-
आर्यों की ये सब विभूतियाँ, वन में प्रसारिता होंगी,
जटिल कुटिल अज्ञान भावना निश्चय पराजिता होंगी।
आर्य सांस्कृतिक विजय पताका घन वन में फहरायेगी,
देखो यह तो ज्ञान ध्वजा अब कहाँ कहाँ लहरायेगी।
× × ×
यह वन गमन नहीं है यह तो मेरी तीर्थ यात्रा है,
इस प्रवास में आदर्शों की चिन्मय सम्पुट मात्रा है।"
(ऊर्म्मिला, सर्ग ३, पृ० १९८, २००)

सर्वश्री मैथिलीशरण गुप्त और बालकृष्ण नवीन के प्रबन्ध-काव्यों में राम-वन गमन विषयक तर्क दृष्टि सम्पन्न अवधारणाओं से प्रगट है कि इस घटना के लिए कैकेयी की स्वार्थ परता अथवा सरस्वती का मंथरा की जिह्वा पर बैठकर कैकेयी की बुद्धि को भ्रमित करना आदि विकल्प रामकथा की

---

१ साकेत (संस्करण सं० २०१५), सर्ग ६ पृ० २३६
२ ऊर्म्मिला—श्री लक्ष्मणचरणार्पणमस्तु पृ० छ

गतानुगतिक तक धूय कल्पना दृष्टि का ही प्रतिफलन है। "रामचरित मानस' मे गोस्वामी तुलसीदास ने यही माना है कि मथरा के गूढ कपटपूर्ण वचनो को सुनकर स्त्री बुद्धि वाली रानी सुर माया वश वैरिन को सुहृद जान कर उस पर विश्वास कर लिया और उसके कहने पर कुएँ म कूदने तथा पुत्र और पति को त्यागने के लिए सन्नद्ध हो गई—

'गूढ कपट प्रिय वचन सुनि तीय अधर बुधि रानि।
सुरमाया वस वरिनिहि सुहृद जानि पतिआनि ॥
× × ×
परउँ कूप तुअ वचन पर सकउँ पूत पति त्यागि।
कहसि मोर दुखु देखि बड कस न करव हित लागि।"[११]

किन्तु मानसकार का उपर्युक्त दृष्टिकोण विज्ञान-युग के बुद्धिवादी पाठक को सहज स्वीकार्य नहीं हो सकता, क्योंकि वही कैकेयी जो राजनीति विशारद होने के कारण केवल प्रशासनिक कार्यों मे ही महाराज दशरथ की परामर्शदात्री नहीं थी अपितु युद्ध-सचालन म भी सहायिका थी, वह तुच्छ दासी की मन्त्रणा पर पुत्र और पति का त्यागने तथा कुएँ मे गिरने तक को तैयार हो गई। निश्चय ही कैकेयी की वर-याचना अधिक अर्थवत्तापूर्ण एव महत प्रयोजन की सिद्धि हेतु की गई थी, और यह सताप का विषय है कि हिन्दी के आधुनिक महाकाव्यकारो न, विशेष रूप स कर्केयी' महाकाव्य के रचयिता श्री चन्द्रजी ने वर याचना विषयक घटनाक्रम के ऐतिहासिक आयामो का मथान करते हुए उसे मनोवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य म चित्रित किया है। डा० राम कुमार वर्मा के इस मत से मैं सहमत हूँ कि—'कैकेयी के मनोविज्ञान को चन्द्रजी ने वात्सल्य और तर्क दोनों की भावभूमि पर प्रतिष्ठित किया है।'[१२] इसी सन्दर्भ म सुश्री महादेवी वर्मा का यह कथन कितना सटीक है कि—कर्केयी रामायण की ऐसी पात्री है जिसके बिना रामकथा मे न गति रहती है न मार्मिकता परन्तु वह युग-युगान्तर से कवियो और पाठको की घृणा का भार वहन करती आई है। प्रसन्नता की बात है कि चन्द्रजी ने उसे पुरातन युगों से आरोपित व्यक्तित्व से भिन्न और गरिमापूर्ण व्यक्तित्व ही नहीं दिया सम्पूर्ण

---

[११] रामचरित मानस अयोध्याकाड दोहा स० १६ और २१

[१२] कर्केयी, नवान परिप्रेक्ष्य मे—आवरण पृष्ठ से उद्धृत।

कथा को नवीन परिप्रेक्ष्य में रखकर देखा है।'[11] आलोच्य काव्य के मुख पृष्ठाकन में कवि ने कैकेयी के सम्बन्ध में एक छन्द रचकर प्रस्तुत किया है कि—

"जग ने जिसका नित विषमय पाषाणी रूप निहारा।
बहती उस पत्थर के नीचे, पर विमल सुधा की धारा।।"[12]

और यह सच है कि विश्व अद्यावधि भी कैकेयी के विषमय पाषाणी रूप को ही देख रहा था, किन्तु कवि श्री चन्द्रजी ने कैकेयी के चरित्र में विमल सुधासिंचित मातृत्व और उसकी कर्त्तव्य परायणता दूरदर्शिता, नीतिमत्ता और राष्ट्र कल्याणी मनोभावना को दर्शाया है। इस प्रकार 'कैकेयी' महाकाव्य की रचना द्वारा कविवर श्री चन्द्र ने युग युगान्तर से उपेक्षित, तिरस्कृत एवं पश्चात्ताप पूता नारी के चरित्र का ही इतिहास एवं मनोविज्ञान की समन्वित भूमिका पर पुनर्मूल्यांकन नहीं किया है अपितु रामकाव्यों की परम्परा में भी गौरवान्वित अभिवृद्धि की है। इस दृष्टि से स्वातन्त्र्योत्तरकालीन हिन्दी महाकाव्यों के संरचना क्रम में 'कैकेयी' का प्रणयन सर्वथा अभिनन्दनीय है।

---

11 वही, आवरण पृष्ठ

12 कैकेयी महाकाव्य, मुखपृष्ठ का पृष्ठाकन।